

ॐ

दैवत-संहिता ।

[ऋग्यजुःसाम, यजुर्वेदोक्त मन्त्रोंका दैवतानुसार मन्त्रसंग्रह]

—ॐ—

५ अश्विनौ देवता ।

[१] (ऋ० १।३।१-३)

(१-३) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

१ अश्विना यज्वरीरिपो द्रवत्पाणी शुभस्पती ।

पुरुभुजा चनस्यतम् १

१ अश्विना । यज्वरीः । इपः । द्रवत्पाणी इति द्रवत्पाणी ।
शुभः । पती इति । पुरुभुजा । चनस्यतम् ॥१॥

१ अन्ययः— पुरुभुजा ! शुभस्पती ! द्रवत्पाणी अश्विना ! यज्वरीः इपः
चनस्यतम् ॥१॥

१ अर्थ— हे (पुरुभुजा) विशाल बाहुवाले ! हे (शुभस्पती) शुभ कार्यों के
पालनकर्ता ! और हे (द्रवत्पाणी) अपने हाथों से अतिशीघ्र कार्य करने-
वाले या कार्य में शीघ्र जुटजानेवाले (अश्विनौ) अश्वि देवो ! इन हमारे
दिये (यज्वरीः इपः) यज्ञ के योग्य अर्थात् पवित्र अक्षोंसे (चनस्यतम्)
सम्पुष्ट हो जाओ । इस अक्ष का सेवन कर के आनन्दित हो जाओ ।

१ भावार्थ— अश्विदेव विशाल भुजावाले, केवल शुभ कार्य ही करनेवाले
और आरंभित कार्य अतिशीघ्र समाप्त करनेवाले हैं । वे हमारे यज्ञ में
आकर हमारा दिया पवित्र अक्ष सेवन करें और हार्पित, प्रसन्न हो जायें ।

१ मानवधर्म— मनुष्य अपनी भुज ओंको पुष्ट और बलवान बनावे, सदा शुभ
कर्म ही करें, आरंभ किया हुआ कार्य अतिशीघ्र परंतु उत्तम संपन्न करने की धर्म-
कुशलता अपने हाथोंमें लावे, पवित्र अक्ष खाकर आनन्दित, प्रसन्न रहें ।

अश्विनौ १

१ टिप्पणी- पुरु+पुजा = विशाल भुज्जन ले, बहुतों को भोजन देनेवाले ।
 द्रवत् पाणी = शीघ्र कार्य करनेवाले, दान देनेके कारण जिनके हाथ गले हुए
 हैं, बर्म करने में कुशल । अश्विनौ = बहुत घेरे पास रखनेवाले, घोड़ोंपर बैठने
 वाले, बुद्धिसवार, घोड़ोंकी शिक्षा देनेवाले, अश्विनी कुमार (देवता) । चनस्यति =
 आनंदित होना, सतुष्ट होना, प्रसन्न होना । यज्यरी इषः = जिससे यज्ञ होता है
 ऐसा अन्न, पवित्र अन्न, श्रेष्ठ अन्न ।

[२]

२ अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया प्रिया ।

धिष्ण्या वनतं गिरः । २

२ अश्विना । पुरुदंससा । नरा । शवीरया । प्रिया ।

धिष्ण्या । वनतम् । गिरः ॥२॥

२ अन्वयः- पुरुदंससा ! धिष्ण्या ! नरा अश्विना ! शवीरया प्रिया गिरः
 वनतम् ॥ २ ॥

२ अर्थ- दे (पुरु-दंससा) बहुत कार्य करनेवाले । (धिष्ण्या) धैर्य
 युक्त बुद्धिमान् । तथा (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (शवीरया प्रिया)
 बहुत तेज बुद्धिसे अर्थात् भवान् पूरक (गिर वनतं) हमारे भाषणोंका
 स्वीकार करो, अर्थात् हमारा भाषण प्रेम से सुनो ।

२ भावार्थ- अश्विदेव बहुत कार्य करते हैं, सबे बुद्धिमान हैं, नेता बने
 हैं, वे अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे हमारे कथन को सुनें ।

२ मानवधर्म-अनुभूत बहुत प्रकारके कार्य पूर्णतासे करे, धैर्ययुक्त तथा बुद्धिमत्
 बने, नेता होकर सतुष्ट विधियों को योग्य मार्ग से चलावे, बहुत अन्दर सुगमवाली
 सूक्ष्म बुद्धि से अपने कार्य करे और अनुयायियों के कथन शान्ति से सुने ।

२ टिप्पणी- पुरुदंसस् = पुरु = बहुत = दंसस् = कर्म करनेवाला,
 श्रेष्ठ प्रकारके उत्तम कर्म करनेवाला । धिष्ण्या = बुद्धि, धैर्ययुक्त । शवीरया =
 गतिमान, सूक्ष्म गति से युक्त । वन = सेवन करना, प्रेम करना, इष्ट करना,
 प्राप्त करना, स्वीकार करना ।

३ दक्षा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तवर्हिपः ।

आ यातं रुद्रवर्तनी

३

३ दक्षा । युवाकवः । सुताः । नासत्या । वृक्तवर्हिपः ।

आ । यातम् । रुद्रवर्तनी इति रुद्रवर्तनी ॥३॥

३ अन्वयः— दक्षा ! नासत्या ! रुद्रवर्तनी ! युवाकवः वृक्त-वर्हिपः, सुताः, जायातं ॥३॥

३ अर्थ— हे (दक्षा) शत्रु के विनाशकर्ता ! और (नासत्या) असत्य से दूर रहनेवाले (रुद्र-वर्तनी ।) हे शत्रुओं को रक्षानेवाले वीरों के मार्ग से जानेवाले तुम दोनों अग्नि देवो ! (युवाकवः वृक्त-वर्हिपः) ये मिश्रित किये हुए और जिनसे तिनके निकाल लिये हैं ऐसे (सुताः) अभी निचोड़े हुए सोमरस को पीने के लिये (जायातं) द्धर पधारो ।

३ भावार्थ— अग्नि देव शत्रुओं का वध करने में प्रीण, वीरभद्र के मार्ग से जानेवाले और कभी असत्य का आश्रय करनेवाले नहीं हैं । उन्हें अपने पास बुलाना और निचोड़ा सोमरस दूध शल आदि के साथ मिश्रित कर के उनको पीने के लिये देना चाहिये ।

३ मानवधर्म— शत्रु के मार्ग से जानेवाले, शत्रु का नाश करनेवाले और कभी असन्मार्ग से जो नहीं जाते, वैसे वीरों को बुलाकर उनको उत्तम रस पाने के लिये दे कर उनका सम्मान करना योग्य है ।

३ टिप्पणी— दक्षा = उत्तम कर्म करनेवाला, अद्भुत सहायता देनेवाला, (शत्रु का) नाश करनेवाला, (रोग) दूर करनेवाला (वैद्य) । नासत्या = जो असत्य का कभी आश्रय नहीं करते, सदा सत्य मार्ग से जानेवाले, (नास-त्य) नासि का में रहनेवाले श्वास और उच्छ्वास । वृक्त वर्हिपः = जिस रंग से छानने के बाद सब तिनके निकले हैं, जिन्होंने आसन फैलाये हैं (और जो देवों को उनपर बैठने के लिये बुलाते हैं,) रुद्र-वर्तनी = भयंकर मार्ग से जानेवाले, शस्त्रवीरों के मार्ग से जाकर नीरत्ता के कार्य करनेवाले ।

[४] (क्र० १।१५।११)

मेधातिथिः फाण्य । (ऋतुसंहिता) । गायत्री ।

४ अश्विना पिबतु मधु दीद्यमी शुचिव्रता ।

ऋतुना यजवाहसा

११

४ अश्विना । पिबतम् । मधु । दीद्यमी इति दीदिऽअमी ।

शुचिऽव्रता । ऋतुना । यजऽवाहसा ॥११॥

४ अन्वय - शुचि-व्रता । यज-वाहसा ! दीद्यमी अश्विना ! ऋतुना मधु पिबतम् ॥११॥

४ अर्थ (शुचि-व्रता) हे शुद्ध व्रतों का अनुष्ठान करनेवाले । (यज-वाहसा) हे यज्ञों को अच्छी भाँति पूरे करनेवाले । और हे (दीद्यमी अश्विना) धनकते हुए अग्नि में हवन करनेवाले अग्निदेवी ! (ऋतुना मधु पिबतम्) ऋतु के अनुकूल मधुका, मीठे सोमरसका पान करो ।

४ भाषाार्थ- पवित्र व्रतोंका आचरण करनेवाले, यज्ञोंको चलानेवाले और अग्निदेवी की प्रशंसा निमानेवाले अश्विनी ऋतु के अनुकूल ही मधुरसों का पान करें ।

४ मानवधर्म- पवित्र व्रतोंका अनुष्ठान करें, शुभ कर्मोंको करें, अग्नि प्रदीप्त कर के यज्ञों को चलायें, ऋतुके अनुसार पानपान करें ।

४ टिप्पणी- शुचिव्रत=पवित्र व्रतका अनुष्ठान करनेवाला, शुभ कर्म करनेवाला । दीद्यग्नि=प्रदीप्त अग्नि करनेवाला अर्थात् हवन करनेवाला । मधु=मधुर से मरछ, वाहद मधुमिश्रित रस ।

[५] (क्र० १।२२।१-४)

५ प्रातॄयुजा वि बोधया—अश्विनामेह गच्छताम् ।

अस्य सोमस्य पीतये

१

५ प्रातःपुजा । वि । बोधय । अश्विनी । आ । इह । गच्छताम् ।

अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१॥

५ अन्वय प्रातःपुजा अश्विनी वि बोधय, अस्य सोमस्य पीतये इह आ गच्छताम् ॥ १ ॥

५ अर्थ- (प्रातः युजा) प्रातः कालही काम में जुट जानेवाले या रथ जोड़कर जानेवाले (अश्विनौ धि योधय) अश्वि देवोंको विशेष रूप से जगा दो, स्मरण कर दो कि वे दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरस का पान करने के लिए (इह भा गच्छतां) इधर पधारें।

५ भावार्थ- बड़े कार्य कर्ता तबके उठकर अपने कार्य में नियुक्त होते हैं। इसलिए ऐसे निरलस कार्यकर्ताओं को स्मरण दिलाकर उनका यथोचित साकार करना चाहिए।

५ मानवधर्म- मनुष्य बड़े तबके उठे और निजी कार्य में स्वयंही जुट जाय। (अथवा बड़े तबके उठकर घोड़े पर सवार हो कर अथवा गाड़ी जोतकर निरीक्षण करने के लिये जाय।) ऐसे कर्मतत्पर मनुष्य को स्मरण दे देकर रसपान के लिये आदर से बुलाना योग्य है।

५ टिप्पणी- प्रातयुज=प्रातःकाल में उठकर अपने कर्म में लगनेवाला, सवेरे ही घोड़े को जोत कर निरीक्षण के लिये जानेवाला।

[६]

६ या सुरथा रथीतमो—भा देवा दिविस्पृशा ।

अश्विना ता हवामहे

२

६ या । सुरथा । रथीतमा । उमा । देवा । दिविस्पृशा ।

अश्विना । ता । हवामहे ॥२॥

६ अन्वयः- या उमा देवा सुरथा रथी-तमा दिवि स्पृशा अश्विना ता हवामहे ।

६ अर्थ- (या उमा देवा) जो दोनों देव (सुरथा) अपने पास उत्तम रथ रखते हैं, जो (रथीतमा दिविस्पृशा) रथियों में अत्यन्त उत्तम महारथी और युद्धोक्तक जानेवाले हैं (ता अश्विना हवामहे) उन दोनों अश्विदेवों को हम बुलाते हैं।

६ भावार्थ- अश्विदेवों का रथ उत्तम है, वे स्वयं महारथियों में भी श्रेष्ठ महारथी हैं, वे युद्धोक्त में भी जाते हैं, उन दोनों को हम बुलाते हैं।

६ मानवधर्म- मनुष्य अपने पास उत्तम रथ रखे, बड़ा प्रभावशाली महारथी बने, पहाड़ों के शिखरोंपर चढ़कर भी शत्रु से लड़े। ऐसे वीर का सत्कार सब लोग करें।

६ टिप्पणी- सु रथ = उत्तम रथ आने पात रखनेवाला । रथो-ग = राथ्यों में उत्तम महार्थ, प्रभावी घोर । दिविस्पृश = सुलोक को स्पर्श करनेवाला पर्वत शिखरपर भ्रमण करनेवाला, पर्वत शिखरपर रहकर रहनेवाला । (इस मन्त्र से ऐसा प्रतीत होता है कि रथ पास रखना, एव सधारण सी बात वैदिक पद्धति के अनुसार थी ।)

[७]

७ या वां कशा मधुमती अश्विना सूनृतावती ।

तया यज्ञं मिमिक्षतम् ३

७ या । वाम् । कशा । मधुमती । अश्विना । सूनृतावती ।

तया । यज्ञम् । मिमिक्षतम् ॥ ३ ॥

७ भावार्थ- अश्विना । या या कशा मधुमती सूनृतावती, तया यज्ञं मिमिक्षत ॥ ३ ॥

७ अर्थ- (अश्विना) हे अग्निदेवो ! (या) तुम दोनों की (या कशा) जो वाणी (मधुमती) मिठाससे पूर्ण तथा (सूनृतावती) सचाई से युक्त है, (तया) इस से (यज्ञं मिमिक्षत) इस यज्ञ का सेवन करो, अर्थात् इस यज्ञ को सब मधुर अच्छासों से परिपूर्ण बनाओ ।

७ भावार्थ- अग्निदेव अपनी मधुर और सत्ययुक्त वाणी से यज्ञ को रसमय कर द ।

७ मानवधर्म- मनुष्य तब घेले और मधुर भी बोले । और अपनी वाणीसे बड़े बड़े न्याय सपन्न करे ।

७ टिप्पणी- कशा = चबूट, वण (निघ १।११), उत्सव वर्षक भाषण । सूनृतावती (सु उन कृता वती = सुनु ऊनयति अत्रिय सूत्र । तया विध कृत वस्त्रां वा) जो अत्रिय को दूर करता है ऐसा समय जिसमें है वह वाणा । मिह = पना छिड़ना, गला चम्पा, रसयुक्त बनाना ।

[८]

८ नहि वामास्ति दूरके यत्र रथेन गच्छेथः ।

अश्विना सोमिनो गृहम् ४

८ नहि । वाम् । अस्ति । दूरके । यत्र । रथेन । गच्छेथः ।

अश्विना । सोमिनः । गृहम् ॥ ४ ॥

८ अन्वयः- अधिना ! यग सोमिन. गृहं रथेन गच्छथः, वा वृरके नहि भरि ॥५॥

८ अर्थ- हे (अधिना) अधिदेवो । (यग सोमिनः गृहं) जहाँ पर सोमयाग करनेवाले का घर है, वहाँ अपने (रथेन गच्छथः) रथपर से तुम दोनों जाते हो, क्योंकि (वा वृरके नहि भरि) तुम दोनों के लिए कोई सुदूर स्थान नहीं है ।

८ भावार्थ- अधि देवों के पास उत्तम रथ है, इसीलिए कोई स्थान उन दोनों के लिए सुदूर नहीं प्रतीत होता है । सोमयाग करनेवाले के पास जाने के लिये वे दोनों अपने रथ पर चढ़कर वादूर की यात्रा करते हैं ।

८. मानवधर्म- गृह्य अपने पास उत्तम घोड़े और उत्तम रथ रखे । जहाँ यज्ञ अग्नि सत्कर्म हो रहे हों, वहाँ रथ पर बैठकर शीघ्र ही पहुँचे । जिस के पास शीघ्रगामी रथ है उस के लिये कोई स्थान दूर नहीं है ।

८. टिप्पणी- सोमिन् = जिस के पास सोम है, सोमयाग करनेवाला, यज्ञ करनेवाला ।

[९] (क्र० १।३०।१७)

(९-११) शुनः शेष आजीमर्तिः स कृत्रिमो वैश्यामित्रो देवरातः ।

९ आश्विनावश्वावत्ये-पा यातुं शवीरया ।

गोमद् दस्त्रा हिरण्यवत् १७

९ आ । अश्विनौ । अश्वऽवत्या । इषा । यातुम् । शवीरया ।

गोऽमत् । दुस्त्रा । हिरण्यऽवत् ॥१७॥

९. अन्वयः- दस्त्रा अश्विनौ ! शवीरया अश्वानरया इषा आयातं, गोमद् हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

९ अर्थ- हे (दस्त्रा) शत्रु विनाशकर्ता (अश्विनौ) अधिदेवो । (शवीरया अश्वानरया इषा) यतिगण बल से युक्त, तथा घोड़े स्त्री धन से पूर्ण भद्रतामयी की साथ किए हुए (आयातं) तुम दोनों आओ । (गोमद् हिरण्यवत्) हमारा घर तुम दोनों की कृपा से गाँवों से पूर्ण और सुवर्ण से भरा रहे ।

९. भावार्थ- हे अधिदेवो 'हमें गाँव, घन, घोड़े और भद्र तथा धन दो ।

९ मानवधर्म- मनुष्य के पास प्रभावी बल रहे, तथा गाये, सोहे और धन विपुल प्रमाण में रहें ।

९ टिप्पणी- दक्षा (मन्त्र ३), शवीर (मं. ९)

[१०]

१० समानयोजनो हि वां रथो दत्तावमर्त्यः ।

समुद्रे अश्विनेयते

१८

१० समानयोजनः । हि । वाम् । रथः । दत्तो । अमर्त्यः ।

समुद्रे । अश्विना । ईयते ॥१८॥

१० अन्वयः- दत्तो अश्विना ! वां अमर्त्यः रथः हि समानयोजनः समुद्रे ईयते ॥ १८ ॥

१० अर्थ- (दत्तो अश्विना) हे शत्रु को मर्द करनेवाले अश्वि देवों ! (वां अमर्त्यः रथः हि) तुम दोनों का अविनाशी रथ निश्चयपूर्वक (समान-योजनः) तुम दोनों का एक ही है, वह (समुद्रे ईयते) समुद्र में भयवा अन्तरिक्ष में भी चला जाता है ।

१० भावार्थ- अश्वि देवों का रथ न बिगड़नेवाला और समुद्र में तथा आकाश में संचार करनेवाला है ।

१० मानवधर्म- मनुष्य अपने रथ ऐसे बनावे कि, जो बारंबार न बिगड़े और समुद्र में तथा अन्तरिक्ष में भी गमन कर सके ।

१० टिप्पणी- दक्षा (मं० ३) । अमर्त्यः=जो मरण धर्मवाला नहीं, न बिगड़नेवाला, अटूट । समान योजनः=जिस में अनेकों के लिये बैठने के आसन हों । समुद्र=समुद्र, जल, अन्तरिक्ष, मेघमण्डल ।

[११]

११ न्युध्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।

परि दामन्यदीयते

१९

११ नि । अघ्न्यस्य । मूर्धनि । चक्रम् । रथस्य । येमथुः ।

परि । दाम् । अघ्न्यत् । ईयते ॥१९॥

११ अन्वयः- रथस्य चक्रं अघ्न्यस्य मूर्धनि नियेमथुः, अघ्न्यत् तां परि ईयते ॥ १९ ॥

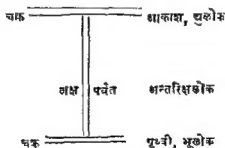
११ अर्थ- (रथस्य चक्रं) अपने रथके एक पहियेको, (अघ्न्यस्य मूर्धनि) अभेद्य पर्वत की छलहट्टीमें (नियेमथुः) तुम दोनों स्थिर रख लुके हो, (अन्यत्) और उसका दूसरा पहिया (चां परि ईयते) धुलोकके ऊपर घूमता है ।

११ भावार्थ- अभिदेवोंके रथका एक चक्र पर्वत की धुनियाद में और दूसरा आकाश में घूमता है ।

११ मानसधर्म- रथ के चक्र पर्वत पर भा चलने योग्य बन ने चाहिये । तथा अन्तरिक्षमें संचार करनेकी भी योजना उनमें चाहिये ।

११ टिप्पणी- अघ्न्य=अव्यय, अभेद्य, शत्रु से आक्रमण होना जहाँ असंभव हो ऐसा दुर्गम स्थान । ध्रु=स्वर्ग, आकाश, पर्वतके ऊपर शिखरपर का प्रदेश जैसा तिब्बत देश । मूर्धन्=शिखर, शिर, (Base) तल, धुनियाद, तराई ।

इस मन्त्र में (रथस्य चक्रं अघ्न्यस्य मूर्धनि, अन्यत् चां परि-ईयते) अभि देवोंके रथका एक चक्र पर्वतके मूलमें और दूसरा पर्वतके शिखर पर आकाश में घूमता है, ऐसा वर्णन है । रथ के दो चक्र होते हैं । एक चक्र पृथ्वी है और दूसरा चक्र आकाश है और इन दोनों चक्रों का अक्ष पर्वत है । ये दोनों चक्र घूम रहे हैं । यह विश्व ही अभिदेवों का रथ है ।



पृथ्वी और आकाश एक जैसे घूमने का दृश्य उत्तर ध्रुव के पास ही देखता है । वहाँ नक्षत्र मनुष्य के शिर पर प्रदक्षिणा की गति से घूमते हैं, यहाँ के समान प्रतिदिन अस्त उदय नहीं होते । इसलिये यह वर्णन बड़ा सार्थ हो सकता है ।

इस मन्त्र से ऐसा अर्थ समझने के लिये ' मूर्धनि ' पद का प्रसिद्ध अर्थ छोड़कर दूसरा करना पड़ेगा जो कि ऊपर दिया है । पर्वत की [एक नोक पर पृथ्वीएकी एक चक्र लगा है और दूसरे (शिरे पर) आकाशस्थी चक्र लगा है और ये दो चक्र (प्रदक्षिणा की गति से) घूम रहे हैं । ' यहाँ प्रदक्षिणाकी गतिदर्शक अभिदेव २

‘परि ई’ क्रिया है। केवल ‘मूर्धनि’ पद का अर्थ (Base) बुनियाद
 रालभाम, तलहटी ऐसा भूमिति में होनेवाला अर्थ जो कोशों में है वही यहां लेना
 होगा। पृथ्वी और आकाशमें दो चक्रों के रूपमें वेदमें अन्यत्रभी बताया है।
 यो अक्षेण्य चक्रिया शर्चामि- विष्वक्तस्तंभ पृथिवीं उत द्यां ।
 (ऋ १०।८१।४) जैसा अक्ष से गाड़ी के दोनों पहिये बँटते हैं पृथ्वी और
 आकाश उस प्रभु ने जोड़ रखे हैं। यहाँ भी पृथ्वीको रखता एक चक्र और
 आकाश को दूसरा चक्र बना है। ये कवि उत्तरभूय के स्थानमें विद्यमान होंगे
 और प्रत्यक्ष दीपनवाला साक्षात्कृत दृश्य ही वर्णन करते होंगे, क्योंकि यहाँके
 कवि ऐसा वर्णन करने में असमर्थ हो होंगे।

[११] (ऋ० १।१४।१-१२)

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः । जगती, १.१० त्रिष्टुप् ।

विश्विन् नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वा याम उत रातिरश्विना ।
 युवोहि यन्त्रं हिम्येव वासंसो अभ्यायसेन्या भवतं मनीषिभिः ॥

१२ त्रिः । चित् । नः । अद्य । भवतम् । नवेदसा ।

विऽभुः । वाम् । यामः । उत । रातिः । अश्विना ।

युवोः । हि । यन्त्रम् । हिम्याऽइव । वासंसः ।

अभिऽआयसेन्या । भवतम् । मनीषिभिः ॥१॥

१० अन्वय - नवेदसा अश्विना ! अद्य त्रिः चित् नः भवतं, वां यामः उत
 रातिः विभु, वासस हिम्या इव युवो यत्र हि, मनीषिभिः अभ्यायसेन्या
 भवतम् ॥१॥

१२ अर्थ- (नवेदसा अश्विना) हे ज्ञानी अग्नि देवो (अद्य) आज तुम
 दोनों (त्रिः चित् नः भवतं) तीनों चार हस्तों ही होकर रहो । (वां याम)
 तुम दोनों का रथ (उत राति विभुः) और दान बड़ा होता है ; (वाससः
 हिम्या इव) जैसे कपड़े का लट्ठा से सम्बन्ध अलग हो घनिष्ठ है वैसे ही (युवो
 यन्त्रं हि) तुम दोनों का निर्वंशण हम से घनिष्ठ होना रहे, (मनीषिभिः
 अभ्यायसेन्या भवतं) मननशील लोगों की तुम दोनों सहज ही से प्राप्त
 होते रहो।

११ भावार्थ- अग्निदेव जानी हैं । ये हमारे यज्ञ में आज हीनों सबनों में आज्ञाएँ । उनका रथ भी बड़ा है और उनके पास दान देने योग्य धन भी उस रथ में बहुत रखा रहता है । सर्दी से कपड़े का सम्बन्ध जैसे भट्ट रहता है वैसेही अग्नि देवों की निगरानी का सम्बन्ध हम से रहे । अग्नि देवों की सहायता गगनशील लोगों को सहज ही से प्राप्त होती रहे ।

१२ शान्त्यधर्म- मनुष्य ज्ञान प्राप्त करे। आगे बढेरथमें दूसरों की सहायता करने की पर्याप्त सामग्री रखे । वह दिन में तीन बार अनुयायियों के यहाँ भी देना भाग्य करे । वह मननशील ज्ञानियों से सहज ही से मिलना रहे, उन का कथन सुने और उन से अपना सम्बन्ध भट्ट रहने ।

१२ टिप्पणी- नवेदस् (न-वेदस्) = नहीं है अगिक ज्ञान जिस से ऐसा अद्वितीय विद्वान्, जो सभी विपरीत ज्ञान नहीं रखता । यामः = रथ, मार्ग, गति । वासस् = कपड़ा, पत्र, ओढ़ने का वस्त्र । वासस् = रित, दिव्य । द्विष्याः = सर्दी, शीतलता, हिमकाल की रानी । यन्त्र = नियन्त्रणनियमन करनेवाला सम्बन्ध । अभ्यायंसेन्या (अभि-आ-पंसेन्या) = चारों ओरों पूर्णतया नियमोंद्वारा संबंध ।

[१३]

अथः पृथयौ मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः ।
अथः स्कम्भासः स्कमितास आरमे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिंश्विना दिवा ॥

१३ अथः । पृथयः । मधुवाहने । रथे ।

सोमस्य । वेनाम् । अनु । विश्वे । इत् । विदुः ।

अथः । स्कम्भासः । स्कमितासः । आरमे ।

त्रिः । नक्तम् । याथः । त्रिः । ऊँ इति । अश्विना । दिवा ॥ २ ॥

१३ अन्वयः- मधुवाहने रथे अथः पृथयः विश्वे इत् सोमस्य वेनां अनु विदुः, अश्विना ! आरमे अथः स्कम्भासः स्कमितासः नक्तं त्रिः याथः दिवा च त्रिः ॥ २ ॥

१३ अर्थ- इन के (मधु-वाहने रथे) मधु को खोनेवाले रथ में (अथः पृथयः) तीन पहिये लगे हैं, (विश्वे इत्) सभी आप दोनों की (सोमस्य वेनां अनु विदुः) सोम की चाह को जानते हैं । हे (अश्विना) अग्नि देवों

(मारभे त्रयः स्कन्धासः) तुम दोनों के रथपर जालम्बन के लिए तीन खंभे (स्कन्धासः) स्थिर किये हुए हैं, (पक्षं त्रिः यायः) रात्री के समय तुम दोनों तीन बार यात्रा करते हो, (दिवा उ त्रिः) और दिन के समय भी तीन बार धूमते हो ।

१३ भावार्थ- अभिदेवों के रथ के तीन पहिये हैं । उसमें बैठ कर वे सोम के स्थानपर जाते हैं क्योंकि वे सोम को चाहनेवाले हैं । इनके रथमें पकड़ने के लिये तीन खम्भे हैं, वे खम्भे स्थिर हैं । रात्रीमें तथा दिन में तीन तीन बार ये अभिदेव इस रथ में बैठकर भ्रमण करते हैं । इनके रथमें पर्याप्त मधु रहता है ।

१४ मानवधर्म- श्रेष्ठ रथ के तीन पहिये हों (दो पीछे और एक आगे हो) रथ में बैठनेवालों को पकड़कर बैठने के लिये इस में तीन खम्भे हों । बैठनेवाले इन खम्भों को पकड़कर बैठें । इस रथ पर खाने पीने के मधुर पदार्थ रहें । इस रथ में बैठकर वीर दिन में तथा रात्री में तीन तीन बार भी (वर के) विविध स्थानोंपर जायें और यात्राओं की सहायता करें ।

१५ टिप्पणी- मधुचाहन=मधुर पदार्थोंको ले जानेवाला वाहन । घेना= इच्छा, चाह, एक स्त्री (चन्द्रमा की पुत्री) । आरभ=आलम्बन, अश्रय, सहारा । स्कन्ध=स्तम्भ ।

[१४]

समाने अहन् त्रिरवधगोहना त्रिरथ युवं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्याजवतीरिपो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुपसंश्च पिन्वतम् ॥
१४ समाने । अहन् । त्रिः । अवधगोहना ।

त्रिः । अथ । यज्ञम् । मधुना । मिमिक्षतम् ।

त्रिः । याजवतीः । इपः । अश्विना । युवम् ।

दोषाः । अस्मभ्यम् । उपसंश्च । च । पिन्वतम् ॥ ३ ॥

१४ अन्वय- अवध गोहना अश्विना ! समाने अहन् अथ यज्ञ त्रिः मधुना मिमिक्षतम्, युवं अस्मभ्य उपसंश्च दोषाः च याजवतीः इपः त्रिः पिन्वतम् ॥ ३ ॥

१४ अर्थ- हे (अश्वत्थ-गोहना अभिना) अश्वि देवों ! तुम दोनों दोषों को गुप्त रखनेवाले हो । (समाने अहन्) एक ही दिन (अद्य) आज (यज्ञं त्रिः) हमारे यज्ञ को तीन बार (पशुना भिमिक्षतं) पशु से पूर्य करो; (युवं अस्मभ्यं) तुम दोनों हमें (उपसः दोषाः च) प्रातःकाल तथा सायंकाल (याजयतीः इयः) यज्ञ चर्चक अन्न (त्रिः पिन्वतं) तीन बार भरण देदो ।

१४ भावार्थ- अश्विदेव हमारे कर्म में दोष अर्थात् त्रुटि रही तो उसकी क्षमा करते हैं । दिन में तीन तीन बार यज्ञ में आते और मधु देते हैं, तथा सवेरे और शाम को यज्ञ चर्चक अन्न दिन में तीन बार देते हैं ।

१४ मानवधर्म- नेना अपने अनुवायियों के दोष गुप्त रखे (और एतन्त में उनके दूर करने की विधि समझा दें) समाज में उन का अपमान हो ऐसी संतिषे उन दोषों की घोषणा न करें । दिन में तीन तीन बार यज्ञचर्चक मधुर अन्न और मधुर पेय अपने अनुवायियों को देते रहें ।

१४ टिप्पणी- अश्वत्थगोहना (अ-श्व-गोहना) निम्न दोष, त्रुटि की प्रकृति रख कर उसको दूर करना । उपसः=प्रातः, दिन । दोषाः=रात्री ।

[१५]

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्रान्वे त्रेधैव शिक्षतम् ।

त्रिर्नान्द्यं बहूतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरैव पिन्वतम् ॥

१५ त्रिः । वर्तिः । यातम् । त्रिः । अनुव्रते । जने ।

त्रिः । सुप्रान्वे । त्रेधाऽऽव । शिक्षतम् ।

त्रिः । नान्द्यम् । बहूतम् । अश्विना । युवम् ।

त्रिः । पृक्षः । अस्मे इति । अक्षरैऽऽव । पिन्वतम् ॥ ४ ॥

१५ अन्वय- अश्विनौ । वर्तिः त्रिः यातं, अनुव्रते जने त्रिः, सुप्रान्वे त्रिः, त्रेधा इव शिक्षतं; युवं नान्द्यं त्रिः बहूतं, अस्म अक्षरैव इव पृक्षः त्रिः पिन्वतम् ॥ ४ ॥

१५ अर्थ- हे अश्विनौ ! (वर्तिः त्रिः यातं) हमारे यज्ञपर तुम दोनों तीन बार आओ, (अनुव्रते जने त्रिः) अनुवायी लोगों के मध्य तुम दोनों तीन बार जाओ, (सुप्रान्वे) उत्तम रक्षा करने योग्य अनुवायियों (त्रिः) तीन बार (त्रेधा इव शिक्षतं) तीन प्रकार के ज्ञान को पढ़ाओ, (युवं) तुम दोनों

(नान्यं त्रिः बहत्) अभि सन्दनीय पदार्थों को तीन बार डोकर इधर-पहुँचा दो और (अस्मे) हमें (पृक्षः) अक्षों को (अक्षरा इव त्रिः पिन्वतं) रधायी पस्तुओं के समान तीन बार पर्याप्त मात्रा में देकर पुष्ट करो ।

१५ भावार्थ— अभिदेव अनुयायियों के घरपर तीन बार दिन में जायें, अपने घर तीन बार आ जायें । जिस की सुरक्षा करनी हो उस को तीन बार तीन प्रकार का ज्ञान देकर अपनी सुरक्षा करनेकी रीति बतावें । भानन्द देनेवाले पदार्थ तीन बार दिन में छे आँ और अन्न भी तीन बार देकर हमें पुष्ट करें ।

१५ मानसधर्म— नेता अनुयायियोंकी पृष्ठतः छ दिनमें तीन बार परें । अनुयायियों को अपनी सुरक्षा करने का ज्ञान दिन में तीन बार तीन प्रकारसे देवे (अपने तीन शत्रु हैं उन से अपनी रक्षा करने का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये । अपने आन्तरिक, अपने समाजिक और जगतिक से तीन शत्रु हैं । इनसे बचने का ज्ञान तीन प्रकार का होता है ।) अनुयायियों को दिन में तीन बार ज्ञान दान देकर उनको पुष्ट रखा जाय ।

१५ टिप्पणी— घर्ति=आ, रधा, ग । अनुष्ठत= अनुष्ठल कर्म करनेवाला, अनुयायी । सु-प्र-अध्य=उत्तम रीतिसे विशेष सुरक्षा करने योग्य । नान्य=भानन्द देनेवाला । पृक्षः=अन्न, खानपान । अक्षर=अक्षय, अविनाशी, जल, जीवन ।

[१६]

त्रिर्नो रयिं बहत्तमन्धिना युवं त्रिदेवताता त्रिकुत्तवत्तं धियः ।

त्रिः सौभाग्यत्वं त्रिकुत्त श्रवांसि न सिष्ठं वां सूरं दुहिता रुहद् रथम् ॥

१६ त्रिः । नः । रयिम् । बहत्तम् । अन्धिना । युवम् ।

त्रिः । देवताता । त्रिः । उत्त । अवत्तम् । धियः ।

त्रिः । सौभाग्यत्वं । त्रिः । उत्त । श्रवांसि । नः ।

त्रिस्थम् । वाम् । सूरं । दुहिता । आ । रुहद् । रथम् ॥ ५॥

१६ अन्वयः— नन्धिना । युवं नः त्रिः रयिं बहत्तं, देवताता त्रिः उत्त धियः ॥ भवत्तं । सौभाग्यत्वं त्रिः उत्त श्रवांसि त्रिः, वां त्रिष्ठं रयं सूरं, दुहिता भारद्वाज ॥ ५॥

१६ अर्थ- हे अश्विनो ! (तुभं नः) तुम दोनों हमारे लिए (त्रिः रयिं यदत्) तीन बार धन पहुँचा दो, (देवताता त्रिः) यज्ञ में तीन बार भागो (तत्) और यज्ञों के (त्रिधाः त्रिः सवत्) कर्त्तों को तीन बार सुश्रित रखो, (सौमनस्यं त्रिः) भयानक ऐश्वर्य तीन बार देदो, (तन अर्वा ये त्रिः) और भक्त समूह तीन बार दो, (वां त्रिः स्थं रयं) तुम दोनों के तीन पहियों के रखपर (सूर्यो दुहिता) सूर्य की कन्या (रदत्) चढगयी है ।

१७. भाष्यार्थ- अधिदैव हमारे लिए तीन बार धन देने, यज्ञ में भाग ले तीन बार कर्मोंकी देवताओं को, उत्तम मान्य तीन बार दे, और तीन बार भक्त दें । इनके तीन पहियों के रख पर सूर्य की दुहिता चढ बैठी है ।

१८ मानवधर्म- मेला अपने अनुपयियों को तीन बार धन दे, उन के कर्मों की सांसार देवताओं को, ऐश्वर्य और भक्त भी उन को दे दे ।

१९ टिप्पणी- देवताता=देवोंका यज्ञ त्रिधा केरता है ऐसा धर्म, यज्ञ । धी=धर्म, पुत्रि । (सूर्यो दुहिता रयं रदत्) सूर्यकी पुत्री प्रभा रखपर चढ बैठी है । यहाँ का रय यज्ञ सारा विश्व है, इस का एक पहिया पृथ्वी और इसका आकाश है (मं० ११) । इस रखपर सूर्य की पुत्री प्रभा चढ बैठी है अर्थात् सूर्य उदय होकर इस के चरण सव जगत् पर पड़े है । सूर्यके प्रकाश का यह वर्णन है । सूर्यो दुहिता = सूर्य की पुत्री, सूर्य प्रभ, प्रव शक्ति ।

[१७]

त्रिनो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरुदत्तमदृग्धः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६॥

१७ त्रिः । नः । अश्विना । दिव्यानि । भेषजा ।

त्रिः । पार्थिवानि । त्रिः । ऊहति । दत्तम् । अत्सभ्यः ।

ओमानम् । अम्स्योः । ममकाय । सूनवे ।

त्रिधातु । शर्म । वहतम् । शुभः । पती इति ॥६॥

* १७ अन्यथ — शुभस्पती अश्विना । नः दिव्यानि भेषजा त्रिः, पार्थिवानि त्रिः, अदृग्धः त्रिः दत्तं । ममकाय सूनवे शंयो ओमानं त्रिधातु शर्म वहतम् ॥६॥

१७ अर्थ- दे (शुभः पत्नी अश्विना) शुभ कर्मों के पालनकर्ता अधि देने ।
(नः) हमें (दिव्यानि भेषजाग्निः) सुलोक की द्वाइयाँ तीन बार (पार्थि-
यानिग्निः) भूमि पर की औपधियाँ तीन बार और (भद्राःग्निः दत्तं) जहाँ
से तीन बार औपधों का दान करो । (सन्नमय सूनवे शंभोः) मेरे पुत्र को
सुख की प्राप्ति होने के लिए (भोगार्थं त्रिधातु धर्मं वहतं) संरक्षण तथा तीन
धातुओं की सुस्थिति से मिलनेवाला सुख पहुँचा दो ।

१७ भावार्थ- अश्विरेव हमारे शुभ कर्मों की रक्षा करें । पर्वत, भूमि और
जल से विक्रिया करें और बाल बच्चों की सुरक्षा के लिये पाप विनाशक की
(विपमता को दूर कर के) समता का सुख दें ।

१७ मानवधर्म- सब स्थानों से औपधियाँ लाकर चिकित्सा का योग्य प्रबंध
राष्ट्र में किया जाय । विशेषतः बालबच्चों की सुरक्षा के लिये विशेष ही प्रयत्न
किया जाय । (पत-पित-रूक भी विपमता का नाम रोग है, इससे दूर करने और
उप) तीनों धातुओं की समता से जो सुख मिलना सम्भव हो, वह सब को मिले ।
विशेषतः बालबच्चों की सुरक्षिति स्थायी रखने का प्रयत्न किया जाय ।

१७ टिप्पणी- दिव्यं भेषजं=पर्वत की चोटी पर उत्पन्न होनेवाले औपधि,
आकाश से प्राप्त औपध । पार्थिवं भेषजं=पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ ।
अद्भ्यः भेषजं=जल से, अन्तरिक्ष से, पर्वत की तराई से, मेघमण्डल से प्राप्त
औपध । शं-भुः=रोग समन रूप शान्ति सुख, अनन्द की-प्राप्ति । भोगार्थं=
संरक्षण । त्रिधातु धर्मं=रूक-वित वात नाशक तीन धातुओं से मिलनेवाला
शान्ति सुख ।

[१८]

त्रिनां अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातुं पृथिवीर्मन्त्रायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावर्त आत्मेव वातः स्वसंराणि गच्छतम् ॥

१८ त्रिः । नः । अश्विना । यजता । दिवेऽदिवे ।
परि । त्रिधातुं । पृथिवीम् । अन्त्रायतम् ।
तिस्रः । नामत्या । रथ्या । परावर्तः ।
आत्माऽहं । वातः । स्वसंराणि । गच्छतम् ॥ ७ ॥

१८ अन्यर्थ- यजता अश्विना । नः दिवेदिवे त्रि पृथिवीं त्रिधातु परि अना-
यतं, रथ्या नासत्या । परावर्तः, स्वसंराणि वातः आत्मा इव तिस्रः गच्छतं ॥ ७ ॥

१८ अर्थ- (वज्रता भक्षिना) हे पूजनीय भक्षि देवो ! (तः दिवे दिवे) हमारे प्रतिदिन करने के (त्रिः) तीनों यज्ञों में (पृथिवीं) पृथ्वी स्थानीय पेक्षीपर (त्रिः परि अक्षायत्) तीन बार आकर बैठो, (रथ्या नासत्या) हे रथारूढ़ और सत्य पाळक देवो ! (पराधत्तः) सुदूरधर्ती स्थान से भी (पातः आगता इव) प्राण वायुरूपी आत्मा के समान (स्वसराणि तिष्ठः गच्छतं) हमारे घरों में तीनों बार आओ ।

१८ भावार्थ- पूजनीय भक्षि देव प्रतिदिन के यज्ञ में तीन बार आकर आत्मनों पर बैठें । जब ये वृक्ष देश में हों तब भी ये रथपर चढ़ कर, जैसा प्राण दाहीर में घुसता है वैसे, वेगसे हमारे यज्ञस्थानमें शीघ्रतासे आ जायें । अर्थात् जहां कहीं भी हों वहां से ये अवश्य आ जायें ।

१८ मानवधर्म- नेता पक्षी भी हों, वहसि वे अपने वायुयात्रियोंके कार्यों की निगरानी करने के लिये, प्राण शरीरमें आगे की तरह आ जायें । हो सके तो दिन में तीन बार भी आ जायें । (नेता अनुयायियों का प्राण होता है । नेता सत्यका पालन करे और शुद्धाचारि रहे ।)

१८ टिप्पणी- स्वसरं=पर, शरीर, इंद्रिय वण ।

(१९)

त्रिरंश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिः स्रय आहावाः हविः कृतम् ।
तिष्ठः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे शुभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

१९ त्रिः । अश्विना । सिन्धुऽभिः । सप्तमातृऽभिः ।

त्रयः । आऽहावाः । त्रेधा । हविः । कृतम् ।

तिष्ठः । पृथिवीः । उपरि । प्रवा । दिवः ।

नाकम् । रक्षेथे इति । शुऽभिः । अक्तुऽभिः । हितम् ॥८॥

१९ अन्ययः- अश्विना । सप्तमातृभिः सिन्धुभिः त्रिः, त्रयः आहावाः हविः त्रेधा कृतं, तिष्ठः पृथिवीः उपरि प्रवा दिवः हितं नाकं शुभिः अक्तुभिः रक्षेथे ॥ ८ ॥

१९ अर्थ- हे अश्वि देवो ! (सप्तमातृभिः सिन्धुभिः) माताओं के समान पवित्र सातों नदियों के जल से (त्रिः) तीन बार, (त्रयः आहावाः) ये तीन पात्र भर दिये हैं, (हविः त्रेधा कृतं) हवि को भी तीन हिस्सों में बांट रखा अश्विनी ३

है, (तिष्ठः पृथिवीः उपरि प्रया) इन तीनों छोगों में ऊपर जानेवाले तुम दोनों (दिवः हितं नाकं) सुलोक में प्रस्थापित सुख की (सुभिः भवतुभिः) दिनों और रात्रियों में (रक्षेधे) रक्षा करते हो ।

१९ भावार्थ- आर्षदेवों का सत्कार करने के लिये सात नदियोंका जल भरकर रखा है जिस से ये तीन पात्र भरे पड़े हैं । उन के लिये हवि भी तीन पात्रों में रखा है । ये दोनों देव तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं और स्वर्ग में रहे सुख की दिन रात सुस्वा करते रहते हैं ।

१९ मानवधर्म- नेता या सत्कार करने के लिये बड़े बड़े नदियों का जल लाया जाये, उनके लिये देने योग्य अन्न भी तीन धालियों में रखा जाय, और वह उनकी तीन बार परोसा जाये । नेता सर्वत्र गमन कर के दिनरात सभी सुखदायक स्थानों की रक्षा करें ।

१९ टिप्पणी- अकतु=रात्री । आह्वायः = पात्र ।

(१०)

क॒दा श्री च॒क्रा त्रि॒वृत्तो रथ॑स्य क॒त्रयो व॒न्धुरो ये स॒नीळाः ।
क॒दा योर्गो वा॒जिनो रास॑भस्य येन य॒ज्ञं ना॑सत्योप॒याथः ॥९॥

२० कं । श्री । च॒क्रा । त्रि॒वृत्तः । रथ॑स्य ।

कं । त्रयः । व॒न्धुरः । ये । स॒नीळाः ।

क॒दा । योर्गः । वा॒जिनः । रास॑भस्य ।

येन । य॒ज्ञम् । ना॑सत्या । उप॒याथः ॥९॥

२० अन्वयः- नासत्या ! त्रिवृत्तः रथस्य श्री चक्रा क्व ? ये त्रयः सनीळाः बन्धुराः क्व ? वाजिनः रासभस्य योगः कदा, येन यज्ञं उपयाथः ॥ ९ ॥

२० अर्थ- (नासत्या) हे सत्य का पालन करनेवाले देवो ! (त्रिवृत्तः रथस्य) तीन छोरवाले रथ के (श्री चक्रा क्व) तीन पहिजे किधर हैं ? (ये सनीळाः त्रयः) जो एक ही स्थान में रहे हुए तीनों (बन्धुरः क्व) खेमे हैं वे कहीं हैं ? (वाजिनः रासभस्य) बलवान गर्दभ का तुम्हारे (योगः कदा) रथ में जोतना कब होगा ? तुम दोनों (येन यज्ञं उपयाथः) जिस रथपर चढ़कर यज्ञ में भाते हो ।

१० भावार्थ— रथ को पूर्णतया तैयार करके तथा रथ की सभी वस्तुओं की मकीभाँति जाँच पड़ताल कर के ही यात्रा करनी चाहिये ।

२० टिप्पणी— सनील = एक स्थान में रखा हुआ ।

(११)

आ नासत्या गच्छतं ह्यते हवि—मध्यः पिवतं मधुपेभिरासभिः ।
युवोहि पूर्वसवितोपसो रथ—मृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥ १०

२१ आ । नासत्या । गच्छतम् । ह्यते । हविः ।
मध्यः । पिवतम् । मधुपेभिः । आसभिः ।
युवोः । हि । पूर्वम् । सविता । उपसः । रथम् ।
मृताय । चित्रम् । घृतवन्तम् । इष्यति ॥ १० ॥

२१ अन्वयः— नासत्या ! हविः ह्यते, आगच्छतं, मधुपेभिः आसभिः मध्यः पिवतं । युवः चित्रं घृतवन्तं रथं हि सविता उपसः पूर्वं मृताय इष्यति ॥ १० ॥

२१ अर्थ— (नासत्या) हे असत्यसे दूर रहनेवाले देवो । (हविः ह्यते) यहाँ हविको अग्नि में डाला जाता है, अतः (आ गच्छतं) यहाँ आओ । (मधुपेभिः आसभिः) मधु पीनेवाले मुखोंसे (मध्यः पिवतं) भीठे सोम रसका पान करो । (युवः चित्रं घृतवन्तं रथं हि) तुम दोनों के विचित्र एवं घीसे युक्त रथ को तो (सविता उपसः पूर्वं) सूर्य उपाकाक के पहले ही (मृताय इष्यति) यज्ञ के लिए प्रेरित करता है ।

२१ भावार्थ— प्रातःकाल होते ही रथ को सज्ज कर के यज्ञ स्थान के पास जाना चाहिये । अभिदेव ययः काल के पहले ही यज्ञ स्थान पर जाते हैं । क्योंकि सूर्य ही उस समय सब को यज्ञ करने के लिये प्रवृत्त करता है ।

(१२)

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवैर्मियातं मधुपेयमश्विना ।
प्रायुस्तारिष्टं नी रषामि मृक्षतं सेधतं द्वेपो मर्वतं सचाश्रवा ॥ ११ ॥

२२ आ । नासत्या । त्रिभिः । एकादशैः । इह ।

देवेभिः । यातम् । मधुपेयम् । अश्विना ।

प्र । आयुः । तारिष्टम् । निः । रपांसि । मृक्षतम् ।

सेधतम् । द्वेषः । भवतम् । सचाभुवा ॥११॥

२२ अन्वयः— नासत्या अश्विना । त्रिभिः एकादशैः देवैः इह मधुपेयं
आयातं, आयुः प्र तारिष्टं, रपांसि निगृह्यतं, द्वेष सेधतं, सचाभुवा
भवतं ॥ ११ ॥

२२ अर्थ—(नासत्या अश्विना) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! (त्रिभिः एकादशैः
देवैः) तीनचार श्वारह अर्थात् तैंतीस देवोंके साथ (इह मधुपेयं आयातं) इधर
भीठे सोमरस के पान करने के लिए यज्ञ में आ जाओ । (आयुः प्र तारिष्टं)
हमारे जीवन को सुदीर्घ करो । (रपांसि नि गृह्यतं) घोषोंको पूर्णतया दूर
कर के हमारी शुद्धता करो । (द्वेषः सेधतं) वैरभाव को दूर करो । (सचा
भुवा भवतं) हमारे साथ रहो ।

२२ भावार्थ— अश्विदेव सत्य का पालन करते हैं । तैंतीस देवों के साथ
वे हमारे पहा रसपान करने के लिये आते और हमें दीर्घायु करें। हमारे
अन्धर के दोष दूर करें, द्वेषभान दूर करें, और भिन्न जैसे हमारे पास रहें ।

२२ मानवधर्म— मनुष्य सत्य का पालन करे । तैंतीस देवोंके साथ परिचय करे,
उनसे दीर्घ आयु होनेके उपाय जाने । दोष दूर कर के पवित्र बने, द्वेष न करे ।
विनतासे सब मिलजुल कर रहें ।

२२ टिप्पणी- मधुपेयं = मधुर पेय, रसपान, सोमरस का पान । रपस् =
दोष, न्यूनता, पाप । सचाभुवा = साथ साथ रहनेवाले ॥ अश्विदेव बैद्य हैं, वे
१३ देवों के साथ आते हैं । वे ३३ देव उनकी सहायता करके चिकित्सा करते हैं ।
सर्गो बैद्य ३३ देवताओं की निचासे ही चिकित्सा करते हैं । अग्नि, जल, औषधि,
मृत्तिका, वायु, सूर्य प्रकाश, विद्युत् आदि देवों का चिकित्सामें कितना उपयोग
हो रहा है यह देता कर ३३ देवोंसे होनेवाली चिकित्सा को पाठक जानें । चिकित्सा
करके शरीर-मन-बुद्धि के दोष दूर करने हैं, दोष दूर होने से बीरोग होना संभव
है । मन बुद्धि से द्वेष भान दूर करने चाहिये । यह मन बुद्धि की शुद्धता ही है ।
इस तरह शुद्धता करना ही चिकित्सा है और इसके दीर्घायु मिलनी है । इस मन्त्र

में विधिरता के तीन साधन बताये हैं (१) द्रोप (शारीरिक तथा मानसिक) दूर करना, (२) द्वेष भाव दूर करना, और (३) निघर्ग को ३३ शक्तियों की सहायता लेना । इस का फल दीर्घ और नीरोग जीवन मिलना है ।

(२३)

आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनाऽर्वाञ्च रयि बहत् सुवीरम् ।
शृण्वन्तां वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवत् वाजसातो ॥१२॥

२३ आ । नः । अश्विना । त्रिवृतां । रथेन ।

अर्वाञ्चम् । रयिम् । बहत्तम् । सुवीरम् ।

शृण्वन्तां । वाम् । अवसे । जोहवीमि ।

वृधे । च । नः । भवत्तम् । वाजसातो ॥१२॥

२३ छन्दः- अश्विना ! त्रिवृता रथेन सुवीरं रयि नः अर्वाञ्चं भावहत्तं,
वा शृण्वन्ता भवते जोहवीमि, वाजसातो च नः वृधे भवत् ॥ १२ ॥

२३ मर्थ- हे अश्विदेवो ! (त्रिवृता रथेन) तीन छोटा-ले रथसे (सुवीरं रयि) अच्छे वीरों से कुछ धन को (नः अर्वाञ्चं भावहत्तं) हमारे समीप पहुँचा दो । (वा शृण्वन्ता) तुम दोनों सुननेवालों को (भवसे जोहवीमि) मैं अपनी रक्षा के लिए बुलाता हूँ । (वाजसातो च) और युद्ध के मौकेपर (नः वृधे भवत्) हमारी वृद्धि के लिए तुम मयलनीक बनो ।

२३ भावार्थ- अश्विदेव अपने त्रिकोणाकृति रथपरसे वीरोंके साथ रहनेवाला धन हमारे पास ले आये । वे हमारी प्रार्थना सुनते हैं, इसलिये हम उन को बुलाते हैं । युद्ध छिड़जानेपर वे हमारी ही सहायता करें ।

२३ मानवधर्म- मनुष्य ऐसा धन प्राप्त करे कि जिस के साथ वीर रहते हों और बालपत्न्ये भी होते हों । नेता अपने अनुयायियों का कथन सुने और उनका निरादर न करे । युद्ध छिड़जाने पर अनुयायियों की हर अवसर से समुद्रि करने का काम करना नेता का कर्तव्य है ।

२३ टिप्पणी- अवस् = रक्षा । वाजसाति = वज्र वा बैटवारा, युद्धका छिड़जाना, युद्ध का समय । वृध् = वृद्धि, उन्नति ।

[१४] (ऋ० १।४६।१-६५)

प्रस्कण्यः काण्यः । गायत्री ।

२४ एषो उपा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।

स्तुपे वामश्विना बृहत् ॥१॥

२४ एषोइति । उपाः । अपूर्व्या । वि । उच्छति । प्रिया । दिवः ।

स्तुपे । वाम् । अश्विना । बृहत् ॥१॥

२४ अन्वयः- अश्विना । एषा प्रिया अपूर्व्या उपाः दिवः व्युच्छति, वा बृहत्, स्तुपे ॥१॥

२४ अर्थ- हे अश्वि देवो ! (एषा प्रिया) यह प्रिय (अपूर्व्या उपाः) अपूर्वती दीक्षनेवाली उपा (दिवः व्युच्छति) सुखोत्से भाती है । अर्थात् अन्धकार दूर करती है । इस समय (वा बृहत् स्तुपे) तुम दोनों की मैं बहुत स्तुति करता हूँ ।

२४ भावार्थ- उपा आ कर अन्धकार को दूर करती है । हे अश्वि देवो ! इस समय मैं आप की स्तुति करता हूँ ।

२४ मानवधर्म- मनुष्यको अपना अज्ञान दूर करना चाहिये ।

[२५]

२५ या दुस्त्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।

धिया देवा वसुविदा ॥२॥

२५ या । दुस्त्रा । सिन्धुमातरा । मनोतरा । रयीणाम् ।

धिया । देवा । वसुविदा ॥२॥

२५ अन्वयः- या देवा, दुस्त्रा, सिन्धुमातरा, रयीणां मनोतरा, धिया वसुविदा ।

२५ अर्थ- (या देवा, दुस्त्रा) जो तुम दोनों देवतारूपी, शत्रुविनाशकर्ता (सिन्धु-मातरा, रयीणां मनो-तरा) नदी को माता समझनेवाले, धनों को मनसोक देनेवाले तथा (धिया वसुविदा) कर्म और बुद्धिके अनुसार धन को देने वाले हो ।

२५ भाषार्थ- अधिदेव शत्रु का मातृ करनेवाले, धनका दान करनेवाले मदीको माता माननेवाले और कर्म करने की योग्यतानुसार धन देनेवाले हैं ।

२५ मानवधर्म- मनुष्य अपने शत्रु को दूर करे, धन का दान करे, जो जैसा कर्म करेगा वैसा धन उस कर्म की योग्यतानुसार उस को देता रहे, अधिक कर्म कराकर थोड़ा धन न देवे, अपने देश की नदियों की माता के समान सुरक्षा करे । क्योंकि उनसे धान्य उत्पन्न होकर मानवों का पोषण होता है ।

[२६]

२६ वृच्यन्ते वां ककुहासौ जूर्णायामधिं विष्टपि ।

यद् वां रथो विभिष्यतात् ॥३॥

२६ वृच्यन्ते । वां । ककुहासः । जूर्णायाम् । अधिं । विष्टपि ।

यत् । वां । रथः । विभिः । पतात् ॥३॥

२६ अर्थ- वां रथ यत् विभिः पतात्, जूर्णायाम्, अधि विष्टपि, वां ककुहासः वृच्यन्ते ॥ ३ ॥

२६ अर्थ- (वां रथः) तुम दोनों का रथ (यत् विभिः पतात्) जिस समय पक्षि के सट्टा उड़ने लगता है, तब (जूर्णायाम्) प्रसंसा के योग्य (अधि विष्टपि) युलोक में भी (वां ककुहास वृच्यन्ते) तुम दोनों के प्रधान कर्मों का वर्णन किया जाता है ।

२६ भाषार्थ- अधि देवों का रथ पक्षि के सट्टा आकाश में उड़ने लगता है, तब स्वर्ग में भी उस की प्रशंसा होती है । (यह रथ विमान ही है ।)

२६ मानवधर्म- आकाशमें गमन करने के लिये आकाश गाभी रथ (विमान) मनुष्य बनाते । यह कर्म प्रशंसा योग्य है ।

[२७]

२७ हविषा जारो अपां पिपतिं पपुर्निरा ।

पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४॥

२७ हविषा । जारः । अपाम् । पिपतिं । पपुर्निरा । नरा ।

पिता । कुटस्य । चर्षणिः ॥४॥

२७ अन्वयः— नरा । अपां जारः, पपुरिः कुटस्य चर्यणिः पिता हविषा विपत्तिं । ३-४ ॥

२७ अर्थ— हे (नरा !) नेताओ ! (अपां जारः) जलों को सुखानेवाला (पपुरिः पिता) पोषणकर्ता पिता (कुटस्य चर्यणिः) किये हुए कार्योंका निरीक्षक सूर्य (हविषा विपत्तिं) हवि से आपको संतुष्ट करता है ।

२७ भावार्थ— अल को सुखानेवाला, सब का पोषक, कृत कर्मों को देखने वाला पिता सूर्य अग्निदेवों को अन्न से संतुष्ट करता है ।

२७ मानवधर्म— मनुष्य अन्न उत्पन्न करे, उस से यज्ञ करे, अनुयायियोंका पोषण करे, अनुयायियों के लिये कर्मों का निरीक्षण करे और योग्यतानुसार उन को धन आदि देवे ।

२७ टिप्पणी— कुट = कृत = किया कर्म ।

[२८]

२८ आदारो वा मतीनां नास्त्या मतवचसा ।

पातं सोमस्य धृष्णुया ॥५॥

२८ आऽदारः । पाम् । मतीनाम् । नास्त्या । मतऽवचसा ।

पातम् । सोमस्य । धृष्णुया ॥५॥

२८ अन्वयः— मतवचसा नास्त्या । वा मतीनां आदारः । धृष्णुया सोमस्य पातं ।

२८ अर्थ— (मत-वचसा नास्त्या) हे मनन पूर्वक भाषण करनेवाले तथा असत्य से दूर रहनेवाले अग्निदेवों ! यह (वा मतीनां आदारः) तुम दोनों की बुद्धियों को प्रेरणा करनेवाला है, (धृष्णुया सोमस्य पातं) धर्मक शक्ति देनेवाले सोम का पान करो ।

२८ भावार्थ— अग्निदेव मनन पूर्वक भाषण करते हैं, वे सोम रस पीते हैं जो धीरत्व के उत्साह को बढ़ाता है ।

२८ मानवधर्म— मनुष्य भाषण करने के पूर्व मनन करे और अपना वचन निश्चित परे और उठना ही बोले । बल वर्षक रसों का पान करे ।

२८ टिप्पणी— मतवचस् = मनन पूर्वक किया भाषण । धृष्णु = शत्रु पर हमला करने की शक्ति ।

[२९]

२९ या नः पीपरदंश्चिना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।

तामस्मे रासाथामिपम् ॥६॥

२९ या । नः । पीपरत् । अश्चिना । ज्योतिष्मती । तमः । तिरः ।

ताम् । अस्मे इति । रासाथाम् । इपम् ॥६॥

२९ अन्वयः— अश्चिना ! या ज्योतिष्मती तमः तिरः नः पीपरत्, तां इपं अस्मे रासाथां ॥६॥

२९ अर्थ— हे अश्चिनेश ! (या ज्योतिष्मती) को प्रकाश से पूर्ण हो कर (तमः तिरः) अश्चियारी को दूर हटाकर (नः पीपरत्) हमें पुष्ट करता है, (तां इपं) उस अन्न को (अस्मे रासाथां) हमें दे दो ।

२९ भावार्थ— अश्चिदेव ऐसा अन्न देते हैं, जो हमें प्रकाश देगा, अन्धकार दूर करेगा और हमारा पाकन भी करेगा ।

२९ मानवधर्म— मनुष्य अपने अज्ञानान्धकार को दूर करें, ज्ञानके प्रकाश से प्राप्ता करें और उत्तम पुष्टि देनेवाला अन्न प्राप्त करें ।

[३०]

३० आ नो नाना मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।

युज्जार्थमश्चिना रथम् ॥७॥

३० आ । नः । नाना । मतीनाम् । यातम् । पाराय । गन्तवे ।

युज्जार्थम् । अश्चिना । रथम् ॥७॥

३० अन्वयः— अश्चिना ! रथं युज्जार्थां, पाराय गन्तवे नः मतीनां नाना भावार्तं ॥ ७ ॥

३० अर्थ— हे अश्चि देवो ! (रथं युज्जार्थां) तुम दोनों अपना रथ जोतो, (पाराय गन्तवे) पार चले जाने के लिये- (नः मतीनां) हमारी बुद्धिपूर्वक रथी हुई (नाना भावार्तं) नौकासे आओ ।

३० भावार्थ— समुद्र को पार कर के आना हो तो नौकासे आओ, ये नौका-युं उत्तम बुद्धि से तैयार की हैं । भूमि पर से रथ जोड़ कर आओ ।

अश्चिनी ४

३० मानवधर्म- मनुष्य समुद्र पार करनेके लिये उत्तमसे उत्तम नौकायें तैयार करे और भूमिपर संचार करनेके लिये उत्तम रथ तैयार करे ।

[३१]

३१ अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः ।

धिया युयुज्ज इन्दवः ॥८॥

३१ अरित्रम् । वाम् । दिवः । पृथु । तीर्थे । सिन्धूनाम् । रथः ॥

धिया । युयुज्जे । इन्दवः ॥८॥

३१ अन्वय- सिन्धूनां तीर्थे वा अरित्रं दिवः पृथु रथः, इन्दवः धिया युयुज्जे ॥८॥

३१ अर्थ (सिन्धुना तीर्थे) नदियों की उतराई के स्थानपर (वां अरित्रं) तुम दोनों की बहती या नाव रखनेका डंडा (दिवः पृथु) युकोक जैसा विस्तीर्ण है, (रथः) तुम दोनों का रथ भी तैयार है, वहां वे (इन्दवः धिया युयुज्जे) सोमरस कुशळा से तैयार किये हैं ।

३१ भावार्थ- नदियों में जहां उतार होता है, वहां अच्छी विस्तीर्ण बलिया तैयार है, भूमि पर रथ भी तैयार है, वहां सोमरस भी तैयार रहे है ।

३१ मानवधर्म- नदियोंके उतारके स्थानपर नौका रखनेके लिये आवश्यक साधन रहें, मनुष्योंके लिये रथ भी वहाँ रहें और खनपानका भी सतत प्रबंध रहे ।

[३२]

३२ दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे ।

स्वं वत्रिं कुहं पित्सथः ॥९॥

३२ दिवः । कण्वासः । इन्दवः । वसु । सिन्धूनाम् । पदे ।

स्वम् । वत्रिम् । कुहं । पित्सथः ॥९॥

३२ अन्वय — कण्वासः । दिव इन्दवः, सिन्धूनां पदे वसु, स्वं वत्रिं कुहं पित्सथः ॥ ९ ॥

३२ अर्थ- (कण्वासः) हे कण्वपरिवारके लोगो ! (दिवः इन्द्रः) तुलोक से सोमरस लाये हैं । (सिन्धूनां पदे वसु) नदियों के तटपर धन है, भय (एवं वीर) अपने स्वरूप को (कुह धिरसथः) भला तुम दोनों किधर रसना चाहते हो ?

३२ भावार्थ- पर्वतके शिखर पर से सोम लाकर तयार रखा है, नदीपार होनेपर यहां धन भी बहुत है । हे बुद्धिमानों ! आप भय कहाँ जायेंगे ?

३२ मानवधर्म- पर्वतपरसे औषधियां ला कर रस देने के लिये तैयार करो । समुद्र के पार जाकर धन भी कमाओ ।

[३३]

३३ अभूतु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रसि सूर्यः ।

व्यस्यजिह्वासितः ॥१०॥

३३ अभूत् । ऊँ इति । भाः । ऊँ इति । अंशवे ।

हिरण्यम् । प्रसि । सूर्यः ।

वि । व्यस्यत् । जिह्वा । असितः ॥१०॥

३३ अन्वयः- भाः अंशवे अभूत् उ, सूर्यः हिरण्यं प्रसि; असितः जिह्वा वि व्यस्यत् ॥ ९-१० ॥

३३ अर्थ- (भाः अंशवे) यह भाभा सोम के लिये ही (अभूत् उ) प्रकट हुई है, (सूर्यः हिरण्यं प्रसि) सूर्य सुवर्ण गुण प्रकाश से युक्त हो रहा है । (व्य-सितः) कुछ कीकासा पका हुआ अग्नि (जिह्वा वि व्यस्यत्) अपनी ज्वाला से बिखेरतया प्रकाशमान हो चुका है ।

३३ भावार्थ- सोम का रस तैयार करने के लिये ही यह ढपा का प्रकाश हुआ है, इसीलिये सूर्य प्रकाशित हुआ है, अग्नि भी इसीलिये मदीप्य हुआ है ।

३३ मानवधर्म- सोम, सूर्य और अग्नि मनुष्यों की सहायता करने के लिये सिद्ध हैं (अर्थात् मनुष्य पुरुषार्थ करके उनसे सुख प्राप्त करे ।)

[३४]

३४ अभूदु पारमेतवे पन्था कृतस्य साधुया ।

अदक्षि वि स्मृतिर्दिवः ॥११॥

३७ अर्थ- (परिजमनोः युवोः) चारों ओर घूमनेवालों तुम दोनों की (अग्रिमं अनु) शोभाके पीछे पीछे (उपा उपाचरत्) उपा प्रकट हो समीप संचार कर रही है; (भवतुभिः) रात्रियों में (ऋता वनयः) तुम दोनों यज्ञों का सेवन करते हो ।

३७ भावार्थ- उपाः काल के पूर्व अभिदेव चारों ओर भ्रमण करते हैं । और रात्री के समय में भी यज्ञों को देखते हैं ।

३७ मानवधर्म- नेता लोग अनुयायियों के पूर्व ही उठकर चारों ओर के सब कर्मों की अच्छी तरह देखभाल करें । रात्रिके समयमें भी निरीक्षण करें ।

३७ टिप्पणी- परिजमा= चारों ओर भ्रमण करनेवाला । ऋतं=सालता, यज्ञ, वेष्ट कर्म । भक्तु = रात्री ।

[१८]

३८ उभा पिबतमाश्विनो—भा नः शर्म यच्छतम् ।

अविद्रियामिरूतिभिः ॥१५॥

३८ उभा । पिबतम् । अश्विना ।

उभा । नः । शर्म । यच्छतम् ।

अविद्रियामिः । कृतिभिः ॥१५॥

३८ अन्वय- अश्विना । उभा पिबते, अविद्रियामिः कृतिभिः उभा नः शर्म यच्छतम् ॥ १५ ॥

३८ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (उभा पिबते) तुम दोनों सोमपान करो, (अविद्रियामिः कृतिभिः) निरस्त रक्षाओं की आवीज्वालों के साथ (उभा) तुम दोनों (नः शर्म यच्छतम्) हमें सुख दे दो ।

३८ भावार्थ- अश्विदेव सोम पान करें और निरस्त रक्षाओं से सब को सुख दें ।

३८ मानवधर्म- नेता लोग आलस्य छोड़कर अनुयायियोंकी रक्षा करें और उनको सुख दें । अनरपक्षियों के रक्षों का पान करें ।

३८ टिप्पणी- अविद्रिया=विद्रि=निन्दा, अविद्रिया= अनिन्द, मित्स इति ।

[३९] (अ० १०७७१-१०)

प्रगाथः=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती ।

३९ अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोमं क्रतावृधा ।

तमश्विना पिबतं तिरोअह्वयं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१॥

३९ अयम् । वाम् । मधुमत्स्तमः । सुतः । सोमः । अतःवृधा ।

तम् । अश्विना । पिबतम् । तिरःअह्वयम् ।

धत्तम् । रत्नानि । दाशुषे ॥१॥

३९ अन्वयः- ऋतावृधा अश्विना ! अयं मधुमत्तमः सोमः वां सुतः ; तिरोअह्वयं तं पिबतं, दाशुषे रत्नानि धत्तम् ॥ १ ॥

३९ अर्थ- हे (ऋतावृधा अश्विना) यज्ञ को बढ़ानेवाले अश्विदेवो ! (अयं मधुमत्तमः) यह अत्यन्त मीठा (सोमः वां सुतः) सोम तुम दोनोंके छिपे निचोड़ा जा चुका है, (तिरोअह्वयं तं पिबतं) बल निचोड़े हुए उस रसको तुम दोनों पी लो और (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाता को अनेक रत्न दे दो ।

३९ भावार्थ- यज्ञ की वृद्धि करनेवाले अश्विदेव यहां भायें और हमसे गत दिन तैयार कर के रत्ना हुआ यह अत्यंत मीठा सोमरस पीवें, और दाता को अनेक रत्न दें ।

३९ मानवधर्म- यज्ञ की वृद्धि करो । योग आदि वनस्पतिर्योका रस पीओ और उदार दाताओं को बहुत धन दे दो ।

३९ टिप्पणी- ऋतावृधा = सत्यका विस्तार करनेवाले, यज्ञ मार्गका प्रचार करनेवाले, सत्य धर्म के प्रचारक । तिरो-अह्वयं = गत दिन ।

[४०]

४० त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।

कण्वांसो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥

४० त्रिवन्धुरेण । त्रिवृता । सुपेशसा ।

रथेन । आ । यातम् । अश्विना ।

कण्वांसः । वाम् । ब्रह्म । कृण्वन्ति । अध्वरे ।

तेषाम् । सु । शृणुतम् । हवम् ॥२॥

३४ अभूत् । ऊँ इति । पारम् । एतवे ।
 पन्थाः । ऋतस्य । साधुया ।
 अदर्शि । वि । स्तुतिः । दिवः ॥११॥

३४ अन्वयः- ऋतस्य पन्थाः पारं एतवे साधुया अभूत् उं दिवः विद्युतिः
 अदर्शि ॥ ११ ॥

३४ अर्थ- (ऋतस्य पन्थाः) पक्ष का मार्ग (पारं एतवे) दुःख के पार
 होने के लिए (साधुया अभूत् उं) अच्छा बन चुका है । (दिवः) एकलोक
 से (विद्युतिः अदर्शि) विशेष प्रकाश की प्रभा दीप्त पड़ी है ।

३४ भावार्थ- दुःख से पार होनेके लिए यह पक्ष का मार्ग उत्तम रीतिसे
 बन गया है । जानो यह स्वर्ग से प्रकाश ही आया है ।

३४ मानवधर्म- मनुष्यों के दुःख दूर करने के लिये यह पक्ष का मार्ग पड़ा
 हो सरल मार्ग है । इसमें किसी तरहके कष्ट नहीं हैं । यह स्वर्गका ही
 मार्ग है ।

[३५]

३५ तत्तदिदुश्चिनोरवो जरिता प्रति भूपति ।
 मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२॥

३५ तत्तत्तत् । इत् । अश्विनोः । अवः ।
 जरिता । प्रति । भूपति ।
 मदे । सोमस्य । पिप्रतोः ॥१२॥

३५ अन्वयः- सोमस्य मदे पिप्रतोः अश्विनोः तत् तत् अवः इत् जरिता
 प्रति भूपति ॥ १२ ॥

३५ अर्थ- (सोमस्य मदे) सोमरसके सेवन से उत्पन्न हर्षमें (पिप्रतोः
 अश्विनोः) जनता को सन्तुष्ट रखनेवाले आग्निदेवों के (तत् तत्) उन्हीं (अवः
 इत्) संरक्षणको (जरिता प्रति भूपति) दसोवा अच्छे वंशसे वर्णित
 करता है ।

३५ भावार्थ- आग्निदेव सोम पीकर आनन्दित होते और जनताको
 संतुष्ट करके उन की सुरक्षा करते हैं । इस की स्तुति सभी करते हैं ।

३५ मानवधर्म- मनुष्य स्वयं आनन्द प्रसन्न रहें, अन्योक्तो संतुष्ट करें और जनताकी उत्तम रक्षा करें । यही प्रशंसनीय कार्य है ।

[३६]

३६ वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा ।

मनुष्यच्छंभू आ गतम् ॥१३॥

३६ वावसाना । विवस्वति । सोमस्य । पीत्या । गिरा ।

मनुष्यत् । शंभू इति शम्भू । आ । गतम् ॥१३॥

३६ अन्वयः- शंभू । मनुष्यत् विवस्वति वावसाना । गिरा सोमस्य पीत्या आगतम् ॥ १३ ॥

३६ अर्थ- हे (शंभू) सुख देनेवाले और (मनुष्यत् विवस्वति) मनु के समान विशेष सेवा करनेवाले के समीप (वावसाना) रहने की इच्छा करनेवाले भगिदैवो ! (गिरा) हमारे भाषण से भाकर्षित होकर (सोमस्य पीत्या) सोमपान करने के निमित्त (आगतं) इधर आओ ।

३६ भाचार्य- भगिदेव सब को सुख देते और अनुयायियों के संघ में रहते हैं । वे सोमपान के लिये यहाँ भावें ।

३६ मानवधर्म- नेता अनुयायियोंको सुख देवे, उनके साथ रहे, उनके पृथक् न रहे । पनस्पतियों के मधुर रसों का पान करे ।

[३७]

३७ युवोरुपा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत् ।

क्रता चनथो अक्तुभिः ॥१४॥

३७ युवोः । उपाः । अनु । श्रियम् ।

परिज्मनोः । उपऽआचरत् ।

क्रता । चनथः । अक्तुभिः ॥१४॥

३७ अन्वयः- परिज्मनोः युवो श्रियं अनु उपा उपाचरत् भक्तुभिः
श्रुता चनथा ॥ १४ ॥

४० शब्दार्थः— अश्विना । सुपेशसा त्रिवृता त्रिवन्धुरेण रथेन आयातं, अश्वरे वां कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति, तेषां हवं सु शृणुवम् ॥ २ ॥

४० अर्थ— हे अश्वि देवो ! (सुपेशसा त्रिवृता) सुन्दर आकारवाले, तीन छोरवाले, (त्रिवन्धुरेण रथेन आयातं) तीन शिखरोंसे युक्त रथपर चढ़कर आओ । (अश्वरे) हिंसा रहित कार्य में (वां) तुम दोनों के लिए (कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति) कण्व परिवार के लोग काव्य, स्तोत्र, बजाते हैं, करते हैं, (तेषां हवं) उन की पुकार को (सु शृणुवं) भली भाँति सुन लो ।

४० भावार्थ— हे अश्विदेव ! तुम दोनों दीखने में सुन्दर, तीन छोरवाले और तीन शिखरोंवाले अपने रथ में बैठकर यहाँ आओ और इस हिंसा रहित यज्ञ में जो कण्वों का मन्त्र पाठ हो रहा है उसे सुन लो ।

४० मानसधर्म— सुन्दर रथ तैयार करो, उन रथों में बैठकर यज्ञ के स्थान में आओ और वहाँ के पुण्य धर्म का निरीक्षण करो । नेता लोग वहाँ के काव्य गान को सुनें ।

४० टिप्पणी— सुपेशस् = सुन्दर, सुहृत्, जिस पर विशेष चमक है । त्रिवृता = तीन आवरणवाला, तीन बाजूवाला । त्रिवन्धुर = तीन शिखरवाला, तीन आसन जिस में है, तीन दण्ड जिस में छमें हो । अश्वर = जिस में हिंसा नहीं होती, जो अनिदित है, जिस में वषट छल आदि नहीं है ।

[४१]

४१ अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।

अथाथ दस्त्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुषं गच्छतम् ॥ ३ ॥

४१ अश्विना । मधुमत्तमम् । पातम् । सोमम् । ऋतुऽवृधा ।

अथ । अथ । दस्त्रा । वसु । बिभ्रता । रथे ।

दाश्वांसम् । उषं । गच्छतम् ॥ ३ ॥

४१ शब्दार्थः— ऋतावृधा ! दस्त्रा ! अश्विना ! मधुमत्तमं सोमं पातं अथ अथ रथे वसु बिभ्रता दाश्वांसं उषगच्छतम् ॥ ३ ॥

४१ अर्थ— हे (ऋतावृधा) यज्ञ को बढानेवाले ! (दस्त्रा अश्विना) अथविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (मधुमत्तमं सोमं पातं) अत्यन्त मीठे सोमरसका

तुम दोनों पान करो । (अथ सप्त) और आज के दिन (रथे वसु विभ्रता) रथ में धन रखे हुए तुम दोनों (दाक्षायिण उप मरुतं) दानी के समीप चले जाओ ।

४१ भावार्थ— यज्ञ मार्ग के प्रचारक, शत्रु का नाश करनेवाले अग्निदेवो ! मधुर सोमरस पीओ और अपने रथ में बहुत धन रखकर दाताको उस का दान करो ।

४१ मानवधर्म— यज्ञ मार्ग ॥ प्रचार करो । शत्रु का नाश करो । धनका दान करो और रक्षण करो ।

[४२]

४२ त्रिपथस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।

कण्वासो वा सुतसोमा अभिरवो युवा हवन्ते अश्विना ॥४॥

४२ त्रिऽसुधस्थे । बर्हिषि । विश्वऽवेदसा ।

मध्वा । यज्ञम् । मिमिक्षतम् ।

कण्वासः । वाम् । सुतऽसोमाः । अभिरवः ।

युवाम् । हवन्ते । अश्विना ॥४॥

४२ अन्वयः— विश्ववेदसा अश्विना ! त्रिपथस्थे बर्हिषि यज्ञं मध्वा मिमिक्षतम् । अभिरवः कण्वासः वा सुतसोमाः युवा हवन्ते ॥ ४ ॥

४२ अर्थ— हे (विश्ववेदसा अश्विना) सप्त कुछ जाननेहारे अग्निदेवो ! (त्रिपथस्थे बर्हिषि) तीन स्थानों पर रथे हुए कुशासनपर बैठकर (यज्ञं मध्वा मिमिक्षतं) यज्ञ को मधु से पुष्ट करो (अभिरवः कण्वासः) चोखमान कण्वके पुत्र (वा सुतसोमाः) तुम दोनों के लिए सोमरस निचोड़कर (युवा हवन्ते) तुम दोनों को पुराते हैं ।

४२ भावार्थ— सर्वज्ञ अग्निदेवो ! तीन कोनोंवाले आसन पर बैठो और यज्ञ की मधुरिमामय करो । सोमरस निचोड़कर वे कण्व तुम्हें पुराते हैं ।

४२ मानवधर्म— आसन पर आकर बैठो, सर्वज्ञ मीठा वायुमण्डल बनाओ ।

४२ टिप्पणी— विश्व-वेदस्=सब उछ जाननेवाले, सब धन जिनके पास है । अभिरवु= तेजस्वी, जिस के चारों ओर तेज है ।

४३ याभिः कर्णमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।

ताभिः व्युस्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥

४३ याभिः । कर्णम् । अभिष्टिभिः ।

प्र । आवतम् । युवम् । अश्विना ।

ताभिः । सु । अस्मान् । अवतम् । शुभः । पती इति ।

पातम् । सोमम् । ऋतुवृधा ॥५॥

४३ अन्वयः— ऋतावृधा शुभस्पती अश्विना ! युवं याभिः अभिष्टिभिः कर्णं प्रावतं, ताभिः अस्मान् सु अवतं, सोमं पातम् ॥ ५ ॥

४३ अर्थ— हे (ऋतावृधा) यज्ञ को बढ़ानेवाले (शुभस्पती अश्विना) सशस्त्रों के पालक अभिदेवो ! (युवं) तुम दोनों ने (याभिः अभिष्टिभिः) जिन दृष्टा योग्य शक्तियोंसे (कर्णं प्र आवत) कर्ण की अच्छी रक्षा की थी (ताभिः अस्मान्) उन्हीं से हमारी (सु अवत) मली प्रकार रक्षा करो और (सोमं पातं) सोम का पाव करो ।

४३ मातृवर्ध— अभिदेव यज्ञ के प्रसारक और शुभ कार्यों के रक्षक हैं । उन्होंने कर्ण की जैसी रक्षा की थी, वैसी ही वे हमारी रक्षा करें, क्योंकि हम भी अच्छे कर्म कर रहे हैं ।

४३ मानवधर्म— मनुष्य यज्ञ मार्ग का प्रचार करें और सदा शुभ कर्म करते रहें । तथा शुभ कर्म करनेवालों की रक्षा करें ।

४३ टिप्पणी— अभिष्टि = प्रशस्नीय शक्ति, जो शक्ति हर एक के पास रहने योग्य है ।

४४ सुदासेँ दस्त्रा वसु निश्रंता रये पृथो वहतमश्विना ।

रपि समुद्राद्भुत वा दिवस्पर्यस्मे घत्तं पुरुस्पृहम् ॥६॥

४४ सु॒दासे । दु॒स्त्रा । वसु॑ । वि॒भ्रता । रथे॑ ।

पृ॒क्षः । व॒ह॒तम् । अ॒धि॒ना ।

र॒थिम् । स॒मु॒द्रात् । उ॒त । वा । दि॒वः । परि॑ ।

अ॒स्मे इति॑ । घ॒त्तम् । पु॒रु॒ऽस्पृ॒हम् ॥६॥

४४ अन्वयः— दया भविता ! रथे यमु विभ्रता सुदासे पृक्षः वहतः समुद्रात् उत दिवः परि वा अस्मे पुरुस्पृहं रथिं घत्तम् ॥ ६ ॥

४४ अर्थ— हे (दया भविता) शत्रु नाशक अभिदेवो ! (रथे वसु विभ्रता) रथ में धन रखकर आनेवाले तुम दोनों (सुदासे पृक्षः वहतः) सुदास को भय सामग्री पहुँचाओ; (समुद्रात्) समुन्द्रमें से (उत) या (दिवः परि वा) लुलोक से (अस्मे) हमारे लिए (पुरुस्पृहं रथिं घत्तम्) बहुतों द्वारा स्पृहीय धन वे दो ।

४४ भावार्थ— अभिदेव शत्रु का नाश करने हैं । उन्होंने अपने रथ पर बहुत धन रख कर सुदास को बहुत ही द्रव्य दिया या, उसी तरह समुद्रसे भयवा स्वर्ग से धन लाकर वे हमें दें ।

४४ मानवधर्म— समुद्र शत्रु का नाश करें । अपने रथ पर बहुत धन और धान्य रख कर अपने अनुयायियों को धोएँ । वे वह धन समुद्रके पार से, पर्वतके शिखरपर जा कर भयवा किसी अन्य स्थान से ले आवें और उस का प्रदान करें ।

४४ टिप्पणी— पृक्षः = भय । वसु = धन । पुरुस्पृह = बहुतों द्वारा प्रसंसित ।

[४५]

४५ य॒ज्ञा॒स॒त्या प॒रा॒व॒ति यद् वा॒ स्थो॒ अ॒धि॒ त॒र्व॒शे ।

अ॒तो रथे॑न॒ सु॒वृ॒ता न॒ आ ग॑तं स॒ाकं सूर्य॑स्य र॒श्मि॒भिः ॥७॥

४५ यत् । न॒ा॒स॒त्या । प॒रा॒ऽव॒ति ।

यत् । वा । स्थः । अ॒धि॒ । त॒र्व॒शे ।

अ॒तः । रथे॑न॒ । सु॒ऽवृ॒ता । नः॑ । आ । ग॒तम् ।

स॒ाकम् । सूर्य॑स्य । र॒श्मि॒भिः ॥७॥

४५ अन्वयः- नास्तथा ! यत् तुर्वशे अधिस्थः यत् वा परावति भतः सुवृता रथेन सूर्यस्य रश्मिभिः साकं नः भागतं ॥ ७ ॥

४५ अर्थ- (नास्तथा !) हे सत्य के पालक अग्निदेवो ! (यत् तुर्वशे अधिस्थः) जो तुम दोनों समीप रहे हो, (यत् वा) अथवा (परावति) सुवृत्तवर्ती स्थान में रहे हो, (भतः सुवृता रथेन) वहाँ से, सुन्दर रथ में बैठकर (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूर्य के किरणों के साथ (नः भागतं) हमारे समीप आओ ।

४५ भावार्थ- अग्निदेव सत्य का पालन करते हैं । ये समीप हों या दूर हों, परन्तु ये अपने रथ पर चढ़ कर सूर्योदय के समय ही हमारे पास आवें ।

४५ मानवधर्म- मनुष्य सत्य का पालन करें । असत्य मार्ग से न जाय । नेता लोग यही भी हों, वे अपने वाहनोपर बैठकर जहाँ कार्यकर्ता कार्य करते हों, वहाँ तकके ही पहुँच आँ और उस कार्य का निरीक्षण करें ।

४५ टिप्पणी- तुर्वशः = त्वरासे वश होनेवाला, समीपस्थ । परा-यत् = दूर रहनेवाला ।

[४६]

४६ अर्वाश्वा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सर्वानुप ।

इषं पृश्नन्तां सुकृते सुदानवे आ यर्हिः सीदतं नरा ॥८॥

४६ अर्वाश्वा । याम् । सप्तयः । अध्वरश्रियः ।

वहन्तु । सर्वाना । इत् । उप ।

इषम् । पृश्नन्ता । सुकृते । सुदानवे ।

आ । यर्हिः । सीदतम् । नरा ॥८॥

४६ भावार्थ- नरा ! अध्वरश्रिया सप्तयः वां सप्तयः अर्वाश्वा उप इत् नराणां । सुकृते सुदानवे इषं पृश्नन्ता यर्हिः आसीदतं ॥ ८ ॥

४६ अर्थ- हे (नरा) नेताओ ! (अध्वरश्रिया सप्तयः) यज्ञ की शोभा बढ़ानेवाले छहद्वारे घोड़े (वां सप्तयः) तुम दोनों की शोभा सप्तम के बरेबरेने (अर्वाश्वा) समीप आनेवाले यमादय (उप इत् नराणां) यज्ञ के समीप ही ऊपर के आँ, (सुकृते सुदानवे) अर्घ्य कार्य करने वाली दामी पुत्रव के द्विप (इषं पृश्नन्ता) आज की पूर्ति करने हुए तुम दोनों (यर्हिः आसीदतं) पुता-सप्तय वहाँ आओ ।

४६ भावार्थ- हे नेता अभिदेवो ! तुम्हारे घोड़े गश् भूमि की शोभा बढ़ाते हैं । ये तुम्हें सोमरस निचोढ़ने के समय गश् के पास के भावें । घाने पर तुम दोनों भासनों पर बैठ जाओ ।

४६ मानवधर्म- नेता लोग सदा जहाँ शुभ कार्य चलते हों वहाँ जायें, उस कार्य के कर्ताओं की हरे प्रकार की सहायता करें । शुभ कार्यों में जायें, वहाँ बैठें, उस का निरीक्षण करें ।

४६ टिप्पणी- सुहृत् = उत्तम शुभ कार्य करनेवाला । सुदानु = उत्तम दान देनेवाला, उदार । अभ्यरथी = यज्ञकी शोभा बढ़ानेवाला ।

[४७]

४७ तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा ।

येन शश्वद्दुह्युर्दाशुपे वसु मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥

४७ तेन । नासत्या । आ । गतम् । रथेन । सूर्यत्वचा ।

येन । शश्वत् । ऊह्युः । दाशुपे । वसु ।

मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥९॥

४७ अन्वयः- नासत्या । येन सूर्यत्वचा रथेन दाशुपे शश्वत् वसु ऊह्युः । तेन मध्वः सोमस्य पीतये आगतं ॥ ९ ॥

४७ अर्थ- (नासत्या) हे असत्य से दूर रहनेवाले । (येन सूर्यत्वचा रथेन) जिस सूर्यसम काम्तिवाले रथ से (दाशुपे शश्वत्) दानी के लिए हमेशा (वसु ऊह्युः) धन लेकर तुम दोनों पहुँचा देते हो, (तेन) उसी रथ पर बैठकर (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमरस के पान के लिए (आगतं) तुम दोनों आओ ।

४७ भावार्थ- अभिदेव असत्यकों आश्रय कभी नहीं करते । अपने सूर्य के समान तेजस्वी रथ पर बैठकर दाता लोगों को धन देने के लिये सदा जाते हैं । उसी रथ पर बैठकर वे मधुर सोमरस पीने के लिये हमारे पास आ जायें ।

४७ मानवधर्म- कभी असत्य वा आश्रय न करो । अपने रथ पर चढ़ कर अपने अनुयायियों को धन वा प्रदान करो ।

४७ टिप्पणी- सूर्यत्वच् = सूर्य के समान लज्जालाला, तेजस्वी ।

[४८]

४८ उक्थेभिर्वागवसे पुरुवस् अकैश्च नि ह्वयामहे ।

शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१०॥

४८ उक्थेभिः । अर्वाक् । अवसे । पुरुवसू इति पुरुवस् ।

अकैः । च । नि । ह्वयामहे ।

शश्वत् । कण्वानाम् । सदसि । प्रिये । हि । कम् ।

सोमम् । पपथुः । अश्विना ॥१०॥

४८ अन्वयाः- पुरुवसू अश्विना । उक्थेभिः अकैः च अवसे अर्वाक् नि ह्वयामहे; कण्वानां प्रिये सदसि हि कं सोमं शश्वत् पपथुः ॥ १० ॥

४८ अर्थ- हे (पुरुवसू अश्विना) बहुत धनवाले अश्विदेवो । (उक्थेभिः अकैः च) स्तोत्रों से और अर्घनों से हम (अवसे) अपनी रक्षा के लिए (अर्वाक् नि ह्वयामहे) हमारे सम्मुख तुम्हें बुला रहे हैं । (कण्वानां प्रिये सदसि हि) कण्वों के निय यज्ञ सभा मंडप में तो (कं सोमं) आनन्ददायी सोमरस को (शश्वत् पपथुः) सदासे तुम दोनों पीते आये हो ।

४८ भावार्थ- अश्विदेवों के पास बहुत ही धन रहता है । अपनी रक्षा करने के लिए उन को हम स्तोत्रों द्वारा बुलाते हैं । कण्वों के यज्ञ में वे सोम रस पीने के लिये वासंवार आते हैं ।

४८ मानसधर्म- नेता अपने पास बहुत धन रखे । उस से अपने अनुयायियों का हित करे, अनुयायियों को सुरक्षित रखने के लिये प्रयत्न करे ।

४८ टिप्पणी- पुरुवसू=बहुत धनी। उक्थ=स्तोत्र, सूक्त। अर्क=पूजा, अर्चना।

[४९] (ऋ० १.९.१।१६-१८)

गोतमो राहुगणः । उष्णिक् ।

४९ अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्त्रा हिरण्यवत् ।

अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

४९ अश्विना । वर्तिः । अस्मत् । आ ।

गोऽमत् । दस्त्रा । हिरण्यवत् ।

अर्वाक् । रथम् । समनसा । नि । यच्छतम् ॥१६॥

४९ अन्वयः— दृष्ट्वा समनसा । गोमत् हिरण्यवत् भस्मत् धर्तिः आ, रथं भवोक् निष्पद्यतम् ॥ १६ ॥

४९ अर्थ— हे (दृष्ट्वा समनसा) क्षत्रुनाशक-और समान विचारवाले अभिदेवो ! (गोमत् हिरण्यवत्) गोघन एवं सुवर्णसे युक्त होकर तुम (भस्मत् धर्तिः आ) हमारे घर आ जाओ, (रथं भवोक्) रथको हमारी ओर (निष्पद्यतम्) शोककर रखो ।

४९ भावार्थ— अभिदेव क्षत्रु का नाश करे और दोनों मिलकर एक मन से कार्य करते हैं । वे गौवे और सुवर्णादि धन हमें देंगे । अपने रथमें बैठकर हमारे घर पर आ जायें ।

४९ मातृधर्म- मनुष्य अपने क्षत्रु को दूर करें । सब मिलकर एक विचारसे अपना कर्तव्य करें । गौवं और धन अनुयायियोंको बांट दें । रथ में बैठकर अनुयायियों के घर जाकर उनकी परिस्थितिका निरीक्षण करें ।

४९ टिप्पणी- समनसा = एक विचारसे कर्तव्य करनेवाला । धर्तिः = घर ।

[५०]

५० यावत्स्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।

आ न ऊर्जं बहत्तमश्विना युवम् ॥१७॥

५० यौ । इत्था । श्लोकम् । आ । दिवः ।

ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः ।

आ । नः । ऊर्जम् । बहत्तम् । अश्विना । युवम् ॥१७॥

५० अन्वयः— अश्विना । इत्था यौ श्लोकं ज्योतिः दिवः जनाय चक्रथुः युवं नः ऊर्जं आवहत्तम् ॥ १७ ॥

५० अर्थ— हे अभिदेवो ! (इत्था यौ) इस ओरि जो तुम दोनों (श्लोकं ज्योतिः) वर्णनीय प्रकाश को (दिवः जनाय चक्रथुः) सुलोक से जनता के लिए कर चुके हो, ऐसे (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (ऊर्जं आवहत्तम्) बल प्रद अन्न दोकर ला दो ।

५० भावार्थ— अभिदेव सुलोक से उत्तम वर्णनीय प्रकाशको मनुष्यों के लिये यहाँ लाते हैं । वे हमें बलवर्धक अन्न पहुँचावें ।

५० मानवधर्म- नेता अपने अनुयायियों को प्रकाश का मार्ग बतावे । बल-वर्धक अन्न दे कर अपने अनुयायियों को दृढ़ पुष्ट और बलिष्ठ करें ।

५० टिप्पणी- ऊर्ज = बल वर्धक अन्न, बल ।

[५१]

५१ एह देवा मयोभुवा वृक्षा हिरण्यवर्तनी ।

उपबुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८॥

५१ आ । इह । देवा । मयःऽभुवा ।

वृक्षा । हिरण्यवर्तनी । इति हिरण्यऽवर्तनी ।

उपःऽबुधः । वहन्तु । सोमऽपीतये ॥१८॥

५१ अन्वय- उपबुधः इह सोमपीतये वृक्षा देवा मयोभुवा हिरण्यवर्तनी आबहन्तु ॥ १८ ॥

५१ अर्थ- (उपबुध) हे प्रातःकाल जागनेवालों । (इह सोमपीतये) यहीपर सोमपान करनेके लिए (वृक्षा देवा) शत्रु विनाशकर्ता, देवतारूपी (मयोभुवा हिरण्यवर्तनी) आरोग्य देनेवाले और सुवर्णमय रथवाले अग्नि-देवों को (आबहन्तु) पहुँचा दें ।

५१ भाषार्थ- अग्निदेव शत्रु को दूर करते, प्रकाश देते, आरोग्य देते और अपने सुवर्ण के रथपर से वे आते हैं । प्रातःकाल जागनेवाले उन को यही पहुँचा दें ।

५१ मानवधर्म- शत्रु को दूर करे । अपने अनुयायियों को सरल मार्ग बतावे, उन को नीरोग रखे, और सुखी रखे । प्रातःकाल ही उठकर अनुयायी लोग ऐसे नेता का स्वागत करें ।

५१ टिप्पणी- उपबुध = सधरे उठनेवाले । मयोभु = सुख देनेवाला, आरोग्य देनेवाला ।

[५२] (अ० १.११.२।१-१५)

कुत्स आहिरसः । १ (आद्यपादस्य) घावापृथिवी, १ (द्वितीय-पादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ, १-१५ अभ्यन्तौ ।

जगती, १४-१५ त्रिष्टुप् ।

५२ ईले घावापृथिवी पूर्वचिचयेऽग्निं घर्म सुरुचं यामन्निष्टये ।

यामिर्मरे कारमंशाय जिन्यस्तार्मिरु पु ऊतिभिरश्विना गवम् ॥१॥

५२ ईळे । घावापृथिवी हर्ति । पूर्वऽर्चित्तये ।

अग्निम् । घर्मम् । सुऽरुचम् । यामन् । इष्टये ।

यामिः । भरे । कारम् । अंशाय । जिन्वथः ।

तामिः । ऊँ हर्ति । सु । ऊत्तिऽमिः । अश्विना । आ ।

गुतम् ॥१॥

५१ अन्ययः- यामम् इष्टये, पूर्वचित्तये, सुखं घर्म अग्निं घावा पृथिवी इष्टे; अश्विना । यामिः कारं भरे अंशाय जिन्वथा तामिः ऊत्तिभिः सु भागतम् ॥१॥

५२ अर्थ- (यामन् इष्टये) पहिले ही समय में यज्ञ करने के लिए और (पूर्वचित्तये) प्रथम ही अपना चित्त लगाने के लिये (सुखं घर्म) अच्छी दीसिकाके और घर्म (अग्निं घावा-पृथिवी इष्टे) अग्नि और घावापृथिवीकी स्तुति में करता हूँ, हे अग्निदेवो । (यामिः) जिनसे (कारं) कार्यं कुशल पुरुष को (भरे अंशाय जिन्वथः) संग्राम में अपना हिस्सा पावे किं लिए प्रेरित करते हो, (तामिः ऊत्तिभिः) उन रक्षार्थों के साथ (सु भागतं) तुम दोनों भी भौति हमारे पास आओ ।

५३ भाषार्थ- मेरा यह यज्ञ सकल हो और इस में मेरा चित्त लग जाय, इस लिये मैं तुलोक, पृथ्वी लोक तथा उस में रहनेवाले अग्नि की स्तुति सब से प्रथम करता हूँ । अग्निदेवो ! कुशल शूर पुरुषको युद्ध में अपना भाग प्राप्त कर लेने के लिये जिन रक्षक शक्तियों के साथ उसे तुम दोनों प्रेरित करते हो, उन संरक्षक शक्तियों के साथ हमारे पास आओ और हमारी सुरक्षा करो ।

५४ मानवधर्म- अपना सत्कर्म सकल बनावे की इच्छासे मनुष्य देवता की प्रार्थना करे । अपना स्वाध्य भाग प्राप्त करने के लिये आवश्यक हुए युद्ध में जाने के लिये कुशलता से युद्ध करनेवाले शूर पुरुष को नेता लोभ प्रेरणा करे । नेता उन की हर प्रकार की सुरक्षा और राहायताका प्रबंध करे ।

५२ टिप्पणी- यामन्=गमन, गति, आगमन, चढ़ाई, प्रार्थना, अर्पण । इष्टि=इच्छा, आकांक्षा, स्वरा, यज्ञ, यजन, अर्पण । पूर्वचित्ति=पहिले चित्त को लगाना । कारः=कैरीगर, कुशल, कार्यकर्ता । भर=भार, विपुल संख्या, संग्रह, चढ़ाई, युद्ध । जिन्व=तत्पर रहना, उत्साहित करना, प्रेरणा करना, धडाना, सन्बुद्ध करना ।

अश्विनौ ६

[५३]

५३ युवोर्दानाय सुभरा असश्रतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मनिष्ठये तामिरूपु ऊतिमिरश्विना गतम् ॥

५३ युवोः । दानाय । सुभराः । असश्रतः ।
रथम् । आ । तस्थुः । वचसम् । न । मन्तवे ।
यामिः । धियः । अवथः । कर्मन् । इष्टये ।
तामिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽमिः । अश्विना । आ गतम् ॥

५३ अन्वयः— अश्विना । सुभराः असश्रतः वचसं मन्तवे न, युवोः
रथं दानाय आ तस्थुः । कर्मन् इष्टये यामिः धियः अवथः तामिः ऊतिमिः सु
भागवन् ॥ २ ॥

५३ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (सुभरा असश्रतः) उत्तम ढंग से भरण
पोषण करनेके इच्छुक अतएव इधर उधर भ्रमण न करनेवाले लोग (वचसं
मन्तवे न) विद्वान् के पास उस की सलाह पूछने के लिये जैसे जाते हैं, वैसे
(रथं युवोः दानाय आतस्थुः) तुम्हारे रथ के पास तुम्हारा दान प्राप्त करने
के लिये खड़े रहते हैं, (कर्मन् इष्टये) कर्म करने के लिए और इष्टकी प्राप्ति
के लिए (यामिः धियः अवथः) जिन से उनकी बुद्धियोंका संरक्षण तुम
दोनों करते हो, (तामिः ऊतिमिः सु भागतं) वही रक्षाओं से तुम दोनों
ठीक तरह इधर भाओ ।

५३ भाषार्थ— जो लोग अपना भरण पोषण उत्तम प्रकारसे करना चाहते
हैं, वे किसी अग्न के पास इधर उधर भ्रमण नहीं करते, वे सीधे अश्विदेवोंके
रथ के पास आते हैं और उनसे दान प्राप्त करते हैं; जिस तरह विद्वान् से
संमति मांगने के लिए उन के पास लोग जाते हैं । जिन संरक्षक शक्तियोंसे
अश्विदेव उनकी बुद्धियों और कर्मों की रक्षा करते हैं, उन शक्तियोंसे वे
हमारे पास आये और हमारी रक्षा करें ।

५३ भावार्थ— अनुयायी लोग अपने नेता के पास जायें, उनकी सलाह लें
और उन से आवश्यक सहायता मायें । नेता लोग उनकी हर प्रकारसे सहायता
करें । नेता लोग अनुयायियों की बुद्धि विकसित करें और उन के शुभ कर्मों की
रक्षा करके उनकी सहाय करें ।

५३ टिप्पणी- सद्यस्व=(गती) गमन करना, सत्कार करना, संमान करना, व्यापना, जाना, । असद्यस्व= अनंचल, स्थिर तय न जानेवाला । वयस्= वृद्धा, विद्वान् ।

[५४]

५४ युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्जना ।
याभिर्वेनुमस्वं पितृवथो नरा ताभिरु पु ऊतिभिराश्विना
गतम् ॥३॥

५४ युवम् । तासाम् । दिव्यस्य । प्रशासने ।
विशाम् । क्षयथः । अमृतस्य । मज्जना ।
याभिः । वेनुम् । अस्वंम् । पितृवथः । नरा ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ ।
गतम् ॥३॥

५४ अन्वयः- अश्विना नरा ! युवं दिव्यस्य अमृतस्य मज्जना तासां
विशां प्रशासने क्षयथः, याभिः अस्वं वेनु पितृवथ, ताभिः ऊतिभिः उ
सु भागतम् ॥ ३ ॥

५४ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (नरा) हे नेताओ ! (युवं दिव्यस्य अमृतस्य
मज्जना) तुम दोनों, सुलोहमें वरपन्न सोमरस रूपी अमृतके बल से,
(तासां विशां प्रशासने क्षयथः) उन प्रजाओं का राज्य शासन चला ने के
लिए उनमें निवास करते हो, (याभिः) जिन से (अस्वं वेनु) प्रसृत न हुई
गौ को (पितृवथः) पुष्ट कर के अधिक पुष्कार बना दिया, (ताभिः) उन
(ऊतिभिः) रक्षकों से युक्त होकर (उ) निश्चय से हमारे पास (सु भागतम्)
अच्छी तरह आओ ।

५४ भाष्यार्थ- हे नेता अश्विदेवो ! तुम दोनों सोमरस का पान करने से
बलवान बने हो और उस बल के कारण इन सब प्रजाओं का राज्य शासन
चलानेके लिये उन में ही रहते हो। तुम ने जिन चिकित्सा प्रयोगोंसे प्रसृत न
होनेवाली गौको भी प्रसृत होने योग्य बनाकर पुष्कारभी बना दिया, उन
चिकित्साकी शक्तियों से सुसज्ज होकर हमारे पास आओ ।

५४ मानचर्म- नेता लोग औषधि रखें वा सेवन करके बलवान बनें- प्रजाजनों का राज्य शासन चलाने के लिये प्रजाओं में ही रहें, कभी प्रजाको छोड़ कर अन्य देश में जा कर न रहें । गो को गर्भवती होने योग्य पुष्ट बनाने और दुधार बनाने के चिकित्सा के प्रयोग करके गौओंके दूधकी वृद्धि करनी चाहिये ।

५४ टिप्पणी- दिव्यं अमृतं=पर्वत शिखर पर होनेवाले सोम का रस, वृष्टि वा जल । अस्व=प्रसूत न होनेवाली । (शयुको गौको प्रसव होने योग्य बना कर दुधार बनाया श्र. १।१।१५।६) मज्जन=नीर्य, सत्व, मज्जा । दिव्य=पु अर्थात् शिखरपर उत्पन्न हुआ, आकाश में उत्पन्न, अद्भुत सेजस्वी ।

[५५]

५५ याभिः परिज्मा तनयस्य मज्जना द्विमाता तूर्पु तरणिर्वि-
भूषति । यामिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्तार्भिरु पु ऊतिभि-
रश्विना मतम् ॥४॥

५५ याभिः । परिज्मा । तनयस्य । मज्जना ।

द्विमाता । तूर्पु । तरणिः । विभूषति ।

यामिः । त्रिमन्तुः । अभवत् । विचक्षणः ।

तार्भिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ । मतम् ॥

५५ अन्वयः- परिज्मा द्विमाता तनयस्य मज्जना याभिः तूर्पु तरणिः वि-
भूषति; त्रिमन्तुः याभिः विचक्षणः अभवत्, तार्भिः ऊतिभिः अश्विना, सु उ
आगतं ॥ ४ ॥

५५ अर्थ- (परिज्मा द्विमाता) चारों ओर जानेवाला दोनों माताओंसे युक्त (तनयस्य मज्जना) अपने पुत्र के बल से (याभिः) जिन की सहायता से (तूर्पु तरणिः विभूषति) दौड़नेवालों में आगे निकलनेवाला हो कर अलंकृत होता है तथा (त्रिमन्तुः याभिः) तीन मन्त्र साधनोंवाला जिससे (विचक्षणः अभवत्) महा विद्वान् हो गया, (तार्भिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर हे अश्वि-
देवो । तुम दोनों (सु उ आगतं) ठीक प्रकार से हमारे पास आओ ।

५५ भाष्य- सर्वत्र गमन करनेवाला यायु, दो अरणीरूपी दो माताओंसे उत्पन्न हुए मन्त्र पुनरुत्थानीय अग्नि के बल से युक्त होकर, जिन शक्तियोंसे

गतिमानों में भी विशेष गतिमान होकर सर्वोपरि विराजता है, तथा त्रिमश्रु (कक्षीयान ऋषि) जिन साधनों से बड़ा विद्वान बना, उन संरक्षण की शक्तियोंसे सज्जित बनकर, हे अभिदेवो ! तुम दोनों यहाँ हमारे पास आओ (और उनसे हमें लाभ पहुँचाओ)

५५ मानवधर्म- जिस तरह द्विजन्मा अग्नि और वायु परस्पर सहायक होते हैं और परस्पर के बलसे परस्पर की उन्नति करते हैं, इसी तरह द्विजन्मा ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्परकी सहायता करके समूची जनता की उन्नति करें । जिस तरह त्रिमश्रु विद्वान हुआ, उसी तरह (व्यक्ति, समाज, जनता इन तीनों की उन्नति का मनन करनेवाले सभी शुभक विद्वान बनें । मेता लोग सब प्रकार की संरक्षक शक्तियों अपने अनुयायियों की सहायताके उपयोग में लायें और उस से जनता की उन्नति करें ।

५५ त्रिपणी- द्विमाता=दो माताएँ, दो माताओं से जन्मा, द्विज । दो शरीरियों से उत्पन्न होने के कारण अग्नि द्विज्मा अथवा द्वैमश्रु है । पृथ्वी और सौ रूपी दो माताओंसे उत्पन्न होने के कारण वायु भी द्विमाता है । ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपनी जन्मदात्री माता, तथा सरस्वती (विद्या) दूसरी माता, इन दो माताओं से उत्पन्न होने के कारण द्विज अथवा द्विजन्मा अत एव द्विमाता कहालाते हैं । यहाँ अग्नि ब्राह्मणों का और वायु क्षत्रियों का सूचक है । इस मंत्र का पद द्विमाता ' परिजमा ' या तथा ' तनय ' का विशेषण है । तनय का विशेषण मानने में विभक्ति का व्यवहार करना पड़ता है । परिजमा=वायु, चर । और गमन करने वाला । ' वायोः अग्निः । ' (तै व.) वायु से अग्नि बना, इस कारण वायु का पुत्र अग्नि माना जाता है । वायु से अग्नि प्रज्वलित किया जाता है । और अग्निके धधकने से वायु भी बढ़ने लगता है इस तरह ये पिता पुत्र परस्पर के सहायक हैं । वैसे सब पिता पुत्र परस्परों के सहायक बनें । ऐसे शरीरमें प्राण और (वाणी) शब्द परस्पर सहायक हों । राष्ट्रमें ब्राह्मण और क्षत्रिय सहायक हों । परि-जमा=सर्वत्र गतिमान वायु, सर्वत्र प्रगति करनेवाला क्षत्रिय, प्राण । तरणिः=पूर्य, तैरकर पार होनेमें समर्थ, कठिनाओं को पार करनेवाला । त्रिमश्रुः=तीनों का मनन करनेवाला, व्यक्तियों शरीर मन और बुद्धि इन तीनों का मनन पूर्वक विकास करनेवाला, व्यक्ति-समाज और संपूर्ण जनता इन तीनों की उन्नति का विचार करनेवाला । उन्नति=संरक्षक व्यक्ति ॥

[५६]

५६ याभीं रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वदृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिपासन्तमावृतं तारिभिरु पु ऊतिभिरखिना
गतम् ॥५॥

५६ याभिः । रेभम् । निऽवृतम् । सितम् । अतऽभ्यः ।
उत् । वन्दनम् । ऐरयतम् । स्वः । दृशे ।
याभिः । कण्वम् । प्र । सिपासन्तम् । आवृतम् ।
तारिभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अखिना । आ । गतम् ॥

५६ अन्वयः—अभिना । निवृतं सितं रेभं वन्दनं च याभिः अद्भ्यः
एव । इतो उत् ऐरयतं ; सिपासन्तं कण्वं याभिः प्र आवृतं, तारिभिः उ
सु आगतं ॥ ५ ॥

५६ अर्थ—हे अभिदेवो ! (निवृतं) पूर्णरूप से जल में डुबोये हुए और
(सितं रेभं वन्दनं च) बँधे हुए रेभ और वन्दन को (याभिः) जिन साधनों
से (अद्भ्यः) जलों से (एवः इतो उत् ऐरयतं) प्रकाश को दिखाने के
लिए तुम दोनों ने ऊपर उठाया तथा (सिपासन्तं कण्वं) भक्ति करने की
इच्छा करनेवाले नव्व को (याभिः प्र आवृतं) जिन साधनों से तुम दोनोंने
भलीभाँति सुरक्षित रखा था, (तारिभिः उ) उन्हीं रक्षाओं के साधनों
से युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) अच्छे प्रकार से हमारे पास आओ ।

५६ भावार्थ—अभिदेवोंने जल में डूबनेवाले और बँधे हुए रेभ और वन्दन
को जल से ऊपर उठाया और प्रकाश से घूमने योग्य बनाया । इसी तरह
उपासक कण्व को सुरक्षित किया । यह सब जिन साधनों से किया वह
साधनों के साथ ये देव हमारे पास आवें और उन शक्तियों से हमारी
सहायता करें ।

५६ मानवधर्म—केई अनुयायी जल में डूबता हो, किसी मनु ने उसे बंधन
में डाला हो अथवा डर बताया हो, तो उनको सुरक्षाके साधनोंसे तत्काल
सहायता पहुँचानी चाहिये और अनुगमियों को निर्भय बनना चाहिये ।

५६ टिप्पणी—निवृत=निवारित, प्रतिबंध में रखा, जल में डुबोया ।

स्तिर=बंधनों से बंधा, रस्तियों से जकड़ा। सिंघासन=सेवा या गति करने के लिये तैयार।

[५७]

५७ याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्यं याभिरव्यधिभिर्जिजिन्वधुः।
याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वधस्ताभिरु पु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥६॥

५७ याभिः । अन्तकम् । जसमानम् । आऽअरणे ।
भुज्युम् । याभिः । अव्यधिभिः । जिजिन्वधुः ।
याभिः-। कर्कन्धुम् । वय्यम् । च । जिन्वधः ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः अश्विना । गतम् ॥६॥

५७ अन्वयः- अश्विना ! आरणे जसमानं अन्तकं याभिः, अव्यधिभिः
याभिः भुज्युं जिजिन्वधुः, कर्कन्धुं वय्यं च याभिः जिन्वधः, ताभिः सु ऊतिभिः
आगतम् ॥ ६ ॥

५७ अर्थ- हे भविदेवो ! (आरणे जसमानं) गह्वरे पीडित (अन्तकं
याभिः) अन्तक को जिनसे तुम ने छुड़ाया था, (अव्यधिभिः याभिः)
जिन अश्वि रक्षाओं से (भुज्युं जिजिन्वधुः) तुम दोनों ने भुज्यु को सुरक्षित
किया था, (कर्कन्धुं वय्यं च) और कर्कन्धु तथा वय्य का (याभिः जिन्वधः)
जिन रक्षाओं से तुम दोनोंने संभाल किया, (ताभिः सु ऊतिभिः) उन सुन्दर
रक्षाओं से (आ गतं) तुम दोनों हमारे पास आओ ।

५७ भावार्थ- गह्वे में पीडे और बहुत पीडित हुए अन्तक को भविदेवों ने
गह्वे से बाहर निकाला, अश्वि परिश्रम करके भुज्यु को सुरक्षित करनेके कारण
प्रसन्न किया और कर्कन्धु तथा वय्य को संतुष्ट किया। यह जिन साधनों से
किया उन साधनों के साथ वे हमारे पास आ जायें और हमारी सहायता करें।

५७ मानवधर्म- राजा अपने अनुयायियों को खाई में गिरा दिया, अनेक
प्रकार की पीडा दी, समुद्र में डुबला किया अथवा अन्य प्रकार के दुःख दिये, तो
नेता स्वरा से अनुयायियों की सहायता करें और उन के बचत करे ।

५७ टिप्पणी- आरण=अवध, कूआ, गड्डा। जसमान=हिंस्रमान, दुःख
दिया हुआ पीडित। अव्यय=अश्वि, अन्तक, कर्कन्धु, वय्य इनको भवि-

देवों ने सहायता पहुँचाई थी । भुज्यु- तुमराजाका पुत्र । यह देशान्तर में युद्ध के लिये गया था । वहाँ उस की किस्ती हूबने लगी । अश्विदेवों ने विमानों से उस की सहायता पहुँचाई । (७१, ७९-८१; ऋ. १।११६।३-५)

[५८]

५८ याभिः शुचन्ति घनसां सुसंसदं तसं घर्ममोम्यावन्तमव्रये ।
याभिः पृथिगुं पुरुकुत्समावतुं तामिरू पु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥७॥

५८ याभिः । शुचन्तिम् । घनऽसाम् । सुऽसंसदम् ।
तुसम् । घर्मम् । ओम्याऽवन्तम् । अव्रये ।
याभिः । पृथिगुम् । पुरुऽकुत्सम् । आवतम् ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । गतम् ॥७॥

५८ अर्थ- याभिः । घनसां शुचन्तिः सुसंसदं तसं घर्ममोम्यावन्तं; पृथिगुं पुरुकुत्सं याभिः आवतं, तामिः ऊतिभिः सु भागतं उ ॥ ७ ॥

५८ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (याभिः) जिन साधनोंसे (घनसां शुचन्ति सुसंसदं) धन षोडशेवाले शुचन्ति को उत्तम रहने योग्य घर दिया और (तसं घर्म) गर्म और तपे हुए कारागृह को (अग्रये ओम्यावन्तं) अग्नि ऋदि के लिए शान्त बना दिया, (पृथिगुं पुरुकुत्सं) पृथिगु और पुरुकुत्स को (याभिः आवतं) जिन रक्षाओं से तुम दोनों ने बचाया, (तामिः ऊतिभिः) इन रक्षाओं से (सु भागतं उ) युक्त होकर तुम दोनों मलीभोंति इधर हमारे पास अवश्यही आओ ।

५८ भाषार्थ- [अग्नि ऋदि को स्वराज्य का आन्दोलन करने के कारण असुरों ने कारावास में रखा था और वहाँ अग्नि बंछा दिया था । अत्रिको उस गर्म के कारण बड़े छुंग हो रहे थे, अतः] अग्नि को आराम देने के लिए अश्विदेवों ने उस अग्नि को शान्त किया । घन षोडशेवाले शुचन्ति को घर दिया, पृथिगु और पुरुकुत्स को सुरक्षित किया । यह जिन साधनोंसे किया -उन के साथ ये हमारे पास पधारें और हमारी सहायता करें ।

५८ मानवधर्म— जनताके हितके लिये दलचल करनेके कारण जो कारा-वासमें पड़े होते हैं, उनको आराम पहुँचानेके लिये नेताका प्रयत्न होना चाहिये। शानियोंकी शानशुद्धिके कार्यके लिये जनको घन और घर देना चाहिये, तथा गोपालकोंको सुरक्षित रखना चाहिये।

५८ टिप्पणी— ओम्पावान् = सुसकारक। सुसंसद् = उत्तम बैठनेका स्थान, उत्तम घर। पृथिव्युः = जिसके पास चितकवर्ण गौंवे बहुत हैं।

[५९]

५९ याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्वं श्रोणं चक्षस एतवे कुथः।

याभिर्वर्तिकां प्रसिताममुञ्चतं तामिरू पु ऊतिभिरश्विना गतम्॥८

५९ याभिः। शचीभिः। वृषणा। परावृजम्।

प्र। अन्धम्। श्रोणम्। चक्षसे। एतवे। कुथः।

याभिः। वर्तिकां। प्रसिताम्। अमुञ्चतम्।

ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिभिः। अश्विना। आ। गतम्॥८

५९ अन्वयः— वृषणा ! अश्विना । याभिः शचीभिः परावृजं अन्वं चक्षसे, श्रोणं एतवे प्र कुथः, प्रसितां वर्तिकां याभिः अमुञ्चतं, तामिः ऊतिभिः व सु आ गतम् ॥ ८ ॥

५९ अर्थ— हे (वृषणा अश्विना ।) बलवान् अश्विदेवो ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (परावृजं) ऋषि परावृक्को (अन्धं) अन्धे की (चक्षसे) दृष्टि संपन्न किया और (श्रोणं एतवे) कंठादे लूकेको चकने फिरने योग्य (प्रकृषः) बना दिया, तथा (प्रसितां वर्तिकां) भेदियेने सुकमें पकड़ी हुई चिह्निकाको (याभिः अमुञ्चतं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे तुम दोनों छुड़ा चुके, (तामिः ऊतिभिः व) उन संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ अवश्य (सु आगतं) तुम दोनों दीक तरह हमारे पास आओ ।

५९ भावार्थ— हे बलवान् अश्विदेवो ! परावृक् ऋषि अन्धा और लूला था, उसको तुम दोनोंने अच्छी दृष्टि दी और घूमने फिरने योग्य बना दिया। भेदियेने चिह्निकाको सुकमें पकड़ा था, उसके दाँतोंसे यह घायल हुई थी, उसको उसके मुँहसे छुड़ाया और चिह्निकाको भारोपयुक्त किया। यह सब जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंसे तुम दोनों हमारे पास आओ और हमारी सहायता करो।

सविनो ७

५९ मानवधर्म- निक्किरसा शास्त्रकी इतनी उन्नति करनी चाहिये कि, जिस से अन्धोंसे दृष्टी अच्छी होसके, दृष्टी ठीक की जाय, लंगड़े लड़कों प्राय अचेष्ट बनाकर चलने फिरने योग्य बनाया जाय और घायलसे ठीक आरोग्य प्राप्त बनाया जाय । यह निक्किरसा जैसी मनवाँकी वैसी ही पशुपक्षियोंकी भी होने ।

५९ टिप्पणी- श्रोण=रंगड़ा लछा ।

[६०]

६० याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसंश्रुतं वसिष्ठं यामिरजराजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतयं नर्यमावतं तामिरु पु कुतिभिरश्विना
गतम् ॥९॥

६० याभिः । सिन्धुम् । मधुमन्तम् । असंश्रुतम् ।
वसिष्ठम् । याभिः । अजरी । अजिन्वतम् ।
याभिः । कुत्सम् । श्रुतयम् । नर्यम् । आवतम् ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । कुतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥९॥

६० अन्वय- अजरी अश्विना ! मधुमन्तं सिन्धुं याभिः असंश्रुतं, याभिः
वसिष्ठं अजिन्वतं, याभिः कुत्सं श्रुतयं नर्यं आवतं, ताभिः उ कुतिभिः सु
भागतम् ॥ ९ ॥

६० अर्थ- हे (अजरी अश्विना !) जराहीन अश्विनौ ! (मधुमन्तं सिन्धुं)
मीठे रससे युक्त नदीको (याभिः असंश्रुतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने
प्रदादित कर दिया, (याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं) जिनसे वसिष्ठको तृप्त कर
दिया, (याभिः कुत्सं, श्रुतयं नर्यं आवतं) जिनसे कुत्स, श्रुतयं तथा नर्य
का संरक्षण किया (ताभिः उ कुतिभिः) उन्हीं . संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त
होकर (सु भागतं) तुम दोनों ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ ।

६० भावार्थ- अग्निदेव जराहीन हैं, निश्चय तर्कन हैं, इन्होंने मीठे जलवाकी
नदियोंको जलसे भरपूर करके यहाँ दिया, वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतयं और नर्यको
शत्रुओंसे सुरक्षित रखा । जिन शक्तियोंसे यह किया उन शक्तियोंके साथ वे
हमारे पास आकर हमारी सहायता करें ।

६० मानवधर्म- जरावस्थाको दूर रखना चाहिये, वृद्धावस्था में भी तारत्व
का उत्साह रहना चाहिये । नदियोंको बन्ध आदि द्वारा ठीक तरह बहा देनेका

प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे उनका खेती आदिमें उपयोग अधिकसे अधिक हो और प्रजाको किसी तरह क्लेश न पहुँचे । तथा ज्ञान प्रसार करनेवाले ऋषियोंको सुरक्षित रखना चाहिये, जिससे उनके ज्ञान प्रसारके कार्यमें कोई विघ्न न हो सके ।

६० टिप्पणी- अधिदेव नदियोंसे नहर आदि निकाल देनेकी विद्या अच्छी-तरह जानते थे ऐसा इस मन्त्रसे प्रतीत होता है ।

[६१]

६१ याभिर्विश्वलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्हे आज्ञावर्जिन्वतम् ।
याभिर्बशमश्च्यं प्रेणिमावतं तामिरूषु ऊतिभिर्नाश्विना गतम् ॥ १०

६१ याभिः । विश्वलाम् । धनसाम् । अथर्व्यम् ।

सहस्रमीळ्हे । आजौ । अर्जिन्वतम् ।

याभिः । बशम् । अश्च्यम् । प्रेणिम् । आवतम् ।

ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

६१ अन्वयः— अश्विना । सहस्रमीळ्हे आजौ याभिः धनसां अथर्व्यं विश्वलां अजिन्वतं; याभिः प्रेणिं अश्च्यं बशं आवतं तामिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १० ॥

६१ अर्थ— हे अश्विनौ ! (सहस्रमीळ्हे आजौ) सहस्रों लोग मिलकर जहाँ कहते हैं वैसे युद्धमें (याभिः) जिन शक्तियोंसे (धनसां अथर्व्य विश्वलां) धनका दान करनेवाली और स्थिर रूपसे युद्धमें खड़ी हुईं अथवा अथर्व कुलमें उत्पन्न विश्वलाको (अजिन्वतं) तुम दोनोंने सहायता की, (याभिः) जिन शक्तियोंसे (प्रेणिं अश्च्यं बशं) प्रेरणकर्ता तथा अश्वके पुत्र बश नामक ऋषिको (आवतं) तुम दोनोंने सुरक्षित रखा, (तामिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षण की शक्तियोंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों कीक तरह हमारे पास आओ ।

६१ भाष्यार्थ— अधिदेवोंने युद्धमें जाकर छद्मनेवाली विश्वलाको सहायता की थीर अश्व पुत्र बशको संकटोंसे बचाया । यह जिन शक्तियोंसे उन्हींने किया उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायें और हमारी सहायता करें ।

६१ मानवधर्म— नेता लोग युद्धमें लड़नेव ले धीरे नारियों और पुरुषोंकी तरह प्रकारसे सहायता करें । अपने अस्त्रबाणियोंको संकटोंसे बचाने ।

६१ टिप्पणी- सहस्रमीळदा आजिः= सहस्रोंकी संख्यामें जहां सैनिक खड़े हैं ऐसे युद्ध । विश्पला=मेळ प्रदेशके राजाकी स्त्री या पुत्री । यह अर्धव कुलमें उत्पन्न हुई थी । यह युद्धमें जाजर शत्रुसे लड़ती थी । युद्धमें ३६ घोर स्त्रीकी दांग दूट गयी । अधिदेवोंने लोहेकी दांग लगा दी, यथात इस वीर स्त्राने युद्धमें विजय प्राप्त किया । (देखो ९१, अ. १।११६।१५) । वदा- देखो. ९७, अ. १।११६।११)

[६२]

६२ यामिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घभ्रवसे मधु कोशो
अक्षरत् । कक्षीवन्तं स्तोतारं यामिरायसं तामिरु पु ऊति-
मिरश्चिना गतम् ॥११॥

६२ यामिः । सुदानू इति सुदानू । औशिजाय । वणिजे ।
दीर्घभ्रवसे । मधु । कोशः । अक्षरत् ।
कक्षीवन्तम् । स्तोतारम् । यामिः । आयतम् ।
तामिः । ऊं इति । सु । ऊतिभिः । अश्चिना । आ । गतम् ॥

६२ अन्वयः- सुदानू भविना । औशिजाय दीर्घभ्रवसे वणिजे यामि
कोश मधु अक्षरत्, स्तोतारं कक्षीवन्तं यामि आयत, तामिः ऊतिभिः व सु
भागवत् ॥ ११ ॥

६२ अर्थ- हे (सुदानू भविना) भण्टे दान देनेहारे अधिदेवो । (औशि
जाय दीर्घभ्रवसे वणिजे) उल्लिखित पुत्र दीर्घभ्रवा नामक व्यापारीके लिए (यामि)
जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (कोशः मधु अक्षरत्) शब्ददका भाण्डार दिया
भीर (स्तोतार कक्षीवन्त) स्तुति करनेहारे कक्षीवानको (यामि आयतं) जिन
शक्तियोंसे तुम दोनोंने सुसज्जित किया (तामिः ऊतिभिः व) उन्हीं रक्षाओंके
साथ (सु भागवत्) तुम दोनों ठीक प्रकार हमारे पास आओ ।

६२ भावार्थ - अधिदेव उत्तम दान देते हैं । इन्होंने उल्लिखित पुत्र दीर्घभ्रवा
को मधुके भण्डार दानमें दिये और उपासक कक्षीवानको शत्रुसे बचाया ।
यह जिन शक्तियोंसे इन्होंने किया वन शक्तियोंके साथ ये हमारे पास आ जायें
और हमारी सहायता करें ।

६२ मानवधर्म- नेता उदार और दाता होने चाहिये। वे अपने अनुयायियों को गधु जैसा पौष्टिक अन्न दे दें और अन्य प्रकारसे अपने अनुयायियों को सुरक्षित रखें।

[६३]

६३ याभी रसां क्षोदसोद्गः पिपिन्वथुरनथं याभी रथमावतं जिपे।
याभिस्त्रिशोकं उस्त्रिया उदाजत ताभिः पु कृतिभिरश्विना
गतम् ॥१२॥

६३ याभिः । रसाम् । क्षोदसा । उद्गः । पिपिन्वथुः ।
अनश्नम् । याभिः । रथम् । आवतम् । जिपे ।
याभिः । त्रिशोकः । उस्त्रियाः । उत्त्राजत ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । कृतिभिः । अश्विना । आ ।
गतम् ॥१२॥

६३ अन्वयः- अश्विना ! रसो याभिः क्षोदसाः उद्गः पिपिन्वथुः याभिः
अनश्नं रथं जिपे आवतं, त्रिशोकः याभिः उस्त्रियाः उदाजत, ताभिः कृतिभिः
सु आगतम् ॥ १२ ॥

६३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! तुम दोनोंने (रसां) नदीको (याभिः) जिन
शक्तियोंसे (क्षोदसा उद्गः) त्यों को कुचलनेवाले जलसमूहसे (पिपिन्वथुः)
परिपूर्ण करवाकर, (याभिः अनश्नं रथं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे घोड़े
से रहित रथको (जिपे आवतं) जब पानेके लिए तुम दोनोंने सुरक्षितरीतिसे
बका दिया और (त्रिशोकः याभिः) त्रिशोक जिन शक्तियोंकी सहायतासे
(उस्त्रियाः उदाजत) गौँधूँ या सऊ, (ताभिः कृतिभिः) उन्हीं रक्षा शक्तियोंको
साथ लेकर (सु आगतं) अच्छी तरह हमारे पास आओ ।

६३ माचार्य- अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे रसा नदीको महापूरके जलसे
भरपूर भर दिया, बिना घोड़ेके रथको घेगसे चला कर शत्रुको परास्त करके
जय प्राप्त किया और त्रिशोकको दुधारू गौँधूँ दी। जिन शक्तियोंसे यह
हुआ, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आ जायें और हमारी सहायता करें।

६३ मानवधर्म- राष्ट्रमें नेता सभे जलके प्रवाहोंको दृष्ट करके भरपूर जलके
साथ नहरोंकी मर्रा दे, पेड़ आदि प्राणियोंके जोतनेके बिना ही वर्षाकी शक्तियों की

रथोंको बेगरो चलावे । तथा गौओंमें दुग्ध देनेकी क्षमता बढ़ा कर बैसी गौयें अपने अनुयायियोंको प्रदान करें ।

६३ टिप्पणी—क्षोदसा उद्ग—नदीके दोनों तटोंको घर्षण करनेवाले जलसे, महापूरके बेगसे जानेवाले जलसे । अतः रथः= घोड़ेके बिना चलनेवाला रथ ।

[६४]

६४ याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षेत्रपत्येष्वार्वतम् ।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं तामिरूप ऊतिभिरश्विना गतम् ॥ १३

६४ याभिः । सूर्यम् । परिऽयाथः । पराऽवति ।

मन्धातारम् । क्षेत्रऽपत्येषु । आर्वतम् ।

याभिः । विप्रम् । प्र । भरद्वाजम् । आवतम् ।

ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ ।

गतम् ॥ १३ ॥

६४ अन्वयः— अश्विना ! परावति सूर्यं याभिः परियाथः, क्षेत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं, याभिः विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु गतम् ॥ १३ ॥

६४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (परावति सूर्यं) दूरस्थानमें अवस्थित सूर्यके (याभिः परियाथः) चारों ओर तुम दोनों जिन शक्तियोंसे जाते हो, (क्षेत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं) क्षेत्रपतिके सम्बन्धमेंके करने योग्य कर्मोंमें मन्धाताकी रक्षा तुम दोनों कर चुके, और (याभिः) जिन शक्तियोंकी सहायता पाकर (विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं) तुम दोनों ज्ञानी भरद्वाजकी उत्कृष्ट रक्षा कर चुके, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंकी साथ लिपि तुम दोनों (सु गतम्) अच्छे प्रकारसे हमारे पास आओ ।

६४ भावार्थ— अश्विदेव सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं, इन दोनों देवों ने मन्धाताकी क्षेत्रपतिके कर्तव्योंको निभानेमें बड़ी सहायता की, तथा विप्र भरद्वाजकी रक्षा भी की, यह जिन शक्तियोंसे किया गया था, उन शक्तियों को साथ लेकर वे हमारे पास आ जायें और हमारी सहायता करें ।

६४ मानवधर्म— मेरा लोग देश चलन करनेके विषयों जो जो आवश्यक पड़ते हैं, उनके निभानेमें सम प्रकारकी सहायता कार्यकर्ताओंको दे

कानियोंकी रक्षा करें और उनका ज्ञान प्रसारया पायें फैलते रहें। सबको भरपूर सूर्य प्रकाशमें पिघरेनया ध्वजार घेदें, क्योंकि सूर्य ही जीवनया आदि स्रोत है, उस के प्रकाशसे जीवन शक्ति मिलता है।

६४ टिप्पणी- परि या=प्रशिक्षण करना, चारों ओर घूमना। क्षेत्रपत्यं= देशके पालन करनेके सम्बन्धके कर्तव्य।

[६५]

६५ याभिर्महामतिथिभ्यं कशोजुवं दिवोदासं शम्बरहृत्य आर्षतम् ।

याभिः पुभिर्घे असदस्युमावतं तामिरु पु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥१४॥

६५ याभिः । महाम् । अतिथिऽग्वम् । कशः । जुवंम् ।

दिवः । दासम् । शम्बरऽहृत्ये । आर्षतम् ।

याभिः । पुः । भिर्घे । असदस्युम् । आवतम् ।

ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

६५ अर्थ- अश्विना । शम्बरहृत्ये याभिः अतिथिभ्यं, कशोजुवं, महा दिवोदासं आर्षतं, याभिः असदस्युं पुभिर्घे आर्षतं, तामिः ऊतिभिः । ॥ आगतम् ॥ १४ ॥

६५ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (शम्बरहृत्ये) शम्बरका वध करनेके युद्धमें (याभिः) जिन रक्षाओंसे (अतिथिभ्यं) अतिथिभ्य (कशो-जुवं) कशो-जुव और (महा दिवोदासं) महा दिवोदासकी (आर्षतं) तुम दोनोंने रक्षा की थी, (याभिः) जिनसे (असदस्युं) दुश्मनोंको डरानेवाले नरेशों (पुभिर्घे आर्षतं) शत्रु नगरियोंको तोड़नेके युद्धमें तुम दोनोंने सुरक्षित बना दिया था, (तामिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त बनकर (सु आगतं) तुम दोनों भर्त्ता प्रकार हमारे पास आओ ।

६५ भावार्थ- अश्विदेवोंने शम्बरका वध करनेके लिये किये गये युद्धमें अतिथिभ्य, कशोजुव और दिवोदासकी रक्षा की और असदस्युकी भी शत्रुके कीले तोड़नेके काममें सहायता की थी। यह जिन शक्तियोंसे किया था, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आ जायें और हमारी सहायता करें।

६४ मानवधर्म- नेता लोग अपने शत्रुओंकी उचित सहायता युद्धके समय अवश्य करें। युद्धके समय किसी चीजकी न्यूनता सैनिकोंको न रहें। विजयके लिये इस तरहके प्रबंध करनेकी आवश्यकता है।

६५ टिप्पणी- अतिथि स्व=अतिथि जिसके पास जाते हैं, जो अतिथि को गोवे देता है । कशो-जूः=जलके पास जानेवाला । कशस्=जल । त्रस दस्यु=दरपुत्रो दुःख देनेवाला, दुष्टोंको संतुष्ट करनेवाला ।

[६६]

६६ याभिर्वृत्रं विपिपानमुपस्तुतं कलिं याभिर्वित्तजानिं दुवस्यथः ।
याभिर्व्यश्मत् पृथिमावतं ताभिरू पु कृतिमिराश्विना गतम् ॥ १५

६६ याभिः । वृत्रम् । विऽविपानम् । उपऽस्तुतम् ।

कलिम् । याभिः । विऽजानिम् । दुवस्यथः ।

याभिः । विऽअश्वम् । उत । पृथिम् । आवतम् ।

ताभिः । ऊँ इति । सु । कृतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

६६ अन्वयः- अश्विना ! याभिः विपिपानं उपस्तुतं वृत्रं, याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः, उत याभिः व्यश्मं पृथिमावतम्, ताभिः कृतिभिः सु आगतम् ॥ १५ ॥

६६ अर्थ- हे आश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (विपिपानं उपस्तुतं) सोमरसका विशेष पाव करनेवाले, समीपस्थों द्वारा प्रशंसित (वृत्रं) वृत्र नामक ऋषिको तुम दोनों सुरक्षित कर चुके, (याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे विवाहित कलिकी सुरक्षा तुम दोनों करते हो, (उत) और (याभिः) जिनसे (व्यश्मं पृथिमावतं) घोड़ेसे निष्ठुरे हुए पृथिकी रक्षा तुम दोनोंने की थी, (ताभिः कृतिभिः सु आगतं) उन रक्षाओंसे तुम दोनों की प्रकारसे इधर हमारे पास आओ ।

६६ भावार्थ- आश्विदेवोंने बहुत सोमरस पीनेवाले, प्रशंसित वृत्र नामक ऋषिकी रक्षा की, कलिको उत्तम धर्मपत्नी देकर उसकी रक्षा की, पृथिके घोड़े को होनेपर भी उसकी रक्षा की, वे अपनी सब शक्तियोंसे हमारे पास आ जायें और हमारी रक्षा करें ।

६६ मानवधर्म- नेता लोग अपने अनुयायियोंकी सुरक्षा सदा करते रहें, किसीसे व्यत्र पान अधिक लगता हो तो उसे वह दें, किसीसे धर्मपत्नी चाहिये तो उसके ग्याहपा प्रबंध करें, घोड़े नितुडे जनेपर उसको वे पुनः मिलें ऐसा प्रबंध करें । अर्थात् अपनी शक्तियोंसे अनुयायियोंको असुरक्षित न रहने दें ।

६६ टिप्पणी- इस मन्त्रके उपस्तुत, वज्र, कलि, व्यश्व, पृथि ये पाँचों पद श्रमिनाम हैं ऐसा कइयोंका मत है, हमने पहिले और चौथेको विशेषण माना है ।
चित्त-जानि=प्राप्त हुई जो जिसको वह । वि अश्च=बिडुडे अध है जिसके ।

[६७]

६७ याभिर्नरा शयवे याभिस्त्रये याभिः पुरा मनवे गातुमीपथुः ।
याभिः शरीराजतं स्यूमरश्मये तामिरु पु अतिभिरश्विना
गतम् ॥१६॥

६७ याभिः । नरा । शयवे । याभिः । अत्रये ।
याभिः । पुरा । मनवे । गातुम् । ईपथुः ।
याभिः । शरीः । आजतम् । स्यूमरश्मये ।
तामिः । ऊँ इति । सु । अतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

६७ अन्वयः- नरा अभिना । याभिः शयवे, याभिः अत्रये, याभिः
मनवे पुरा गातुं ईपथुः; स्यूमरश्मये याभिः शरीः आजतं, तामिः उ अतिभिः
सु आगतम् ॥ १६ ॥

६७ अर्थ- हे (नरा अभिना) 'नेता अभिदेवो । (याभिः शयवे)
जिन शक्तियोंसे मुक्त होकर शयुको मदद देनेके लिए, (याभिः अत्रये) जिन
शक्तियोंसे मुक्त होकर अग्नि ऋषिको काशवातसे छुड़ानेके लिए, (याभिः
मनवे) जिन शक्तियोंसे मुक्त होकर मनुके लिए (पुरा गातुं ईपथुः) प्राचीन
कालमें दुःखसे छूट जानेका मार्ग तुम दोनोंने बतानेकी इच्छा की थी, तथा
(स्यूमरश्मये) स्यूमरश्मिकी सहायता देनेके लिए (याभिः शरीः आजतं)
जिन शक्तियोंसे बाणोंकी शत्रुदलपर तुम दोनोंने प्रेरित किया था, (तामिः उ
अतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी आयोजनाओंकी साथ लिए हुए तुम दोनों (सु
आगतं) भली भोति इधर हमारे पास आओ ।

६७ भावार्थ- जिन शक्तियोंसे अभिदेवोंने शयु, अग्नि, मनु, और स्यूम,
रश्मिकी सहायता की, उन शक्तियोंकी साथ वे हमारे पास आ जायें और
हमारी सहायता करें ।

६७ मानवधर्म- नेतालेग शत्रुओंका परिनाश करें और दुर्जनोंका नाश करें और
सज्जनोंकी रक्षा करें । (हेमो म० गीता ४८)

६७ टिप्पणी- शत्रु=(देखो ५८, पं. १।१।६।२६।२२)। अग्नि=(५८, ६७, ८४, १०४, १६३, १४३, १७८, २०६, २६३, २६४, २६८, ३४२, ३६६, ४०८)। मनु.= (६७, ६९, १२२, ४६६, ४७७)। इन नामोंको इन मंत्रोंमें देतो ।

[६८]

६८ याभिः पठर्वा जठरस्य मज्जनाग्निर्नादीदेक्षित इद्धो अज्मन्ना ।
याभिः शर्पातमवधो महाधने तामिरु पु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥१७॥

६८ याभिः । पठर्वा । जठरस्य । मज्जनाग्निः ।

अग्निः । न । अदीदेत् । चितः । इद्धः । अज्मन् । आ ।

याभिः । शर्पातम् । अवधः । महाधने ।

ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

६८ अन्वय- अग्निना । इद्ध चित अग्निः न, पठर्वा याभिः अज्मन्
जठरस्य मज्जना आ अदीदेत्, महाधने तामिः शर्पात अवधः तामिः उ
ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १७ ॥

६८ अर्थ- हे अग्निदेवो ! (इद्धः चितः) प्रज्वलित और समिधाओंके
झालनेसे बढते हुए (अग्निः न) अग्निके सुदय, (पठर्वा) पठर्वा नरेश (याभिः
अज्मन्) जिन रक्षाओंसे मदद पाकर युद्धमें (जठरस्य मज्जना) अपने शारी-
रिक बलसे (आ अदीदेत्) पूर्णतया मदीस हो उठा था; (महाधने याभिः)
अधिक संपत्ति पानेके लिए किये जानेवाले युद्धमें जिनसे (शर्पात अवधः)
तुम दोनोंने शर्पातकी रक्षा की थी, (ताभिः उ ऊतिभिः) उर्द्धी रक्षाओंसे
सुसज्ज होकर (सु आगतम्) तुम दोनों हमारे समीप आओ ।

६८ श्रुति- अग्निदेवोंकी शक्तियोंकी सहायतासे पठर्वा नरेश अपनी
सामर्थ्य बढानेके कारण युद्धमें बडा तेजस्वी सिद्ध हुआ, इसी तरह शर्पातकी
भी अग्निदेवोंने महायुद्धमें रक्षा की, इन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ
जायें और हमारी रक्षा करें ।

६८ मानवधर्म- नेता लोग अपने वीरोंकी युद्धके समय पूर्ण रूपसे सहायता
करें और शत्रुका पराभन होनेतक मदद करते रहें ।

६८ टिप्पणी- अज्मन्=युद्धमें । महाधन=महायुद्ध ।

[६९]

६९ याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतंताभिरूपु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१८

६९ याभिः । अङ्गिरः । मनसा । निरण्यथः ।
अग्रम् । गच्छथः । विवरे । गोऽअर्णसः ।
याभिः । मनुम् । शूरम् । इषा । समुऽआवतम् ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम्॥

६९ अन्वयः— अश्विना ! याभिः मनसा अङ्गिरः निरण्यथः गोअर्णसः
विवरे अग्रं गच्छथः, शूरं मनुं याभिः इषा सं आवतं, ताभिः व ऊतिभिः सु
आगतं ॥ १८ ॥

६९ अर्थ— हे अभिदेवो ! तुम दोनों (मनसा) मन-पूर्वक किये (अङ्गिरः)
भंगिरसोंके स्तोत्रसे संतुष्ट होकर (याभिः) जिन शक्तियोंसे उनको (निर-
ण्यथः) सन्तुष्ट कर चुके तथा (गोअर्णसः विवरे) बन्द रखे हुए गौओंके
छुंडको पानेके लिए गुहाके मुँहमें जानेके लिए (अग्रं गच्छथः) भागे चले
जाते हो, और (शूरं मनुं) पराक्रमी मनुको, (याभिः इषा सं आवतं) जिन
शक्तियोंसे भस्म प्राप्त कराके तुम दोनों सुरक्षित रख चुके हो, (ताभिः व
ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) भलीभाँति
इधर आओ ।

६९ भाषार्थ— अभिदेवोंकी स्तुति भंगिरसोंने की, उससे प्रसन्न होकर
अभिदेवोंने उनको सन्तुष्ट किया, जब गौओंको छुँदनेके लिए गुहामें जानेका
अवसर मिला, उस समय अभिदेव भागे पड़े, शूर मनुकी युद्धमें परास्त भए
सामग्री पहुँचाई । यह सब जिन शक्तियोंसे किया उन शक्तियोंसे ये हमारेपास
आजायें और हमें सहायता करें ।

६९ मानवधर्म— नेतालोग अपने अनुयायियों को आवश्यक सामग्री देकर संतुष्ट
करें, शूरवीरताके बार्दमें लचके आगे बढ़ें । तब तरह अपने अनुयायियोंकी सुरक्षाक
उत्तम प्रबंध रखें ।

६९ टिप्पणी— गो अर्णसु=गोरूप धन । विवरे=गुहा ।

[७०]

७० याभिः पत्नीर्विमदाय न्यहपुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
 याभिः सुदासे ऊह्युः सुदेव्यं तामिरु पु ऊतिभिरश्विना
 गतम् ॥ १९ ॥

७० याभिः । पत्नीः । विमदाय । निःऊह्युः ।
 आ । घ । वा । याभिः । अरुणीः । अशिक्षतम् ।
 याभिः । सुदासे । ऊह्युः । सुदेव्यम् ।
 तामिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

७० वाक्यः— अश्विना विमदाय याभिः पत्नीः नि ऊह्युः, याभिः वा
 अरुणीः घ वा अशिक्षतम्, याभिः सुदासे सुदेव्यं ऊह्युः, तामिः उ ऊतिभिः सु
 आगतम् ॥ १९ ॥

७० अर्थ— (अश्विना) हे अश्विदेवो ! (विमदाय) विमर्शके लिए उसके
 घर (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पत्नीः नि ऊह्युः) उसकी धर्मपत्नीको
 तुम दोनोंने ठीक तरह पहुँचा दिया था, (याभिः वा) जिन शक्तियोंसे (अरुणीः
 घ) भद्र रंगकी घोड़ियोंको (वा अशिक्षतम्) पूर्णतया सिखाया था और
 (याभिः सुदासे) जिनसे सुदासके घरमें (सुदेव्यं ऊह्युः) अच्छा दैन्ययोग्य
 धन तुम दोनोंने दिया था, (तामिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाभेकि साथ तुम
 दोनों (सु आगतम्) ठीक प्रकार हमारे पास आओ ।

७० भाषार्थ— अश्विदेवोंने जिन शक्तियोंसे विमर्शकी धर्मपत्नीको उसके
 घर पहुँचाया, काल रंगकी घोड़ियोंको अच्छी तरह सिखाया और सुदासको
 बहुत धन दिया, उन शक्तियोंसे ये यहाँ हमारे पास आये और हमारी
 सहायता करें ।

७० मानवधर्म— नेता लोग अपने अनुवायियोंकी परियोजनाएँ सन्तुष्ट
 रखें, घोड़ियोंको शिक्षित करें और दानमें धन दें और सब प्रकारसे जनताको
 प्रसन्न रखें ।

७० टिप्पणी— विमर्शः=(दिखो २०, १०, १२१, ४५८, ५८०, ५८९) अरुणीः=
 लालरंगवाली घोड़े, अथवा घोड़ियाँ । सुदासः=पितृवर्ग का पुत्र ।

[७१]

७१ याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवधो याभिर-
 ध्रिगुम् । ओम्यावती सुमरासृतस्तुमं ताभिः पु ऊतिभिर-
 श्विना गतम् ॥२०॥

७१ यामिः । शन्ताती इति शम्स्ताती । भवथः । ददाशुषे ।
 भुज्युम् । याभिः । अवधः । याभिः । अध्रिऽगुम् ।
 ओम्याऽवतीम् । सुऽभराम् । ऋतऽस्तुभम् ।
 ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

७१ अन्वयः— अश्विना । ददाशुषे याभिः शन्ताती भवथः, याभिः भुज्युं,
 याभिः अध्रिगुं अवधः, सुभरं ओम्यावतीं ऋतस्तुमं, ताभिः उ ऊतिभिः सु
 भागतं ॥ २० ॥

७१ अर्थ— हे अश्विदेवो । (ददाशुषे याभिः) दानी पुरपके लिये जिन
 शक्तिपौसे तुम दोनों (शन्ताती भवथः) सुखदायक बनते हो, (याभिः भुज्युं)
 जिनसे भुज्युकी रक्षा (याभिः अध्रिगुं अवधः) जिनसे अध्रिगुकी रक्षा करते
 हो, उसी प्रकार जिनसे (सुभरं ओम्यावतीं) भण्डी पुष्टिकारक तथा सुखदा-
 यक भद्र सामग्री (ऋतस्तुभम्) ऋतस्तुभको दे ढाकते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः)
 उन्हीं रक्षापौसे युक्त तुम दोनों (सु भागतं) इधर भण्डी तरह हमारे
 पास आओ ।

७१ भावार्थ— अश्विदेवोंने अपनी शक्तिपौसे दाताको सुख दिया, भुज्यु
 और अध्रिगुकी रक्षा की और ऋतस्तुभ को पुष्टि कारक और सुखदायक भद्र
 दिया । जिन शक्तिपौसे उन्होंने यह किया है उन शक्तिपौसे वे यहाँ हमारे
 पास आ जायें और हमारी सहायता करें ।

७१ मानवधर्म— नेता लोग उदार दाताओंको सुख दें, जिनको अपेक्षक है
 उनको पौष्टिक और आरोग्यवर्धक अन्न दें और अन्न अनुयायियोंकी उत्तम रक्षा करें ।

७१ टिप्पणी— भुज्यु=उम राजाका पुत्र (दिग्गो ५७, ७१, ७९-८१, ११५
 ११६, १२२, १४१, १४५, १७१, १७९, १९८-२००, २१६, २४४, २५६,
 ४०५, ५८९, ६०३, ६२१) अध्रिगु=देवोंका समिता ऋत्विक् ।

[७२]

७२ याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तुमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत् सरद्भ्यस्ताभिरू पु ऊतिमिरधिना
गतम् ॥२१॥

७२ याभिः । कृशानुम् । असने । दुवस्यथः ।
जवे । याभिः । यूनः । अर्वन्तम् । आवतम् ।
मधु । प्रियम् । भरथः । यत् । सरद्भ्यः ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अधिना । आ । गतम् ॥

७२ अन्वयः- अधिना ! असने कृशानुं याभिः दुवस्यथः, याभिः यूनः
अर्वन्तु जवे आवतं, यत् सरद्भ्यः प्रियं मधु भरथः ताभिः व ऊतिभिः सु
भागत् ॥ २१ ॥

७१ अर्थ- हे अधिदेवो ! (असने) मुझमें (कृशानुं) कृशानुकी (याभिः
दुवस्यथः) जिस शक्तिसे तुम दोनों सहायता करते हो, (याभिः) जिससे
यूनः अर्वन्तं) युवकके घोड़ेरो (जवे आवतं) वेग पूर्वक दौड़नेमें तुम दोनों
यथाशक्ते, और (यत् प्रियं मधु) जो प्यारा मधु (सरद्भ्यः भरथः) मधु-
मक्षिकामाँके सिधु तुम दोनों उत्पन्न करते हो, (ताभिः व ऊतिभिः सु भागत्)
उन्हीं रक्षामाँके साथ तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ।

७२ मायार्थ- अधिदेवोंने मुझमें कृशानुकी रक्षा की, वीरनेवाले घोड़ेको
सहाय और मधुमक्षिकामाँको मधु दिया । यह जिस शक्तिसे किया, उन
शक्तिसे ही साथ मे हमारेपास आ जायें और हमारी रक्षा करें ।

७३ मानसधर्म- नेता जेय मुझमें अपने पीरोंकी सुरक्षाका प्रबंध करें, घोड़ो
को उत्तम शिक्षित करें, जिसमें मे वही दौड़में भी मने रहें । मधुरा भी प्रदान
करें क्योंकि मधु सुखिकारण भण्य है ।

७० टिप्पणी- सरद्भ्यस्तुल्यशक्ति । अर्थात् वे दा । द्रुवम् = परिपक्व,
क्षमा, सहायता करना । अमर्त्यं = मान पैरना, युद्ध ।

[७३]

७३ याभिर्नरं गोपुयुधं नृपाले क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः।
 याभी रथान् अर्बथो याभिर्र्वतस्ताभिर्ऋ पु ऊतिभिर्ऋश्चिना
 गतम् ॥२२॥

७३ याभिः । नरम् । गोपुयुधम् । नृसत्तैः ।
 क्षेत्रस्य । साता । तनयस्य । जिन्वथः ।
 याभिः । रथान् । अर्बथः । याभिः । अर्वतः ।
 ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिभिः । अश्चिना । आ । गतम् ॥

७३ शब्दार्थः- अभिना ! याभिः गोपु-युधं अर नृपाले, क्षेत्रस्य तनयस्य साता जिन्वथः; याभिः रथान्, याभिः अर्बतः अर्बथः, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ २२ ॥

७३ अर्थ- हे भन्निदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (गोपुयुधं नरं) गौर्भोंके लिए लड़नेवाले नेताको (नृपाले) युद्धमें तथा (क्षेत्रस्य तनयस्य साता) क्षेत्रकी उपजका घंटवारा करते समय (जिन्वथः) तुम दोनों सुरक्षित करने द्वारा सम्पुष्ट करते हो, (याभिः रथान्) जिनसे रथोंको, (याभिः अर्बतः अर्बथः) जिनसे घोड़ोंको सुरक्षित रखते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) इन्हीं रक्षाओं से मुक्त होकर (सु आगतं) सुन्दर प्रकारसे आओ ।

७३ भावार्थ- गौर्भोंकी सुरक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें लड़नेवाले वीरोंको अभिवेग सुरक्षित रखते हैं, क्षेत्र की उपजका घंटवारा करनेके समय विरोध होने नहीं देते और रथों और घोड़ोंकी सुरक्षा करते हैं । ये देव जिन शक्तियोंसे यह करते हैं उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायें और हमारी सहायता करें ।

७३ मानवधर्म- नेता लोक गौर्भोंको सुरक्षित रखें, गौर्भोंपर हमला करनेवाले शत्रुके साथ लड़ें, ऐसे युद्धोंमें लड़नेवाले वीरोंको सुरक्षित रखनेका प्रबंध करें, क्षेत्रकी उपजका घंटवारा करनेके समय अनुयायियोंमें झगडा होने न दें, तथा अपने वीरोंके घोड़ों और रथोंको सुरक्षित रखें ।

७३ टिप्पणी- गो सु युध् = गौकी रक्षा करनेके लिये साम्र रीतिसे लड़ने-वाला वीर । नृ साह्य = वीरों द्वारा ही जो सहा जाता है ॥ युध् ।

[७४]

७४ याभिः कुत्संमार्जुनेयं शतक्रतुं प्र तुर्वीति प्र च दभीतिमाव-
तम् । याभिर्ध्वसन्ति पुरुषन्तिमावतं तामिह पु ऊतिभिः-
श्विना गतम् ॥२३॥

७४ यामिः । कुत्सम् । आर्जुनेयम् । शतक्रतु इति शतऽक्रतु ।
प्र । तुर्वीतिम् । प्र । च । दभीतिम् । आवतम् ।
यामिः । ध्वसन्तिम् । पुरुषन्तिम् । आवतम् ।
तामिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

७४ अन्वय - शतक्रतु अश्विना । यामिः भार्जुनेयं कुत्सं, तुर्वीति वभी-
ति च प्र भागतं, यामिः ध्वसन्ति पुरुषन्ति आवतं तामिः उ ऊतिभिः सु
भागतम् ॥ २३ ॥

७४ अर्थ- (शतक्रतु अश्विना) हे सैकड़ों कार्य करनेवाले भविष्यदेव !
(यामिः) जिनसे (भार्जुनेयं कुत्सं) भार्जुनीके पुत्र कुत्स, (तुर्वीति दभीति च)
और तुर्वीति तथा दभीतिको तुम दोनों (प्र भागत) प्रकर्षसे बचाओ,
(यामिः ध्वसन्ति पुरुषन्ति आवतं) जिनसे ध्वसन्ति और पुरुषन्तिको तुम
दोनों बचाओ (तामिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर (सु
भागतं) तुम दोनों इधर हमारे पास आओ ।

७४ भावार्थ- भविष्येय सैकड़ों कर्म करनेवाले हैं, उन्हींसे भार्जुनीके पुत्र
कुत्सकी, तथा तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी सुरक्षा की ।
जिन शक्तियोंसे यह किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायें और
हमारी रक्षा करें ।

७४ मानवधर्म- नेता लोग सैकड़ों कर्म करनेमें तुशल बनें । अपने अनुया-
यियोंको वे अपनी आज्ञाजानाओसे बचावें ।

७४ टिप्पणी- शत क्रतु = सैकड़ों शुभ कर्म करनेवाले । आर्जुनेय भार्जुन
इन्द्र, आर्जुनेय = इन्द्रका पुत्र । तुर्वीति = शत्रुका नाश करनेवाला । तुर्व-
नश करना । दभीति = शत्रु को दबावेवाला । ध्वसन्ति = शत्रुका ध्वस्तन अर्थात्
नाश करनेवाला । पुरुष-सन्ति = बहुत दान देनेवाला ।

[७५]

७५ अमस्वतीमश्विना वाचंमस्मे कृतं नो दत्ता वृषणा मनीषाम्॥

अधृत्येऽर्वसे नि ह्वये वा वृधे च नो भवतं वार्जसातौ॥२४॥

७७ अमस्वतीम् । अश्विना । वाचंम् । अस्मे इति ।

कृतम् । नः । दत्ता । वृषणा । मनीषाम् ।

अधृत्ये । अर्वसे । नि । ह्वये । त्राम् ।

वृधे । च । नः । भवतम् । वार्जसातौ ॥२४॥

७५ अन्वयः- वृषा । वृषणा ! अश्विना ! नः मनीषां, अस्मे अमस्वतीं, वाचं कृतं, वा अधृत्ये भवसे निह्वये, वार्जसातौ च नः वृधे भवतम् ॥ २४ ॥

७५ अर्थ- हे (दत्ता) शत्रुविनाशकर्ता । (वृषणा अश्विना !) बलवाम् अश्विदेवो ! (नः मनीषां) हमारी इच्छा को पूर्ण करो, (अस्मे) हमारी (अमस्वतीं वाचं कृतं) वाणीको कर्मयुक्त बना दो, (वा) तुम दोनोंको (अधृत्ये) अँधेरेमें (भवसे निह्वये) रक्षाके निमित्त बुलाता हूँ, (वार्जसातौ च) और भस्मका दान करते समय (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धि के लिए प्रयत्नशील बने ।

७५ भाषार्थ- हे शत्रुके नाशकर्ता शक्तिमान अश्विदेवो ! हमारी यही एक इच्छा है । यह यह कि हमारे आपण सुभ कर्मोंको बढ़ानेवाले हों । इस अँधेरी रात्रीमें आपको हमारी रक्षा करनेके लिए बुलाते हैं । तुम दोनों हमारे पास आओ, इस भस्मके दान करनेके कार्यमें हमारी सहायता करो । हमसे हमारी वृद्धि होती रहे ।

७५ मानवधर्म- गन्तव्य शत्रुका नाश करे, सामर्थ्यवान् बने । ऐसे आपण करे कि जिनसे सत्कर्मोंकी समृद्धि हो जाय । अन्धकारके समय सब अनुयायी सुरक्षित रहें । अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न दिया जाय । उनकी वृद्धि होती रहे ऐसा प्रबंध सर्वदा करना योग्य है ।

७५ टिप्पणी- अमस्वती=कर्म युक्त । अधृत्य=अ-प्रकृष्ट, अन्धरा ।

[७६]

७६ धुमिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेमिरश्विना सौभगेभिः ।

तर्क्षो मित्रो वर्कणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत

घौः ॥२५॥

अश्विनौ ९

७६ द्युऽभिः । अक्तुऽभिः । परि । पातम् । अस्मान् ।
 अरिष्टेभिः । अश्विना । सौमगेभिः ।
 तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् ।
 अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥२५॥

७६ अन्वयः— अश्विना । द्युभिः अक्षतुभिः अरिष्टेभिः अस्मान् परि पातं
 तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः नः ममहन्ताम् ॥ २५ ॥

७६ अर्थ— हे अभिदेवो ! (द्युभिः अक्षतुभिः) दिन और रात (अरिष्टेभिः
 सौमगेभिः) अक्षुण्ण अच्छे ऐश्वर्योत्से (अस्मान् परि पातं) हमारी पूर्णतया
 रक्षा करो, (तत्) इसका मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, भूलोक तथा द्युलोक
 (नः ममहन्ता) हमारे किए अनुमोदन करें । अर्थात् इनकी सहायतासे
 हमारी वह पूर्णतः इच्छा सफल हो ।

७६ भावार्थ— दिन रात हमे अदृष्ट ऐश्वर्य मिलता रहे और उससे हमारी
 रक्षा होती रहे । सब देव इस हमारी इच्छाकी सफलता होनेमें सहायक बनें ।

७६ गानयधर्म— मनुष्य दिन रात ऐसे शुभ-धर्म करे कि जिनसे उसकी
 अपरिमित ऐश्वर्य मिले और उसने उसकी सुरक्षा हो जाय । सब उसकी सहायता करें ।

७६ टिप्पणी— द्यु=दिन । अक्तु=रात्री । अ रिष्ट=अदृष्ट, अपरिमित, अवि-
 चिन्त । सौमगं=सौभाग्य, ऐश्वर्य, भग्नम् ।

[७७] (क्र० १।११६।१-१५)

कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः त्रिष्टुप् ।

७७ नासन्त्याभ्यां वहिर्निव प्र वृज्जे स्तोमौ ह्यम्यत्रियेषु वारतः ।

यावर्मेगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यहतु रथेन ॥१॥

७७ नासत्याभ्याम् । वहिःऽइव । प्र । वृज्जे ।

स्तामान् । इयमि । अत्रियाऽइव । वारतः ।

यौ । अर्मेगाय । विऽमदाय । जायाम् ।

सेनाऽजुवा । निऽहतुः । रथेन ॥१॥

७७ अन्वयः— यौ सेनाजुवा रथेन अर्मेगाय विमदाय जायां निजहतुः
 नासत्याभ्यां स्तोमान्, वारतः अत्रिया इव इयमि, वहिः इव प्र वृज्जे ॥ १ ॥

७७ अर्थ- (यौ) जो दोनों अभिदेय (सेनाजुवा रथेन) सेनाके साथ चलनेवाले रथपरसे, (अर्भगाय विमदाय) नद्ययुक्त विमदके लिए (जायं नि उदनुः) पानीको पहुँचा आये, उन (नासत्याभ्यां) भूमिसे रहित अभिदेवोंके लिए मैं (स्तोमान्) स्तोत्रोंको, (यातः आश्रया इव) पवन मेघमण्डलमें स्थित जलोंको जैसे प्रेरित करता है, या आगे फैला देता है, वैसे (इवामि) मैं प्रेरित करता हूँ, तथा (यदिः इव) कुशाग्रोंकी नाई (प्रवृत्ते) विस्तारित करता हूँ ।

७७ भावार्थ- दोनों अभिदेय अपनी सेनाके साथ शत्रुपर हमला करनेवाले रथमें बिछोड़ाकर नद्ययुक्त विमदकी पानीको उसके घर पहुँचा आये थे, उनके स्तोत्रोंको मैं फैलाता हूँ, जैसे मेघोंको वायु और आसनोंको यज्ञरत्नों फैलाता है ।

७७ मानसधर्म- जो चार अपने चारोंकी और उनके घरवालोंकी सुरक्षा करेंगे, उनकी प्रशंसा करना योग्य है ।

७७ टिप्पणी- सेना-जु=सेनाको चलानेवाला । अर्भग=अर्भक=तटण, बाल, छोटी आयुवला । अभ्रिय=गैर्पोंमें स्थित जल । यहाँ अर्भक विमदकी पानी अभि-देवोंने उनके घर पहुँचाई ऐसा लिखा है । अर्भकका अर्थ बालक ऐसा प्रतिष्ठ है, वेद मंत्रोंमें भी इस अर्थमें ही यह पद आया है । यदि यही अर्थ लिया जाय तो 'बाल विद्याह' का सूक्त वह मन्त्र होगा । इसलिये यहाँ इसका अर्थ 'तटण' किया है । परन्तु यह अर्थ विवादास्पद है । 'अर्भग' का अर्थ वेद मन्त्रोंमें निःसंदेह क्या है इसका निर्णय करना योग्य है । कथा- 'विमद स्वयंवरको गया था, उसने एक स्त्री स्वयंवरमें प्राप्त की । घर वापस आते समय शत्रुसेवाने उसपर हमला किया । अभिदेवोंने शत्रुसेनाको भगाकर विमदकी पानीको विमदके घरपर पहुँचाया । यह कथा इस मन्त्रसे सूचित होती है ऐसा कहते हैं । इसके प्रमाण वैदिक ग्रन्थोंमें अग्नेषणीय हैं । देखो 'विमद' ७०; ७७, १२१, ४५८, ६८० ॥ 'अर्भ' पद ऋग्वेदमें १०१५; ४०१८, ५१११३, ८१११, १०२११०, १२४१६; १४६१५, ६१५०४, ७३७३३, ८१४७८, १०१९१८ इतने ११ स्थानोंमें है । यहाँ 'अल्प' ऐसा इसका अर्थ है । 'अर्भक' पद ऋग्वेदमें ११२७१३३, ११५१७, ११६११, ४१२१२३, ७३३१६, ८१३०१, ६१५१५ इतने ७ स्थानोंमें है । इनमें इसी १११६११ में 'अर्भग' पद है । शेष स्थानोंमें 'अर्भक' है । सर्वत्र 'गुणोंमें कम, बाल, शिशु, अल्पशरीर' ऐसे अर्थ हैं । इतनेही बार ये पद ऋग्वेदमें है ।

[७८]

७८ वीरूपरत्नमिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शशदाना ।
तद् रासमो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२॥

७८ वीरूपरत्नमिः । आशुहेममिः । वा ।
देवानाम् । वा । जूतिमिः । शशदाना ।
तद् । रासमः । नासत्या । सहस्रम् ।
आजा । यमस्य । प्रधने । जिगाय ॥२॥

७८ अन्वयः- नासत्या ! वीरूपरत्नमिः वा आशुहेममिः देवानां जूतिभिः
वा शशदाना, रासमः तद् सहस्रं यमस्य प्रधने आजा जिगाय ॥ २ ॥

७८ अर्थ- हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवों ! (वीरूपरत्न-
मिः वा) आकाशमें वेगसे उड़नेवाले, और (आशु हेममिः) क्षीप्रगतिसे जाने-
वाले, (देवानां जूतिभिः वा) देवोंकी गतिसे संचालित होनेवाले यानोंसे
(शशदाना) क्षीप्र गतिसे जानेवाले तुम दोनों हो। सुन्दर यानोंको जोता
(रासमः) रासम (तद् सहस्रं) उस सहस्र संख्यावाले अशुद्धको (यमस्य
प्रधने आजा) यमके छिये ही प्रिय होनेवाले युद्धमें अशुद्धको (जिगाय)
जीत चुका ।

७८ भावार्थ- रासम पावन करनेवाले दोनों अश्विदेव अतिवेगसे आकाशमें
उड़नेवाले, अति क्षीप्र गतिसे जानेवाले और (विपुत् आदि) देवताओंकी
गतिसे उड़नेवाले यानोंसे अति क्षीप्र गतिसे जाते हैं । इनके यानोंको जोते
हुए रासमने यमको ही आवन्द देनेवाले भयंकर युद्धमें सहस्रों की संख्यामें
अशुद्ध सैनिकोंको जीत लिया था ।

७८ मानवधर्म- (जल अग्नि वायु विपुत् आदि) देवताओंकी शक्तिसे
आकाश यान तथा अन्यान्य यान अतिक्षीप्र गतिसे चलाना योग्य है । मर्यादक
युद्धमें वीर ऐसा पराक्रम करे कि, जिससे अशुद्ध सैनिक सहस्रोंकी संख्यामें मर जावें।

७८ टिप्पणी- वीरूप रत्नम्=रत्नशाली उद्गाण, महावेग । आशु-हेमम्=क्षीप्र
गति । देवानां जूति = देवताओंकी शक्ति । रासम=गधा, सघर, गति देने-
वाला साधन । यमस्य प्रधने आजौ = यमकी प्रिय युद्ध, भयंकर युद्ध ।

[७९]

७९ तुम्रो ह भुज्युमंश्चिनोदमेघे रयिं न कथिन्ममूवाँ अवाहाः ।
तमूदधुर्नोभिरात्मन्वतीभिरन्तरिक्षप्रुद्धिरपोदकाभिः ॥३॥

७९ तुम्रः । ह । भुज्युम् । अश्चिना । उदमेघे ।
रयिम् । न । कः । चित् । ममृवान् । अर्वा । अहाः ।
तम् । ऊहधुः । नौभिः । आत्मन्ऽवतीभिः ।
अन्तरिक्षप्रुत्ऽभिः । अपोऽउदकाभिः ॥३॥

७९ अन्यथा- भविना कश्चित् ममृवान् रयिं न, उदमेघे तुम्रः भुज्यु
ह अवाहाः; आत्मन्वतीभिः, अन्तरिक्षप्रुद्धिः अपोदकाभिः नौभिः तं
ऊहधुः ॥ ३ ॥

७९ अर्थ- हे भविनेषो ! (कश्चित् ममृवान्) कोई मरनेवाला (रयिं न)
जिस प्रकार अपनी धनसंपदाको छोट देता है, उसी प्रकार (उदमेघे) जलोंसे भरे
प्रचण्ड समुद्रमें (तुम्रः भुज्युं ह) तुम नरेशने अपने पुत्र भुज्युको समुद्र
हमला करनेके लिए (अवाहाः) छोड़ दिया, (तं) उसे (आत्मन्वतीभिः)
निजशक्तिसे युक्त, (अन्तरिक्षप्रुद्धिः) अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली तथा
(अपोदकाभिः) जलोंको दूर करके जलमें भी जानेवाली (नौभिः ऊहधुः)
नौकाओंसे तुम दोनों ऊपरसे झेलकर आगे ले चले ।

७९ भावार्थ- जैसा मरनेवाला मनुष्य अपने धनकी भाशा छोड़ देता है,
उसी तरह [अपने पुत्रकी भाशा छोड़कर] तुम नरेशने अपने भुज्यु नामक
पुत्र को [समुद्र हमला करनेके लिए] बड़े गहरे महासागरमें जानेकी
भाशा दी । [भुज्यु गया और उसका बेटा डूब गया तब] उसे तुम दोनोंने
अपनी अद्भुत शक्तिवाली, आकाशमें संचार करनेवाली और जलको तोड़कर
जलमें भी जानेवाली नौकाओंसे, उठाकर उसको [पिताके पास]
पहुँचाया ।

७९ मानवधर्म- राजा अपने साम्राज्य पर रहनेवाले शत्रुका पराभव करनेके
लिए अपने वीरों को विशेष तैयारीके साथ भेज दे । उन वीरोंकी सुरक्षा के
लिए ऐसे यत्न रखे कि जो भूमिपर, जलमें तथा आकाशमें भी उत्तम गतिसे
चल सकें ।

७९ टिप्पणी— देखा ' भुज्युः ' ग० ७१ । उदमेघे=जलधे भरे
आत्मन्वती=अपनी विशेष बला शक्तियों युक्त । अन्तरिक्षमुत्=अन्तरिक्ष
उदनेवाला यान । अपोदक=जलको तोड़ कर चलेवाली नौका । उत्-ऊट=ऊट
उठाना, सेलना, ऊपर ऊपरसे उठाना ।

[८०]

८० तिस्रः क्षपस्त्रिहातिव्रजजिर्नासत्या भुज्युर्मूहयुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः पल्लवैः ॥४॥

८० तिस्रः । क्षपः । त्रिः । अहा । अतिव्रजजिः ।
नासत्या । भुज्युम् । ऊहयुः । पतङ्गैः ।
समुद्रस्य । धन्वन् । नार्द्रस्य । पारे ।
त्रिभिः । रथैः । शतपद्भिः । पट्पल्लवैः ॥४॥

८० अन्वयः— नासत्या । नार्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् तिस्रः क्षपः त्रिः
अहा अतिव्रजजिः शतपद्भिः पल्लवैः पतङ्गैः त्रिभिः रथैः भुज्युं ऊहयुः ॥४॥

८० अर्थ— हे (नासत्या) सत्यके पाहक अभिदेवो । (नार्द्रस्य समुद्रस्य)
जलमय अगाध समुद्रके (पारे धन्वन्) पारे रेतीले मरुदेससे (तिस्रः क्षपः)
तीन राते और (त्रिः अहा) तीन दिन न ठहरते हुए (अतिव्रजजिः) बराबर
वेगसे जानेवाले, (शतपद्भिः) सौ पहियोंसे युक्त और (पट्पल्लवैः) छहः
अधशक्तिवाले यंत्रोंसे युक्त (पतङ्गैः) पक्षी जैसे उड़ने हुए जानेवाले (त्रिभिः
रथैः) तीन यानोंसे (भुज्युं ऊहयुः) भुज्युको तुम दोनों साथ ले चले ।

८० भाषार्थ— अगाध समुद्रके पारे जहाँ रेतीला प्रदेश है, वहाँसे तीन
दिन और तीन रात बराबर बीचमें किसी जगह न ठहरते हुए अतिवेगसे जाने-
वाले, सौ पहियोंसे युक्त, छः पाहक कला यंत्रोंसे युक्त पक्षी जैसे उड़नेवाले
तीन यानोंसे तुम दोनोंने भुज्युको उसके घर पहुँचाया ।

८० मानवधर्म— तीन अर्हमान न ठहरते हुए चलेवाले, पक्षी जैसे आकाश
में उड़नेवाले सौ पहियों और छः पाहक यंत्रोंसे चलाये जानेवाले आकाशवान
घनाना योग्य है । इनका उपयोग दूर देशमें गये सैनिकोंका सहायता कराना
उचित है ।

८० टिप्पणी- धन्यन्=रौला प्रदेश, मरुत्त। अतिग्रज्=बड़े वेगसे जाना। शतपत्=सौ पाँचवाला। पट्-अश्व=छः संचालन कला यंत्रवाला, छः घोड़े जिससे संचलते हैं ऐसा रथ। 'भुज्यु' देखो ७१।

[८१]

८१ अना॒रम्भ॒णे तद॑वीर॒येथाम॑नास्थाने अ॒ग्रभ॒णे संमु॒द्रे ।

यद॑भिना ऊ॒हधु॑र्भुज्युमस्तं श॒तारि॒त्रां नाव॑मातस्थि॒र्वासं॑म् ॥५॥

८१ अना॒रम्भ॒णे । तत् । अ॒वीर॒येथाम् ।

अना॒स्थाने । अ॒ग्रभ॒णे । संमु॒द्रे ।

यत् । अ॒भिना॑ । ऊ॒हधुः॑ । भुज्युम् । अस्तं॑ ।

श॒तऽअ॒रि॒त्राम् । नाव॑म् । आ॒तस्थि॒र्वा॒सं॑म् ॥५॥

८१ अन्वयः- अभिना ! अनास्थाने अनारम्भणे अग्रभणे समुद्रे- शतारित्रां नावं आतस्थिर्वासं सुगुं यत् अस्तं ऊहधुः, तत् अवीरयेथाम् ॥ ५ ॥

८१ अर्थ- हे अभिदेवी ! (अनास्थाने) स्थान रहित, (अनारम्भणे) आकाशयन्शून्य (अग्रभणे समुद्रे) हाथसे जहाँ किसीको पकड़ना असंभव है, ऐसे अथाह समुद्रमें (शतारित्रां नाव) सौ बलियोंसे चलायी जानेवाली नौका पर (आतस्थिर्वासं भुज्युं) घड़े हुए भुज्युको (यत् अस्तं ऊहधुः) जो तुम दोनोंने घर पहुँचाया, (तत्) वह कार्य (अवीरयेथाम्) सचमुच बड़ीही वीरतासे पूर्ण हो था ।

८१ भावार्थ- जहाँ ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं है, जहाँ कोई आश्रय नहीं है और जहाँ पकड़नेके लिये कोई पदार्थ ही नहीं है ऐसे अथाह महासागरमेंसे जो तुम दोनोंने सौ बलियोंसे चलायी जानेवाली नौकापर बैठकाकर भुज्युको उसके घर पहुँचाया वह सचमुच बड़ा ही वीरताका कार्य है ।

८१ मानवधर्म- असीम महासागरसे भी अपने घरोंको बचानेका कार्य शूर पुरुषोंको करना चाहिये । यह कार्य नौकासे किया जाय जवना आकाश यानसे किया जाय ।

८१ टिप्पणी- शतारित्रा = सौ बलियोंसे चलायी जानेवाली नौका ।

अन्-आ स्थान=जहाँ ठहरनेका स्थान न हो । अन्-आ रम्भण = जिसका प्रारंभ और अन्त दोस्तता न हो । अ ग्रभण = जहाँ पकड़नेके लिए कुछ भी न हो ।

वीर = वीरताके कर्म करना, शत्रुसे दूर करना ।

[८१]

८२ यमश्चिना द्रुदधुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।

तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्दो वाजी सदमिद्धव्यो
अर्यः ॥६॥

८२ यम् । अश्चिना । द्रुदधुः । श्वेतम् । अश्वम् ।

अघऽअश्वाय । शश्वत् । इत् । स्वस्ति ।

तत् । वाम् । दात्रम् । महि । कीर्तेन्यम् । भूत् ।

पैद्दः । वाजी । सदम् । इत् । हव्यः । अर्यः ॥६॥

८१ अन्यथा- अश्चिना ! अघाश्वाय यं श्वेतं अश्वं द्रुदधुः शश्वत् इत् स्वस्ति;
वां तत् दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् । पैद्दः अर्यः वाजी सदमित् हव्यः ॥६॥

८२ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (अघाश्वाय) अघाश्व नरेशको (यं श्वेतं अश्वं
द्रुदधुः) जिस सफेद घोड़ेका दान तुम दोनोंने दिया (शश्वत् इत्) वह हमेशा
ही (स्वस्ति) कल्याणकारक है, (वां तत् दात्रं) तुम दोनोंका वह दान
(महि कीर्तेन्यं भूत्) बड़ा भारी वर्णन करने योग्य हुआ है (पैद्दः अर्यः
वाजी) वह वेदुको दिया, शत्रु सेनापर चढाई करनेवाला घोडा भी (सदमित्
हव्यः) सदैव समीप युद्धानेयोग्य है ।

८२ भावार्थ- अश्विदेवोंने अघाश्वको श्वेत घोडा दिया, और वेदुको चढाई
करनेके कार्यमें निपुण घोडा दिया । ये दान प्रशंसाके योग्य हैं ।

८१ मानवधर्म- घोडोंको विविध कार्योंमें उत्तम शिक्षित करके वारोंको दानमें
देना योग्य है ।

८१ टिप्पणी- दात्रं = दान । कीर्तेन्यं = वर्णनके योग्य । अघाश्व = इस
भाग्य, राजा, अरुन्धती, अश्विदेव, पत्नी, पैद्द = वेदुको, दिया, वाजीगामी, श्रेष्ठ,
जानेवाला ।

[८२]

८३ युवं नरा स्तुवते पञ्जिवाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।

कारोतराच्छादशस्य वृष्णः शतं कुम्भौ असिञ्चतं सुरायाः ॥७॥

८३ युवम् । नरा । स्तुवते । पञ्जियाय ।
 कक्षीयते । अरदत्तम् । पुरंधिधिम् ।
 कारोतरात् । शफात् । अश्वस्य । वृष्णः ।
 शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम् । सुरायाः ॥७॥

८३ अन्वयः— नरा ! युवं स्तुवते पञ्जियाय कक्षीयते पुरंधिं अरदत्तं, वृष्णस्य अश्वस्य कारोतरात् शफात् सुरायाः शतं कुम्भान् असिञ्चतम् ॥ ७ ॥

८३ अर्थ— हे (नरा) नेतृत्वगुणसे युक्त अभिदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (पञ्जियाय कक्षीयते) पञ्च कुलोपस्य कक्षीयानको (पुरंधिं अरदत्तं) नगरका संरक्षण करनेकी क्षमता बढ़ानेवाली बुद्धिको दे ढाका, (वृष्णस्य अश्वस्य) यक्षिष्ठ घोड़ेके सुरके समान (कारोतरात् शफात्) विशिष्ट वर्तनसे (सुरायाः शतं कुम्भान्) सुराके सौ घड़े (असिञ्चतं) तुम दोनोंने भरकर रखे ।

८३ भावार्थ— पञ्च नामक कुलमें उत्पन्न कक्षीयानको, उनके द्वारा की तुम्हारी स्तुति समाप्त होते ही, तुम दोनों नेताओंने, नगरके संरक्षण करनेमें समर्थ बुद्धि और शक्तिका प्रदान किया । इसी तरह यक्षिष्ठ घोड़ेके सुरके समान भाकारवाले विशेष घड़े वर्तनसे शुद्ध जलके सौ घड़े तुम दोनोंने भरकर रखे ।

८३ मानवधर्म— नेता लोग नागरिकोंको ऐसी शिक्षा दें कि जिससे उनको अपने नगरका शत्रुके हमलेसे उत्तम संरक्षण करनेकी बुद्धि तथा शक्ति प्राप्त हो । तथा वे उत्तम शुद्ध वृष्टिजल बड़े बड़े पात्रोंमें भरकर रखें ।

८३ टिप्पणी— पञ्जियः=पञ्च कुलमें उत्पन्न, वृष्णः=आंगिरस कुल । पुरं-धि=नगरका संरक्षण करनेकी बुद्धि और शक्ति, नगर-रक्षा-प्रबन्ध-कारिणी-समिति; स्त्री, विदुषी स्त्री । कारोतरात्=चमड़ेका बड़ा पात्र, बड़ा पात्र । शफात्=घोड़ेका छुर । सुरा = भापसे बना पानी, श्रेष्ठ जल (क्योंकि यद् भापसे ही बनता है) शुद्ध यंत्रसे भापका बनाया जल (Distilled water) सुरा ।

[८४]

८४ हिमेनाग्निं प्रंसमवारयेथां पितृमतीमूर्जमस्मा अघत्तम् ।

अग्नींसे अग्निमश्चिनावनीतमुर्जन्यथुः सर्वेगणं स्वस्ति ॥८॥

८४ हिमेन । अग्निम् । घ्नंसम् । अवारयेधाम् ।
 पितुऽमतीम् । ऊर्जम् । अस्मै । अधचम् ।
 ऋषीसे । अग्निम् । अश्विना । अवऽनीतम् ।
 उत् । निन्यथुः । सर्वऽगणम् । स्वस्ति ॥८॥

८४ अन्वयः— अश्विनौ ! घ्नंसं अग्निं हिमेन अवारयेधौ, ऋषीसे अथ नीतं अग्निं सर्वगणे स्वस्ति इव निन्यथुः, अस्मै पितुमतीं ऊर्जं अधचम् ॥ ८ ॥

८४ अर्थ— हे अग्निदेवो ! (घ्नंसं अग्निं) धधकते हुए अग्निको (हिमेन अवारयेधौ) तुम दोनों बर्फ जैसे जलसे ढटा चुके, (ऋषीसे अथनीतं अग्निं) अंधेरे कारागृहमें अग्नि मुँह बंद हुए अग्निको (सर्वगणे) उमके सभी अनुयायियोंके साथ (स्वस्ति उत् निन्यथुः) उत्तम रीतिसे ऊपर उठाचुके और (अस्मै) इसे (पितुमतीं ऊर्जं अधचं) पुष्टि कारक तथा बलप्रद अन्न दे चुके ।

८४ भावार्थ— [स्वराज्य प्राप्तिकी हलचल करनेवाले] अग्नि अग्निको [असुरोंने अन्धेरे कारागारमें अनुयायियोंके साथ बन्ध करके रखा था और चारों ओर आग जला दी थी जिससे डटको बंधे कष्ट हो रहे थे ।] अग्निदेवोंने जलसे उन अग्निको शान्त किया [और कारागारको तोड़ कर] अनुयायियों के साथ अग्निको मुक्त किया, तथा उस [क्रुश बने] अग्निको पुष्टिकारक और बलवर्धक अन्न दे (कर हृष्ट हुए कर) दिया ।

८४ मानवधर्म— नेताओंको उचित है कि वे प्रजाहितकी हलचल करनेवाले कार्यकर्ताओंके कारावास आदि कष्ट होनेके समय, अनेक उपायों द्वारा उनको आराम देनेका यत्न करें और कार्यकर्ताओंके अनुयायियोंकी भी हरतरह सहायता करें ।

८४ टिप्पणी— घ्नंस = दिन, प्रज्वलित (अग्नि) । ऋषीस=उष्ण स्थान, दरार, सहस्राना, तलमूढ़ अथाह दरार, कायगृह । पितुमती ऊर्ज = पोषण करने वाला अन्न । अग्नि=देवो ६० । अवनीतं अग्निं = तलघरमें बंधे रखे अग्नि में, जहाँ अन्न होनेका भी स्थान न हो ऐसे स्थानमें रखे अग्निको । उश्विन्यथु = ऊपर उठाया, बाहर निम्ना । सर्वगणं = अग्निके साथ सब अनुयायियोंको भी बाहर निम्ना ।

[८५]

८५ परावृतं नास्त्यानुदेथामुच्चावुधं चक्रयुजिह्वारम् ।

क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गौतमस्य ॥९॥

८५ परा । अवृतम् । नास्त्या । अनुदेथाम् ।

उच्चावुधम् । चक्रयुः । जिह्वारम् ।

क्षरन् । आपः । न । पायनाय । राये ।

सहस्राय । तृष्यते । गौतमस्य ॥९॥

८५ अन्वयः— नास्त्या ! अवृतं परा अनुदेथा, उच्चावुधं जिह्वारं चक्रयुः, तृष्यते गौतमस्य पायनाय, सहस्राय राये न, आपः क्षरन् ॥९॥

८५ अर्थ— हे (नास्त्या) सत्यको न छोड़नेवाले अग्निदेवों ! (अवृतं परा अनुदेथा) कुदरेके जल प्रवाहको तुम दोनोंने बहुत नूरसक केजाकर उसके (उच्चावुधं जिह्वारं चक्रयुः) तल भागको ऊंचा कर तथा कुदिलमार्ग द्वारा उस प्रवाहको (तृष्यते गौतमस्य पायनाय) प्यासे गौतमके पीनेके लिए (सहस्राय राये ॥) और सहस्र संख्याक घान्परूप धन मिलानेके लिए उससे (आपः क्षरन्) जल धाराएँ बहादी ।

८५ भावार्थ— सत्यका पावन करनेवाले अग्निदेव एक स्थानसे कुवेका जल बहुत दूरतक (नहरके द्वारा) ले गये, इसके लिये उन्होंने कुद्रेका तल ऊंचा बनाया और टेढ़े मार्गसे उससे जल प्रवाह बहा दिये और उस जलको गौतमके आश्रममें पहुँचाया, तब आश्रमवासियोंको पीनेके लिये जल मिला और सहस्रों प्रकारसे घान्वादिकी संपदा भी प्राप्त हुई ।

८५ मानवधर्म— जहाँ पानी न हो वहाँ भी दूरसे पानी नहर आदि द्वारा ला कर, उत्तम रमणीय आश्रमस्थान बनाना चाहिये । इस कार्यके लिये नहर टेढ़े या बक मार्गसे लाना आवश्यक हो, तो भी वैसा लाना चाहिये । इससे न केवल आश्रमवासियोंको पीनेके लिये पानी ही मिले, बल्कि खेती, फलोंके वृक्ष तथा उद्यान भी अच्छी तरह बन सकें ।

८५ टिप्पणी— अवृतं = कुआ, जल स्थान, झील । परानुद = दूर लेजाना उच्चावुध = जिसका तल भाग ऊंचा हो ऐसा दर्ज । जिह्वार = कुदिल, टेढ़े मार्गसे, टेढ़े द्वारसे, टेढ़ी टेढ़ी नहरसे । देखो मरुदेवताके मन्त्र १३२-१३३ (श्र. १।८५।१०-११) इन दो मन्त्रोंमें मरुत्सैनिक गौतम तपिके लिये ही ऊपर

के जल स्थानसे नहर द्वारा पानी लाने ऐसा वर्णन है। यही वही कार्य अभिदेष्टोने किया है।

[८६]

८६ जुजुरुषो नासत्याव ववि प्राप्तिश्चतं द्रापिर्मिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दसादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥

८६ जुजुरुषः । नासत्या । उत । वविम् ।
प्र । अमुञ्चतम् । द्रापिम्ऽहव । च्यवानात् ।
प्र । अतिरतम् । जहितस्य । आयुः । दसा ।
आत् । इत् । पतिम् । अकृणुतम् । कनीनाम् ॥१०॥

८६ अर्थः— इच्छा नासत्या ! जुजुरुषः च्यवानात् द्रापि इव यदि
प्र अमुञ्चतं, उत जहितस्य आयुः प्र अतिरतं, आत् इव कनीना पति
अकृणुतम् ॥ १० ॥

८६ अर्थ— हे (इच्छा नासत्या) ज्ञानुनाशक तथा असत्यसे रहित अभिदेष्टो !
(जुजुरुषः च्यवानात्) जराजीर्ण च्यवानसे (द्रापि इव) कवचके तुल्य (ववि
॥ अमुञ्चतं) बुढ़ापेकी चमड़ीको तुम दोनोंने उतार कर दूर किया, (उत)
और दस (जहितस्य आयुः) पतितक की आयु (प्र अतिरतं) तुम दोनोंने दीर्घ
बना दी, (आत् इत्) सदुपरान्त (कनीना पति अकृणुतं) उसे तुम दोनोंने
कमनीय नादियोंका पति भी बना दिया ।

८६ भावार्थ— ज्ञानु नाशक और सत्य पात्रक अभिदेष्टोने अतिवृद्ध अतएव
सब संबंधियोंके द्वारा परित्यक्त च्यवन ऋषिके शरीरसे कवच उतार देनेके
समान बुढ़ापेकी चमड़ी या झुर्रि उतार कर उसे तक्षण बनाकर और दीर्घायु
बनाकर, अनेक सुन्दर स्त्रियोंका पति भी बना दिया ।

८६ मानवधर्म— वैश्वंशो उचित है कि, वे बूढ़ेके शरीरकी वृद्धावस्थाकी
चमड़ी, कवच उतार देनेके समान, उतारदे और औपधियोंके सेवनसे उस वृद्धको
शुक्ल बना दे । दीर्घायु बनाकर उसे विवाहित भी कर दें ।

८६ टिप्पणी— जुजुरुष = रुद्र, जीर्ण । द्रापि = कवच, चोरा, अंगरक्षा ।
ववि = आवरण । जहित = रक्षक, त्याग दिया । कनी = कम्य, कनीना पतिः
ये बहुवचनी पद बहुपलियोंके विवाहकी सूचना देते हैं । इस मन्त्रमें वृद्धको तक्षण
नानेरा वैद्यकीय प्रयोग वर्णन दिया है । इस प्रयोगसे शरीरका चर्म, सांपकी

स्वचा उत्तर जाती है, उस तरह उत्तर दिया जाता है और मनुष्य चांपकी तरह फुर्तीला तरण बनता है । परमों जो प्रयोग हैं उनमें 'व्यवन प्राश' वा भी प्रयोग है । कुटिर प्रवेश विधिते ये प्रयोग किये जाते हैं, चमड़ी, नग्न नेश नये आते हैं और मनुष्य तदय बनता है । पाठक ये प्रयोग देखें । देखो व्यवन ११४, १३२ २७२, २८२, ३४३, ३६६, ५८६ ।

[८७]

८७ तद् वां नरा शंस्यं राष्ट्र्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।

यद् विद्वांसा निधिपिषाणूल्हृद् दृशतादुपयुर्वन्दनाय ॥११

८७ तत् । वाम् । नरा । शंस्यम् । राष्ट्र्यम् । च ।

अभिष्टिमत् । नासत्या । वरूथम् ।

यत् । विद्वांसा । निधिम् इव । अपङ्गूलहम् ।

उत् । दृशतात् । उपयुः । वन्दनाय ॥११॥

८७ अन्वयः—नरा मासत्या । वां तत् अभिष्टिमत् वरूथं शंस्यं राष्ट्र्यं च, विद्वांसा । यद् अपङ्गूलहं निधि इव, दृशतात् वन्दनाय उत् उपयुः ॥११॥

८७ अर्थ—हे (नरा मासत्या) मेरा सत्यके पालक अभिदेवो ! (वां तत्) तुम दोनोंका यह (अभिष्टिमत्) पान्ठनीय (वरूथं) स्वीकार करनेयोग्य कार्य (शंस्यं राष्ट्र्यं च) प्रशंसनीय और आराधनीय है, (विद्वांसा) हे ज्ञानी भाषि देवो ! (यत्) जो (अपङ्गूलहं निधि इव) डिपाये हुए खजानेके-समान, (दृशतात्) देखनेयोग्य गठेसे (वन्दनाय उत् उपयुः) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठाया ।

८७ भावार्थ—वन्दन कृपि गहरे गठेमें पड़ा था, उसही अभिदेवोंने, गुप्त स्थानसे धनको ऊपर उठानेके समान, ऊपर उठाया, यह अभिदेवोंका कार्य बहुत ही प्रशंसा करने योग्य है ।

८७ मानवधर्म—कोई मनुष्य गठेमें या पुर्वेमें पड़ा हो तो उसे बिना कष्ट पहुँचाये ऊपर उठाकर लाना चाहिये [इस कार्यके लिये आवश्यक साधन मनुष्य अपने पास तैयार रखे ।]

८७ टिप्पणी—अभिष्टि=सब प्रकारसे इष्ट । वरूथ=श्रेष्ठ कर्म । राष्ट्र्यं आराधनीय, सिद्ध होने योग्य ।

८८ तद् वा नरा सनये दंसं उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दुष्यद् ह यन्मध्वार्थर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२

८८ तत् । वाम् । नरा । सनये । दंसः । उग्रम् ।

आविः । कृणोमि । तन्यतुः । न । वृष्टिम् ।

दुष्यद् । ह । यत् । मधु । आथर्वणः । वाम् ।

अश्वस्य । शीर्ष्णा । प्र । यत् । ईम् । उवाच ॥१२॥

८८ अन्यय - नरा ! यत् आथर्वणः दुष्यद् अश्वस्य शीर्ष्णा ह वा यत्
ह मधु प उवाच तत् वा वामं दंसः, तन्यतुः वृष्टिं न, सनये आविः
कृणोमि ॥ १२ ॥

८८ अर्थ - हे (नरा) नेता अग्निदेवो ! (यत् आथर्वणः दुष्यद्) जो
अथर्व कुक्षीरपत्र दधीधी ऋषिने (अश्वस्य शीर्ष्णा ह) गोधेके शिरसे ही (वा)
तुम दोनोंको (यत् ह मधु) इस मधुविद्याका (प्र उवाच) प्रवचन करके
उपदेश किया, (तत् वा वाम दंसः) तुम दोनोंके उस भीषण कायेको, (तन्य-
तुः वृष्टिं न) गरजनेवाला मेघ जैसे वर्षाका आविष्कार करता है, वैसे ही
(सनये आविः कृणोमि) जनसेवा हो जाए इसलिये मैं प्रकट करता हूँ ।

८८ भाषार्थ - अथर्वकुक्षीरपत्र दधीधी ऋषिने घोड़ेका शिर धारण कर
के तुम दोनोंको मधु विद्या पढ़ायी । इस विषयमें जो तुमने कार्य किया वह
सबसुख भयानक ही कार्य था । जिस तरह मेघ गरजेना करके वृष्टीकी सूचना
देता है, वैसे तरह घोषणा करके मैं उस तुम्हारे कर्मका प्रचार करता हूँ । इस
से तुमसे जनसेवा हो वही मेरी इच्छा है ।

८८ मानयधर्म - एकता शिर लथवा अन्य अवयव काटकर दूसरेपर जोड़
देनेकी विद्या शस्त्र क्रियासे साधन करनेतक मनुष्योंको आधुनिक विद्याकी उत्पत्ति
करनी पारिये ।

८८ टिप्पणी - अश्व=घोड़ा, बलवान मनुष्य जिसका अनेकदिश धारह भंगूक,
लंबा रो (दादशाङ्गुलमेदः) । सनिः = दान, पूजा, सेवा । शतपथब्रा
१५।५।५।१९, नृ उ शस्त्रे में ' पृथ्वी, आप, तेज वायु, आदित्य, दिवा
चन्द्रमा, विपुल, मेघ, अश्वत्थ, पर्ब, सय, मनुष्य, आत्मा (जीव) इनमें जो

तेजस्विता है वही अमृत पुरुष है, और वही राय गुप्त है ऐसा कहा है। एक ही शास्त्रमें ज्ञान 'मधुविद्या' नामसे प्रतिष्ठित है। दधीची ऋषिने यह विद्या अश्विदेवोंको पढ़ायी, इस विद्याके जाननेसे वैदिक तत्त्वज्ञान निमित्त हो सकता है। इस विद्याका साक्षात्कार दधीची ऋषिने स्वयं किया और उस ऋषिने अश्विदेवोंको यह विद्या सिखाई। 'इदं चैतन्मधु दध्यन्नाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेत एषिः पश्यन्मयोचत्।' यह मधु विद्या दधीची ऋषिने अश्विदेवोंसे कही। ऋषिने स्वयं इसका साक्षात्कार किया और पश्चात् उपदेश किया। यह शतपथका वचन संपूर्ण पाठक वही पर अथवा वृ० उ० में देखें। इसी मन्त्रपर शतपथकी यह राय व्याख्या है। कथा— 'इन्ने दधीची ऋषिके मधु विद्या कही। और कहा कि यदि तुम किसी दूगरेसे कहोगे तो तुम्हारा सिर कट गूंगा। अश्विदेवोंने दधीचीसे यह विद्या सीखनेकी इच्छा की। दधीचीने इन्द्रका वचन कहा। तब अश्विदेवोंने घोड़े का सिर फाड़कर दधीचीके धड़पर लगा दिया और उसका सिर किसी जगह छिपाकर रखा। उससे विद्या प्राप्त की। तब इन्ने ऋषिका सिर काट दिया। पश्चात् अश्विदेवोंने उसका असली सिर उस ऋषिके धड़पर जमा दिया। 'इस मन्त्रमें घोड़ेके सिरसे विद्या कही ऐसा जो कहा है और भयावक कर्मका वर्णन है, वह यही है। यह कथा आलंकारिक दीखती है।

[८९]

८९ अजोहवीनासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः ।

श्रुतं तच्छासुरिव वधिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनायदत्तम् ॥१३॥

८९ अजोहवीत् । नासत्या । करा । वाम् ।

महे । यामन् । पुरुभुजा । पुरमंधिः ।

श्रुतम् । तत् । शासुःश्व । वधिमत्याः ।

हिरण्यहस्तम् । अश्विनौ । अदत्तम् ॥१३॥

८९ अन्वयः— पुरुभुजा । करा । नासत्या अश्विनौ ! महे यामन् वां पुरमंधिः अजोहवीत्, तत् शासुः श्व श्रुतं, हिरण्यहस्तं वधिमत्यै अदत्तम् ॥१३॥

८९ अर्थ— हे (पुरु भुजा !) बहुतेको भोजन देनेवाला (करा) कार्य शील और (नासत्या अश्विनौ !) सबसे कमी न विछुड़नेवाले अश्विदेवों ! (महे यामन्) कड़ी आरी यात्रा करते समय (वां) तुम दोनोंको (पुरमंधिः अजोहवीत्) बहुत डाँड़वाली नारीने सुनाया या; (तत् शासुः श्व श्रुतं) उस पुकारकी मानों शासकके कथनकी तरह तत्परतासे तुमने सुन लिया और

पश्चात् (हिरण्यहस्तं) हिरण्यहस्त नामक पुत्र उस (यन्त्रिमयी भक्तं) यन्त्रिमयी नामक नारीको तुम दोनोंने दिया।

८९ भावार्थ— अग्निदेव अपने भिषग्वर्धनमें प्रवीण होनेकीका पालन पोषण करनेवाले और सत्यके पालक हैं। ये बड़ी यात्रामें गये थे, उन समय एक बुद्धिमती स्त्रीने इनकी प्रार्थना की, यह प्रार्थना इन्होंने राजाकी आज्ञा जैसी मानी और उस वन्ध्या स्त्रीको उत्तम पुत्र होने योग्य गर्भ धारण समर्थ बनाया और उससे उसको उत्तम पुत्र हुआ।

८९ मानवधर्म— आयुर्वेदमें मनुष्य इतनी उन्नति करें कि जिससे नपुंसक पुरुष पुरुषत्व युक्त हो और वन्ध्या स्त्री गर्भ धारण करनेमें समर्थ हो।

८९ टिप्पणी— यामन् = यात्रा, प्रवास, गमन, उड़ान, प्रार्थना, समर्पण। पुरन्धि = वह बुद्धि युक्त, नगर रक्षणके कार्यमें समर्थ। यन्त्रिमयी = यन्त्रि = नपुंसक, यन्त्रिमयी = नपुंसक पतिवती स्त्री। अग्निदेवोंने औषध प्रयोगसे नपुंसक को यात्राकरण द्वारा पुरुषत्व युक्त किया और स्त्री को गर्भ धारणमें समर्थ बनाया। इस तरह उनकी पुत्र भिन्ना।

[९०]

९० आसन्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्याममुक्तम् ।

उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४॥

९० आसन्नः । वृकस्य । वर्तिकाम् । अभीके ।

युवम् । नरा । नासत्या । अमुमुक्तम् ।

उतो इति । कविम् । पुरुभुजा । युवम् ।

॥ । कृपमाणम् । अकृणुतम् । विचक्षे ॥१४॥

९० अन्वयः— नासत्या नरा । युवं अभीके वृकस्य आसन्नः वर्तिकी ममुमुक्तं, पुरु-भुजा । उत युवं ह कृपमाणं कविं विचक्षे अकृणुतं ॥ १४ ॥

९० अर्थ— हे (नासत्या नरा) साधके पालक नेता अग्निदेवो ! (युवं-) तुम दोनों (अभीके) योग्य समयपर (वृकस्य आसन्नः) भेदियेके मुँहसे (वर्तिकी ममुमुक्तं) विदिया को सुझा चुके, हे (पुरु भुजा) बहुतीक्ष्ण भोजन देनेवाको ! (उत) और (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चय पूर्वक (कृपमाणं कविं) कृपा पूर्वक प्रार्थना करते हुए कविको (विचक्षे अकृणुतं) देखनेके किए रहि मुक्त बनावाया।

९० भावार्थ- नेता भक्षिदेवोंने भेड़ियेके मुत्तसे धिड़ियाको निकालकर पचाया और बहुतोंको भोजन देनेवाले ठग देवोंने प्रार्थना करनेवाले एक भग्ने कपिको दत्तम देखनेके लिये दृष्टि दी ।

९० मानवधर्म- पशु पक्षियोंका उत्तम संरक्षण करना चाहिये तथा आयु-वेदमें इतनी उन्नति सिद्ध करनी चाहिये कि औषधि प्रयोगसे अथवा शस्त्र कर्मसे भग्नेको भी देखने योग्य दृष्टि दी जा सके ।

९० टिप्पणी- चर्तिका = चिड़िया, देखो ५९, ९०, ११७, १३४, ५९५ ।
रूपमाणः=रूपाको इच्छा करनेवाला ।

[९१]

९१ चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पूर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम् ।

सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ।

९१ चरित्रम् । हि । वेऽईव । अच्छेदि । पूर्णम् ।

आजा । खेलस्य । परिऽतक्म्यायाम् ।

सद्यः । जङ्घाम् । आयसीम् । विश्पलायै ।

धने । हिते । सर्तवे । । प्रति । अद्यत्तम् ॥ १५ ॥

९१ अन्वयः- वेः पूर्ण इव आजा खेलस्य चरित्रं अच्छेदि हि; परि-तक्म्यायां विश्पलायै हिते धने सर्तवे आयसीं जङ्घां सद्यः प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥

९१ अर्थ- (वेः पूर्ण इव) पंखीका पर जैसे गिर जाता है उसी प्रकार (आजा) युद्धमें (खेलस्य चरित्रं) खेल नरेशकी संबंधिनी स्त्रीका वैर (अच्छेदि हि) दूट चुका था; तब (परितक्म्यायां) शत्रुके समयमें ही उस (विश्पलायै) विश्पलाके लिए (हिते धने सर्तवे) युद्ध शुरू होनेके बाद चढ़ाई करनेके लिए (आयसीं जङ्घां) लोहेकी टाँग (सद्यः) तुरन्तही (प्रत्यधत्तं) तुम दोनोंने बिठका थी ।

९१ भावार्थ- जिस तरह पंखीका पर गिर जाता है उस तरह खेल राजा की संबंधिनी विश्पला नामक स्त्रीका पैर युद्धमें कट गया और गिर गया था आप दोनोंने उसकी लोहे की जाँघ बिठलाई और युद्ध शुरू होनेपर आपसपर हमला करनेके लिए उसे चलने फिरने योग्य बना दिया ।

९१ मानवधर्म- आयुर्वेदमें वैद्योंको इतनी उन्नति करनी चाहिये कि किसीका पाँव फट जानेपर, उस स्थानपर लोहेका पाँव लगाकर, उस मनुष्यको चलने फिरने योग्य बना देना संभव हो जाय ।

९१ टिप्पणी- खेल=एक राजाका नाम । आज कल 'खेल' नाम सीमा प्रांतके पठानोंके देशोंमें प्रचलित हैं उ० 'झाकाखेल, ईसाखेल' इ० । परित-
कम्पा=अंधेरा, रात्री, भयानक स्थिति, असुरक्षितता, गलती । धन=संपत्ति,
सुख । सतुं=गमन, हमला । देखो 'विश्वपला' ६१, ९१, ११२, १३४, १९४,
५९० । विश्वपला युद्धमें गयी थी । वहां उसका पांव फट गया । उसको लोहेकी
ढाँग लगा कर चलने फिरने योग्य बना दिया ।

[९२]

९२ शतं मेपान् वृक्षे चक्षुदानमुज्जाश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नास्त्या विचक्ष आर्धतं दस्त्रा भिपजावनु-
र्वन् ॥१६॥

९२ शतम् । मेपान् । वृक्षे । चक्षुदानम् ।
मुज्जऽअश्वम् । तम् । पिता । अन्धम् । चकार ।
तस्मै । अक्षी इति । नास्त्या । विऽचक्षे ।
आ । अधत्तम् । दस्त्रा । भिपजौ । अनर्वन् ॥१६॥

९२ अन्वयः- शतं मेपान् चक्षुदानं तं मुज्जाश्वं पिता अन्धं चकार ।
भिपजौ । दस्त्रा । नास्त्या । तस्मै अनर्वन् अक्षी विचक्षे आर्धतं ॥१६॥

९२ अर्थ- (शतमे) वृक्षीको (शतं मेपान्) सौ भेटोंको (चक्षुदानं तं
मुज्जाश्वं) खानेके लिये देनेके अपराधके कारण उस मुज्जाश्वको (पिता अन्धं
चकार) उसके पिताने दृष्टिहीन बनाहाला, हे (भिपजौ) वैद्यो ! हे (दस्त्रा
नास्त्या) शत्रु नाशक पुत्र सत्यको न छोड़नेवाले आदिदेवों ! (तस्मै) उस
अंधेको (अनर्वन् अक्षी) प्रतिबंध रहित आँखें (विचक्षे आर्धतं) विशेषरूप
से देखनेके लिए गुप्त दोनों दे चुके ।

९२ भावार्थ- मुज्जाश्वने अपने पिताकी सौ भेटोंको भेटियेके खानेके
लिये सौंप दिया, इस अपराधके कारण उसके पिताने उसे अन्धा बनाया ।
वैद्य अभिदेवोंने उसे कभी न बिगड़नेवाली आँखें लगा दीं और दृष्टिवात्
कर दिया ।

९२ मानवधर्म- अन्धेके पुनः दृष्टि देनेतक भिपज्वियाकी उपाति मनुष्यों
को करनी चाहिये ।

९१ टिप्पणी- अनर्वन्=अर्धन्=गतिशुद्ध, परिवर्तनशील, अनर्वन्=अप-
रिवर्तनशील, न बिगड़नेवाला ।

[९३]

९३ आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्मवातिपुद्वता जयन्ती ।

विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समुं श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७

९३ आ । वाम् । रथम् । दुहिता । सूर्यस्य ।

कार्मऽइव । अतिष्ठत् । अर्वता । जयन्ती ।

विश्वे । देवाः । अन्तु । अमन्यन्तु । हृत्तुभिः ।

सम् । ऊँइति । श्रिया । नासत्या । सचेथे इति ॥१७॥

९३ अन्वयः— नासत्या । वां रथं सूर्यस्य दुहिता, अर्वता कार्म जयन्ती इव आ अतिष्ठत्; विश्वे देवाः हृद्भिः अन्वमन्यन्त, श्रिया सं सचेथे च ॥१७॥

९३ अर्थ— हे नासत्या) सत्यके पाछक अग्निदेवो । (वां रथं) तुम दोनों के रथपर, (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या, (अर्वता कार्म जयन्ती इव) घोड़ेकी दौड़से पटुंचनेके लड़ाकीके स्थानको जीतती हुई सी, (आ अतिष्ठत्) खड़ी रही, (विश्वे देवाः) सभी देव (हृद्भिः अन्वमन्यन्त) अन्तःकरण से उसे अनुमोदित करनेके, पश्चात् (श्रिया सं सचेथे च) तुम दोनों शोभा से युक्त बन गये ।

९३ भाषार्थ— सूर्यकी पुत्री, पुत्र दौड़से अग्निग मर्यादाको पटुंचनेके समान, अग्निदेवोंके रथतक पटुंची और रथपर चढ़ बैठ गई । सब देवोंने इसका अनुमोदन किया । तब सूर्यकी पुत्रीसे अग्निदेव पड़े शोभायुक्त पीछने लगे ।

९३ मानवधर्म— पुत्र दौड़ आदि योरोके स्पर्धाके खेलोंमें जो जीतेगा, उसका सब अन्य योरोने अभिर्नन्दन करना योग्य है । (इसेसे आपस के द्वेष बढ़ने देना योग्य नहीं है ।)

९३ टिप्पणी— कार्म=प्राप्तव्य स्थानपर जो गाड़ी जाती है वह लकड़ी । “ प्रजापतिर्वै सोमाय राशे दुहितरं प्रायच्छत् । ” (ऐ. ना. ४।७) प्रजापति सूर्यने राजा सोमको अपनी पुत्री देनेका संकल्प किया । सब देवोंने कहा कि जो पुत्र दौड़में पहिला होगा, उसे पुत्रीका प्रदान करना । अग्निदेव पहिले आये अतः उनके रथ पर सूर्यकी कन्या चढ़कर बैठ गयी । सब देवोंने इनका अभिर्नन्दन किया और अग्निदेव उस कन्याको प्राप्त करनेसे शोभायमान हुए । इस पथा का सूचक यह मन्त्र है । यह आलंकारिक कथा है । सूर्यकी पुत्री उपाका यद रूपक

है। आधि तारकाएं पहिले लगती हैं, पश्चात् उषा आती है। आधि उषावा इस तरह सम्बन्ध होता है।

[९४]

९४ यदयातुं दिवीदासाय वृत्तिर्भरद्वाजायाश्चिना हयन्ता ।

रेवदुवाह सचनो रथो वा वृषभश्च शिशुमारश्च युक्ता ॥१८॥

९४ यत् । अयातम् । दिवःऽदासाय । वृत्तिः ।

भरत्ऽयाजाय । अश्चिना । हयन्ता ।

रेवत् । उवाह । सचनः । रथः । वाम् ।

वृषभः । च । शिशुमारः । च । युक्ता ॥१८॥

९४ अन्वयः— हयन्ता अश्चिना । भरद्वाजाय दिवोदासाय यत् वृत्तिः अयाते; सचनः रेवत् रथः वा उवाह, वृषभः च शिशुमारः च युक्ता ॥१८॥

९४ अर्थ— हे (हयन्ता) तुलाने योग्य अग्निदेवो । (भरद्वाजाय दिवोदासाय) भरद्वाज दिवोदासके (यत्) जब (वृत्तिः अयातं) घरपर दोनों चले गये, तब (सचनः) सेवनीय (रेवत् रथः) धनसे भरा हुआ रथ (वा उवाह) तब दोनोंको छोले लगा था और (वृषभः च शिशुमारः च) बैल तथा मगर दोनों उस रथमें (युक्ता) जोते थे ।

९४ भावार्थ— हे अग्निदेवो, भरद्वाज दिवोदासके घरपर तुम दोनों गये थे, तब तुम्हारे रथमें बहुत ही धन भर कर रखा था और उस समय तुम्हारे रथको एक बैल और एक मगर जोता था। वह तुम्हारा ही विकक्षण सामर्थ्य है ।

९४ मानवधर्म— जब बड़ा नेता किसीके घर जाय, तब उसको देनेके लिये बहुतसा धन वह अपने साथ रखे और वहां पहुँचने पर वह उसको देदे ।

९४ टिप्पणी— शिशुमार=मगर । भरद्वाज=भरत्-वाजा=अज पर्याप्त प्रमाणमें देनेवाला, अक्षय दाता । रथको बैल और मगर जोतना यह बड़ेही सामर्थ्यसे सिद्ध होनेवाला बात है ।

[९५]

९५ रुयि सुधुम्रं स्वपुत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता ।

आ जह्याचीं समनसोप चाज्ञेस्त्रिहो भागं दध्वीमयातम् ॥१९॥

९५ रयिम् । सुऽक्षत्रम् । सुऽअपत्यम् । आयुः ।
 सुऽवीर्यम् । नासत्या । वहन्ता ।
 आ । जह्वावीम् । समनसा । उप । वाजैः ।
 त्रिः । अहः । भागम् । दधतीम् । अयातम् ॥१९॥

९५ अन्वयः— नासत्या । सुक्षत्रं स्वपत्यं रयिं सुवीर्यं आयुः वहन्ता, वाजैः
 अहः त्रिः भागं भावधतीं जह्वावीं समनसा उप अयातम् ॥ १९ ॥

९५ अर्थ— हे (नासत्या) सत्यके पालक अधिवेशो ! (सुक्षत्र) अच्छी
 क्षत्रियोचित धीरता (स्वपत्यं रयिं) अच्छी सम्पत्ति पुष्ट धनसंपदा और
 (सुवीर्यं आयुः) अच्छी धीरतासे पूर्ण जीवनको (वहन्ता तुम दोनों अपने
 साथ लेकर (वाजैः) अश्वोंसे (अहः त्रिः भागं भावधतीं) दिनके तीनों
 विभागोंमें यजन करनेवाली (जह्वावीं) जन्हुकी प्रजाके समीप (समनसा)
 तुम दोनों एक विचारसे (उप अयातं) चले गये थे ।

९५ भावार्थ— जन्हुकी प्रजा दिनमें तीन बार अश्वोंका प्रदान करती है, तीनों
 सवनोंमें दिससे यजन करती है, इसलिए तुम दोनों उस प्रजाको उत्तम क्षात्र
 बल, उत्तम संतति, उत्तम ऐश्वर्य, और उत्तम पराक्रमसाथ दीर्घ जीवन उनके
 पास जाकर एक मतसे लेते हैं ।

९५ मानवधर्म— नेता लोग ऐसा प्रयत्न करें कि जिससे उनके अनुयायियों
 को उत्तम धीरता, उत्तम संतान, यष्ट ऐश्वर्य और अनुपम शौर्यके कर्म करनेमें समर्थ
 दीर्घ जीवन प्राप्त होकर वे विश्व विजयी हों ।

९९ टिप्पणी— जह्वावी= जन्हुके कुलमें उत्पन्न प्रजा ।

[९६]

९६ परिर्विष्टं जादृषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहयू रजोभिः ।
 विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वता अजरयू अयातम् ॥२०॥
 ९६ परिर्विष्टम् । जादृषम् । विश्वतः । सीम् ।
 सुऽगेभिः । नक्तम् । ऊहयूः । रजऽभिः ।
 विऽभिन्दुना । नासत्या । रथेन ।
 वि । पर्वतान् । अजरयू इति । अयातम् ॥२०॥

९६ अन्वयः- अजरयू नासत्या । विश्वतः परिविष्टं जाहुपं सुगेभिः रजोभिः
मकं ऊरधु , विभिन्दुमा रथेन पर्वतान् वि अयातम् ॥ २० ॥

९६ अर्थ- हे (अजरयू नासत्या) जराहीन तथा सत्यके पालक अधिदेवो !
(विश्वतः परिविष्टं) सभी ओरसे शत्रुद्वारा घेरे हुए (जाहुपं) जाहुप नरेश
को (सुगेभिः रजोभिः) सुयम रीतिसे गमन करने योग्य मार्गोंसे (मकं
ऊरधुः) रात्रीके अवसरपर तुम दोनों दूरके स्थानपर ले चले; और अपने
(विभिन्दुमा रथेन) विशेष रीतिसे शत्रुका भेदन करनेवाले रथपर चढकर
(पर्वतान् वि अयातं) पर्वतों को भी पार कर तुम दोनों दूर चले गये ।

९६ भावार्थ- अधिदेव सत्यके पालक और तदन्येकिसमान कार्य करनेवाले
हैं । जाहुप राजा शत्रु सेनासे घेरा गया था उस समय अधिदेवोंने रात्रीके
समय उस राजाको उस घेरेमेंसे चुपचाप उठाया और गुप्त पथसे सुगम
मार्गसे उसको दूरके स्थान पर पहुँचाया । स्वयं अपने शत्रुके घेरेको तोड़
देनेवाले रथपर चढ कर, शत्रुका घेरा तोड़कर, वेगसे पर्वतोंके भी पार
चले गये ।

९६ मानवधर्म- शत्रुके द्वारा घेरे जानेके पश्चात् युक्ति विशेष करके, शत्रुका
घेरा तोड़ कर, अथवा रात्रीके समय पूर्णरीतिसे गुप्ततापूर्वक चुपचाप, शत्रुके घेरेसे
बाहुर निकल पडना योग्य है ।

९६ टिप्पणी- परिविष्टं=शत्रुसे चारों ओरसे घेरा हुआ । रजस्=अन्तरिक्ष
मार्ग, भूमिवा विवर मार्ग । विभिन्दु=विशेष रीतिसे भेदन करनेवाला ।

[९७]

९७ एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।

निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१॥

९७ एकस्याः । वस्तोः । आवतम् । रणाय ।

वशम् । अश्विना । सनये । सहस्रा ।

निः । अहतम् । दुच्छुनाः । इन्द्रवन्ता ।

पृथुश्रवसः । वृषणौ । अरातीः ॥२१॥

९७ अन्वयः- वृषणौ अश्विना ! सहस्रा सनये वशं रणाय एकस्या वस्तोः
भावतं, पृथुश्रवसः दुच्छुनाः अरातीः इन्द्रवन्ता निः अहतम् ॥ २१ ॥

१७ अर्थ- हे (वृषणी भविना) बलवान् भविदेवो ! (सहस्रा समये) सहस्रों प्रकारके धनका लाभ करनेके लिए (यशं रणाय) यश नरेशको युद्ध के लिए (एकस्या वस्तोः आवृतं) एक ही दिनमें तुम दोनोंने सुरक्षित बनाया और (वृषु धनसः) वृषुधनवाके (दुष्पुत्राः भरायीः) दुःश देनेवाले शत्रुओंको (इन्द्रवन्ता) तुम दोनोंने इन्द्रकी सहायता पाकर (निः भद्रं) पूर्णरूपसे निनष्ट किया ।

१७ भावार्थ- बलवान् भविदेवोंने यश नामक नरेश को सहस्रों प्रकारके धन प्राप्त हो इसलिये एक ही दिनमें युद्धके लिए योग्य बनाया और युद्धमें सुरक्षित भी किया, तथा वृषुधनवा नरेशके दुष्ट शत्रुओंको भी इन्द्रकी सहायता पाकर पूर्ण रूपसे नष्ट किया ।

१७ मानवधर्म- नरेशोंको शत्रुके साथ युद्ध करनेकी उत्तम तैयारी करनी चाहिये और आवश्यकता होनेपर मित्र राजाओंसे सहायता भी प्राप्त करनी चाहिये । शत्रुका नाश करना ही सदा मुख्य ध्येय रहना चाहिये ।

१७ टिप्पणी- वस्तोः=दिन । दुष्पुत्राः=दुःशरायी ।

[१८]

१८ शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रधुः पार्तवे वाः । शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥२२॥

१८ शरस्य । चित् । आर्चत्कस्य । अवतात् । आ । नीचात् । उच्चा । चक्रधुः । पार्तवे । वारिति वाः । शयवे । चित् । नासत्या । शचीभिः । जसुरये । स्तर्यम् । पिप्यथुः । गाम् ॥२२॥

१८ अन्वयः- नासत्या ! आर्चत्कस्य शरस्य पार्तवे नीचात् अवतात् चित् वाः उच्चा आचक्रधुः, जसुरये शयवे स्तर्यं गां चित् शचीभिः पिप्यथुः ॥२२॥

१८ अर्थ- हे (नासत्या) सत्य युक्त भविदेवो ! (आर्चत्कस्य शरस्य) भद्राचक्रके पुत्र शर नामवाके उपासकके (पार्तवे) शीनेके लिए (नीचात् अवतात् चित्) गहरें गढे या कूपमेंसे (वाः) सबको तुम दोनों (उच्चा आचक्रधुः) उपर ला चुके और (जसुरये शयवे) यके आँदे शत्रु ऋषिके लिए (स्तर्यं गां चित्) जम्घ्या शायको भी (शचीभिः पिप्यथुः) अपनी शक्तियोंसे तुम दोनों दुष्पुरु बनाचुके ।

९८ भावार्थ-सत्यके पालक अग्निदेव ऋचाकके प्यासे पुत्र शरके पीनेके लिये गहरे कुवेसे पानी ऊपर लाये और उसे पीनेके लिये दिया। पथा शशु कृपि अत्यन्त क्षीण हो गया था, उसको दूध पीनेके लिये मिला जाय इसलिये प्रसूत न होनेवाली गौको प्रसूत होने योग्य बनाया और दुधा-रूमी बना दिया।

९८मानवधर्म- गहरे कुवेसे पानी ऊपर निकालनेके लिये विशेष आयोजना करनी चाहिये। क्षीण पुरुषोंको परिपुष्ट करनेके लिये गौक्ष यथेष्ट दूध पीनेके लिये देना चाहिये और गौओंको दुधारु बनाना चाहिये। गौके वंशका सुधार करना चाहिये। तथा जो गौ गर्भ धारण नहीं करती उसको गर्भधारणक्षम बनाना चाहिये।

९८ टिप्पणी- पार=जल। जसुरि=क्षीण, दुर्बल। स्तर्य=वन्ध्या, गर्भ धारण न करनेवाली। शची=शक्ति, कुक्षि।

[१९]

९९ अवस्यते स्तुवते कृष्णिवाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः।

पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्व ददधुर्विश्वकाय ॥२३॥

९९ अवस्यते। स्तुवते। कृष्णिवाय।

ऋजूयते। नासत्या। शचीभिः।

पशुम्। न। नष्टमिव। दर्शनाय।

विष्णाप्वम्। ददधुः। विश्वकाय ॥२३॥

९९ अन्वयः- नासत्या ! स्तुवते अवस्यते कृष्णिवाय ऋजूयते विश्वकाय शचीभिः विष्णाप्वं, नष्टं पशुं इव, दर्शनाय ददधुः ॥ २३ ॥

९९ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यके पालक अग्निदेवो ! (स्तुवते अवस्यते) स्तुति करनेवाले और अपनी रक्षाकी चाह करनेवाले (कृष्णिवाय ऋजूयते विश्वकाय) कृष्णके पुत्र, सरल मार्गपरसे चलनेवाले विश्वकको (शचीभिः) अपनी शक्तिपौसे उसके विनष्ट दृष्ट (विष्णाप्वं) विष्णाप्व नामक पुत्रको (नष्टं पशुं इव) मानों खोये हुए पशुकी भाँति (दर्शनाय ददधुः) दर्शनके लिए तुम दोनों दे चुके।

९९ भावार्थ- हे सत्य पालक अग्निदेवो ! सरल मार्गसे जानेवाले कृष्ण-पुत्र विश्वकका विष्णाप्व नामवाला पुत्र ~~~~ हो गया था, उस पुत्रको ब्रह्मका पुत्रने अपनी ~~~~ किया।

१९ मानवधर्म- राष्ट्रों या नगरोंमें रक्षाना प्रबंध ऐसा उत्तम करना चाहिये कि, किसीरा पुत्र या कोई संबंधी सो जाय, जो वहाके विभागके प्रबंध कर्ता को खबर देनेसे वे उसकी खोज करके प्राप्त करें और उसको सुरक्षित घर पहुंचा दें। लापता हुआ पशुभी इस तरह प्राप्त होवे।

१९ टिप्पणी- अज्जूयत्=भरल मार्गसे जग्गेवाला, यज्ञ कर्ता।

[१००]

१०० दश रात्रीरशिवेना नव घूनयनद्वं श्रथितमुप्स्व॑न्तः ।

विमु॑तं रे॒भमु॑दानि प्रवृ॑क्तमु॒न्निन्य॑धुः सोम॑मिव सु॒वेण ॥२४॥

१०० दश । रात्रीः । अशिवेन । नव । घून् ।

अव॑नद्वम् । श्रथि॑तम् । अ॒प्सु । अ॒न्तरि॑ति ।

वि॒मु॒तम् । रे॒भम् । उ॒दनि॑ । प्र॒वृ॒क्तम् ।

उत् । नि॒न्य॑धुः । सोम॑म् इव । सु॒वेण ॥२४॥

१०० शाब्दिकः- अप्सु अन्तः दश रात्रीः नव घून् अशिवेन अवनद्वं, श्रथितं, उदनि विमुतं प्रवृक्तं रेभं, सुवेण सोमं इव इत् निन्यधुः ॥२४॥

१०० अर्थ- (अप्सु अन्तः) जहाँके भीतर (दश रात्रीः) दस रातों और (नव घून्) नौ दिवसक (अशिवेन अवनद्वं) भ्रमंगलकारी शत्रुने जकड़े हुए अतएव घटे (श्रथितं) पीड़ित, हुए (उदनि विमुतं) जलसे भीगे हुए, तथा (प्रवृक्तं रेभं) व्यवधाले भरे हुए अथि रेभको, (सुवेण सोमं इव) जैसे सुवासले सोमरसको ऊपर ढाँढेले हैं, उसी प्रकार तुम दोनों (इव निन्यधुः) ऊपर लिवा लाये।

१०० भावार्थ- रेभ नामक ऋषिकी दुष्ट असुरोंने पाशराज्जले बांधकर जलमें फेंक दिया था। दश रात्री और नौ दिन व्यतीत होनेपर अधिदेवोंको इसका पता लगा, तब उन्होंने तत्कालही उस भीगे, चरब हुए और पीड़ित बने ऋषिकी ऊपर निकास दिया। (और आरोग्य संपन्न बना दिया।)

१०० मानवधर्म- जलमें डूबनेवालोंको बाहर निकालनेकी विशांमे लोग प्रवीण बनें। तैरनेमें और तिरानेमें प्रवीण बन जायें।

१०० टिप्पणी- श्रथित=पीड़ित, चरब । प्रवृक्त=संतप्त, दुःखी ।

अभिनी १९

[१०१]

१०१ प्र वां दंसांस्यश्विनावोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः ।
उत पश्यन्नुवन् दीर्घमायुरस्तमिवेजरिमाणं जगम्याम् ॥२५॥

१०१ प्र । वाम् । दंसांसि । अश्विनौ । अवोचम् ।
अस्य । पतिः । स्याम् । सुगवः । सुवीरः ।
उत । पश्यन् । अश्वुवन् । दीर्घम् । आयुः ।
अस्तम् इव । इत् । जरिमाणम् । जगम्याम् ॥२५॥

१०१ अश्विनौ । वां दंसांसि प्र अवोचं, सुगवः सुवीरः अस्य पतिः स्यां,
उत दीर्घ आयुः अश्वुवन् पश्यन्, अस्तं इव इत् जरिमाणं जगम्याम् ।

१०१ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (वां दंसांसि) तुम दोनोंके कावोंके बारेमें
इस प्रकार मैं (प्र अवोचं) उत्कृष्ट दंडले वर्णन कर चुका हूँ इससे (सुगवः
सुवीरः) अच्छी भावों एवं सुन्दर वीर पुत्रोंसे युक्त होकर मैं (अस्य पतिः
स्यां) इस राष्ट्रका अधिपति बनूँ (उत) और (दीर्घ आयुः अश्वुवन्) दीर्घ
जीवनका उदभोग लेता हुआ (पश्यन्) वर्धमान आदि सभी वात्सियोंसे युक्त
पातक (अस्तं इव इत्) मार्गों निःशयपूर्वक अपनेही घरमें मैं प्रवेश करने
के समान मैं (जरिमाणं जगम्यां) तुम्हारे को प्राप्त हो जाऊँ ।

१०१ भागार्थ- हे अश्विदेवो ! आपके किये कर्मोंका मैंने इस तरह वर्णन
किया है । इससे मैं उत्तम भावों और शूर पुत्रोंसे युक्त तथा इस राष्ट्रका
अधिपति भी बनना चाहता हूँ तथा दीर्घायु होकर, जिस तरह अपने निज
घरमें प्रवेश करते हैं, उस तरह मैं तुम्हारेमें प्रवेश करना चाहता हूँ अर्थात्
अतिदीर्घ आयुतक जीवित रहना चाहता हूँ ।

१०१ गानयधर्म- शूर वीर और कर्म कुशल पुरुषोंके श्रेष्ठ कर्मोंका इतिहास
सुनने हुए, मैं आदि घनो और शूर पुत्रोंको प्राप्त करके, राष्ट्रका शासक बनकर,
दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहिये ।

[१०२] (क्र० १।११७।१-२५)

१०२ मध्वः सोमस्याश्विना सदायं ब्रह्मो होता विवासते वाम् ।
वहिष्मती रातिविथिता गीरिषा यत्नं नासत्योप बाजैः ॥१॥

१०२ मध्वः । सोमस्य । अश्विना । मदाय ।
 प्रत्नः । होता । आ । विवासते । चाम् ।
 बृहिष्मती । रातिः । विऽश्रिता । गीः ।
 इषा । यातम् । नासत्या । उप । वाजैः ॥१॥

१०२ अन्वयः- प्रत्नः होता, मध्वः सोमस्य मदाय नामत्या अश्विना ।
 वो आ विवासते; गीः विश्रिता, रातिः बृहिष्मती, वाजैः इषा उपयातम् ॥१॥

१०२ अर्थ- (प्रत्नः होता) पुराने समयसे दान देनेवाला यह (मैं)
 पुरत (मध्वः सोमस्य मदाय) मीठे सोमरसके पीनेसे उत्पन्न हर्षका उपभोग
 तुम्हें देनेके लिए, हे (नासत्या अश्विना) सत्य के पाकक अभिदेवो ! (वो
 आविवासते) तुम दोनोंकी पूर्ण सेवा करना चाहता है, (गीः विश्रिता)
 मेरी स्तुतिवां तुम्हारे पास पहुँची हैं और (रातिः बृहिष्मती) तुम्हें देनेका
 दान यहाँ कुशासनपर रख दिया है, अतएव (वाजैः इषा उपयातम्) अपने
 बलों तथा भक्तोंके साथ तुम दोनों हमारे समीप आओ ।

१०२ भावार्थ- हे सत्यके पाकक अभिदेवो ! मैं पुरातन समयसे तुम्हारी
 सेवा करनेवाला तुम्हारा भक्त यहां सोमरस तुम्हें देनेके लिए तैयार करके ले
 आया हूँ । मैंने जो स्तुति की वह तुमने सुनी है । इस आसनपर तुम्हें देनेके
 लिये यह सोमपात्र भरकर रखा है । अतः तुम दोनों अपने बलों और भक्तों
 के साथ मेरे स्थानपर आओ और मेरी सहायता करो ।

१०२ मानवधर्म- अनुयायी नेताकी सेवा करें और नेता अनुयायियोंके बल
 अथवा धन बढ़ा दें । इस तरह नेता और अनुयायी परस्परकी सहायता
 करते रहें ।

१०२ टिप्पणी- प्रत्नः=पुरातन । विवास=सेवा करना ।

[८३]

१०३ यो वामश्विना मनसो जवीयान् रथः स्वथो विश आजि-
 गति । येन गच्छथः सुकृतां दुरोणं तेन नरा वृत्तिरस्मभ्यं
 यातम् ॥२॥

१०३ यः । वाम् । अश्विना । मनसः । जवीयान् ।
 रथः । सुऽअश्वः । विश्वः । आऽजिगाति ।
 येन । गच्छथः । सुऽकृतः । दुरोणम् ।
 तेन । नरा । धर्तिः । अस्मभ्यम् । यातम् ॥२॥

१०३ अन्वयः— नरा अश्विना ! यां यः रथः स्वश्वः मनसः जवीयान् विश्वः
 आजिगति, येन सुकृतः दुरोणं गच्छथः तेन अस्मभ्यं धर्तिः यातं ॥ २ ॥

१०३ अर्थ— हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (यां) तुम दोनोंका
 (यः रथः स्वश्वः, मनसः जवीयान्) जो रथ अपने घोड़ोंसे युक्त, तथा मन
 से भी वेगवान् है, और जो (विश्वः आ जिगति) प्रजा जनोके पास तुम्हें
 ले जाता है, (येन) जिस रथ पर चढ़कर (सुकृतः दुरोणं गच्छथः) शुभ
 कार्यकर्मके घर तुम दोनों चले जाते हो, (तेन) उस रथपर बैठकर (अस्मभ्यं
 धर्तिः यातम्) हमारे घर आजाओ ।

१०३ भाषार्थ— अश्विदेवोंका रथ ममसे भी वेगवान् है उसे उत्तम
 मिलित घोड़े जोते रहते हैं, वह रथ उन्हें प्रजाजनोके पास ले जाता है और
 उसमें बैठकर ही वे सत्कर्म कर्मोके घर जाते रहते हैं, उस रथपर चढ़कर वे
 हमारे घर आ जायें ।

१०३ मानवधर्म— नेता लोग अपने पास उत्तम यान रखें और उनमें बैठकर
 अनुयायियोंके घर धीमे जायें ।

१०३ टिप्पणी— सुकृत=सकर्म कर्ता । दुरोणं=घर । धर्तिः=घर ।

[१०४]

१०४ ऋषिं नरावंहसः पार्श्वजन्यमुवीसादत्रिं मुञ्चथो गुणेन ।
 भिनन्ता दस्योरश्वस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥३॥
 १०४ ऋषिम् । नरी । अंहसः । पार्श्वजन्यम् ।
 ऋषीसात् । अत्रिम् । मुञ्चथः । गुणेन ।
 भिनन्ता । दस्योः । अश्वस्य । मायाः ।
 अनुऽपूर्वम् । वृषणा । चोदयन्ता ॥३॥

१०४ अन्वयः— वृषणा नरी । पार्श्वजन्यं ऋषिं अत्रिं अंहसः ऋषीसात् गुणेन
 मुञ्चथा, भिनन्ता, अश्वस्य दस्योः मायाः अनुपूर्वं चोदयन्ता ॥ ३ ॥

१०४ अर्थ- हे (वृषणा नरा) बलिष्ठ एवं नेता अश्विदेवो । (पाञ्चजन्यं ऋषिं अग्निं) पंचविध मानव समाजके हितकर्ता अग्नि ऋषिको (अंहसः ऋधी-साव) कष्ट दायक बैधेरे कारागृहसे उसके (मणेन मुञ्चयः) अनुयायियोंके समेत तुम दोनोंने छुड़ाया, तथा (मितन्वा) तुम दोनों शत्रुका विनाश करने वाले हो और (अशिवस्य दस्योः) अहितकारी शत्रुकी (मायाः) कुटिल चालबाजियोंको (अनुपूर्वं चोदयन्ता) एकके पीछे एक हटाते जाते हो ।

१०४ भावार्थ- अश्विदेव बलिष्ठ हैं, नेता हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं । उन्होंने पंचजन्यके हितके लिये प्रचलन करनेवाले अग्नि ऋषिको, कष्ट दायक कारागृहसे, उसके अनुयायियोंके समेत, छुड़ा दिया था और शत्रुकी सब चालबाजियोंको पहिलेसे ही जानकर उनको दूर किया था ।

१०४ मानवधर्म- नेता लोग बलवान् हों एवं शत्रुका नाश करते रहें । पंचजन्यका हित करनेवाले राष्ट्रसेवकोंको बाराबासदि कष्टोंसे छुड़ाते रहें, अर्थात् उस कष्ट के समय उनको यथोचित सहायता देते रहें । शत्रुके कपड़ोंको और चालबाजियोंको पहचानलें और इनको युक्तिसे असफल बना दें ।

१०४ टिप्पणी- पाञ्चजन्यः=पंचजन्योऽसौ हितकर्ता । अश्विदस्युः=अश्विन शत्रु । माया=तपट, चालबाजी, छल । देखो 'अग्नि' ५८; ६७; ८४; १०४, ११३; १४३; १७८; २०६ ।

[१०५]

१०५ अश्वं न गूळहर्मश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।

संसं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां ज्यन्ति पूर्या कृतानि ॥४॥

१०५ अश्वम् । न । गूळहम् । अश्विना । दुःऽएवैः ।

ऋषिम् । नरा । वृषणा । रेभम् । अप्सु ।

सम् । तम् । रिणीथः । विप्रुतम् । दंसोभिः ।

न । वाम् । ज्यन्ति । पूर्या । कृतानि ॥४॥

१०५ आन्वयः- वृषणा । नरा । अश्विना । दुरेवैः अप्सु गूळहं, तं रेभं ऋषिं विप्रुतं दंसोभिः अश्वं न सं रिणीथः, वां पूर्या कृतानि न ज्यन्ति ॥ ४ ॥

१०५ अर्थ- हे (वृषणा) बलवान् (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो । (दुरेवैः) दुष्ट कर्मकर्ताओंने (अप्सु) जलोंमें (गूळहं) फेंके हुए (सं रेभं ऋषिं) उस ऋषि रेभको, जो (विप्रुतं) विशेष निषिद्धता दुर्बल धन युद्ध था, उसको (दंसोभिः) अपने भेषजके काषोंसे अच्छीमार्ति (भक्ष्यं)

घोड़े जैसा (संरिणीया) सुदृढ शरीरवाला बना दिया था, (वां) तुम दोनों के ये (पुण्या कृतानि) पहले समयके कार्य (न जूर्वन्ति) कभी जीर्ण नहीं होते हैं । कभी भूलें नहीं जाते ।

१०५ भावार्थ- दुष्ट असुरोंने राम कापित्री बांधकर जल ग्राहमें फेंक दिया था, इस कारण वह अत्यंत दुर्बल बन गया था । उसको औषधादि उपचारोंसे आपने दृष्ट पुष्ट पल्लित बना दिया था । ये जो आपके पूर्व समयके कार्य हैं वे कभी भूलें नहीं जाते ।

१०५ मानवधर्म- शत्रुके अत्याचारके कारण जो लोग दुर्बल और रोगी बन चुके हों, उनसे उगम औषधोपचार द्वारा पुनः सुरक्षित बनो देना चाहिये ।

१०५ टिप्पणी- दुरेव=दुष्टर्म करनेवाला । विप्रुत=विधिल, दुर्बल । दंसस्=र्म, उपचार ।

[१०६]

१०६ सुपुष्पांसं न निर्जतेरुपस्थे सूर्यं न दंष्ट्रा तमसि क्षियन्तम् ।

शुभे रुक्मं न दर्शतं निस्त्रातमुदपथुरश्विना वन्दनाय ॥५॥

१०६ सुपुष्पांसम् । न । निःऽक्रतेः । उपऽस्थे ।

सूर्यम् । न । दंष्ट्रा । तमसि । क्षियन्तम् ।

शुभे । रुक्मम् । न । दर्शतम् । निऽस्त्रातम् ।

उत् । उपऽथुः । अश्विना । वन्दनाय ॥५॥

१०६ अन्वया- दंष्ट्रा अश्विना । तमसि क्षियन्तं सूर्यं न, निर्जतेः उपस्थे सुपुष्पांसं न, दर्शतं रुक्मं न निस्त्रातं शुभे वन्दनाय उत् उपथुः ॥५॥

१०६ अर्थ- हे (दंष्ट्रा अश्विना) शत्रु विनाशक अग्निदेवो ! (तमसि क्षियन्तं) अंधेरेमें लिये पड़े हुए (सूर्यं न) सूर्यके तुल्य (निर्जतेः उपस्थे) भूमिपर (सुपुष्पांसं न) सोये हुएके समान, (शुभे दर्शतं रुक्मं न) शोभाके लिये दर्शनीय सुवर्ण भूषणके समान (निस्त्रातं) जमीनके अन्दर गाड़े हुए (वन्दनाय) भग्नके हितके लिये उसे (उत् उपथुः) तुम दोनों ऊपर उठा चुके ।

१०६ भावार्थ- शत्रु विनाशक अग्निदेव कुचेमें पड़े वन्दनको उसको कायाण करनेके लिये ऊपर छाये, जिस तरह अंधेरेमें पड़े उदयके पूर्व सूर्य

को ऊपर उठाते हैं, भूमि पर सोये पुरुषको ऊपर उठाते है अथवा सुन्दर सुवर्ण के आभूषणको जिस तरह ऊपर धारण करते हैं, इस तरह वन्दनको गहरे बाहर निकाला ।

१०६ मानवधर्म- बौद्ध जन्म लूबता हो, तो उसे बाहर निकालना चाहिये, उसे बचाना चाहिये । जैसा सुंदर आभूषण शरीरपर धारण करते हैं उस तरह उसको उठाना चाहिये, जैसे सोयेको जगाते है उस तरह वेसुधरो होशपर लाना अथवा जगाना चाहिये और जैसे उगते सूर्य का तेज बढता जाता है, उस तरह इस मनुष्यका तेज बढता जाय ऐसा प्रबंध करना चाहिये ।

१०६ टिप्पणी- निस्त्रात=गटेमें गाढा हुआ । निर्रंति=भूमि, वृष्टगम स्थिति । वन्दन देखो ५८,८७ ।

[१०७]

१०७ तद् वां नरा शंस्यं पञ्जियेणं कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भां असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

१०७ तत् । वां । नरा । शंस्यम् । पञ्जियेणं ।

कक्षीवता । नासत्या । परिज्मन् ।

शफात् । अश्वस्य । वाजिनः । जनाय ।

शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम् । मधूनाम् ॥६॥

१०७ शब्दार्थ- नासत्या ! नरा ! वां तत् परिज्मन् पञ्जियेण कक्षीवता शंस्यं (यत्) वाजिनः अश्वस्य शफात् मधूनां शतं कुम्भान् जनाय - असिञ्चतम् ॥ ६ ॥

१०७ अर्थ- हे (नामाया नरा) सत्यके पाशक नेताओ ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (परिज्मन्) चारों ओर बिल्लात हुआ कार्य हे जो (पञ्जियेण कक्षीवता) पञ्च कुलमें हरवत् कक्षीवानको (शर्यं) प्रशंसित करना चाहिये । (यत् वाजिनः अश्वस्य) जो बलिष्ठ घोडेके (शफात्) दूर जैते बड़े पात्रसे (मधूनां शतं कुम्भान्) शहदके सौ घटोंको (जनाय समिधानं) जनताके हितके लिए तुम दोनों भर चुके थे ।

१०७ भावार्थ- भीमरत्न कोशमें उपपन्न पञ्च कुलके कक्षीवान कविके लिये यह गुम्दारा कर्म बड़ा ही प्रशंसा करने योग्य प्रकृत होता है कि जो

घोड़े जैसे (संरिजीया) सुदृढ़ शरीरवाला बना दिया था, (नी) तुम दोनों के ये (पूर्णा कृतानि) पदले समयके कार्य (न जूयन्ति) कभी जीर्ण नहीं होते हैं । कभी भूले नहीं जाते ।

१०५ भावार्थ- दृष्ट असुरोंने रेभ ऋषिको बांधकर जल प्रवाहमें फेंक दिया था, इस कारण वह अत्यंत दुर्बल बन गया था । उसको औषधादि उपचारोंसे आपने दृष्ट पुष्ट बलिष्ठ बना दिया था । ये जो आपके पूर्व समयके कार्य हैं वे कभी भूले नहीं जाते ।

१०५ मानवधर्म- शत्रुके अत्याचारके कारण जो लोग दुर्बल और रोगी बन चुके हों, उनको उगम औषधोपचार द्वारा पुनः सुदृढाग बनो देना चाहिये ।

१०५ टिप्पणी- दुर्बल=दुष्टर्म करनेवाला । विप्रुत=क्षिणिल, दुर्बल । दंसस्=कर्म, उपचार ।

[१०६]

१०६ सुपुष्पांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दक्षा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निष्ठातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥५॥

१०६ सुपुष्पांसम् । न । निःऽऋतेः । उपऽस्थे ।

सूर्यम् । न । दक्षा । तमसि । क्षियन्तम् ।

शुभे । रुक्मम् । न । दर्शतम् । निऽऽत्ताम् ।

उत् । ऊपथुः । अश्विना । वन्दनाय ॥५॥

१०६ अन्वयः- दक्षा अश्विना । तमसि क्षियन्तं सूर्यं न, निर्ऋतेः उपस्थे सुपुष्पांसं न, दर्शतं रुक्मं न निष्ठातं शुभे वन्दनाय उत् ऊपथुः ॥५॥

१०६ अर्थ- हे (दक्षा अश्विना) शत्रु विनाशक अग्निदेवो ! (तमसि क्षियन्तं) अंधेरमें छिपे पड़े हुए (सूर्यं न) सूर्यके तुल्य (निर्ऋतेः उपस्थे) भूमिपर (सुपुष्पांसं न) लोहे हुएके समान, (शुभे दर्शतं रुक्मं न) शोभाके लिये दर्शनीय सुवर्ण भूषणके समान (निष्ठातं) जमीनके अन्दर गाढ़े (वन्दनाय) पण्डितके हितके लिये उसे (उत् ऊपथुः) तुम दोनों ऊपर उठा चुके ।

१०६ भावार्थ- शत्रु विनाशक अग्निदेव कुशमें पड़े पण्डितको उसको कष्टवान करनेके लिये ऊपर उठाये, जिस तरह अंधेरमें पड़े उदयके पूर्व सूर्य

को ऊपर काते हैं, भूमि पर सोये पुरुषको ऊपर उठाते हैं अथवा सुन्दर सुवर्ण के आभूषणको जिस तरह ऊपर धारण करते हैं, इस तरह बन्दनको गहरे बाहर निकाला ।

१०६ मानवधर्म- कोई जलमें डूबता हो, तो उसे बाहर निकालना चाहिये, उसे बचाना चाहिये । ऐसा मुन्दर आभूषण शरीरपर धारण करते हैं उस तरह उसको उठाना चाहिये, जैसे सोयेको जगाते हैं उस तरह बेसुधनो होशपर लाना अथवा जगाना चाहिये और जैसे उगते सूर्य का तेज बढता जाता है, उस तरह इस मनुष्यका तेज बढता जाय ऐसा प्रबंध करना चाहिये ।

१०६ टिप्पणी- निखात=गडमें गाढा हुआ । निर्गति=भूमे, कष्टमय स्थिति । बन्दन देखो ५८, ८७ ।

[१०७]

१०७ तद् वा नरा शंस्यं पञ्जियेण कक्षीवता नासत्या परिजमन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भान् असिञ्चत मधूनाम् ॥६॥

१०७ तत् । नरा । शंस्यम् । पञ्जियेण ।

कक्षीवता । नासत्या । परिजमन् ।

शफात् । अश्वस्य । वाजिनः । जनाय ।

शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम् । मधूनाम् ॥६॥

१०७ अन्वयः- नासत्या ! नरा ! वा तद् परिजमन् पञ्जियेण कक्षीवता शंस्यं (यद्) वाजिनः अश्वस्य शफात् मधूनां शतं कुम्भान् जनाय असिञ्चतम् ॥ ६ ॥

१०७ अर्थ- हे (नासत्या नरा) सत्यके पाठक नेताओ ! (वा तद्) तुम दोनोंका यह (परिजमन्) चारों ओर निखात हुआ कार्य है जो (पञ्जियेण कक्षीवता) पन्न कुलमें उत्पन्न कक्षीवानको (शंस्यं) प्रशंसित करना चाहिये । (यद् वाजिनः अश्वस्य) जो बलिष्ठ घोडेके (शफात्) दूर जैसे बड़े पात्रसे (मधूनां शतं कुम्भान्) शहदके सौ घड़ोंको (जनाय असिञ्चनं) जनताके दिव्यके लिए तुम दोनों भर चुके थे ।

१०७ भाषार्थ- अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न पन्न कुलके कक्षीवान ऋषिके लिये यह शुद्धारा कर्म यदा ही प्रशंसा करने योग्य शतीत होता है कि जो

तुम दोनों अश्विदेवोंने अपने बलिष्ठ घोड़ेके सुरके आकारके समान बड़े आकार के पात्रसे मधुके सौ घड़े सब लोगोंके पीनेके लिये भरकर रखे थे ।

१०७ मानवधर्म- मधुर रसके अनेक घड़े भरकर रखने चाहिये, जो लोगोंके पीनेके लिये मिलेंगे ।

१०७ टिप्पणी- मधु = दूध, मीठा तोमरस । पत्रिय = देखो ८३ ।

[१०८]

१०८ युवं नरा स्तुवते कृष्णिषाय विष्णाप्यं ददधुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृपदे दुरोणे पतिर्जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥ ७

१०८ युवम् । नरा । स्तुवते । कृष्णिषाय ।
विष्णाप्यम् । ददधुः । विश्वकाय ।
घोषायै । चित् । पितृपदे । दुरोणे ।
पतिम् । जूर्यन्त्यै । अश्विनौ । अदत्तम् ॥ ७ ॥

१०८ अन्वय - महा अश्विनौ । युवं स्तुवते कृष्णिषाय विश्वकाय विष्णाप्यं ददधुः । पितृपदे दुरोणे जूर्यन्त्यै घोषायै चित् पतिं अदत्तं ॥ ७ ॥

१०८ अर्थ- हे (महा अश्विनौ) मेरा अश्विदेवो । (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करने लगे (कृष्णिषाय विश्वकाय) कृष्णके पुत्र विश्वकको (विष्णाप्यं) उसका विष्णाप्य नामक पुत्र (ददधुः) तुम दोनों दे चुके ; तथा (पितृपदे) पिताके (दुरोणे जूर्यन्त्यै) घरपरही मूढ़ी होनेवाली (घोषायै चित्) घोषाको भी तुम दोनों (पतिं अदत्तं) पति दे चुके ।

१०८ भावार्थ- कृष्ण पुत्र विश्वक का पुत्र विष्णाप्य तुम दुभा मा, उसको योज अश्विदेवोंने की और उस पुत्रको पिताके नाम पहुँचाया । तथा पिताके घर रोगी और मूढ़ होनेवाली घोषाको रोग मुक्त करने उसको तदानी सुखदी बना- का उसको सुखोप पति भी अश्विदेवोंने दिया ।

१०८ मानवधर्म- राजप्रथम द्वारा तुम हुए संविदेकी योज करके त्रिशरा मनुष्य उसको पहुँचा देना चाहिये । इति तरह आयुर्वेद की इतनी उन्नति करने चाहिये कि, रोगियों को रोग दूर हो सकें और मूर्खोंको तदानी बनाना संभव हो जाय ।

१०८ टिप्पणी- विष्णाप्य देना १९, ५१९ । घोषा देना १०९

[१०९]

१०९ युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्पदाय श्रवो अघ्यधत्तम् ॥८॥

१०९ युवम् । श्यावाय । रुशतीम् । अदत्तम् ।
महः । क्षोणस्य । अश्विना । कण्वाय ।
प्रवाच्यम् । तद् । वृषणा । कृतम् । वाम् ।
यत् । नार्पदाय । श्रवः । अधिऽअघ्यत्तम् ॥८॥

१०९ अन्वयः— वृषणा अश्विना । श्यावाय युवं रुशतीं अदत्तं, क्षोणस्य कण्वाय महः । यत् नार्पदाय श्रवः अधि अघ्यत्तं, तत् वां कृतं प्रवाच्यम् ॥८॥

१०९ अर्थ— हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अभिदेवों ! (श्यावाय युवं) श्यावकी तुम दोनोंने (रुशतीं अदत्तं) तेजस्विनी सुन्दर सारी दी, (क्षोणस्य कण्वाय महः) दृष्टि बिहीन कण्वकी नेत्र उपोत्ति का दान किया, (यत्) जो (नार्पदाय श्रवः=अधि अघ्यत्तं) नृपद पुत्रकी श्रवण शक्तिका दान तुम दोनोंने दिया था (तत् वां) यह तुम दोनोंका (कृतं प्रवाच्यं) कार्य अत्यन्त वर्णन करनेयोग्य है ।

१०९ भावार्थ— अभिदेवोंने श्याव ऋषिकी सुन्दर सारी दी, अन्धे कण्वकी छत्तम दृष्टि दी और नृपदपुत्र बधिर था उस को श्रवण करनेकी शक्ति दी । ये कार्य बड़े प्रशंसा करने योग्य हैं ।

१०९ मानवधर्म— आयुर्वेदकी विशिष्टतामें ऐसी उन्नति करनी चाहिये कि जिस से अन्धेकी दृष्टि, बधिरकी सुननेकी शक्ति और दुर्बल रोगीको पौष्टिक शक्ति प्राप्त हो सके ।

१०९ टिप्पणी— रुशती=तेजस्विनी सुंदरी । क्षोण=अन्ध । श्रव=श्रवण शक्ति । श्याव रोगी और अत्यन्त कृश था, उसको शक्तिमान बनाया और उसको श्रीके स्वीकार करने योग्य बनाया गया ।

[११०]

११० पुरु वर्षास्यश्विना दर्शाना नि पेदव ऊहयुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहन् श्रवस्यं तरुत्रम् ॥९॥

११० पुरु । वर्षासि । अग्निना । दधाना ।
 नि । पेदवे । ऊह्युः । आशुम् । अश्वम् ।
 सहस्रऽसाम् । वाजिनम् । अप्रतिऽइतम् ।
 अहिऽहनम् । श्वस्यम् । तरुत्रम् ॥९॥

११० अन्वयः— अग्निना ! पुरु वर्षासि दधाना, पेदवे अप्रतीतं, अहिहनं, सहस्रसं, श्वस्यं, तरुत्रं, वाजिनं आशुं अश्वं नि ऊह्यु ॥ ९ ॥

११० अर्थ— हे अग्निदेवो ! तुम दोनों (पुरु वर्षासि दधाना) अनेक रूप धारण करते हो, तुमने (पेदवे) पेदुको (अप्रतीतं) गजेय, (अहिहनं) शत्रुके बधकर्ता, (सहस्रसं श्वस्यं) हजारों धनोके दाता और पशुस्वी, (तरुत्रं वाजिनं) संरक्षक बलिष्ठ और (आशुं अश्वं) शीघ्रगामी घोड़ेको (नि ऊह्युः) दिया था ।

११० भाषार्थ— अग्निदेव नामा प्रकारके रूप धारण करके भ्रमण करते हैं । इन्होंने पेदुको ऐसा घोड़ा दिया कि जो कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता, शत्रुका बध करता, हजारों धनोको प्राप्त करता, संरक्षण करता, बलिष्ठ था, तथा शीघ्र गतिसे दौड़नेवाला था ।

११० मानवधर्म— नामा प्रकारके रूप धारण करके सब एवरे बचित रीति से प्राप्त करनी चाहिये । घोड़ोंकी उत्तम शिक्षा देनी चाहिये । घोड़ा युद्धसे डरके मारे पीछे न हटे, शत्रुका बध अपनी छायासे करता जाय, युद्धमें विजय प्राप्त कर के धनोको लूट ले आवे, बलवान् हो, शीघ्रगामी हो ।

११० टिप्पणी— वर्षास्य=रूप, शरीर । अप्रति इतः=पीछे न हटनेवाला, शत्रुसे डरकर पीछे न आनेवाला । श्वस्य=वर्णनाय, पशुस्वी । तरुत्र=तेरकर पार जा सकनेवाला और इससे स्वामीका बचाव कर सकनेवाला । वाजो = पशुवान् पेदु = देवो ८२, ११०, १३५, १४०, ३१९, ५९२ ।

[१११]

१११ एतानि वां श्रुत्वा सुदानु प्रह्लाद्गुपं सदेनं रोदस्योः ।
 यद् वां पञ्चासौ अग्निना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च
 वाजम् ॥१०॥

१११ एतानि । वाम् । अवस्या । सुदानू इति सुदानू ।

ब्रह्म । आङ्गुपम् । सदनम् । रोदस्योः ।

यत् । वाम् । पञ्चासः । अश्विना । हवन्ते ।

यातम् । इषा । च । विदुषे । च । वार्जम् ॥१०॥

१११ अन्वयः— सुदानू ! वां एतानि अवस्या, आङ्गुपं ब्रह्म, रोदस्योः सदनं; अश्विना ! यत् पञ्चासः वां हवन्ते, इषा आ यातं च विदुषे वार्जं च ॥ १० ॥

१११ अर्थ— हे (सुदानू) अच्छे वाम देनेवाले आश्विदेवो ! (वां एतानि) तुम दोनों के वे (अवस्थां) सुनने योग्य कार्य हैं, जिसका, (आङ्गुपं ब्रह्म) घोषणीय स्तोत्र बना है, तथा (रोदस्योः सदनं) सुलोक एवं भूलोकमें दोनों स्थानोंपर रहना, हे आश्विदेवो ! (यत् पञ्चासः) चूँकि अंगिरस लोग (वां हवन्ते) तुम दोनोंको सुलाते हैं, अतः (इषा आ यातं च) भक्त साथ लिए हुए आओ और (विदुषे वाजं च) विद्वानको भक्तका दान करो ।

१११ भावार्थ— आश्विदेव दान देनेवाले हैं । उनके इन वार्जोंका यह बड़ा स्तोत्र बन गया है । वे सुलोकमें तथा भूलोकमें भी रहते हैं । अंगिरस कुल में उत्पन्न पञ्च लोग आश्विदेवों की उपासना करते हैं । अतः जब वे आपको सुलाते तब भक्तोंके साथ आना और उनको यह भक्ष्य दे देना ।

१११ मानसधर्म— नेता लोग अनुयायियोंको भ्रष्टादि देकर उचित पहायता करें और अनुयायी उनके कार्यों की योग्य प्रशंसा करें, उनके कृतज्ञ बनें ।

१११ टिप्पणी— आङ्गुपम् = एक स्तोत्रका नाम । ब्रह्म = स्तोत्र । पञ्च = देखो ८३, १०७ ।

[११२]

११२ सुनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।

अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विप्रलां नासत्यारिणीतम् ॥११॥

११२ सुनोः । मानेन । अश्विना । गृणाना ।

वार्जम् । विप्राय । भुरणा । रदन्ता ।

अगस्त्ये । ब्रह्मणा । वावृधाना ।

सम् । विप्रलाम् । नासत्या । अरिणीतम् ॥११॥

११२ अन्वया- भुराणा ! नासत्या अश्विना ! सूनोः मानेन गृणाना, विप्राय
पालं रदन्ता, ब्रह्मणा भगस्ये वावृधाना विश्वकां सं भरिणीतम् ॥११॥

११२ अर्थ- हे (भुराणा) सबके पोषणकर्ता ! (नासत्या अश्विना) सत्य
के पालक अश्विदेवो (सूनोः मानेन गृणाना) पुत्रकी प्राप्तिके लिए मानसे
स्तुति देनेपर उस (विप्राय वाजं रदन्ता) ज्ञानीके लिये तुमने वह बल
दिया और (भगस्ये) भगस्सके (ब्रह्मणा वावृधानाः) स्तोत्रसे पूर्णित हो
कर तुम दोनोंने (विश्वकां सं भरिणीतं) विश्वकाको भली भाँति खेगा
बना दिया ।

११२ भाषार्थ- अश्विदेव सबका पोषण करते और सत्य पर स्थिर रहते
हैं। मानसे पुत्र प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की, उस ज्ञानीको पुत्र उत्पन्न होने
का बल दिया, भगस्सिके प्रार्थना करने पर विश्वका का दूदा पाँव ठीक
किया ।

११२ मानवधर्म- नेता अपने अनुयायियोंका पोषण करें और सत्य मार्ग पर
स्थिर रहें। अपने पास ऐसे वैद्य रखें कि जो निर्मल को सबल बनाना और ढोंग
हठनेपर उसको ठीक करना जानते हों ।

११२ टिप्पणी- भुरण=भरण पोषण करनेवाला । गृणान = स्तुति प्रार्थना
उपासना करनेवाला ।

[११३]

११३ कुहं यान्तां सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा ।

हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपशुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२॥

११३ कुहं । यान्तां । सुऽस्तुतिम् । काव्यस्य ।

दिवः । नपाता । वृषणा । शयुऽत्रा ।

हिरण्यस्यऽह्व । कलशम् । निऽखातम् ।

उत् । उऽपुः । दशमे । अश्विना । अहन् ॥१२॥

११३ अन्वयः- दिवः नपाता । वृषणा । शयुत्रा अश्विना । काव्यस्य सुष्टुतिं
कुहं यान्तां ? दशमे अहन्, हिरण्यस्य कलशं निखातं इव उत् उऽपुः ॥१२॥

११३ अर्थ- (दिवः नपाता) पुत्रके पदचोर्ता । (वृषणा) बलवान् ।
(शयुत्रा अश्विना) शयुको वधानेवाने अश्विदेवो । (काव्यस्य सुष्टुतिं) शक

की स्तुति सुनकर तुम दोनों भला (कुह मान्ता) किधर जाते हो ? (दशमे अङ्क) दसवें दिन (हिरण्यस्य कलशं निखातं इव) सुवर्ण कुम्भकी नाई जो गड्ढा हुआ था, (चत् ऊहयुः) उस रेभ को तुम दोनों ऊपर उठा चुके । वह भी कहाँ रहता था ?

११३ भावार्थ- अग्निदेव चुके पड़पोते हैं । उन्होंने शुक्रकी की स्तुति कहाँ रहकर सुन ली और पश्चात् वे कहाँ गये ? कूबेमें पड़े रेभको दसवें दिन ऊपर घठाया और पश्चात् वे कहाँ गये ?

११४ मानवधर्म- नेता को उचित है कि वह अनुयायियोंकी सहायता करके वे कहाँ किस अवस्थामें कैसे रहते हैं इसका पता लेते रहे ।

११३ टिप्पणी- दिवः नपाता = (दिवः न-पाता) युलोकको न गिराने वाले, युलोक के आधार (दिवः नपाता) चुके पड़पोते, युका पुत्र सूर्य और रत्यके ये पुत्र । ' हिरण्यस्य कलशं निखातं ' सुवर्णका कलश अर्थात् सुवर्णालंकारोंसे भरा घडा जैसा जमीनमें गाढा हुआ रखते हैं । इससे पता चलता है कि सुवर्ण रत्न आभूषण घडेमें बंद करके जमीनमें गाढकर रखने का रिवाज इस समय किसी स्थानमें होगा ।

[११४]

११४ युवं च्यवानमश्विना जरन्तं पुनर्युवानं चक्रधुः शचीभिः ।

युवो रथं दुहिता सूर्यस्य सह श्रिया नासत्यावृणीत ॥१३॥

११४ युवम् । च्यवानम् । अश्विना । जरन्तम् ।

पुनः । युवानम् । चक्रधुः । शचीभिः ।

युवोः । रथम् । दुहिता । सूर्यस्य ।

सह । श्रिया । नासत्या । अवृणीत ॥१३॥

११४ अन्ययः- नासत्या अश्विना ! युवं शचीभिः जरन्तं च्यवानं पुनः युवानं चक्रधुः, सूर्यस्य दुहिता श्रिया सह युवोः रथं अवृणीत ॥ १३ ॥

११४ अर्थ- हे (नासत्या अश्विना) सत्य पालक अग्निदेवो ! (युवं शचीभिः) तुम दोनोंमें अपनी शक्तियोंसे (जरन्तं च्यवानं) मूढ़े च्यवानको (पुनः युवानं चक्रधुः) फिरसे तरण बनाया था । तथा (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्यासे (श्रिया सह) अपनी शोभाके साथ (युवोः रथं अवृणीत) तुम दोनोंके रथको पुनः लिवा था ।

११४ भावार्थ- अग्निदेवोंने अतिबृद्ध व्यवस्य ऋषिको फिर तरण बना दिया था और सूर्यकी पुत्री इनके ही रथपर चढ़ बैठी थी ।

११४ मानवधर्म- आशुर्वेदमें इतनी उन्नति करनी चाहिये कि या तो युवापा ही न आवे और आया तो उसको दूर करके पुनः तरण बनानेके प्रयोग सिद्ध स्थिति में रहें । त्रियां स्वर्गपरमे अपने पतिको चुन लिया करें ।

११४ टिप्पणी- देखो 'व्यवान' ८६.११४, १३२, २७२ । सूर्यपुत्री = सूर्य पुत्रीने अग्निनो को पसंद किया था (देखो ९३) ।

[११५]

११५ युवं तुग्राय पूर्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवत् युवानां ।

युवं भुज्युमर्णसो निःसमुद्राद् विभिरूहयुक्त्रेभिरेवैः ॥१४॥

११५ युवम् । तुग्राय । पूर्येभिः । एवैः ।

पुनःमन्यौ । अभवत्तम् । युवाना ।

युवम् । भुज्युम् । अर्णसः । निः । समुद्रात् ।

विभिः । ऊहयुः । क्रूत्रेभिः । अश्वैः ॥१४॥

११५ अन्यय- युवाना युवं तुग्राय पूर्येभिः एवै पुनर्मन्यौ अभवत्तम्, युवं भुज्युं अर्णसं समुद्रात् विभिः क्रूत्रेभिः अश्वैः निः ऊहयुः ॥ १४॥

११५ अर्थ- (युवाना युव) तुम दोनों तरण (तुग्राय) तुमके किये तो (पूर्येभिः एवैः) पहले किये कर्मोंसे मान्य थे ही पर (पुनः मन्यौ अभवत्तम्) फिर एक बार सम्माननीय बन गये, क्योंकि (युवं) तुम दोनोंने उसके पुत्र (भुज्यु) भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) अथाह समुद्रमेंसे, (विभिः) पक्षी जैसे उड़नेवाले यानोंसे तथा (क्रूत्रेभिः अश्वैः) शीघ्र गान्धी अभोंसे (निः ऊहयुः) पूर्ण रीतिसे उठा कर घर पहुंचाया था ।

११५ भावार्थ- अग्निदेव तो तुम नरेश को पूर्व समय किये शुभ कर्मोंसे संमान देने योग्य थे ही, परन्तु अब जो उन्हींने उसके पुत्र भुज्यु को अथाह महासागरसे घसा कर पक्षी जैसे उड़नेवाले यानोंसे तथा घेसवान् अभोंसे उसके पिताके पास पहुंचाया, इससे तुमको ये अधिक संमानके योग्य बन गये ।

११५ मानवधर्म- बारंबार शुभ कर्मों द्वारा तथा उपकारों द्वारा लोगोंकी सहायता पहुँचानी चाहिये । और भिन्नता बढ़ानी चाहिये ।

११५ टिप्पणी- 'तुमः, भुज्युः' देखो ५७, ७१, ७९-८१, ११५-१९६, इ. ।
विः = पक्षी, पक्षी जैसे वान ।

[११६]

११६ अजोहवीदश्चिना तौम्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जग-
न्वान् । निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा घृपणा
स्वस्ति ॥ १५ ॥

११६ अजोहवीत् । अश्चिना । तौम्यः । वाम् ।
प्रऽऊळ्हः । समुद्रम् । अव्यथिः । जगन्वान् ।
निः । तम् । ऊहथुः । सुऽयुजा । रथेन ।
मनऽजवसा । घृपणा । स्वस्ति ॥ १५ ॥

११६ अन्वय - घृपणा अश्चिना ! समुद्रं प्रोळ्हः तौम्यः अव्यथिः जगन्वान्
वां अजोहवीत्; तं मनोजवसा सुयुजा रथेन स्वस्ति निः ऊहथु ॥ १५ ॥

११६ अर्थ- हे (घृपणा ।) बलवान् अभिदेशो ! (समुद्रं प्रोळ्ह तौम्यः)
समुद्र पार करनेके लिए भेजा हुआ तुमका पुत्र (अव्यथिः जगन्वान्) किसी
प्रकार की पीडाको न प्राप्त होकर चला गया, (वां अजोहवीत्) जब उसने
तुम दोनोंको सहायतायें लुकावा, तब (तं) उसे (मनो जवसा सुयुजा रथेन)
मनके तुल्य वेगवान् तथा अच्छी तरह जोते हुए रथसे (स्वस्ति निः ऊहथुः)
सकुशल तुम दोनोंने पिताके घर पहुंचा दिया ।

११६ भावार्थ— तुम नरेशके पुत्र भुज्युको [समुद्र पारके रेतिले प्रदेशमें
रहनेवाले शत्रुपर हमला करनेके लिये] भेजा था । वह वहां बिना बन्द
पहुंच गया, [परन्तु वहां पहुंचने पर] उसका चेड़ा टूट गया, उसने अभिदे-
शको संदेश भेजा । वे उनके समान वेगवाले उत्तम यानोंसे वहां
पहुंचे और उस भुज्युको वहांसे उठा कर उसके पिताके घर पहुंचा दिया ।

११६ मानवधर्म- यान ऐसे तैयार करने चाहिये कि, जो अन्तरिक्षमें, पानीमें
तथा भूमि पर भी अतिवेगसे चल सकें । जो अनुयायी जहा बड़ी कष्टमें पड़े हों,
वहां इन यानोंसे जाकर उनको सहायता देनी चाहिये ।

११६ टिप्पणी- प्रोळ्हः = यात्रामें भेजा गया । तौम्यः = तुम पुत्र भुज्यु,
देखो ५७, ७१, ७९-८१, ११५ इ० ।

११९ शुनम् । अन्धाय । भरम् । अह्वयत् । सा ।

वृकीः । अश्विना । वृषणा । नरा । इति ।

जारः । कनीनःऽइव । चक्षदानः ।

ऋजऽअश्वः । शतम् । एकम् । च । मेपान् ॥१८॥

११९ अन्वयः— सा वृकी, अन्धाय शुनं भरं इति अह्वयत्; वृषणा । नरा । अश्विना ! ऋजाश्वः, कनीन जारः इव, शतं एकं च मेपान् चक्षदानः ॥ १८ ॥

११९ अर्थ— (सा वृकीः) यह वृकी इस (अन्धाय शुनं भरं) अन्धेको सुख मिले इसलिष्ट (इति अह्वयत्) ऐसा पुकारने लगी कि, (वृषणा नरा अश्विना !) हे बलिष्ठ नेता अश्विदेवो ! (कनीनः जारः इव) तरण जार जिस तरह सदैव देता है उस तरह ऋजाश्वने (शतं एकं च मेपान् चक्षदानः) एकसौ एक भेड़ मुझे खाने के लिये दी हैं ।

११९ भावार्थ— [जब ऋजाश्व अन्धा हुआ, तब] यह वृकी प्रार्थना करने लगी कि हे बलिष्ठ अश्विदेवो ! जिस तरह तरण कामुक जार [किसी स्त्री को अपना सघ धन देता है उस तरह] इसने एक सौ एक भेड़ मुझे खानेके लिये दीं [जिससे यह अब अन्धा हो कर पड़ा है ।]

११९ मानवधर्म— पशुओंकी सहायता करने पर वे भी क्रतुश रहते हैं ।

११९ टिप्पणी— कनीनः=तरण । ' वृकी ' वेलो । १२, ११९

[१२०]

१२० मही वामुतिरश्विना मयोभूरुत स्यामं धिष्ण्या सं रिणीयः ।

अथो युवामिदं ह्वयत् पुरंधिरागच्छतं सीं वृषणावर्षोभिः ॥१९॥

१२० मही । वाम् । ऊतिः । अश्विना । मयःऽभूः ।

उत् । स्यामम् । धिष्ण्या । सम् । रिणीयः ।

अथ । युवाम् । इत् । अह्वयत् । पुरम्ऽभिः ।

आ । अगच्छतम् । सीम् । वृषणौ । अवःऽभिः ॥१९॥

१२० अन्वयः— धिष्ण्या ! वृषणौ अश्विना ! वीं ऊतिः मही मयोभूः उत् । स्यामं सं रिणीयः, अथ युवा इत् पुरन्धिः अह्वयत्, अवोभिः आगच्छतम् ॥१९॥

१२० अर्थ- हे (विष्णवा !) बुद्धिमान और (धृपणौ अभिना) बलवान् आश्विदेवो ! (वां-ऊतिः) तुम दोनोंकी संरक्षण योजना (मही मयोभू-) बड़ी सुखकारक है, (उत) और (स्याम संरिणीयः) लंगड़े लड़केको तुम दोनों मही भाँति ठीक कर देते हो, (अय युवा इष) अब तुम दोनोंको ही (पुरन्धिः अह्वयत) एक बुद्धिमती महिला ने पुकारा था कि (अघोभि आ गच्छतं) अपनी संरक्षण शक्तियोंके साथ तुम दोनों आओ ।

१२० भावार्थ- आश्विदेव बड़े बुद्धिमान और बलवान् हैं, उनकी संरक्षक शक्ति बड़ी सुखदायिनी है । वे लंगड़े लड़केको भी ठीक कर देते हैं । रोगमरता भी उनके उपचारोंसे नीरोग होती है ।

१२० मानवधर्म- मनुष्य बुद्धिमान और बलवान् बनें । अपना उगम संरक्षण करके अपना सुख बढ़ावें । लंगड़े लड़केको ठीक करने और स्त्रियोंके रोगोंसे उनकी मुक्तता करनेकी निष्ठामें वैद्य अपनी अधिकसे अधिक क्षमता प्राप्त करें ।

१२० टिप्पणी मयोभूः = सुग दायक । स्याम = ०शशि प्रस्त, शिथिल अग, लंगड़ा लूला ।

[१२१]

१२१ अघेनुं दत्ता स्तयै विपक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम् ।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०

१२१ अघेनुम् । दत्ता । स्तयैम् । विपक्ताम् ।
अपिन्वतम् । शयवे । अश्विना । गाम् ।
युवम् । शचीभिः । विमदाय । जायाम् ।
नि । न्यूहथुः । पुरुमित्रस्य । योषाम् ॥२०॥

१२१ अन्वयः- दत्ता अभिना । स्तयै, विपक्ता, अघेनुं गां शयवे अ-
भिन्वत, शचीभिः पुरुमित्रस्य योषां विमदाय जायां नि न्यूहथु ॥२०॥

१२१ अर्थ- हे (दत्ता) शत्रुविनाशक आश्विदेवो ! (स्तयै) गर्भवती न होनेवाली (विपक्ता अघेनुं गां) दुबली, दूध न देनेवाली गायको (शयवे) शयुक्ता दित करनेके लिए (अपिन्वत) तुम दोनोंने पुष्ट बना दिया, (युव) तुम दोनोंने (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (पुरुमित्रस्य योषां) पुरुमित्र की पत्न्यासी (विमदाय जायां) विमदके लिए पत्नीके रूपमें (नि न्यूहथुः) पहुँचा दिया ।

[११७]

११७ अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्त्रो यत् सीमर्मुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुपां ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विपेण ॥ १६

११७ अजोहवीत् । अश्विना । वर्तिका । वाम् ।
आस्त्रः । यत् । सीम् । अमुञ्चतम् । वृकस्य ।
वि । जयुपां । ययथुः । सानुं । अद्रेः ।
जातम् । विष्वाचः । अहतम् । विपेण ॥ १६ ॥

११७ अन्वयः- अश्विना । वर्तिका वा अजोहवीत्, यत् सीं वृकस्य
आस्त्रं अमुञ्चतं, अद्रेः सानुं जयुपां वि ययथुः, विपेण विष्वाच जातं
अहत ॥ १६ ॥

११७ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (वर्तिका वा अजोहवीत्) वर्तिकाने तुम दोनों
को बुझाया, (यत्) जब (सीं) उसे (वृकस्य आस्त्रं) मेढियाके मुँहमेंसे
(अमुञ्चतं) तुम दोनोंने बुझाया, (अद्रेः सानुं) पहाड़के शिखर को (जयुपां
वि ययथुः) विजयी रथसे तुम दोनों लाँच कर आगे निकल चुके और
(विपेण) विपकी सहायतासे (विष्वाच, जात अहत) सभी ओर संचार करने
वाले शत्रुके सैनिकोंको तुम दोनोंने मार डाला ।

११७ भाषार्थ- अश्विदेव मेढियेके मुँहसे बटेरको छुड़ा चुके । वे अपने
विजयी रथपर बैठकर पर्वतके शिखरको लाभ कर परे पहुँचे, और उसकी
घेरनेवाले शत्रुके सैनिकोंको विपदिग्रस्त पावोंसे मार चुके ।

११७ मानवधर्म- राज प्रपञ्च द्वारा केवल मानवी की ही नहीं अपितु पशु
पक्षिवी भी सुरक्षा करनी चाहिये । रथ ऐसे बनाने चाहिये कि जो पर्वतके
शिखरोंको भी लाँच कर परे जा सकें । प्राण विपसे भरे हों, जो शत्रुपर घाव
दोनेसे, शत्रु यदि घावसे न मरे, तो विपसे तो अवश्य ही मर जाय ।

११७ टिप्पणी- वर्तिका = बटेर, एफ जातका पक्षी । वर्तिका और
वृक = उपा और सूर्य (निरुक्त ५ । सायन भाष्य इसी मन्त्रपर देखो) देखो
'वर्तिका' ५९, १०, ११७, १२४, १५ । जयुप् = विजयशील । विष्वाच् =
चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु । विप = विप लगाया शत्रु ।

[११८]

११८ श्रुतं मेपान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमर्शिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रयुर्विचक्षे ॥१७

११८ श्रुतम् । मेपान् । वृक्ये । ममहानम् ।
तमः । प्रणीतम् । अर्शिवेन । पित्रा ।
आ । अक्षी इति । ऋज्राश्वे । अश्विनौ । अधत्तम् ।
ज्योतिः । अन्धाय । चक्रयुः । विचक्षे ॥१७॥

११८ अन्वयः— वृक्ये श्रुतं मेपान् मामहानं, अर्शिवेन पित्रा तमः प्रणीतं, अश्विनौ । तसौ ऋज्राश्वे अक्षी आ अधत्तं, अन्धाय विचक्षे ज्योतिः चक्रयुः ॥१७॥

११८ अर्थ— (वृक्ये श्रुतं मेपान्) वृकी को सी भेदे (मामहानं) प्रशान करनेवाले पुत्रको (अर्शिवेन पित्रा) अहितकारी पिताने (तमः प्रणीतं) अन्धा बना दिया, हे (अश्विना) अभिदेवो ! उस (तसौ ऋज्राश्वे अक्षी) ऋज्राश्वमें दोनों आँखोंको तुम दोनोंने (आ अधत्तं) धर दिया, अर्थात् उस (अन्धाय विचक्षे) अंधेको विशेष दृष्टि मिल जाये इसदिष्ट तुम दोनोंने (ज्योतिः चक्रयुः) उसके आँख का निर्माण किया ।

११८ भाषार्थ— ऋज्राश्वने वृकीको सी भेद खानेके लिये दी, इसलिये क्रुद्ध होकर पिताने उसको अन्धा बना दिया । अभिदेवोंने उसकी दोनों आँखें डीक की और उनमें अच्छी दृष्टि रख दी ।

११८ सामवर्धम— अन्धेकी आँखें ठीक बनानेकी विद्या उन्नत अवस्थातक पहुँचानी चाहिये ।

११८ टिप्पणी— अश्वि = अश्व, अहितकारी । तमः = अन्धेरा, अन्ध-पारी, अन्धरा । 'ऋज्राश्व' देखो ९२ ।

[९८]

११९ श्रुतमन्धाय मरुमहयत् सा वृकीरश्विना वृपणा नरेति ।
जारः कनीर्न इव चक्षुद्रान ऋज्राश्वः श्रुतमेकं च मेपान् ॥१८

१११ भाषार्थ- भविदेवोंने गर्भ धारण करनेमें असमर्थ दुर्बल, दूध न देनेवाली गौको, शत्रुको पुष्ट करनेके लिए, दुधारु बना दिया । पुस्तमसकी कुमारिकाको विमदके लिये पत्नी रूपसे बिटवा दिया ।

१११ मानवधर्म- दुर्बल गौको पुष्ट करने और दुधारु बनानेकी विद्या सिद्ध करनी चाहिये । उभय कुमारीका उत्तम पतिके साथ विवाह होवे । पुत्र और पुत्रीमें कुछ दोष हो तो उनकी दूर करना योग्य है । निर्दोष को पुष्पोत्पादी ही समागम होवे ।

[१११]

१२२ यत् वृक्रेणाश्विना वपन्तेर्षं दुहन्ता मनुषाय दत्ता ।

अभि दस्युं वक्रुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रधुरार्याय ॥२१॥

१२२ यत् । वृक्रेण । अश्विना । वपन्ता ।

इर्षम् । दुहन्ता । मनुषाय । दत्ता ।

अभि । दस्युम् । वक्रुरेण । धमन्ता ।

उरु । ज्योतिः । चक्रधुः । आर्याय ॥२१॥

१२२ अन्वयः- दत्ता अभिना । यत् वृक्रेण वपन्ता, मनुषाय इर्षं दुहन्ता दस्यु वक्रुरेण अभि धमन्ता आर्याय उरु ज्योतिः चक्रधुः ॥२१॥

१२२ अर्थ- हे (दत्ता) शत्रु विनाशकर्ता भविदेवो । (यत् वृक्रेण वपन्ता) गौको हलसे बोते हुए, (मनुषाय इर्षं दुहन्ता) मानवके लिए भद्र रक्षका दीहल करते हुए और (दस्युं वक्रुरेण धमन्ता) शत्रुको तीक्ष्ण हथियार से विनष्ट करते हुए (आर्याय उरु ज्योतिः चक्रधुः) तुम दोनों आर्योंके दिने-विनाश प्रकाशका स्थान बनाते आवे हो ।

१२२ भाषार्थ- भविदेव जी आदि धान को हलसे बोते हैं, मनुष्योंके लिए भद्रास देते हैं, शत्रुका तीक्ष्ण राखते धम करते हैं और आर्योंके लिए विस्तृत प्रकाश दिखाते हैं ।

१२२ मानवधर्म- नेता लोग भूमिपर शरही तरह हल चलाकर सब प्रकारका धान बो दें, जल तथा अन्न रख पर्वत प्रमाणमें मिलें ऐसा करें, शत्रुका नाश करनेके लिये तीक्ष्ण राख के प्रयोग करें और आर्योंको उन्नतिका मार्ग बनानेके लिये विस्तृत प्रकाश बतावें ।

१२२ टिप्पणी— धृक्=हृक्, भेदिना, धर्म । यकुर=यत्, तीक्ष्ण
अमकदार दास ।

[१२३]

१२३ आधर्वणायाधिना दधीचे ऽह्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।

स वां मधु प्रयोचत्तायन् त्वाष्ट्रं यद्वदन्नावपिकृक्ष्यं वाम् ॥२२

१२३ आधर्वणाय । अधिना । दधीचे ।

अह्व्यम् । शिरः । प्रति । ऐरयतम् ।

सः । वाम् । मधु । प्र । योचत् । अतऽयन् ।

त्वाष्ट्रम् । यत् । दुस्रो । अपिकृक्ष्यम् । वाम् ॥२२॥

१२३ अन्वयः— दधौ । अधिना । आधर्वणाया दधीचे अह्व्यं शिरः प्रति
ऐरयतं, सः अतायन् वां मधु प्रयोचत् यत् वां अपिकृक्ष्यं त्वाष्ट्रम् ॥२२॥

१२३ अर्थ— हे (दधौ) मधु पिनासकता अधिवेदी ! (आधर्वणाय दधीचे)
अध्वे संतोष्य दधीची अपिके क्रिष्ट (अह्व्यं शिरः) गोदेका शिर (प्रति
ऐरयतं) तुम दोनोंको लगा दिया था, तब (सः अतायन्) यह अपि यज्ञ
मार्गका प्रचार करता हुआ (वां मधु प्रयोचत्) तुम दोनोंको इस मधु पिना
का उपदेश कर चुका, (यत्) और पैसी ही (वां) तुम दोनोंको (अपि कृक्ष्यं
त्वाष्ट्रं) अवयवोंको जोड़नेकी विद्या, जो कि इन्द्रसे प्राप्त हुई थी यह भी,
उममे तुमसे कह रहा हूँ ।

१२३ अन्वयार्थ— अधिवेदोति अथर्वे कुकर्मे उत्पन्न दधीची अपिको गोदे
का शिर लगा दिया, तब उतने उतने, यज्ञ मार्गके प्रचारके उपदेशसे, मधु
पिनाका उपदेश किया और दूटे अवयवोंको जोड़ देनेकी विद्या भी कही ।

१२३ मानवधर्म— गर्ता विधये मधुर आनन्द भरा है, इसको यथावत् जान-
नेकी मधुपिनाको अध्वेण दधीचीने अधिवेदताओंको पकड़ा और उनको दूटे अव-
यवोंकी ठीक तरह जोड़नेकी विद्या भी पढ़ाई ।

१२३ टिप्पणी— अपिकृक्ष्यं=कृष्टाणि प्रदेशको जोड़नेका ज्ञान । त्वाष्ट्रं=
इन्द्रसे प्राप्त, लदागे प्राप्त । दधीची=देखो ८८, १२३, १२६ ।

[१२४]

१२४ सदां कवी सुमतिमा चके वां निष्ठा धियो अधिना प्रार्वतं
मे । अस्मे रयि नास्तत्ता वृद्धन्तमपत्यसाचं श्रुत्यै रसाधाम् ॥२३

१२४ सदा । कवी इति । सुऽमृतिम् । आ । चके । वाम् ।

विश्वाः । धियः । अश्विना । प्र । अवतम् । मे ।

अस्मे इति । रयिम् । नासत्या । बृहन्तम् ।

अपत्यऽसाचम् । श्रुत्यम् । राधाम् ॥२३॥

१२४ अन्वयः— वासया ! कवी अश्विना ! सदा यां सुमतिं आचके, मे विश्वाः धियः प्र अवतं, बृहन्तं अपत्यसाचं श्रुत्यं रयिं अस्मे राधाम् ॥२३॥

१२४ अर्थ— हे (नासत्या कवी अश्विना) सत्य पांडकं कवी अश्विदेवो । (सदा) हमेशा (वा) तुम दोनोंसे (सुमतिं आचके) अच्छी बुद्धि की प्राप्ति की कामना करता हूँ, (मे) मेरी (विश्वाः धियः) सारी, क्रियाओं, तथा बुद्धिपूर्वको (प्र अवतं) अच्छी तरह सुरक्षित रखो, (बृहन्तं) बड़े भारी (अपत्यसाचं) सम्मान युक्त तथा (श्रुत्यं रयिं) वर्णनीय धनसंपदाको तुम (अस्मे राधां) हमें दे डालो ।

१२४ भावार्थ— हे सत्यके रक्षक कवी अश्विदेवों ! हमें उत्तम बुद्धि तथा उन्नत कर्म करनेकी शक्ति प्रदान करो, हमें उत्तम संतान और श्रेष्ठ प्रकाशका धन मिलता रहे ।

१२४ मानवधर्म— मनुष्यों को उत्तम बुद्धि उत्तम कर्म उत्तम रीतिसंनिर्भाने की शक्ति, उत्तम संतान तथा श्रेष्ठ धन संपदा प्राप्त करनी चाहिये ।

[१२५]

१२५ हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वधिमृत्या अदत्तम् ।

त्रिधा ह श्यावंमश्विना विकस्तमुजीवसे ऐरयतं सुदान् ॥२४॥

१२५ हिरण्यऽहस्तम् । अश्विना । रराणा ।

पुत्रम् । नरा । वधिऽमृत्याः । अदत्तम् ।

त्रिधा । ह । श्यावंम् । अश्विना । विकस्तम् ।

उत् । जीवसे । ऐरयतम् । सुदान् इति सुऽदान् ॥२४॥

१२५ अन्वयः— सुदान् ! रराणा । नरा अश्विना । वधिमृत्यौ हिरण्यहस्तं पुत्रं अदत्त, श्यावं त्रिधा विकस्तं ह जीवसे उत् ऐरयतम् ॥ २४ ॥

१२५ अर्थ- (सुदानू) हे अच्छे दाती (रराणा) बहुत उदार (मरा भविना) नेता भविदेवो ! (चाधिमही द्विरण्वदस्त पुन अदत्त) धध्रीमतीको हाथमें सुवर्ण धारण करनेवाले पुत्रका दान तुम दोनोंने किया, (इषाय त्रिधा विकस्त ॥) इषाय, जो तीन स्थानोंमें क्षदित हो चुका था, उसे (जीपसे) जीवित रहनेके लिए (उस घेरयत) तुम दोनोंने उत्तम रीतिसे ऊपर उठाया ।

१२५ भावार्थ- अश्विदेव उत्तम दान देनेवाले और उत्तम नेता हैं । उन्होंने ने गर्भवती ग होनेवाली स्त्रीको गर्भधारणक्षम बनाया, पश्चात् उसको उत्तम पुत्र हुआ और उस पुत्रके हाथमें सुवर्णालंकार धारण करने योग्य संपदा भी दी । इषाय तीन स्थान पर जलमी होकर पड़ा था उसको ठीक किया और उसे वीर्यायु भी बना दिया ।

१२५ मानवधर्म- वैद्यक शास्त्र को इसमें उन्नती करनी चाहिये कि जिससे यन्त्र्या स्त्री को गर्भ धारण करनेमें समर्थ, नपुंसक को वाजविरण द्वारा पुष्टपत्र शक्ति से युक्त, और इनको सुसन्न म प्राप्त करने तथा किराके घबल होने और अवयवों के टूटनेपर उनको ठीक करनेमें उत्तम सिद्धि प्राप्त हो जाय ।

१२५ टिप्पणी- चाधिमती देखो ८९ । विकस्त = टड़ा, घायल ।

[१२६]

१२६ एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्वाण्यायनोऽवोचन् ।

ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरांसो विदधमा वदेम ॥ २५

१२६ एतानि । वाम् । अश्विना । वीर्याणि ।

प्र । पूर्वाणि । आयनः । अवोचन् ।

ब्रह्म । कृण्वन्तः । वृषणा । युवभ्याम् ।

सुवीरांसः । विदधम् । आ । वदेम ॥ २५ ॥

१२६ अन्यय - वृषणा अश्विना । एतानि पूर्वाणि वीर्याणि आयन
॥ अवोचन्, युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः सुवीरांस विदध आ वदेम ॥ २५ ॥

१२६ अर्थ- हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (एतानि) तुम दोनोंके ये (पूर्वाणि वीर्याणि) पूर्व कालमें किये हुए पराक्रमके कार्य (आयन म अवोचन्) सब मानव वर्णन करते आये हैं, (युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः) तुम दोनोंके लिए इस स्तोत्र की रचना करते हुए (सुवीरांस) अच्छे वीर बनकर हम (विदध आ वदेम) सभाओंमें उसका पूरा प्रपचन करेंगे ।

१२६ भावार्थ- शक्तिदेव चलवान हैं । इस सूक्तमें वर्णन किये थे सब उनके पराक्रमके कई प्राचीन कालसे सब मानस वर्णन करते आते हैं । हमने वह स्तोत्र उनकी प्रसन्नताके किये किया है । इससे हम उत्तम वीर बनें, हमें उत्तम वीर संताप हों और हम युद्धोंमें जगत्की और समालोमें उत्तम प्रभापी यत्ना बने ।

१२६ टिप्पणी- आयचः = मनुष्य विद्वत्=युद्ध. समा ।

[१२७] (अ० १।११८।१-११)

१२७ आ वां रथो अशिना इयेनर्पत्वा सुमृत्कीकः स्वर्वा धा-
त्यर्वाह । यो मर्त्यस्य मनसो जयीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा
वातरंहाः ॥१॥

१२७ आ । वाम् । रथः । अशिना । इयेनर्पत्वा ।

सुमृत्कीकः । स्वर्वान् । यातु । अर्वाह ।

यः । मर्त्यस्य । मनसः । जयीयान् ।

त्रिवन्धुरः । वृषणा । वातरंहाः ॥१॥

१२७ अन्यथा- वृषणा अशिना । वां यः सुमृत्कीकः, स्वर्वाह, मर्त्यस्य मनसः जयीयान्, वातरंहाः इयेनर्पत्वा त्रिवन्धुरा रथा अर्वाह आयातु ॥१॥

१२७ अर्थ- हे (वृषणा अशिना) बलिह्व शक्तिदेवो ! (वां यः) तुम दोनों का जो (सुमृत्कीकः) बहुत सुख देनेवाला (स्वर्वाह) अपनी शक्तिसं युक्त (मर्त्यस्य मनसः जयीयान्) मानवके मनसेभी अतिदेगवान् (वातरंहाः) पायुके सुवग वेगवाला (इयेनर्पत्वा) धारा मंलीके अमान वेगसे दहनेवाला (त्रिवन्धुरः रथः) तीन स्थानोंमें सुदृढब्रह्म दगा हुआ रथ है, यह (अर्वाह आयातु) हमारे अभिमुख आ जाए ।

१२७ भावार्थ- चलवान् शक्तिदेवोंका रथ बैठनेके किम् सुख कारण, अपनी बनावटके कारण गुरुद, मनसे और पायुसे भी वेगवान्, पत्नीके समान आकाश में दहनेवाला, तीन स्थानोंमें धंवा हुआ है, यह हमारे समीप आनाय अर्वाह इस रथमें बैठकर ये हमारे पास आ जावें ।

१२७ मानवधर्म- पानीपर ऐसे गान पनामें कि श्री बन्दर बैठनेके दिष्ट मुक्त दे, गुरुधर्म ही अर्वाह न दृष्टनेवाले हों, अनिवेगमे चलनेवाले हों, इनमें

तीन आसन हों, वे पक्षीके समान आवाशमें भी उड़ सकते हों । ऐसे यानोंमें बैठ कर लोग भ्रमण करें ।

११७ टिप्पणी— इय-वान्=एव शक्तिसे सुदृढ । इयेन पत्या=इयेन पक्षीके समान आवाशमें उड़नेवाला, जो इयेन पक्षियोंकी शक्तिसे उड़ता है, जिससे इयेन पक्षी जैते जाते हैं । त्रियन्धुर=तीन स्थानोंगें बंधा, तीन आसनोंसे युक्त, तीन विभागोंमें विभक्त, तीन जगह समावृट किया हुआ ।

[११८]

११८ त्रियन्पुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक् ।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्धतो नो वर्धयंतमश्विना वीरमस्मे ॥२॥

११८ त्रियन्पुरेण । त्रिवृता । रथेन ।

त्रिचक्रेण । सुवृता । आ । यातम् । अर्वाक् ।

पिन्वतम् । गाः । जिन्वतम् । अर्धतः । नः ।

वर्धयतम् । अश्विना । वीरम् । अस्मे इति ॥२॥

११८ अन्ययः— अश्विना । त्रिचक्रेण त्रियन्पुरेण त्रिवृता सुवृता रथेन अर्वाक् आयातम् । नः गाः पिन्वत, अर्धतः जिन्वत अस्मे वीर वर्धयतम् ॥२॥

११८ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (त्रिचक्रेण) तीन पहियोंसे युक्त, (त्रियन्पुरेण तीन बंधनोंसे युक्त, (त्रिवृता सुवृता रथेन) तीन बाजूवाले उत्तम रीतिसे जानेवाले रथपर चढ़कर (अर्वाक् आयात) हमारे पास आओ । (नः गाः पिन्वत) हमारी गौरों बुधारे बनानेको, हमारे (अर्धतः जिन्वत) घोड़ोंको गतिमान करो, तथा (अस्मे वीरं वर्धयत) हमारे लिए वीर संतानकी वृद्धि करो ।

११८ भावार्थ— हे अश्विदेवो ! अपने तीन पहियोंवाले तीन आसनोंवाले त्रिचक्रेणरथी उत्तम गतिमानके रथपर चढ़कर हमारे पास आओ, और हमारी गौरोंको बुधारे बनानेकी तथा हमारे घोड़ोंको बुधारेसे शिक्षित करके उत्तम गतिसे चलनेवाले बनानेकी आयोजना को बसाओ तथा हमें वीर संतान हो पेटा भी मार्ग हमें बताओ ।

११८ मानवधर्म— विद्वान् नेता अपने अनुयायियोंके घरपर जायें, उनको गौरोंकी विशेष बुधारे बनानेके तथा घोड़ोंको उत्तम शिक्षित करके उत्तम गतिसे चलनेमें समर्थ बनानेके उपाय बतायें, तथा घर के बाल बच्चोंको उत्तम वीर बनाने

की प्राप्ति दें । (राज प्रबंध द्वारा ही यह सब होना चाहिये ।)

१२८ टिप्पणी- पिन्व=पुष्ट करना, अधिक रस युक्त करना । जिन्व=गति-मान करना, पुर्तिल्ल बनाना, बेगवान बनाना, गुणोंकी वृद्धि करना ।

[१२९]

१२९ प्रवर्धामना सुवृत्ता रथेन दत्ताविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।

किमङ्ग वां प्रत्यवर्ति गमिष्ठाहुर्विप्रांसो अश्विना पुराजाः ॥३॥

१२९ प्रवत्स्यामना । सुवृत्ता । रथेन ।

दत्ता । इमम् । शृणुतम् । श्लोकम् । अद्रेः ।

किम् । अङ्ग । चाम् । प्रति । अवर्तिम् । गमिष्ठा ।

आहुः । विप्रांसः । अश्विना । पुराजाः ॥३॥

१२९ अर्थ- दत्ता अश्विना ! सुवृत्ता प्रवत्स्यामना रथेन, अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतम् । अंग किं पुरा-जाः विप्रांसः वां अवर्तिं प्रति गमिष्ठा आहुः ॥३॥

१२९ अर्थ- हे (दत्ता) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेव ! (सुवृत्ता) सुन्दर रथसे बनाये हुए (प्रवत्स्यामना रथेन) बहुत बेगमे जानेवाले रथसे आकर यहाँ (अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतं) सोम वृन्दके पायरीके इस काव्यकी तुम दोनों सुनलो, (अंग ! ॥) अङ्ग ! क्या (पुरा-जाः विप्राः) पूर्वकालके प्राज्ञ (वां) तुम दोनोंकी (अवर्तिं प्रति) दरिद्रताके मिटानेके लिये (गमिष्ठा आहुः) जानेवाले ही कहते थे न ?

१२९ भाषार्थ- शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेव अपने सुन्दर रथमें बैठकर पञ्चके स्थान पर जाते हैं और वहाँ सोमराज निकालनेके समयके मन्त्र गान सुनते हैं । ये यही अश्विदेव हैं कि, जिनके पिपवमें प्राचीनकालके ज्ञानी बार बार कहते आये हैं कि, ' ये दरिद्र और दुःखका नाश करनेके लिये ही प्रभु बनते हैं । '

१२९ मानयधर्म- नेता शत्रुओंका नाश करे । शुभ कर्मोंके स्थानोंमें जावे और उन कर्मोंके करनेवालों की सहायता दे । अनुयायियोंके दारिद्र्य, दुःख, कष्ट, रोग, तथा न्यूनताको दूर करनेका उचित प्रबंध करे ।

१२९ टिप्पणी- प्रवत्स्यामन्=विशेष गतिसे चलनेवाला । अद्रेः श्लोक=प्राचीन स्तुति, सोम वृन्दके पायरीकी प्रशंसा, पूर्वकी प्रशंसा । अवर्ति=दुःख, कष्ट, रोग, न्यूनता, शत्रु, दारिद्र्य ।

[१३०]

१३० आं वां इयेनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आश्वः
पतङ्गाः । ये अप्सुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या
वहन्ति ॥४॥

१३० आ । वाम् । इयेनासः । अश्विना । वहन्तु ।
रथे । युक्तासः । आश्वः । पतङ्गाः ।
ये । अप्सुरः । दिव्यासः । न । गृध्राः ।
अभि । प्रयोः । नासत्या । वहन्ति ॥४॥

१३० अर्थः— नासत्या अश्विना । रथे युक्तासः आश्वः, पतङ्गाः
इयेनासः वां आवहन्तु; ये गृध्राः न दिव्यासः अप्सुराः प्रयोः अभि
वहन्ति ॥ ४ ॥

१३० अर्थ— हे सत्यके पाछक अभिदेवो । (रथे युक्तासः) यानमें जोते
हुए (आश्वः) शीघ्रगामी, (इयेनासः पतङ्गाः वां) इयेन पंछी तुम दोनोंको
इधर (आवहन्तु) के आर्य, (ये) जो (गृध्राः न) गिद्धोंकी नाई
(दिव्यासः) आकाशमें संचार करनेवाले (अप्सुराः) वेगसे जानेहारे पक्षी
(प्रयोः अभि) यज्ञ स्थानके प्रति तुम दोनोंको (वहन्ति) उठाते हैं
पहुँचाते हैं ।

१३० भावार्थ— अभिदेवोंके यान को अतिवेगसे जानेवाले इयेन पक्षी
जोते थे । ये स्वरासे जानेवाले, शीघ्रके समान पक्षी इनको यज्ञ स्थानमें
ले आते थे ।

१३० मानवधर्म— यानोंको आकाशयानोंको अतिवेगसे उड़नेवाले पक्षी
जोते आर्य । इयेन, शीघ्र, गह्व, आदि पक्षी इस कार्यके लिये उपयोगी हैं । (कई
पक्षी पद्यमें २५ से छेकर १०० चौरातकके वेगसे उड़ते हैं ।)

१३० टिप्पणी— इस मन्त्रमें कहा है ॥ 'आश्वः इयेनासः पतङ्गाः रथे
युक्तासः वां आवहन्ति' शीघ्रगामी इयेन पक्षी अभिदेवोंके रथको चलाते हैं ।
अर्थात् आकाशयान पक्षियोंसे चलावे जाते थे । ये पक्षी प्रति घण्टे २।२ सौ मीलके
वेगसे भी जाते हैं । उड़ानवायुसे यह आकाशयान ऊपर जाता था और पक्षियोंसे
चलाया जाता था । (तंत्र मंत्र)

[१३१]

१३१ आं वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्टी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरूपा अभीके ॥५॥

१३१ आ । वाम् । रथम् । युवतिः । तिष्ठत् । अत्र ।

जुष्टी । नरा । दुहिता । सूर्यस्य ।

परि । वाम् । अश्वाः । वपुषः । पतङ्गाः ।

वयः । वहन्तु । अरूपाः । अभीके ॥५॥

१३१ अन्वयः— नरा । जुष्टी युवतिः सूर्यस्य दुहिता वां अत्र रथं आति-
ष्ठत्, अश्वाः वपुषः अरूपाः वयः पतङ्गाः अभीके वां परिवहन्तु ॥५॥

१३१ अर्थ— हे (नरा) नेताओ ! (जुष्टी युवतिः) आनन्दिता हुई युवती
(सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (वां अत्र रथं) तुम दोनोंके इस रथपर
(आतिष्ठत्) चढ़ चुकी, इस रथको जोते (अश्वाः) घोड़े (अरूपाः) फाक
रंगवाले (वपुषः) शरीरके आकारसे (वयः पतङ्गाः) पक्षी जैसे उड़नेवाले
ये वे (वां अभीके परिवहन्तु) तुम दोनोंको यज्ञ स्थानके समीप ले जायें ।

१३१ भावार्थ— अग्निदेव धर्मके नेता हैं, उनपर प्रीति करनेवाली सूर्य
की लक्ष्मी कन्या उनके रथपर चढ़कर बैठी है । इस रथको जो घोड़े जोते हैं,
वे शरीरके आकारसे पक्षी जैसे आकारमें उड़नेवाले हैं, वे इस रथको इस
पक्षके समीप ले जायें ।

१३१ मानवधर्म— आकाशयानोंसे पक्षी जोते हुए ले चलें और उनसे ये
यान वेगसे चलयें जायें । नेता उनमें बैठकर जहाँ जाना हो वहाँ जायें ।

१३१ टिप्पणी— इस मन्त्रमें भी आकाशयानोंसे पक्षी जोतनेकी बात कही
है । ' अश्वाः अरूपाः वपुषः वयः पतङ्गाः वां परि वहन्तु । ' = 'घोड़े जो
शरीरके आकारसे लाल पक्षी जैसे दीखते हैं वे तुम्हारे यानको चारों ओर ले
जायें । यहाँ ' अश्व ' पद वेगका ही भाव बताता है । अश्वः = अश्वते अभ्यानं
(निरुण) = जो मार्गको खा जाता है अर्थात् जो अतिवेगवाला है ।

[१३२]

१३२ उद् वन्दनमैरतं दुंसनाभिरुद्भं दत्ता वृषणा शचीभिः ।

निष्टौग्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्वानम् ॥६॥

१३२ उत् । वन्दनम् । ऐरतम् । दुसर्नाभिः ।

उत् । रेभम् । दस्त्रा । वृषणा । शचीभिः ।

निः । तौग्यम् । पारयथः । समुद्रात् ।

पुनरिति । च्यवानम् । चक्रधुः । युवानम् ॥६॥

१३२ अन्ययः— वृषणा दस्त्रा ! दुसर्नाभिः वन्दनं उत् ऐरतं, रेभं शचीभिः उत्, तौग्यं समुद्रात् निः पारयथः, च्यवानं पुनः युवानं चक्रधुः ॥६॥

१३२ अर्थ— हे (वृषणा दस्त्रा) बलिष्ठ तथा शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (दुसर्नाभिः) अपने कौशल्य पूर्ण कर्मेसे (वन्दनं उत् ऐरतं) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठा किया था, (रेभं शचीभिः उत्) रेभको अपनी शक्तिसे तुमने ऊपर उठा किया था, (तौग्यं) तुमके पुत्रको (समुद्रात् निः पारयथः) समुद्रमेंसे ठीक प्रकारसे पार किया था, तथा (च्यवानं पुनः) च्यवानको फिरसे (युवानं चक्रधुः) युवा बना डाला था ।

१३२ भावार्थ— अश्विदेव बलिष्ठ हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं । उन्होंने अपने अद्भुत सामर्थ्यसे वन्दनको तथा रेभ को कुबेसे निकाला, तुम के पुत्र सुगुको समुद्रमेंसे उठाकर घर पहुँचाया था और वृद्ध च्यवानको पुनः तरुण बनाया था ।

१३२ मानवधर्म— कुबेमें पड़ेको ऊपर निकालो, समुद्रमें डूबनेवालेको बाहर निकालकर घर पहुँचाओ, और वृद्धों कोपि प्रयोगसे तरुण बनाओ ।

१३२ टिप्पणी— देखो ' वन्दनः ' ५४, ८७ ६० । ' रेभः ' ५६, १००, १०५ ६० । ' तौग्यः भुज्यु ' ५७, ७१, ७९ ८१ ६० । ' च्यवान ' ८६, ११४ ६० ।

[१३३]

१३३ युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानंमश्विनावधत्तम् ।

युर्व कण्वायापिरिस्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥७॥

१३३ युवम् । अत्रये । अवनीताय । तप्तम् ।

ऊर्जम् । ओमानम् । अश्विनौ । अधत्तम् ।

युवम् । कण्वाय । अपिरिस्ताय । चक्षुः ।

प्रति । अधत्तम् । सुस्तुतिम् । जुजुषाणा ॥७॥

१३३ अन्वयः- अश्विनौ ! अवनीताय अग्रये शुभं तप्तं ओमानं ऊर्जं भव-
त्तम्; सुष्टुतिं नुजपाणा युवं कण्वाय अपिरिस्ताय चक्षुः प्रति भवत्तम् ॥७॥

१३३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (अवनीताय अग्रये) कारावासमें नीचे रख
दिये अग्निके लिए (युवं तप्तं) तुम दोनोंने गर्भ कारागृहको शान्त किया और
उसको (ओमानं ऊर्जं भवत्तं) सुखदायक बलपूर्वक भज दिया (सुष्टुतिं नुज-
पाणा) अच्छी स्तुतिको आदरपूर्वक ग्रहण करते हुए (युवं) तुम दोनोंने
(कण्वाय अपिरिस्ताय) कण्वके लिए जो देखनेमें असमर्थ हो गया था उस
की (चक्षुः प्रति भवत्तं) आँखोंके लिए प्रकाश यत्नाया ।

१३३ भावार्थ- अश्विदेवोंने कारागृहके लक्ष्मणमें रखे अग्नि कपिको सुख
देनेके लिए जलसे भागको शान्त किया, और उसको पुष्टिकारक तथा शक्ति
पूर्वक भज दिया, इसी तरह अश्विदेवोंने रखे कण्वकी आँखोंको मार्ग बतानेके
लिये उन्होंने प्रकाश दिखाया । इस कारण अश्विदेवोंकी सब प्रकारसे
प्रशंसा होती है ।

१३३ मान्यधर्म- जनताके दित करनेके लिये जो लोग कारावासदि कष्ट
भोगते हैं उनको सुख देनेका यत्न करना चाहिये । अश्विदेवों पड़े हुआँ को प्रकाश
दिखाकर योग्य मार्ग बताना चाहिये ।

१३३ टिप्पणी- देखो ' अग्निः ' ५८, ६७, ८४, १०७ इ० । ' कण्वः ' ४३,
५६, १०९ इ० । ओमानं=सुखदायक, संरक्षक । अपिरिस्त=बारों ओरसे लिप्त
किये, बन्द किये, जिस तरह आँखोंपर कपड़ा बांधकर आँसे बन्द करते हैं, उस
तरह आँख बन्द किया हुआ ।

[१३४]

१३४ शुभं धेनुं शयवे नाधितायार्पिन्वतमश्विना पूर्यार्य ।

अमुञ्चतुर्वर्तिकामहंसो निः प्रति जह्यां विश्वलाया अव-
त्तम् ॥८॥

१३४ युवम् । धेनुम् । शयवे । नाधिताय ।

अर्पिन्वतम् । अश्विना । पूर्यार्य ।

अमुञ्चतम् । वर्तिकाम् । अहंसः । निः ।

प्रति । जह्याम् । विश्वलायाः । अवत्तम् ॥८॥

११४ अन्वयः- अग्निना । युवं पूर्वाय नाधिताय शयवे धेनुं अविश्वतम् ;
वर्तिका अंदासा निः अमुषंतं, विशपलाया अहो प्रति अघचम् ॥८॥

११४ अर्थ- हे अग्निदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (पूर्वाय नाधिताय शयवे)
एवं समयमें पावना करनेवाले शयुके क्षिप (धेनुं अविश्वतं) गायको पुष्ट
कर दिया; (वर्तिका अंदासा) बटेर को कष्टसे (निः अमुषंतं) पूर्णतया
सुखाया और (विशपलाया अहो प्रति अघचं) विशपलाको टोंग ठीक प्रकारसे
बिठला दो ।

११४ भाष्यार्थ- अग्निदेवोंने प्रार्थना करनेवाले शयुके लिये गौको सुखाय
बना दिया, बटेरको अहिदेके मुँहसे सुखाया और विशपलाकी [हठी टोंगके
स्थान पर छोड़े की] टोंग लगा दी ।

११४ मानस्यधर्म- गौरो सुधार बनाओ, पशुशक्तियोंको सुरक्षित रहो, हठे
टोंगके स्थानपर बनाबट्टी छोड़ेकी टोंग लगा दो ।

११४ टिप्पणी- देखो ' ऋधु ' १७, १८, १२१ ६० । ' वर्तिका ' ५९, १०,
११५ ६० । ' विशपला ' ६१, ११, ११२ ३० ।

[११५]

११५ युवं श्वेतं पेदय इन्द्रज्वत्महिहर्नमग्निनादत्तमश्वम् ।

जोहूर्त्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीर्यङ्गम् ॥९॥

११५ युवम् । श्वेतम् । पेदवे । इन्द्रज्वत् ।

अहिहर्नम् । अग्निना । अदत्तम् । अश्वम् ।

जोहूर्त्रम् । अर्यः । अभिभूतिम् । उग्रम् ।

सहस्रसाम् । वृषणम् । वीर्यङ्गम् ॥९॥

११५ अन्वयः- अग्निना । युवं अहिहर्नं, श्वेतं, इन्द्रज्वत्, वीर्यङ्गं, उग्रं, अर्यः
अभिभूतिं जोहूर्त्रं, सहस्रसां वृषणं अर्थात् पेदवे अदत्तम् ॥९॥

११५ अर्थ- हे अग्निदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (अहिहर्नं) अहिका
नाश करनेवाले; (श्वेतं इन्द्रज्वत्) सफेद रंगवाले, इन्द्रके द्वारा मेरित, (वीर्य
अंग उग्रं) दृढ शक्ति अंगवाले, (अर्यः अभिभूतिं) शत्रुके पराभवपूर्व
(जोहूर्त्रं) बार बार संघाममें लड़ाने योग्य (सहस्रसां) हजार प्रकारका
दान देनेवाले (वृषणं अर्थात्) बलवान घोड़ेको (पेदवे अदत्तं) पेदुके लिये
दिया था ।

१३५ भावार्थ— भविदेवोंने पेटुके लिए एक सफेद घोड़ा दिया था, जो शत्रुका बध करता था, इन्द्रने उसको सिखाया था, बड़ा सुदृढ़ भंगवाला था, देखनेमें उभ था, शत्रुका पराभव करता था, युद्धमें बड़ा उपयोगी था और सहस्रों प्रकारके धन जीतता था ।

१३५ मानवधर्म- घोड़ेको उत्तम रीतिसे सिखाकर तैयार करना चाहिये जिससे वह युद्धमें बड़ा उपयोगी सिद्ध हो सके । (एक मन्त्रमें वहे गुण उत्तम हैं ऐसी उसे शिक्षा देनी चाहिये ।)

१३५ टिप्पणी- अहि-हन्तः=शत्रुका बध करनेवाला, अहि-भर्यः=शत्रुका । देखो ' पेटुः ' ८२, ११०, १४७ २० ।

[१३६]

१३६ ता वाँ नरा स्वर्षसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।
आ न उपवसुमता रथेन गिरो जुपाणा सुविताय यातम् ॥ १०

१३६ ता । नराम् । नरा । सु । अर्षसे । सुजाता ।

हवामहे । अश्विना । नाधमानाः ।

आ । नः । उप । वसुमता । रथेन । गिरः ।

जुपाणा । सुविताय । यातम् ॥ १० ॥

१३६ मन्त्रार्थ- नरा अश्विना ! सुजाता ता वाँ नाधमानाः सु-अर्षसे हवामहे; गिरः जुपाणा वसुमता रथेन नः उप सुविताय यातम् ॥ १० ॥

१३६ अर्थ- हे (नरा अश्विना) नेता भविदेवो ! (सुजाता ता वाँ) अच्छे कुक्कुमें उत्पन्न विख्यात तुम दोनोंकी (नाधमानाः) सहायतायें प्रार्थना करते हुए हम (सु-अर्षसे हवामहे) अच्छी रक्षाके लिये तुम्हें बुलाते हैं, (गिरः जुपाणा) हमारे गातलोंके आदर पूर्वक सुनते हुए तुम दोनों (वसुमता रथेन) धन वीर्य रखे हुए अपने रथपरसे (नः) हमारे समीप हमारी (सुविताय उप यातम्) भलाईके लिए आओ ।

१३६ भावार्थ- भविदेव उत्तम कुक्कुमें उत्पन्न हुए हैं । वे हमारी -सहायता करें, इसलिये हम उनकी प्रार्थना करते हैं, हमारा मायण सुनते ही वे अपने रथमें उत्तम धन रखकर हमारे पास आ जायें, और हमारी सहायता तथा सुरक्षा करें ।

१३६ मानवधर्म- बुलकी विप्रता रंता । दिव्य धरिंकी प्रशंसा करो और उनकी सहायता प्राप्त करो । नेता लोग अपने पास बहुत धन लेकर आजायें और वे अपने अनुयायियोंकी सब प्रकारसे सहायता करें ।

१३६ टिप्पणी- सुजात=उत्तम पुत्र, कुलीन । नाघमान=प्रार्थना वा याचना करनेवाला । स्ववस्=सु-अवस्=उत्तम सुरक्षा । सुवित=उत्तम प्राप्तव्य, धन, सुख, कल्याण ।

[१३७]

१३७ आ इयेनस्य जवसा नूतनेना-स्मे वातं नासत्या सजोपाः ।

हवे हि वामशिना रातहन्वः शशत्तमाया उपसो वुष्टौ ॥११

१३७ आ । इयेनस्य । जवसा । नूतनेन ।

अस्मे इति । यातम् । नासत्या । सजोपाः ।

हवे । हि । वाम् । अशिना । रातहन्वः ।

शशत्तमायाः । उपसः । विडुष्टौ ॥११॥

१३७ अन्वयः- नासत्या ! सजोपाः इयेनस्य नूतनेन जवसा अस्मे आवातं अशिना । शशत्तमाया उपसः वुष्टौ रातहन्वः वा हवे हि ॥११॥

१३७ अर्थ- हे (नासत्या) ससके पालक देवो ! (सजोपाः) एक साथ कार्य करनेवाले तुम दोनों (इयेनस्य नूतनेन जवसा) इयेन पक्षीके लिये वेग से (अस्मे आवातं) हमारे पास आओ, ॥ अशिदेवो । (शशत्तमायाः उपसः वुष्टौ) शशत्त रहनेवाली उपाके प्रादुर्भाव हो चुकनेपर (रातहन्वः) हविर्भाग को देकर मैं (वा हवे हि) तुम दोनोंको बुला रहा हूँ ।

१३७ भाषार्थ- हे ससके पालनकर्ता अशिदेवो ! तुम दोनों एक विचारसे अपने इयेन पक्षी को अधिक वेगसे दीहाते हुए मेरे पास आओ । बहुत घेरतक टिकनेवाली उपाका उदय होते ही मैं हवि तैयार करके तुम दोनोंको बुला रहा हूँ । (तुम आओ और हवि के लो !)

१३७ मानवधर्म- याँकोंको जोते इयेन पक्षियोंको वेगसे चलाया जावे । उपाः कालमें उठकर अज्रादि आदरातिथ्य की वस्तुओंकी सिद्धता करके नेताओंके आगमनकी प्रतीक्षा अनुयायी करें ।

१३७ टिप्पणी- शशत्तमा उपा=चिरकाल, बहुत ही दिन, टिकनेवाली उपा । उत्तरीय ध्रुव के पास उपा एक मात्र रहती है इस लिये यह शशत्त उपा अश्विनौ १६

कहलती है । ' इत्येनस्य नूतनेन अवसा आयातं ' इत्येन पक्षोंके नवीन अर्थात् अधिकविशेषसे आये । अग्निदेवोंके यानोंको इत्येन पक्षी जोते जाते थे । देखो १२०, १२०, १२१, १२७ ।

[१३८] (अ० १।११९।१-१०), जगती ।

१३८ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराभं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं मुनिनं शतद्रुमुं श्रुष्टीवानं वरिवोधाममि प्रयः ॥१॥

१३८ आ । वाम् । रथम् । पुरुऽमायम् । मुनःऽजुवम् ।
जीरऽअभम् । यज्ञियम् । जीवसे । हुवे ।
सहस्रऽकेतुम् । मुनिनम् । शतद्रुवम् ।
श्रुष्टीऽवानम् । वरिवऽधाम् । अमि । प्रयः ॥१॥

१३८ अन्वयः— वां पुरुमायं, मनोजुवं, यज्ञियं, जीराभं, सहस्रकेतुं, वरिवो-
धाम, शतद्रुमुं, श्रुष्टीवानं रथं प्रयः अमि जीवसे आ हुवे ॥१॥

१३८ अर्थ— (वां) तुम दोनोंके (पुरुमायं मनोजुवं) अनेक कुशल
कारीगर्तसे पूर्ण, मनके सुख वेगवान, (यज्ञियं जीराभं) पूजनीय तथा वेगवान
घोड़ोंसे युक्त, (सहस्र-केतुं) अनेक छेदेवाले (वरिवोधाम) धनका धारण
करनेवाले (शतद्रुमुं) सौ डंगके भय रक्तनेवाले, (श्रुष्टीवानं रथं) शीघ्र
गतिसे युक्त रथको (प्रयः अमि) इक्ष्वाकुके प्रति (जीवसे आहुवे)
जीवनको दीर्घ बनानेके क्रिय में जुटाता हूँ ।

१३८ भाषार्थ— अग्निदेवोंके कौशस्थ युक्त विविध कर्मोंसे निर्माण हुए,
वेगवान, वरिष्ठ, चपल घोड़ोंसे युक्त, अनेक छेदेवाले, सुख देनेवाले, धनका
धारण करनेवाले शीघ्रगामी रथको मेरे दक्षके प्रति में जुटाता हूँ । वे वही भाई
और हमें दीर्घभाग्य देवें ।

१३८ मानवधर्म— मनुष्य पूर्व एक मुनेसे युक्त रथ निर्माण करें । दीर्घ आयु
बनानेके उपाय अपनावें ।

१३८ टिप्पणी— पुरु माय = अनेक रुचकताओंसे निर्माण की भावोन्नतियों युक्त ।
सहस्र केतु = अनेक पक्ष जिसपर सहस्र रहे हैं । वरिवः-धाम=मृदा साधनसे
युक्त । शतद्रुमु=अनेक धन रंगदावाला, शतद्रुमी । श्रुष्टीवान=प्रतिमान, धैर्य-
वालोंने अराम देनेवाला ।

[१३९]

१३९ ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधापि शस्मन्तसमयन्ते
आ दिशः । स्वदामि घर्मे प्रति यन्त्यतय आ वागूर्जानी
रथमभिनारुहत् ॥२॥

१३९ ऊर्ध्वा । धीतिः । प्रति । अस्य । प्रयामनि ।
अधापि । शस्मन् । सम् । अयन्ते । आ । दिशः ।
स्वदामि । घर्मे । प्रति । यन्ति । ऊतयः ।
आ । चाम् । ऊर्जानी । रथम् । अभिना । अरुहत् ॥२॥

१३९ अन्ययः— अभिना । अस्य प्रयामनि धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधापि, दिशः
आ समयन्तः, घर्म स्वदामि, ऊतयः प्रति यन्ति, वा रथं ऊर्जानी आरुहत् ॥२॥

१३९ अर्थ— हे आधिदेवो । (अस्य प्रयामनि) इस रथके आगे बढनेपर
(धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधापि) हमारी बुद्धि स्तुति कार्यके उत्तमवदपर
अधिष्ठित हो चुकी है, स्तुति करने लगी है (दिशः आ समयन्तः) चारों
दिशाओंके लोग इकट्ठे होते हैं, (घर्म स्वदामि) पूत आदि हविको स्वादु
बना देता हूँ, (ऊतयः प्रति यन्ति) रक्षाकी आवोजनाएँ फैल रही हैं, (वा
रथं) तुम होनेके शयन (ऊर्जानी आरुहत्) सूर्यकी तेजस्वी कन्या
चढ़कर बैठी है ।

१३९ भावार्थ— प्रभात होते ही हमारी बुद्धि आधिदेवोंकी प्रशंसा करने
लगी है, सब दिशाओंके लोग इसमें शामिल हुए हैं । अब मैं घृतादि पदार्थ
स्वादु बनाकर पक्षके लिए तैयार रखता हूँ । बज्रसे होनेवाली सब प्रकारकी
संरक्षण शक्तियाँ चारों ओर अपना प्रभाव दिखा रही हैं । आधिदेवोंके शयन
सूर्य की पुत्री चढ़कर बैठी है ।

१३९ मानवघर्म— प्रभात समयमें सब लोग तैयार रहें । चारों ओरके लोग
भी आकर शामिल हों । घृतादि पदार्थ तैयार किये जावें । सब लोग शुभ कर्ममें
दायित्व हों । हर एक सबकी सुरक्षा करनेके लिये कटिबद्ध हो । सब सुरक्षित रहें ।

१३९ टिप्पणी— शस्मन्=प्रशंसाके कार्यमें मन लगाया । ऊर्जानी बल
देनेवाली प्रभा ।

[१४०]

१४० सं यन्मिथः, पस्पृधानासो अगमत् शुभे मखा, अमिता
जायवो रणे । युवोरहं प्रवणे चेकिते रथो यदधिना वहथः
सुरिमा वरम् ॥३॥

१४० सम् । यत् । मिथः । पस्पृधानासः । अगमत् ।

शुभे । मखाः । अमिताः । जायवः । रणे ।

युवोः । अहं । प्रवणे । चेकिते । रथः ।

यत् । अशिना । वहथः । सुरिम् । आ । वरम् ॥३॥

१४० अन्वयः— अशिना यत् शुभे रणे अमिताः जायवः मखाः मिथः परस्पर-
भावात् । सं अगमत् ; युवोः रथः अहं प्रवणे चेकिते यत् वरं सुरिं आवहयः ॥३॥

१४० अर्थ— हे अशिदेवो ! (यत् शुभे रणे) जब लोककल्याण के लिए
किये जानेवाले युद्धमें (अमिता, जायव) अनेकजणों (मखाः) सहनीय
'वीरकीर्ति' (मिथ पस्पृधानासः) परस्पर स्पर्धा करते हुए (सं अगमत्) झट्टे
हो जाते हैं, तब (युवोः रथः अहं) तुम दोनोंका रथभी (प्रवणे चेकिते)
'निश्चय'से उतरता हुआ बीसता है, (यत्) जिसमें तुम (वरं सुरिं आव-
हयः) अष्ट धन शानिके पास के आते हो ।

१४० भाष्यार्थ— जनताका हित करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जब
अनेक जणों वीर परस्पर स्पर्धा करते हुए झट्टे हो जाते हैं और लड़ने लगते
हैं, तब अशिदेवोंका रथ शनैः शनैः नीचे आता हुआ बीसता है । इस रथमें
वे विद्वान् राजकोंको देनेके लिये उत्तम प्रकारके धन अपने साथ के आते हैं ।

१४० मानवधर्म— जनताका हित करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें अनेक
जणों वीर शामिल हों और धर्मयुद्ध करें । इस युद्धके युद्धपमान वीरोंकी सहायता
करनेके लिये [स्वयंसेवक] रथसे आजायें और वे आवश्यक सहायता पहुँचा दें ।

१४० टिप्पणी— जायु = निजयन्त्री इच्छावाले । प्रवण = दलती जगह ।
सुरिः = विद्वान्, शानी ।

[१४१]

१४१ युवं भुज्युं मुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्यु
आ । यासिष्टं चतिर्पृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति
वामवः ॥४॥

१३६ मानवधर्म- कुतर्ही पवित्रता रखें। दिव्य वरोंकी प्रशंसा करो और उनकी सहायता प्राप्त करो। नेता लोग अपने पास बहुत धन लेकर आजायें और वे अपने अनुयायियोंकी सख प्रशंसासे सहायता करें।

१३६ टिप्पणी- सुजात=उत्तम कुलमें उत्पन्न, कुलीन। नाधमान=प्रार्थना वा याचना करनेवाला। स्वधस्=सु-अवस्=उत्तम सुरक्षा। सुवित=उत्तम प्राप्तव्य, धन, सुख, कल्याण।

[१३७]

१३७ आ। इयेनस्य ज्वसा नूतनेन। स्मे यातं नासत्या सजोषा॥
हवे हि वामशिना रातहव्यः शश्वत्तमाया उपसो व्युष्टौ॥११

१३७ आ। इयेनस्य। ज्वसा। नूतनेन।
अस्मे इति। यातम्। नासत्या। सजोषाः।
हवे। हि। वाम्। अशिना। रातहव्यः।
शश्वत्तमायाः। उपसः। व्युष्टौ॥११॥

१३७ अन्यथा- नासत्या ! सजोषाः इयेनस्य नूतनेन ज्वसा अस्मे आयातं अशिना ! शश्वत्तमाया उपसः व्युष्टौ रातहव्यः वा हवे हि ॥११॥

१३७ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो ! (सजोषाः) एक साथ कार्य करनेवाले तुम दोनों (इयेनस्य नूतनेन ज्वसा) इयेन पंछीके नये वेग से (अस्मे आयातं) हमारे पास आओ, हे अशिदेवो ! (शश्वत्तमायाः उपसः व्युष्टौ) शाश्वत रहनेवाली उपाके प्रादुर्भाव हो चुकनेपर (रातहव्यः) द्विभाग को देकर मैं (वो हवे हि) तुम दोनोंको बुला रहा हूँ।

१३७ भावार्थ- हे सत्यके पालनकर्ता अशिदेवो ! तुम दोनों एक विचारसे अपने इयेन पक्षी को अन्निक वेगसे दौड़ाते हुए मेरे पास आओ। बहुत देरतक टिकनेवाली उपाका उदय होते ही मैं हवि तैयार करके तुम दोनोंको बुला रहा हूँ। (तुम आओ और हवि ले लो।)

१३७ मानवधर्म- यानोंको जेते इयेन पक्षियोंको वेगसे चलाया जावे। उपाः कालमें उठकर अन्नदि आदरातिथ्य की वस्तुओंकी सिद्धता करके नेताओंके आगमनकी प्रतीक्षा अनुयायी करें।

१३७ टिप्पणी- शश्वत्तमा उपा=निरकाल, बहुत ही दिन, टिकनेवाली उपा। उत्तरीप ध्रुव के पास उपा एक मास रहती है इस लिये वह शाश्वत उपा समझी ९६

१४२ युवोः । अश्विना । वपुषे । युवाऽयुजम् ।
 रथम् । वाणी इति । येमतुः । अस्य । शर्ष्यम् ।
 आ । वाम् । पतिऽस्त्वम् । सख्याय । जग्मुषी ।
 योषा । अवृणीत । जेन्या । युवाम् । पती इति ॥५॥

१४२ अन्वयः— अश्विना । युवोः वपुषे युवायुजं रथं, अस्य शर्ष्यं
 वाणी येमतुः सख्याय जग्मुषी जेन्या योषा यां पतिर्यं आ; युवां पती
 अवृणीत ॥५॥

१४२ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (युवोः वपुषे) तुम दोनोंकी शोभा बढ़ानेके
 लिए (युवा युजं रथं) तुम दोनोंके द्वारा जोते हुए रथको तथा, (अस्य
 शर्ष्यं) इसके बलको तुम्हारी (वाणी येमतुः) वाणी नियंत्रित करसुकी
 (सख्याय जग्मुषी) मित्रताकी इच्छा करनेवाली (जेन्या योषा) विजयसे
 प्राप्त करनेयोग्य स्त्री (यां पतिर्यं आ) तुम दोनोंसे पतिरथकी कामना करने
 वाली (युवां पती अवृणीत) तुम दोनोंको पतिके रूपमें स्वीकार कर लुकी ।

१४२ भावार्थ— अश्विदेवोंने स्वयं अपना रथ जोता था, उस पर उनके चढ़-
 कर बैठनेसे वे बड़े सुशोभित दीखने लगे, केवल शश्वोंके इशारेसे ही वे रथको
 चलाने लगे । [पहुंचनेके स्थान पर सब देवोंसे पहिले वे पहुंचे ।] इसलिये
 सूर्य की पुत्रीने [स्वयंवरमें] उनकी पति रूपसे स्वीकार किया । (पश्चात्
 वह सूर्य पुत्री उनके रथ पर चढ़कर बैठ गयी ।)

१४२ मानवधर्म— वीर अपने रथको स्वयं जोतें, उसपर चढ़कर बैठ जावें,
 पीछे ऐसे शिक्षित करें कि केवल इशारेके शश्वोंसे ही वे चलने लगे । स्वयंवर की
 घाँटें पूर्ण करके स्त्रीको पत्नीरूपसे प्राप्त करें और इसकी वरात घरमें ले आवे ।

[१४३]

१४३ युवं रेभं परिपूतेरुप्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमग्रये ।

युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥६॥

१४३ युवम् । रेभम् । परिऽसुतेः । उरुप्यथः ।

हिमेन । घर्मम् । परिऽस्तप्तम् । अग्रये ।

युवम् । शयोः । अवसम् । पिप्यथुः । गवि ।

प्र । दीर्घेण । वन्दनः । तारि । आयुषा ॥६॥

१४३ अन्वयः— युवं परिपूतेः रेभं उरुष्यथः, अत्रये परितप्तं घर्मं दिमेन;
शयोः गवि युवं अवसे पिप्पथुः, दीर्घेण आयुषा यन्दनः सारि ॥६॥

१४३ अर्थ— (युवं) तुम दोनोंने (परिपूतेः) संकटसे (रेभं उरुष्यथः)
रेभको बचाया, (अत्रये) अत्रिके लिए (परितप्तं घर्मं) अत्यन्त गर्म रघान
को (दिमेन) बर्फसे ठंढा बनाया, (शयोः गवि) शयुकी गौमें (युवं अवसे
पिप्पथुः) तुम दोनोंने संरक्षणोपयोगी दूध पर्याप्त मात्रामें बचाया और
(दीर्घेण आयुषा) दीर्घ जीवन देकर (यन्दनः सारि) यन्दनका तुमने
सारण किया ।

१४३ भाषार्थ— अभिदेवोंने रेभको संकटसे बचाया, अत्रिके कारावासकी
गर्मीको हिम दृष्टीसे शान्त किया, शयुके लिये बसकी गौको दुधाह बना
दिया और यन्दनको दीर्घायु किया ।

१४३ मानवधर्म— संकटमें पड़े हुएोंकी सहायता करो, गौको दुधाह बनाओ,
दीर्घ आयुवालि बना ।

१४३ टिप्पणी— देखो ' रेभ ' ५६, १००, १०५ इ० । ' अत्रिः ' ५८, ६७,
१०४ इ० । ' शयु ' ६७, ९८, १२३ इ० । ' यन्दन ' ५६, ८७, १०६ इ० ।

[६४४]

१४४ युवं वन्दनं निर्वृतं जरुष्यथा रथं न दत्ता करुणा समि-
न्वथः । क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र चामत्रं विधत्ते
दंसना भुवत् ॥७॥

१४४ युवम् । वन्दनम् । निःऽकृतम् । जरुष्यथा ।

रथम् । न । दत्ता । करुणा । सम् । इन्वथः ।

क्षेत्रात् । आ । विप्रम् । जनथः । विपन्यया ।

प्र । चाम् । अत्र । विधत्ते । दंसना । भुवत् ॥७॥

१४४ अन्वयः— दत्ता करुणा । जरुष्यथा निर्वृतं वन्दनं युवं रथं न
समिन्वथः, विपन्यया विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः, चां दंसना अत्र विधत्ते प्र
भुवत् ॥७॥

१४४ अर्थ— हे (दत्ता करुणा) शत्रुविनाशकर्ता एवं कार्य कुशल भवि
देवो ! (जरुष्यथा निर्वृतं वन्दन) श्रुदापेक्षे पूर्णतया भरत वन्दनको (युवं)

तुम दोनोंने (रंगे न, समिन्वयः) पुराना रथ दुस्त करके नया सा बना देते हैं, उस तरह, तरुण बना दिया । (विपन्मया) स्तुतिसे प्रसन्न होकर (विमं क्षेत्रात् वा जनयः) शानीको क्षेत्रसे उत्पन्न किया, अतः (वा दंसना) तुम दोनोंके ये कार्य (अत्र विद्यते) यहाँके कार्यकर्ताके लिए (प्रभुवत्) बड़े प्रभावशाली बने हैं ।

१४४ भावार्थ— शत्रुका नाश करनेवाले अग्निदेवोंने, जिस तरह बटई पुराना रथ दुस्त करके नया सा बना देता है, उस तरह अत्यंत जीर्ण वन्दनको तरुण बनाया, स्तुतिसे प्रसन्न होकर उस विप्रको, भूमिसे वृक्ष नया उगता है विसा, तरुण सा बना दिया । ये उनके कार्य यहाँके कार्यकर्ताओंको बड़े प्रभावशाली प्रतीत हुए हैं ।

१४४ मानवधर्म— वृद्धोंको तरुण बनाओ और नवजीवन प्राप्त करो । [आयुर्वेद की यह सिद्धि प्राप्त करो ।]

१४४ टिप्पणी— देखो 'चन्दन' पृष्ठ ८५, १०६ इ.।

[१४५]

१४५ अगच्छतुं कृपमाणं परावर्ति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् । स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोर्ह चित्रा अमीके अमवन्नभिष्टयः ॥८॥

१४५ अगच्छतम् । कृपमाणम् । परावर्ति ।

पितुः । स्वस्य । त्यजसा । निबाधितम् ।

स्वःऽवर्तीः । इतः । ऊतीः । युवोः । अह ।

चित्राः । अमीके । अमवन् । अभिष्टयः ॥८॥

१४५ अन्वयः— स्वस्य पितुः त्यजसा नि बाधितं कृपमाणं परावर्ति अगच्छतं युवोः अह ऊतीः इतः स्वर्वतीः, अमीके चित्राः अभिष्टयः अमवन् ॥८॥

१४५ अर्थ— (स्वस्य पितुः त्यजसा) अपने ही तुम नामक पिताके त्याग देनेसे (नि बाधितं) पीड़ित हुए अतः (कृपमाणं) मार्थना करनेवाले भुशु के समीप (परावर्ति अगच्छतं) दूरवर्ती देशमें भी तुम दोनों चलेगये थे (युवोः अह) तुम दोनोंकी ही ये (ऊतीः) संरक्षण योजनाएँ (इतः स्वर्वतीः) इस तरह सेमसे मुक्त और (अमीके) सुरक्ष (चित्राः अभिष्टयः अमवन्) बहुत अभिलषणीय हो चुकी हैं ।

१४५ भावार्थ- [तुम नरेक्षने] अपने पुत्र [भुज्यु] को [समुद्रमें] नौकाओंमें पिछलाकर दूर देशमें] भेज दिया था । वहाँ उसको कष्ट होने लगे, तब उसने प्रार्थना की, (उसे सुनकर दोनों भविदेव) वहाँ गये (और उसकी वचाया ।) ऐसी तुम्हारी संरक्षणकी- धायोजनाएँ यही अद्भुत तेजस्वी और सबके लिए चान्दनीय हैं ।

१४५ मानवधर्म- हूबते हुआँरो वचाओ ।

१४५ टिप्पणी- देखो ' तुम और भुज्यु ' ५७, ७१, ७९-८१ इ.

[१४६]

१४६ उ० स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुव-
न्यति । युवं दधीचो मन आ विवासथो ऽथा शिरः प्रति वाम-
श्च्यं वदत् ॥९॥

१४६ उ० । स्या । वाम् । मधुमत् । मक्षिका । अपत् ।

मदे । सोमस्य । औशिजः । हुवन्यति ।

युवम् । दधीचः । मनः । आ । विवासथः ।

अर्थ । शिरः । प्रति । वाम् । अश्च्यम् । वदत् ॥९॥

१४६ अन्वयः- स्या मक्षिका वां मधुमत् अपत्, उत सोमस्यं मदे औशिजः हुवन्यति, दधीचः मनः युवं आ विवासथः, अथ- अश्च्यं शिरः वां प्रति अवदत् ॥९॥

१४६ अर्थ- जिस तरह (स्या मक्षिका) वह मधुमक्खी (वां मधुमत् अपत्) तुम दोनोंके लिए मधुस्वरसे कूजन करने लगी, (उत) उस तरह (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (औशिजः हुवन्यति) शशिकृष्ण पुत्र कक्षीवान तुम्हें सुलाता है, (दधीच मनः) दध्यक्ष मन (युवं आ विवास-
थः) तुम दोनों सेवासे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हो (अथ) पश्चात् ही (अश्च्यं शिरः वां प्रति अवदत्) घोड़ेका बनाया हुआ सार तुम दोनोंसे उपदेश कर चुका ।

१४६ भावार्थ- मधुमक्षिका जैसी भीड़े स्वरसे गुंजन करती है, उस तरह, सोमपानके आनन्दमें शशिकृष्ण पुत्र कक्षीवान मधुर स्वरसे तुम्हें अपनी सुरक्षा के लिये सुलाता है । दधीची ऋषिका मन तुमने अपनी सेवासे अपनी भविनी दे- १७

और आकर्षित किया था, ब्रह्मात् तुमने उसको चोटेका सिर लगाया और उस के बाद उन्होंने तुम्हें मधु विद्या का उपदेश किया ।

१४६ मानवधर्म- मधुर स्वरमें गायन करो, सेवा करके गुरुको प्रसन्न करो और उससे गुप्त विद्याको प्राप्त करो ।

१४६ टिप्पणी- दधीची, दध्यङ् देखो ८८, १२३, १४६ 'मक्षिका' ७२, १४६ । मधुविद्या वृ० उ० २।५।

[१४७]

१४७ युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृषां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्वैरभिधुं पृतनासु दुस्तरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्पणीसहम् ॥१०॥

१४७ युवम् । पेदवे । पुरुवारम् । अश्विना ।
स्पृषाम् । श्वेतम् । तरुतारम् । दुवस्यथः ।
शर्वैः । अभिऽधुम् । पृतनासु । दुस्तरम् ।
चर्कृत्यम् । इन्द्रम् इव । चर्पणिऽसहम् ॥१०॥

१४७ अन्वयः- अश्विना! युवं पुरुवारं, अभिधुं स्पृषां तरुतारं, शर्वैः पृतनासु दुस्तरं, इन्द्रं इव चर्पणीसहं, चर्कृत्यं श्वेतं पेदवे दुवस्यथः ॥१०॥

१४७ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (पुरुवारं अभिधुं) बहुतों द्वारा स्वीकार करने योग्य, दीप्तिमान, (स्पृषां तरुतारं) स्पृषा करनेवालोंको पार ले चकनेवाले, (शर्वैः पृतनासु दुस्तरं) योद्धाओंसे लड़ाईमें अजेय, (इन्द्रं इव चर्पणीसहं) इन्द्रके समान शत्रुओंके पराभवकर्ता, (चर्कृत्यं श्वेतं) असंयत कार्यशील और सकेद रंगवाले घोड़ेको (पेदवे दुवस्यथः) वेदु नरेशके लिए समर्पित करते हो ।

१४७ भाषार्थ- अश्विदेवोंने प्रशंसनीय, तेजस्वी, युद्धमें विजयी, शत्रु धीरोसे अभिषय, इन्द्र जैसा युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला, चपल श्वेत घोड़ा वेदु नरेश को दिया था ।

१४७ मानवधर्म- घोड़ेको ऐसा निश्चित करना चाहिये कि जो गुशिक्षा प्राप्त करके पूर्वांक गुणोंसे युक्त बने ।

१४७ टिप्पणी- देखो 'वेदु' ८२, ११०, १३५ इ० ।

[१४८] (क्र० १।१२०।१-१२)

(१२ दुःस्वप्ननाशनम्) । १ गायत्री, २ ककुप्, ३ का-विराट्,
४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-पृहती,
८ कृतिः, ९ विषट्, १०-१२ गायत्री ।

१४८ का राधद्वोत्राश्विना वां को वां जोषं उभयोः ।

कथा विधात्यप्रचेताः ॥१॥

१४८ का । राधत् । होत्रा । अश्विना । वाम् ।

कः । वाम् । जोषे । उभयोः ।

कथा । विधाति । अप्रचेताः ॥१॥

१४८ अन्वयः- अश्विना । वां का होत्रा राधत् ? उभयोः वां जोषे कः ?
अप्रचेताः कथा विधाति ? ॥१॥

१४८ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंको (का होत्रा राधत्)
किस तरह की स्तुति प्रसन्न कर सकती है ? (उभयोः वां जोषे कः) तुम
दोनोंका संतोष करनेमें कौन सफल होगा ? (अप्रचेताः कथा विधाति]
अज्ञानी तुम्हारी उपासना किस तरह करे ?

१४८ टिप्पणी- ये साधारण प्रश्न ही हैं इसलिये इनके भावार्थ आदिकी
कोई आवश्यकता नहीं है ।

[१४९]

१४९ विद्वांसवित् दुरः पृच्छेदविद्वान्नित्थार्परो अचेताः ।

नू चिन्तु मर्ते अक्रौ ॥२॥

१४९ विद्वांसौ । इत् । दुरः । पृच्छेत् ।

अविद्वान् । इत्था । अपरः । अचेताः ।

नु । चित् । नु । मर्ते । अक्रौ ॥२॥

१४९ अन्वयः- अविद्वान् अपरः अचेताः इत्यादिद्वौ इत् दुरः पृच्छेत्,
मर्ते अक्रौ नु चित् नु ॥२॥

१४९ अर्थ- (अविद्वान्) अज्ञानी और (अपरः अप्रचेताः) दूसरा अप्रवृत्त
ये दोनों (इत्यादि) इस तरह (विद्वांसौ इत्) विद्वान् अश्विदेवोत्ते ही (दुरः
पृच्छेत्) मार्ग पूछ किया करे । क्या कभी (मर्ते) मानवके विषयमें (अ-क्रौ)
न करनेकी बात (नु चित् नु) ये कभी करेंगे ? [कभी नहीं ।]

१४९ भाषार्थ— अज्ञानी अथवा अप्रबुद्ध ये दोनों अभिदेवोंसे अपनी उन्नतिको मार्ग पूछलियाँ करें, क्योंकि वे मनुष्यके लिये कुछ नहीं करेंगे ऐसा कुछ भी नहीं है ।

१४९ मानवधर्म— जनताका हित करनेके लिये जो हो सकता है वह सब करना चाहिये ।

१४९ टिप्पणी— दुर=द्वार, मार्ग । अ-प्र=न करना, -सुश्रुषे । आवन्त न होना ।

[१५०]

१५० ता विद्वांसां हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेत-
मथ । प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ॥३॥

१५० ता । विद्वांसा । हवामहे । वाम् ।

ता । नः । विद्वांसा । मन्म । वोचेतम् । अथ ।

प्र । प्रार्चत् । दयमानः । युवाकुः ॥३॥

१५० अन्वय — ताः वा विद्वांसा हवामहे, अथ नः ता विद्वांसा मन्म वोचे-
तम् । युवाकुः दयमानः प्र प्रार्चत् ॥३॥

१५० अर्थ— (ता वा) उन विख्यात तुम दोनों (विद्वांसा हवामहे) विद्वा-
नोंकी हम सुकाले हैं, (अथ नः) आज हमें (ता विद्वांसा) वे दोनों विद्वान्
अभिदेव (मन्म वोचेतम्) मननके योग्य उपदेश सुनावें, (युवाकुः) तुम दोनों
के संपर्ककी इच्छा करता हुआ यह मानव (दयमानः प्र प्रार्चत्) हवि अर्पण
करता हुआ तुम्हारी पूजा करता है ।

१५० भाषार्थ— हम सहायतार्थ विद्वान् अभिदेवोंको सुकाले हैं । वे आकर
हमें योग्य उपदेश दें । उनकी मिश्रताकी इच्छा करनेवाला, भक्तका प्रदात
करता हुआ, मैं उनकी पूजा करता हूँ ।

१५० मानवधर्म— मनुष्य विद्वानोंकी सदायता लेवे । वे उनकी योग्य मार्गमा
उपदेश करें । उसके बदले मनुष्य उन विद्वानोंका बड़ा आदर करे । इस तरह दोनों
'परस्परकी सदायता करके उन्नति को प्राप्त करें ।

१५० टिप्पणी— मन्म = मनन करने योग्य उपदेश, स्तोत्र, मननीय विचार ।
दयमानः = दान देनेवाला, समर्पण करनेवाला । परस्परं आचरन्ताः (गीता
३।१।) देखो ।

[१५१]

१५१ वि पृच्छामि पाक्याऽ न देवान् वर्षद्भुतस्याद्भुतस्य दत्ता ।
पातं च सख्यसो युवं च रम्यसो नः ॥४॥

१५१ वि । पृच्छामि । पाक्या । न । देवान् ।

वर्षद्भुतस्य । अद्भुतस्य । दत्ता ।

पातम् । च । सख्यसः । युवम् । च । रम्यसः । नः ॥४॥

१५१ अन्वयाः- दत्ता । वि पृच्छामि, पाक्या देवान् न, अद्भुतस्य वर्षद्भुत-
स्य सख्यसः च युवं पातं, न रम्यसः ॥ ॥४॥

१५१ अर्थ- हे (दत्ता) शत्रुके बिनाशकर्ता भविदेवो ! तुम दोनोंसे (वि
पृच्छामि) मैं विशेष रूपसे पूछता हूँ, (पाक्या देवान् न) अन्य अपरिपक्व
सुद्धिवाले देवोंसे नहीं पूछना चाहता । (अद्भुतस्य वर्षद्भुतस्य सख्यसः च)
विचित्र फल देनेहारि, वर्षद्भुतकार पूर्वक दिव्य हुए तथा बलके उत्पादक हम सोम-
रसका (युवं पातं) तुम दोनों सेवन करो, (नः रम्यसः च) और हमें बड़े
कार्य करनेमें समर्थ बनाओ ।

१५१ भावार्थ- हे शत्रुका घात करनेवाले भविदेवो ! मेरी प्रार्थना तुमसे
ही है, किसी अन्यसे नहीं । आपही इस भरे तैयार किये सोमरसका स्वीकार
कीजिये और मुझे बड़े कार्य करनेमें समर्थ बनाइये ।

१५१ मानवधर्म- [राष्ट्रमें] शिक्षा ऐसा प्रबंध करो कि जिससे बड़े बड़े
कार्य करनेवाले महापुरुष निर्माण हों ।

१५१ टिप्पणी- पाक्य = परिपक्व होनेवाला, जो मात्र अपूर्ण है । रम्यस =
श्रीवीरताके बड़े कर्म करनेवाला ।

[१५२]

१५२ प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पत्रियो
वाम् । प्रैष्युर्न विद्वान् ॥५॥

१५२ प्र । या । घोषे । भृगवाणे । न । शोभे ।

यया । वाचा । यजति । पत्रियः । वाम् ।

प्र । इष्युः । न । विद्वान् ॥५॥

१५२ अन्वय- या घोषे भृगवाणे न प्र शोभे, विद्वान् इषयुः पत्रियः न यथा वाचा नो यजति ॥५॥

१५२ अर्थ- (या) जो वाणी (घोषे भृगवाणे न) घोषके पुत्र तथा भृग-
वाणश्रुतिमें (प्र शोभे) अत्यन्त सुशोभित हो रही है, और (विद्वान् इषयुः)
ज्ञानी और अज्ञको पादनेवाले (पत्रियः न) अंगिरस कुलमें उत्पन्न ऋषिके
समान (यथा वाचा) जिस वाणीसे वह (वां यजति) सुमनोंकी पूजा
करता है, वह वाणी मुझमें रहे ।

१५२ भावार्थ- घोषा ऋषिका पुत्र, भृगु ऋषि और पत्र कुलमें उत्पन्न
अंगिरा ऋषि जिस तरह की स्तुति करते रहे, उस तरह की वर्णन शीघ्री मेरी
वाणीमें हो ।

१५३ मानवधर्म- प्राचीनकालके भेठ विद्वानोंके समान प्रमादशाली वक्तृत्व
मनुष्य अपनेमें बढावे ।

१५३ टिप्पणी- घोषा = एक ऋषिक, विदुषी । भृगवाणाः = भृगु ऋषि ।
पत्रियः = पत्र कुलमें उत्पन्न अंगिरस ऋषि, उनके कुलमें उत्पन्न वर्क्षियान् ऋषि ।

[१५३]

१५३ श्रुतं गायत्रं तर्कवानस्याहं चिद्धि रिरेशाश्विना वाम् ।

आक्षी शुभस्वती दन् ॥६॥

१५३ श्रुतम् । गायत्रम् । तर्कवानस्य । अहम् ।

चित् । हि । रिरेश् । अश्विना । वाम् ।

आ । अक्षी इति । शुभः । पत्नी इति । दन् ॥६॥

१५३ अन्वयः- शुभस्वती अश्विना । तर्कवानस्य गायत्रं श्रुतं, अक्षी
आदन् अहं वा चित् हि रिरेश् ॥ ६ ॥

१५३ अर्थ- हे (शुभस्वती) शुभके अधिपति अश्विदेवो ! (तर्कवानस्य
गायत्रं श्रुतं) प्रगति करनेवाले ऋषि का स्तोत्र तुम दोनोंने सुनलिया, (अक्षी
आदन्) तुम दोनों की दी हुई नेत्र शक्ति का ग्रहण करता हुआ (अहं) मैं
ही (वा चित् हि) तुम दोनोंकी यह (रिरेश्) प्रशंसा कर रहा हूँ ।

१५३ भावार्थ- हे शुभकारी अश्विदेवो । प्रगति करनेकी इच्छा करने-
वाले ऋषिने यह गायत्र छन्दका सामगान किया था, वह भावने सुन लिया
है । तुमने उसको रही दी, इसी तरह मैं भी तुम्हारा गुणगान करता हूँ, मुझे
भी शक्ति संपन्न करो ।

१५३ टिप्पणी- तक्धानः=तक्-गतौ, तक्=गति, प्रगति, शीघ्र गति ।
तक्धान=गतिमान्, शीघ्रगामी, प्रगतिशील ।

[१५४]

१५४ युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यच्चिस्ततंसतम् ।

ता नो वक्ष सुगोषा स्यात् पातं नो वृकादघायोः ॥७॥

१५४ युवम् । हि । आस्तम् । महः । रन् ।

युवम् । वा । यत् । निःऽअतंसतम् ।

ता । नः । वसु इति । सुगोषा । स्यात्तम् ।

पातम् । नः । वृकात् । अघऽयोः ॥७॥

१५४ अन्वयः— वक्षु । युवं हि महः रन् आस्तं, यत् युवं वा निः अत-
तंसतम्; ता न. सुगोषा स्यात्, नः अघायोः वृकात् पातम् ॥७॥

१५४ अर्थ—हे (वक्षु) सबको बसानेवाले भविदेवो ! (युवं हि) तुम
दोनों छत्रमुच (महः रन् आस्तं) बड़ा मारी दान देते रहते हो भीर (यत्)
जिसे (युवं) तुम दोनों (निः अतंसतं वा) चाहे अब पूर्णतया हटा भी
लेते हो; (ता) ऐसे प्रसिद्ध तुम दोनों (न सुगोषा स्यात्) हमारी भण्टी
रक्षा करनेवाले बनो, (न. अघायोः वृकात् पातं) हमें पापी भीर भेदिपके
तुम्हारे क्रोधीसे बचाओ ।

१५४ भावार्थ— हे भविदेवो ! तुम दोनों किसीको बड़ा दान देते भी
हो भीर किसीसे धन हटा भी लेते हो । ऐसे भाव दोनों हमारे रक्षक बनो
भीर पापी तथा क्रोधी से हमें बचाओ ।

१५४ मानवधर्म— योग्य मनुष्योंको दान देना चाहिये, तथा दुष्टोंको दण्ड भी
देना चाहिये । लोगोंकी सुरक्षा करना चाहिये । पापी और क्रोधिवासे जनतासे
बचाना चाहिये ।

१५४ टिप्पणी- रन् (रा दाने)=दान देना । अघायुः=पापी आधुराता,
पापी जीवनवाला । वृक =गोटिया, लालची, क्रूर हिंसक ।

[१५५]

१५५ मा कस्मै धातमस्यमित्रिणो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो

गुः । स्तनामृजो अशिश्वीः ॥८॥

१५५ मा । कस्मै । धातम् । अभि । अमित्रिणे । नः ।

मा । अकुत्र । नः । गृहेभ्यः । धेनवः । गुः ।

स्तनऽभुजः । अशिश्नीः ॥८॥

१५५ अन्वयः— कस्मै अमित्रिणे नः मा धातं, नः स्तनाभुजः धेनवः अशिश्नी गृहेभ्यः मा कुत्र गुः ॥ ८ ॥

१५५ अर्थ— (कस्मै अमित्रिणे) किसी भी शत्रुके (अभि न मा धातं) सम्मुख हमें न रखदो, (नः) हमारी (स्तना भुजः धेनवः) स्तनके दूधसे भरण पोषण करने वाली गौएँ (अशिश्नीः) बछड़ोंसे विमुक्त होकर (गृहेभ्यः मा कुत्र गुः) घरोंसे कहीं न निकल जायें ।

१५५ भावार्थ— किसी भी प्रकारके शत्रुके सामने हमें न रखो । गौएँ हमारा पोषण अपने दूधसे करती हैं, अतः वे हमारे घरोंसे दूर न जायें । सदा हमारे घरमें ही रहें ।

१५५ मानऽधर्म— अपने किसी मनुष्यकी शत्रुके सामने छोटकर स्वयं दूर न जा उचित नहीं है । गौओंके सदा अपने घरमें अपनी निगरानीमें रखना उचित है ।

१५५ टिप्पणी— स्तनाभुज = स्तनोंसे दूध देकर पोषण करनेवाली । अ-शि-श्नी = छड़ोंसे विमुक्त ।

[१५६]

१५६ दुहीयन् मित्रधितये युवाकुं राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इपे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥९॥

१५६ दुहीयन् । मित्रऽधितये । युवाकुं ।

राये । च । नः । मिमीतम् । वाजवत्यै ।

इपे । च । नः । मिमीतम् । धेनुमत्यै ॥९॥

१५६ अन्वयः युवाकुं मित्रधितये दुहीयन्, वाजवत्यै राये च धेनुमत्यै इपे च न मिमीतम् ॥ ९ ॥

१५६ अर्थ (युवाकुं) तुमसे सबके रखनेकी इच्छा करनेवाले लोग (मित्र धितये दुहीयन्) मित्रोंके भरण पोषणार्थ तुम दोनोंसे पर्याप्त सपत्तिका दोहन करते हैं, इसलिये (वाजवत्यै राये च धेनुमत्यै इपे च) बछे शुक्र घन और गोधन युक्त भद्र (न. मिमीत) हमें दे डालनेका निर्धार करो ।

१५६ भावार्थ- हम तुम्हारे साथ अनुयायी होकर रहनेकी इच्छा करते हैं, अतः जिस तरह मित्रकी सहायता करते हैं, उस तरह हमें बलवर्धक धन और गौर्वासे प्राप्त होनेवाला दूध पर्याप्त परिमाणमें मिलता रहे ऐसा प्रबन्ध करो ।

१५६ मानवधर्म- अनुयायियोंको उत्तम धन और बल वर्धक और पोषक अन्न अर्थात् गायका दूध मिलता रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये ।

१५६ टिप्पणी- युवाकु=संमिश्रित होनेवाला, साथ रहनेवाला । मित्र-धीति.=मित्रोंका पालन, मित्रोंका पोषण ।

[१५७]

१५७ अश्विनौरसनं रथमनश्च वाजिनीवतोः ।

तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥

१५७ अश्विनोः । असनम् । रथम् ।

अनश्चम् । वाजिनीवतोः ।

तेन । अहम् । भूरि । चाकन ॥१०॥

१५७ अव्ययः- वाजिनीवतोः अनश्च रथं असनं, अहं तेन भूरि चाकन ॥१०

१५७ अर्थ- (वाजिनीवतोः) सेनासे युक्त अधिदेवोंके (अश्वे रथं) घोड़ोंके बिना चलनेवाले रथको (असनं) में प्राप्त करणका हूं, (अहं) मैं (तेन भूरि चाकन) उससे बहुतसा यश मिलनेकी इच्छा करता हूं ।

१५७ भावार्थ- अधिदेवोंसे घोड़ोंके बिना चलनेवाला रथ मुझे मिला है, इससे बहुतसा यश मिलनेकी मुझे आशा है ।

१५७ मानवधर्म- घोड़ोंके बिना चलनेवाला रथ बनाओ, और उगरे यश यश कमाओ ।

१५७ टिप्पणी- वाजिनीवत्=सेनासे युक्त, वज्रयुक्त, बलयुक्त । अन्-अश्व.=घोड़ोंके बिना चलनेवाला ।

[१५८]

१५८ अयं समह मा तनुह्यते जनां अमुं ।

सोमपेयं सुखो रथः ॥११॥

अश्विनो १८

१५८ अयम् । समह । मा । तनु ।

ऊहाते । जनान् । अनु ।

सोमपेयम् । सुखः । रथः ॥११॥

१५८ अन्ययः— अयं सुखः रथः समहः, सोमपेयं जनान् अनु ऊहाते;
मा तनु ॥ ११ ॥

१५८ अर्थ— (अयं सुखः रथः) यह सुखप्रद रथ (समहः) धनसे युक्त
है, (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानको (जनान् अनु ऊहाते) यात्रक लोगों
के पास अग्निदेव इतपर बैठकर जाते हैं, (मा तनु) वह मेरी वृद्धि करे।
वह मेरा यश फैलावे।

१५८ भावार्थ— अग्निदेव सोमपानके स्थानके पास अपने सुखदायी रथ
में बैठकर जाते हैं। उस रथमें बड़ा धन रहता है। वह रथ मेरा यश
बढ़ानेवाला हो।

१५८ मानवधर्म— रथ ऐसा बनाओं कि जिसमें बैठनेरी बैठनेवालोंरी छुटा हो।
लोगोंकी सहायतार्थ बहुत धन उसमें रखा जाय और जनताकी सहायतार्थ वह दिया
जाय। इस तरह यह रथ लोगोंका सुख बढ़ावे।

[१५९]

१५९ अघ स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः ।

उमा ता वसि नश्यतः ॥१२॥

१५९ अघ । स्वप्नस्य । निः । विदे ।

अभुञ्जतः । च । रेवतः ।

उमा । ता । वसि । नश्यतः ॥१२॥

१५९ अन्ययः— स्वप्नस्य अघ अभुञ्जतः रेवतः ॥ निर्विदे । ता उमा वसि
नश्यतः ॥ १२ ॥

१५९ अर्थ— (स्वप्नस्य) स्वप्नशील को (अघ) और (अभुञ्जतः रेवतः
च) भोजन न देनेवाले धनिक को देखकर (निर्विदे) मुझे खिन्नता होती है।
क्योंकि (ता उमा) ये दोनों ही (वसि नश्यतः) क्षीण नष्ट होते हैं।

१५९ भावार्थ— गरीबोंकी भोजन न देनेवाले धनिकोंको देख कर तथा
सुस्तीसे पड़े रहनेवालों की देख कर मुझे बड़ा खेद होता है, क्योंकि ये निः-
सम्बेद शीघ्र नाराकी ग्रास होनेवाले हैं।

१३९ मानवधर्म- सुस्तीसे नाश होता है, अतः मनुष्य सदाभी धने । धनका उपयोग गरीबोंकी सहायताके करना चाहिये, जो वैसा नहीं करते वे नष्ट होते हैं । अतः मनुष्य अपने पासके धनसे असहायोंकी सहायता करे ।

१५९ टिप्पणी- स्वप्न=सुस्त, आलसी, सदा सोनेवाला । अभुञ्जत्= (अभोजयत्) = दूसरोंसे भोजन न देनेवाला, दूसरे गरीबोंकी सहायता न करनेवाला, स्वयं न भोगकर दूसरोंकी भी, जो सहायता नहीं करता । वस्त्रि=शीघ्र ।

[१६०] (अ० १।१३।३-५)

परुच्छेपो वैवोदासिः । अत्यष्टिः, ५ गृह्णी ।

१६० युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अग्निना ऽऽश्रावयन्त इव श्लोक-
मायवो युवां हृष्याभ्याश्चयवः । युवोर्विश्वा अधि श्रियः
पृक्षश्च विश्ववेदसा । प्रुपायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दत्ता
हिरण्यये ॥३॥

१६० युवाम् । स्तोमेभिः । देवऽयन्तः । अग्निना ।

. आश्रावयन्तऽइव । श्लोकम् । आयवः ।

युवाम् । हृष्या । अभि । आयवः ।

युवोः । विश्वाः । अधि । श्रियः ।

पृक्षः । च । विश्वऽवेदसा ।

प्रुपायन्ते । वाम् । पवयः । हिरण्यये ।

रथे । दत्ता । हिरण्यये ॥३॥

१६० अन्वयः- दत्ता विश्ववेदसा अग्निना । स्तोमेभिः युवां देवयन्तः । आयवः श्लोकं भा आश्रावयन्तः इव इत्या युवां अभि आयवः; युवोः अधि विश्वा भियः पृक्षः च, वां हिरण्यये रथे पवयः प्रुपायन्ते ॥ १३॥

१६० अर्थ- हे (दत्ता) शत्रुविनाशक ! (विश्ववेदसा) सर्वज्ञ भभिर्देव (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे (युवां देवयन्त) तुम दोनों देवोंकी अपनी भीरु श्रियदेवाले (आयव) मानव (श्लोकं भा आश्रावयन्त इव) मानों काम्यका उच्छस्त्रसे मान करके हुए (हृष्या) हवनीय वदार्थोंको साथ लेकर (युवां

भनि भावयः) तुम दोनोंके समीप आते हैं, (युवोः अधि) तुम दोनोंसे ही (विश्वाः भियः) सभी संपत्तियाँ (पृथः च) और अन्नसामग्रियाँ प्राप्त होती हैं, (वां हिरण्यये रथे) तुम दोनोंके सुवर्णमयस्थानमें स्थित (पवयः मुपायन्ते) पहिले जलसे भीगे हैं ।

१६० भावार्थ— हे शत्रु नाशक सर्वज्ञ अभिदेवो ! कहें भक्त लोग तुम दोनों को अपने पास लानेकी इच्छासे तुम्हारे वर्णम परक गान गाते हैं, कहें हवन सामग्री से हवन करते हैं । तुम दोनों उनको यथेष्ट धन तथा अन्न देते हो । तुम्हारे रथके पहिले जल स्थानमें से आने से भीगे हैं ।

१६० मानवधर्म— भक्त देवताके वर्णनके गान गावे, यजन करे और देवताकी श्रुति होने योग्य आचरण करे ।

१६१ टिप्पणी— आयु=मनुष्य । -

[१६१]

१६१ अचेति दत्ता ऋषिनाकंमृगथो युज्जते वां रथयुजो दिवि-
ष्टिष्वध्वसानो दिविष्टिषु । अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दत्ता
हिरण्यये । पृथेय यन्तायनुशासता रजो अज्जसा शासता
रजः ॥४॥

१६१ अचेति । दत्ता । वि । ऊँ हति । नाकम् । ऋषयः ।
युज्जते । वाम् । रथयुजः । दिविष्टिषु । अध्वस्मानः । दिविष्टिषु ।
अधि । वाम् । स्थाम् । वन्धुरे ।
रथे । दत्ता । हिरण्यये ।
पृथाऽह्व । यन्ता । अनुशासता । रजः ।
अज्जसा । शासता । रजः ॥४॥

१६१ अन्वयः— दत्ता । नाकं ऋषिः ऋषयः, अचेति, दिविष्टिषु अध्वस्मानः
रथयुजः वां दिविष्टिषु युज्जते, वां हिरण्यये वन्धुरे रथे अधि स्थाम्, अज्जसा रजः
शासता अनुशासता रजः पृथा ह्व यन्ता ॥४॥

१६१ अर्थ— हे (दत्ता) शत्रु विनाशक अभिदेवो ! (नाकं वि ऋषयः)
रथों को तुम दोनों खोल देते हो, सो बात (अचेति) सबको विदिन है,
(दिविष्टिषु) पृथोरुको प्राप्त करनेके यत्नों में आनेके विष्ट (अध्वस्मानः)

विनाश न होनेवाले (रथयुजः) तथा रथके साथ जोड़े जानेवाले घोड़े (वां) तुम दोनों के रथको (दिविष्टिषु युज्यते) यज्ञोंमें जानेके लिए जोते जाते हैं, (वां हिरण्यये यन्धुरे रथे आधि स्थाम) तुम दोनोंके सुनदले, सुन्दर रथ पर हम आपको स्थापन करते हैं; (अजसा रजः शासता) प्रमुखतया अन्तरिक्ष पर शासन करते हुए और (अत्रु शासता) शत्रुओंका दमन करते हुए (रजः पथा इव यन्तौ) अन्तरिक्षके मार्ग परसे जानेके समान तुम दोनों जाते हो ।

१६१ भावार्थ- तुम दोनों स्वर्ग का द्वार खोलके दो, सुलोकमें जानेके लिये अपने रथको आविनाशी घोड़े जोड़के हैं, अपने सुवर्णके रथमें बैठकर शत्रुओंका दमन करके स्वर्गका शासन करते हैं ।

१६१ मानवधर्म- स्वर्गका द्वार खुलने योग्य शुभ कर्म करो, शत्रु का दमन करो और जनताका उत्तम शासन करो ।

[१६१]

१६२ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।

मा वा रातिरुप दसत् कदा चनास्मद् रातिः कदा चन ॥५॥

१६२ शचीभिः । नः । शचीवसू इति शचीवसू ।

दिवा । नक्तम् । दशस्यतम् ।

मा । वाम् । रातिः । उप । दसत् । कदा । चन ।

अस्मत् । रातिः । कदा । चन ॥५॥

१६२ अन्ययः- शचीवसू ! नः दिवानक्तं शचीभिः दशस्यतम्, वा रातिः वदाचन मा उपदसत् कदा च न अस्मत् रातिः ॥५॥

१६२ अर्थ- हे, (शचीवसू) शक्तियोंसे धन प्राप्त करनेवाले अभिदेवो । (नः दिवानक्त) हमें रातदिन (शचीभिः दशस्यतम्) अपनी शक्तियोंसे दान देने रहो, (वा रातिः) तुम दोनोंका दान (कदाचन) कभी (मा उपदसत्) क्षीण न होने पाय, (कदाचन अस्मत् रातिः) और अभी हमारा दान भी न घटजाय ।

१६२ भावार्थ- अपनी शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाले हे अभिदेवो । अपनी शक्तियोंसे हमें सदा धन देते रहो, आरका दान कभी कम न हो और हमारा दान भी कभी कम न हो ।

१६२ मानवधर्म— अपना सामर्थ्य बढाओ, अपनी शक्तिये दमाये धनक दान करो, दान करनेमें कसूखी न रहो, कभी दान कम न करो ।

[१६३] (ऋ० १।१५अ१-६)

दीर्घतमा ओचध्य । जगती । ५-६ त्रिष्टुप् ।

१६३ अयोध्यग्निर्जम् उदेति सूर्यो व्युत्पाद्यन्द्वा महीवो अर्चिषा ।
आयुक्षातामश्विना यातवे रथं प्रासावीद् देवः सविता जगत्
पृथक् ॥१॥

१६३ अयोधि । अग्निः । जम् । उत् । एति । सूर्यः ।
त्रि । उपाः । चन्द्रा । मही । आवः । अर्चिषा ।
अयुक्षाताम् । अश्विना । यातवे । रथम् ।

प्र । असावीत् । देवः । सविता । जगत् । पृथक् ॥१॥

१६३ अन्वय - अग्नि उम अयोधि मही उपा अर्चिषा चन्द्रा वि आव ,
अश्विना यातवे रथ आयुक्षाता, सविता देव जगत् पृथक् प्र असावीत् ॥१॥

१६३ अर्थ (अग्नि उम अयोधि) अग्नि भूमिपर जागृत हो शुरु है,
(मही उपा) बड़ी उपा (अर्चिषा चन्द्रा वि आव) अपने तेजसे लोगोंको
आकाश दानेवाली होकर फैल चुकी है इस समय अग्निदेवोंने (यातवे)
यात्रा करनेके लिए अपने (रथ आयुक्षाता) रथ को तैयार किया है तब
(सविता देवः) सूर्य देवने (जगत् पृथक्) ससारको भलग भलग दगसे
(प्र असावीत्) उत्पन्न किया है । अर्थात् सब ससारको जाग्रत करके कमोंमें
लगामा है ।

१६३ भावार्थ अग्नि प्रवर्धित हुआ है तब अपने तेजके साथ फैल गयी
है, अग्निदेवोंने अपना रथ तैयार किया है, सूर्य उदय होकर उसने सब लोगों
को अपने अपने कार्योंमें लगा दिया है ।

१६३ मानवधर्म राजाव समय अग्निवा जलात रहो, उप काल में उठाग
होगा, अश्वि उदित होंग, पश्चात् सूर्य उदय होगा तब सभी लोगोंको अपने कार्यों
में लगगा चाहिए । इस लिये सूर्यादयके पूर्व ही अपना अवयव मार्ग निपटार
तैयार हो जाओ ।

[१६४]

१६४ यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमु-
क्षतम् । अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिवन्तं वयं धना शूरसाता
भजेमहि ॥२॥

१६४ यत् । युञ्जाथे इति । वृषणम् । अश्विना । रथम् ।
घृतेन । नः । मधुना । क्षत्रम् । उक्षतम् ।
अस्माकम् । ब्रह्म । पृतनासु । जिवन्तम् ।
वयम् । धना । शूरसाता । भजेमहि ॥२॥

१६४ अन्वयः— अश्विना । यत् वृषणं रथं युञ्जाथे, मधुना घृतेन नः क्षत्रं
उक्षतं, पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिवन्तं, शूरसाता वयं धना भजेमहि ॥२॥

१६४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (यत् वृषणं रथं युञ्जाथे) चूँकि तुम दोनों
अपने यक्षवान रथको तैयार कर रहे हो, इसलिये हम आपसे विनति करते
हैं कि, (मधुना घृतेन) मीठे घाहदसे तथा घीसे (नः क्षत्रं उक्षतं) हमारी
क्षत्र सेना को पुष्ट करो, तथा (पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिवन्तं) युद्धोंमें
हमारे ज्ञानको यशसे युक्त करो (शूरसाता वयं) जहाँ शूर लोग धनके लिए
युद्ध करते हैं वस युद्धमें हम (धना भजेमहि) धनको प्राप्त करें ।

१६४ भावार्थ— हे अश्विदेवो ! आपने बाहर जानेके लिये अपना यक्षवान
रथ जोड़ कर रखा है, इसलिये हमारी प्रार्थना है कि शहद और घीसे हमारे
सत्रियोंको यक्षवान बनाओ, युद्धोंमें हमारा ज्ञान यशस्वी हो और जहाँ शूर
ही लड़ते हैं, उस युद्धमें हमें विजय प्राप्त हो ।

१६४ मानवधर्म— क्षत्रियों को शहद और घी पचास मात्रामें मिले, उसके
सेवकसे वे पुष्ट और मल्लिष्ठ बनें, वे युद्धोंमें विजयी हों और बहुत धन प्राप्त करें ।

[१६५]

१६५ अर्वाह् विचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्वातु
सुष्टुतः । त्रिवन्धुरो मधवा विश्वसौमगः शं न आ पक्षद्
द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

१६५ अर्वाङ् । त्रिचक्रः । मधुस्वाहनः । रथः ।

जीरऽअश्वः । अश्विनोः । यातु । सुऽस्तुतः ।

त्रिचन्द्रधुरः । मघऽवा । विश्वऽसौभगः ।

शम् । नः । आ । वक्षत् । द्विऽपदे । चतुऽपदे ॥३॥

१६५ अन्वय- त्रिचक्रः जीराश्व सुष्टुतः अश्विनोः रथः मधुस्वाहनः अर्वाङ् यातु । त्रिचन्द्रधुरः विश्वसौभगः मघवा न द्विपदे चतुष्पदे शं भावक्षत् ३

१६५ अर्थ- (त्रिचक्रः) तीन पहियोंसे युक्त (जीराश्वः सुष्टुतः) वेगवान घोड़ोंसे युक्त, भली भौंति प्रशंसित (अश्विनोः रथः) आश्विदेवोंका रथ (मधुस्वाहनः अर्वाङ् यातु) मिठाससे पूर्ण भस्मकी डोला हुआ हमारे पास आ जाय, (त्रिचन्द्रधुरः विश्वसौभगः) वह तीन बैठकोंसे युक्त और सभी सौंदर्यों से युक्त (मघवा) ऐश्वर्य संपन्न रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे) हमारे मानवों तथा पशुओंको (शं भावक्षत्) सुख पहुँचावे ।

१६५ भाषार्थ- तीन पहियोंसे युक्त, वेगवान घोड़ोंसे जोला हुआ, अश्वि-देवोंका रथ शहद लेकर हमारे पास आ जाय, तीन आसनवाला सतिषुन्दर तथा ऐश्वर्यवान रथ हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंको सुख देदे ।

१६५ मानवधर्म- रथों वेगवान घोड़े जोतवो, शहद प्राप्त करो, रथोंसे सुन्दर बनाओ और मानवों तथा पशुओंका सुख बढ़ाओ ।

[१६६]

१६६ आ न ऊर्जे वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कश्या मि-
मिक्षतम् । प्रायुस्त्वारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेपो भवतं
सचाभुवा ॥४॥

१६६ आ । नः । ऊर्जेम् । वहतम् । अश्विना । युवम् ।

मधुऽमत्या । नः । कश्या । मिमिक्षतम् ।

प्र । आयुः । तारिष्टम् । निः । रपांसि । मृक्षतम् ।

सेधतम् । द्वेपः । भवतम् । सचाऽभुवा ॥४॥

६६१ अन्वय- अश्विना । युवं न ऊर्जे भावहतं, नः मधुमत्या कश्या मिमिक्षतं, आयुः प्रवारिष्टं, रपांसि निः मृक्षतं, द्वेपः सेधतं, सचाभुवा भवतम् ॥ ४ ॥

१६६ अर्थ- हे अधिदेवो ! (युवं नः ऊर्जं आग्रहतं) तुम दोनों हमारे लिए अन्न ले आओ, (नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतं) हमें शहदसे पूर्ण पात्रमे संयुक्त करो; (आयुः प्रतारिष्ट) हमारी आयुको सुदीर्घ बनाओ, (रपांसि निमृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया मिटादो, (द्वेषः सेधतं) द्वेषको हटा दो और (सचाभुवा भवतं) हमारे सहायक बनो ।

१६६ भाषाये - हे अधिदेवो ! हमें विपुल अन्न दो, शहदसे भरे पात्र हमें दे दो, हमारी आयु दीर्घ करो, हमारे दोष दूर करो, द्वेषभावको दूर करो और सदा हमारे सहायक बनो ।

१६६ मानवधर्म- विपुल अन्न तथा शहदका सेवन करो, आयुमें बढ़ाओ, दोषोंको दूर करो, द्वेषभावको मिटा दो, परस्परकी सहायता करो ।

१६६ टिप्पणी- मधुमत्या कशया मिमिक्षतं= शहदसे भरे चाबूकेसे हमें सिंचित करो । शहदसे भरे पात्रसे हमें युक्त करो, हमें विपुल शहद दो और फर्मेंमें धेरित करो । यद्वाका ' कदा ' (चावूक) पद ' चलाने, या प्रेरणा करने ' का सूचक है । जैसा चाबूक घोड़ोको चलाता है वैसा तुम्हारा शब्द हमें बसावे ।

[१६७]

१६७ युवं ॥ गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः ।

युवमग्निं च वृषणापश्च वनस्पतीरश्विनौ वैरयेथाम् ॥५॥

१६७ युवम् । ह । गर्भम् । जगतीषु । धत्थः ।

युवम् । विश्वेषु । भुवनेषु । अन्तरिति ।

युवम् । अग्निम् । च । वृषणौ । अपः । च ।

वनस्पतीन् । अश्विनौ । वैरयेथाम् ॥५॥

१६७ शब्दार्थ- वृषणौ अश्विनौ । जगतीषु युवं ह गर्भं धत्थः, विश्वेषु भुवनेषु अन्तः युवं, अग्निं च अपः च वनस्पतीन् युवं वैरयेथां ॥५॥

१६७ अर्थ- हे (वृषणौ) बलवान् अधिदेवो ! (जगतीषु युवं ह) जगती- योनि, या गीर्षोर्नि तुम दोनोंही (गर्भं धत्थः) गर्भको रगदोते हो तथा (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) शरीर प्राप्तिर्कोके भीतर (युवं) तुम दोनों गर्भ धारण करते हो, (अग्निं च अपः च) अग्निको तथा जलोंको और (वनस्पतीन्) वनस्पतीर्को (युवं वैरयेथां) तुम दोनों धेरित करते हो ।

• अधिनौ दे० १९

१६७ भावार्थ— गौर्भेमें तथा सब प्राणियोंकी स्त्रियोंमें गर्भका पालन पोषण करना अग्निदेवोंका कार्य है। अग्नि, जल और वनस्पतियोंको मनुष्योंके लियेही अग्निदेव प्रेरित करते हैं।

१६७ मानवधर्म— गर्भकी विद्याका ज्ञान प्राप्त करो, गर्भकी स्थापना, धारणा और पोषण करनेका ज्ञान प्राप्त करो, और उनका पोषण करो। अग्निसे सज्जता, जलसे तुषा शमन और वनस्पतियोंसे अन्न प्राप्त करके अपनी उन्नतिका साधन करो।

[१६८]

१६८ युवं ह स्थो भिपजा मेपजेभिरथो ह स्थो रथ्याह
राध्येभिः। अथो ह क्षत्रमधि घत्थ उग्रा यो वा हविष्मान्
मनसा द्वादश ॥६॥

१६८ युवम् । ह । स्थः । भिपजा । मेपजेभिः ।
अथो इति । ह । स्थः । रथ्या । राध्येभिरिति राध्येभिः ।
अथो इति । ह । क्षत्रम् । अधि । घत्थः । उग्रा ।
यः । वाम् । हविष्मान् । मनसा । द्वादश ॥६॥

१६८ अन्वयः— मेपजेभिः युवं भिपजा ह स्थः, अथ रथ्येभिः रथ्या ह स्थः,
अथ हे उग्रा । क्षत्रं अधि घत्थः, यः हविष्मान् मनसा वा द्वादश ॥६॥

१६८ अर्थ— (मेपजेभिः युवं) औपधियोंकी साथ रखनेके कारण तुम दोनों
ही (भिपजा ह स्थः) निश्चय पूर्वक वैद्य हो, (अथ) उसी प्रकार (रथ्येभिः)
रथको जोतनेयोग्य घोड़ोंके कारण (रथ्या ह स्थः) रथी भी हो, (अथ) और
तुम स्वयं हे (उग्रा) उग्रस्वरूपवाले अग्निदेवो । (क्षत्र अधि भागः) क्षत्रि-
योचित दीरता उसे देनालगे हो, (यः) जो (हविष्मान्) हवि आदि चीजें
(मनसा वा द्वादश) मनःपूर्वक तुम दोनोंको अर्पण करता है।

१६८ भावार्थ— हे अग्निदेवो । तुम दोनों अपने पास उत्तम औपधियों
रखनेके कारण उत्तम वैद्य हो, उत्तम घोड़े अपने रथको जोतनेके कारण उत्तम
रथी हो, तुम स्वयं उग्रवीर हो, अतः क्षत्रियोचित सहायता करते हो । जो
तुम्हें मनःपूर्वक हवि अर्पण करता है उसकी तुम सहायता करते हो।

१६८ मानवधर्म— अपने पास उत्तम औपधियों रखकर वैद्य रोगियोंकी उत्तम

चिकित्सा करें। अपने पास छोड़े रखें और रखी वे जोते जायें और उनको उत्तम रीतिसे चलावें। बीरता प्राप्त करो और अन्योंकी रक्षा करो। अपने अनुयायियोंकी सहायता करो।

[१६९] (ऋ० १।१८०।१-१०) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप्।

१६९ वसू रुद्रा पुरुमन्तू वृधन्ता दशस्यर्तं नो वृषणावभिष्टौ ।
दत्ता ह यद् रेक्ण औचध्यो वां प्र यत् सस्राथे अकवा-
मिरूती ॥१॥

१६९ वसू इति । रुद्रा । पुरुमन्तू इति पुरुमन्तू । वृधन्ता ।
दशस्यर्तम् । नः । वृषणौ । अभिष्टौ ।
दत्ता । ह । यत् । रेक्णः । औचध्यः । वाम् ।
प्र । यत् । सस्राथे इति । अकवाभिः । ऊती ॥१॥

१६९ अभ्युपगमः- वृषणौ दत्ता । वसू, रुद्रा, पुरुमन्तू वृधन्ता अभिष्टौ नः दशस्यर्तम्, यत् औचध्यः वां रेक्णः, यत् अकवाभिः ऊती प्रसस्राथे ह ॥१॥

१६९ अर्थ- हे (वृषणौ दत्ता) बलवान् शत्रुविनाशक अभिष्टौ ! (वसू रुद्रा) तुम दोनों बलवान् बाले, शत्रुओंकी रक्तानेहारे, (पुरुमन्तू वृधन्ता) बहुत ज्ञान वाले, बड़े हुए और (अभिष्टौ) बाहुलकीय दान (नः दशस्यर्तम्) हमें देदो, (यत्) क्योंकि (औचध्यः रेक्मः वां) उचध्यका पुत्रा धनके लिए तुम दोनोंसे जब प्रार्थना करता है, (यत्) सब (अकवाभिः ऊती) अनिन्दनीय संरक्षणकी आभोजनार्थके साथ (प्र सस्राथे ह) तुम दोनों दौड़ते हुए आते हो ।

१६९ भावार्थ- अभिष्टौ बलवान्, शत्रुका नाश करनेवाले, सबको वषा-योग्य बलवान् बाले, दुष्टोंकी रक्तानेवाले, ज्ञानी, और बड़े हैं। वे हमें वषेष्ट दान देदें। उचध्यके पुत्र दीर्घतमाने जब धनके लिये उनसे प्रार्थना की तब वे दौड़ते हुए आते हैं।

१६९ मानवधर्म- बलिष्ठ, शूर, उदार, ज्ञानी महान् बनो। अनुयायियोंकी वषेष्ट सहायता करो, जो कृपि सहायता मांगे उसकी उचित सहायता करें।

[१७०]

१७० को वाँ दाशत् सुमत्तये चिदुस्यै वसू यद् धेधे नर्मसा
पदे गोः । जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा
चरन्ता ॥२॥

१७० कः । वाम् । दाशत् । सुमत्तये । चित् । अस्यै ।
वसू इति । यत् । धेधे इति । नर्मसा । पदे । गोः ।
जिगृतम् । अस्मे इति । रेवतीः । पुरंधीः ।
कामप्रेणऽइव । मनसा । चरन्ता ॥२॥

१७० अन्वयः—हे वसू । यत् गोः पदे नर्मसा, धेधे, अस्मै वाँ सुमत्तये चित्
कः दाशत्? कामप्रेण इव मनसा चरन्ता अस्मे रेवतीः पुरंधीः जिगृतं ॥२॥

१७० अर्थ—हे (वसू) पत्तानेद्वारे अभिदेवो (वत्) चूँकि (गो.पदे) इस
भूमिपर (नर्मसा) नमस्कार करनेपर (धेधे) तुम दोनों दान देते हो,
(अस्मै वाँ सुमत्तये चित्) इस तुझारी अच्छी बुद्धिको प्रसन्न करनेके लिए
(कः दाशत्) कौन और क्या देनेमें समर्थ होगा ? (कामप्रेण इव मनसा
चरन्ता) इच्छा पूर्ण करनेकी अभिलाषा मनमें रख कर संचार करनेवाले तुम
दोनों (अस्मे) हमें (रेवतीः पुरंधीः) धनके साथ गौयें (जिगृतं) दे दो ।

१७० भावार्थ—हे सबको ठीक तरह बसाने वाले अभिदेवो । इस भूमि-
पर जो तुम्हें नमन करता है उसकी तुम दान देते हो, ऐसी तुझारी उत्तम
बुद्धि है । इस तुझारी सुबुद्धिको और अधिक प्रसन्न करने के लिये भला कौन
और अधिक क्या कर सकता है ? तुम तो सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए
ही सर्वत्र संचार करते हो, इस लिए हमें धन के साथ योग्य दुधारु
गौयें दे दो ।

१७० मानवधर्म—अनुपयियोंको सदावता पहुँचाओ, सबकी सदावता करनेकी
सुबुद्धि अपने मनमें रखो । सर्वत्र संचार करके जो जिगरी सदावता चाहिए वह
उमे दे दो । धन अं र गौयें दे दो ।

१७० टिप्पणी—गोः पदे =भूमि, पदे, जहाँ गौयें संचार करती हैं वह स्थान
पुरंधिः=मनुष्य पोषण करने वाली दुधदा गौ, स्त्री, विदुषी स्त्री ।

[१७१]

१७१ युक्तो ह यद् वां तौग्न्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धारिं
पञ्चः । उपं चामवं शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः ॥३॥

१७१ युक्तः । ह । यद् । चाम् । तौग्न्याय । पेरुः ।

वि । मध्ये । अर्णसः । धारिं । पञ्चः ।

उपं । चाम् । अवः । शरणम् । गमेयम् ।

शूरः । न । अज्म । पतयत्तुभिः । एवैः ॥३॥

१७१ अन्वयः—वां पेरुः यत् तौग्न्याय युक्तः ह, अर्णसः मध्ये पञ्चः वि
धारिः, पतयद्भिः-एवैः दूरः अज्म नः वां उप अवः शरण गमेयम् ॥३॥

१७१ अर्थ— (वां पेरुः) तुम दोनोंका वह पार केबलनेवाला रथ (यम्)
जब (तौग्न्याय युक्तः ह) तुमके पुत्रको बचानेके लिए तैयार होचुका तब उसे
(अर्णसः मध्ये) समुद्रके मध्य (पञ्चः वि धारिं) बलसे तुमने लड़ा रक्षा;
(पतयद्भिः एवैः) वेगपूर्वक जाने वाले 'गति साधनोंसे (दूरः अज्म न)
वीर पुरुष जैसे युद्धमें प्रवेश करता है उसी प्रकार, (वां उप) तुम दोनोंके
समीप (अवः शरणं गमेयं) संरक्षण तथा आश्रयके लिए मैं भी जाऊँ ।

१७१ भाषार्थ—तुम्हारा रथ सेकड़ोंसे बचानेवाला है । तुमके पुत्र अगुप्तको
बचानेके लिए तुमने उस रथको समुद्रमें डेगवान गतिसाधनोंसे, दूर जैसे
युद्धमें जाता है, वैसे चलाया था । अब मैं भी तुम्हारे पास अपनी सुरक्षाके
लिए जाता हूँ ।

१७१ मानवधर्म—संकटमें अपने अनुयायियोंकी बचाओ । समुद्रमें भी जाकर
उनकी बचाओ ।

१७१ टिप्पणी—तौग्न्यः= तुंगः ५७; ७१, ७९—८३; ११५ २० पेरुः=
पार करने वाला ।

[१७२]

१७२ उर्वस्तुतिरीचध्यर्ध्रुप्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम् ।
मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्मनि खादति
क्षाम् ॥४॥

१७२ उप०स्तुतिः । औच०य्यम् । उरु०प्येत् ।

मा । माम् । इमे इति । प०त्रिणी इति । वि । दुग्धाम् ।

मा । माम् । एषः । दश०स्तयः । चितः । धाक् ।

प्र । यत् । वाम् । वद्धः । तमनि । खादति । क्षाम् ॥४॥

१७२ अन्वयः—औच०य्यं उप०स्तुतिः उरु०प्येत्, इमे प०त्रिणी मां मा वि दुग्धा, दश०स्तयः चितः पृथः मां मा धाक्, यत् वां वद्धः तमनि क्षा खादति ॥४॥

१७२ अर्थ—(औच०य्यं) उच्यते पुत्रको अर्थात् मुलको (उप०स्तुतिः उरु०प्येत्) तुम दोनोंके समीप जाकर की स्तुति सुरक्षित रखे, (इमें प०त्रिणी) ये सूर्यसे बने दिन तथा रात (मां) मुलको (मा वि दुग्धा) निस्तार न बना डाले, (दश०स्तयः चितः पृथः) दश गुनी समिधाएँ बाँटकर प्रदीप्त किया हुआ यह अग्नि (मां मा धाक्) मुझे न जला डाले, (यत्) जिसने (वां वद्धः) तुम दोनोंके भक्तको बंधा था (तमनि क्षा खादति) वही भव भूमिपर भूक खाता पडा है ।

१७२ भावार्थ—उच्यतेका पुत्र दीर्घतमा कहता है कि—हे अभिदेवो ! तुझारी स्तुति मेरी रक्षा करे, आकाशमें पक्षीके समान आनेवाले सूर्यसे निर्माण हुए दिन रात मुझे निःसार न बनायें, दशगुनी लकड़ियाँ बाँट कर प्रदीप्त हुआ यह अग्नि मुझे न जला दे । जिसने तुझारे इस भक्तको, बाँध कर जलमें कैद दिया था, वही भव यही भूमिपर पडा भूक खाता है, यह आगके सामर्थ्यका प्रभाव है ।

१७५ मानवधर्म—ईश्वरके भक्तको ईश्वर सुरक्षित रखता है, उसको अग्निसे या जलमें भी बाँधा नहीं पहुँचती । जो उगे सनाता है वही दुःख भोगता है ।

[१७३]

१७३ न मां गरन् नृधो मा०तृव०मा दासा यद्वां सुम०मुन्म०मुवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैत०नो वितर्धत् स्वयं दास उरो अंसावपि
ग्य ॥५॥

१७३ न । मा । गरन् । नद्यः । मातृस्तमाः ।

दासाः । यत् । ईम् । सुप्तमुन्वम् । अवऽअधुः ।

शिरः । यत् । अस्य । त्रैतनः । विस्तक्षत् ।

स्वयम् । दासः । उरः । अंसौ । अपि । ग्धेति ग्ध ॥५॥

१७३ अर्थः—यत् ईं सुप्तमुन्वं दासाः अव अधुः मातृस्तमा नद्यः मा न गारन् । यत् अस्य शिरः त्रैतनः दासः स्वयं विस्तक्षत्, उरः अंसौ अपि ग्ध ॥५॥

१७३ अर्थ—(यत् ईं) जब इस मुक्त उच्य पुत्र दीर्घतमाको (सुप्तमुन्वं) भली नीति जकड़कर और बांध कर (दासाः अव अधुः) दासोंने नीचे मुक्त काके कैद दिया तबभी (मातृ तमाः) मातृरूप उन नदियोंने (मा) मुझे (न गारन्) नहीं हुयोया (यत् अस्य शिरः) जब इसका मेरा सर (त्रैतनः दासः) त्रैतन नामक दास (स्वयं विस्तक्षत्) स्वयं काटने लगा और (उरः अंसौ अपि ग्ध) छाती तथा कंधोंको छोटने लगा । तबभी आपकी कृपासे यथ गया ।

१७३ भावार्थ—उच्य पुत्र दीर्घतमाको दासोंने बांधकर नदीमें कैद दिया और त्रैतन नामक दासने तो उसका सिर छाती और कंधे काटनेका यत्न किया, (पर ऐसा हुआ कि ज़रूर तो यथा और दासकेही अवयव कटगये ! यह अधिवैवीहीही कृपा है ।)

१७३ मानवधर्म—दूसरेको नदीमें डूबा देना, उसका सिर तथा कंधोंको काटना आदि करनेका परिणाम यही हुआ कि अपकार कर्ताका ही नाश हुआ । दूसरेका नाश करनेके लिये यत्न किया तो अपनाही नाश होता है ।

१७३ टिप्पणी—उच्य पुत्र दीर्घतमा बड़ा बूढ़ और अन्धा था । असुरोंने उसको अग्निमें डाल दिया, पानीमें डूबाया, सिर तथा कंधोंको काटनेका यत्न किया, पर उसका नाश नहीं हुआ, असुरही परास्त हुए, यह आत्म शक्तिका प्रभाव है । इस कथाके साथ प्रवृत्तकी कथाकी तुलना करना योग्य है ।

[१७४]

१७४ दीर्घतमा मामतेयो जुंजुर्वान् दंशमे युगे ।

अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥

१७४ दीर्घतमाः । मामतेयः । जुजुर्वान् । दशमे । युगे ।
 अपाम् । अर्थम् । यतीनाम् ।
 ब्रह्मा । भवति । सारथिः ॥६॥

१७४ अन्वयः—मामतेयः दीर्घतमाः दशमे युगे जुजुर्वान्, यतीनां अपां, अर्थं ब्रह्मा सारथिः भवति ॥६॥

१७४ अर्थ—(मामतेयः दीर्घतमाः) ममताका पुत्र दीर्घतमा नामक ऋषि (दशमे युगे) दसवें युगमें (जुजुर्वान्) वृद्ध होने लगा, (यतीनां अपां अर्थं) संयमसे किये जानेवाले कर्मोंसे प्राप्तव्य अर्थके लिए वह (ब्रह्मा सारथिः भवति) ब्रह्मा ज्ञानी पुरुष बनकर सबको चलानेवाला सारथि बनता है ।

१७४ भावार्थ—ममताका पुत्र [उच्यते पुत्र] दीर्घ तमा ऋषि दशम युगमें [अर्थात् १११ वें वर्षके अनन्तर] वृद्ध होने लगा । उसने जो संयम पूर्वक उत्तम कर्म किये थे, उनसे प्राप्त होने वाले धर्म-अर्थ-काम मोक्षरूपी पुरुषार्थको प्राप्त करके, वह ब्रह्मज्ञानी हुआ, सबका संचालन करनेवाला सारथी जिसाभी सुयोग्य संचालक वह बन गया ।

१७४ मानवधर्म—१२० वर्षोंकी पूर्ण आयु तक मनुष्य जीवित रहे, ११० वर्षोंके पश्चात् वृद्ध बने, इस तरह अपना जीवन व्यतीत करे, अकालमें अपमृत्युसे न मरे संयम पूर्वक सब कर्म करे, उनके फल प्राप्त करे, ज्ञानी बने और सारथीके समान सबको उत्तम रीतिसे चलाने । अर्थात् स्वयं समर्थ बने और दूसरोंका मार्ग दर्शक बने ।

१७४ टिप्पणी—युग= (उद्योतिपमे १२ वर्षकी अवधि) १२ की संख्या दशमे युगे = १११ से १२० वर्षपर्यंतकी आयु । ८ वर्ष तक बाल्य, १६ वर्ष तक कुमार, ७० वर्ष तक तरुण, १०० वें वर्षतक परिहाणी, ११० वें वर्षतक वृद्ध और १११ से १२० तक उर्जित पश्चात् मृत्युका समय । वैदिक प्रणालिक अनुसार यह सर्व साधारण आयुसंकीर्ण है । छांदोग्य उ० में २४+२६+४८=११२ वर्षोंकी आयु मानी है । इसमें ८ वर्षकी बाल्य आयुकी गणना करनेसे १२० वर्ष होते हैं । यतीनां अपां अर्थ—यती=संयम पूर्वक किया कर्म; अपाः=कर्म, जल-धारा जैसा जो सतत कर्म किया जाता है । यती अपाः=संयमपूर्वक सतत निर-सत वृत्तिसे किया जाने वाला कर्म । अर्थः=तक कर्मोंसे प्राप्तव्य धर्म-अर्थ—काम ।

गोदा रूप अर्थ । यज्ञा=ब्रह्मज्ञानी, यज्ञसा प्रमुख, मुख्य ज्ञानी । सारथि=रथका चालनेवाला, मानवोंको योग्य मार्गसे चलानेवाला नेता । मनुष्य १२० वर्षतक जीवित रहकर उत्तम कार्य करे, ज्ञानी और नेता बने ।

[१७५-२१३] (ऋ० १।१८०।१—१०)

अगत्स्यो मैत्रावरुणिः । त्रिष्टुप् ।

१७५ युवो रजांसि सुयमांसो अश्वा रथो यद् वां पर्यणीसि दीयत् । हिरण्यया वां पवयः प्रुपायन् मध्वः पिबन्ता उपसः सचेथे ॥१॥

१७५ युवोः । रजांसि । सुयमांसः । अश्वाः ।

रथः । यत् । वाम् । परि । अणीसि । दीयत् ।

हिरण्ययाः । वाम् । पवयः । प्रुपायन् ।

मध्वः । पिबन्तौ । उपसः । सचेथे इति ॥१॥

१७५ अन्वयः—यद् वां रथाः अणीसि परि दीयत्, युवोः अश्वाः रजांसि सुय-
मामः, वां हिरण्ययाः पवयः प्रुपायन्, उपसः मध्वः पिबन्ता सचेथे ॥१॥

१७५ अर्थ—(यत् वां रथः) जब तुम दोनोंका रथ (अणीसि परि दीयत्) समुद्रमें या अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है तब (युवो, अश्वा) तुम दोनोंके घोड़े (रजांसि सुयमांसः) अन्तरिक्षमें नियमपूर्वक चलते हैं तब (वां हिर-
ण्यया, पवयः) तुझारे सुवर्णमय पहियोंके अरे (प्रुपायन्) गोल होने लगते हैं,
(उपसः) उप-कालमें (मध्व, पिबन्ता सचेथे) मीठे सोमरसको पीते हुए तुम
दोनों दूकड़े हो कर जाते हो ।

१७५ भावार्थ—हे अग्नि देवो ! जब तुझारा रथ समुद्रमें अथवा अन्तरिक्षमें
संचार करने लगता है, तब उस रथको चलानेवाले अथ संज्ञक पति साधन भी
अन्तरिक्षमें अपने नियमानुसार चलने लगते हैं । तुझारे रथके सुवर्ण जैसे चम-
कनेवाले पहिये भी अन्तरिक्षरथ मेघमण्डलके जलसे भीगने लगते हैं तथा
समुद्रमें जलसे भीगते हैं । तुम सो मधुरसोमरस पीकर उप कालमें ही संचार
करने लगते हो ।

१७५ मानवधर्म—रथ ऐसे यन्त्रों को भूमिपर, समुद्रमें तथा अन्तरिक्षमें बेगने
चले । तुम उपः कालमें उठकर सोमरस पीकर संचार करने लग जाओ ।

[१७६]

१७६ युवमत्यस्याव नक्षथो यद् विपत्तमनो नर्यस्य प्रयज्योः ।

स्वसा यद् वा विश्वगूर्ती भराति वाजायेद्वै मधुपाविपे च ॥२॥

१७६ युवम् । अत्यस्य । अव । नक्षथः ।

यत् । विपत्तमनः । नर्यस्य । प्रयज्योः ।

स्वसा । यत् । वाम् । विश्वगूर्ती इति विश्वऽगूर्ती । भराति ।

वाजाय । ईद्वै । मधुऽपौ । इपे । च ॥२॥

१७६ अन्वयः—विश्व गूर्ती ! मधुपौ यत् युवं अत्यस्य विपत्तमनः नर्यस्य प्रयज्योः अव नक्षथः यत् वा स्वसा भराति वाजाय इपे च ईद्वै ॥२॥

१७६ अर्थ—हे (विश्व-गूर्ती) सभसे प्रशंसनीय । तथा (मधुपौ) मधु पीनेवाले अभिदेवो । (युवं) तुम दोनों (यत् अत्यस्य) जब गतिशील (विपत्तमनः) आकाशमें संचार करने वाले (नर्यस्य प्रयज्योः) मानवोंके हितकारी और अत्यन्त पूजनीय सूर्यके (अव नक्षथः) पूर्वही पहुँचते हो (यत् वा स्वसा) तब तुझारी सहायता उपा (भराति) तुझारा पोषण करती है और (वाजाय इपे च) बल तथा भजन पानेके लिए तुझाराही (ईद्वै) स्तवन मानव करता है ।

१७६ भावार्थ—सर्वदा प्रशंसनीय तथा मधुर सोमरसका पान करनेवाले अभिदेवो ! सतत गतिमान, आकाश संचारी, मानवोंका हितकारी पूजायोग्य सूर्य आनेके पूर्वही तुम दोनों आते हो । तब उपा तुझारी सहायता करती है और यज्ञमें यजमान बल बढ़ाने और भजन भिक्षाके लिए तुम दोनोंकी प्रशंसा करते हैं ।

१७६ मानवधर्म—सूर्य मनुष्योंका हित करता है । उसके आनेके पूर्व उठो, उपाः कात्तमें, नैमार्ग रहो । १. अयना, यत् यज्ञनेके लिए, तपः, अर्थात् यज्ञ यज्ञनेके लिए, धर्म मान् हो जाओ ।

[१७७]

१७७ युवं पर्य उस्त्रियायामधत्तं पक्षमायामव पूर्य गोः ।

अन्तर्यद् वनिनो वामृतम् ह्यारो न शुचिर्यजते हविष्मान् ॥३॥

१७७ युवम् । पयः । उल्लियायाम् । अधत्तम् ।
 पक्वम् । आमायाम् । अव । पूर्वम् । गोः ।
 अन्तः । यत् । वनिनः । वाम् । क्रतुप्सूदृत्युतः ।
 ह्यारः । न । शुचिः । यजते । हविष्मान् ॥३॥

१७७ अन्वयः—क्रतुप्सू । युवं उल्लियायां पयः अधत्तं, गोः अमायां पक्वं पूर्वं
 अव अधत्तम् । यत् वां वनिनः अन्तः ह्यारः न हविष्मान् शुचिः यजते ॥३॥

१७७ अर्थ—हे (क्रतुप्सू) सत्यस्वरूप अग्नि देवो ! (युवं) तुम दोनोंने
 (उल्लियायां पयः) गौमें दूध (अधत्तं) रखा है तथा (गोः अमायां) अपरि-
 पक्व गौमें भी (पक्वं पूर्वं अव) परिपक्व दूध पट्टिसेही रखा है । (यत् वां)
 तुम दोनोंके लिए, (वनिनः अन्तः) जंगलोंके भीतर (ह्यारः न) सापके तुल्य
 अत्यन्त सावधान रहकर, (हविष्मान् शुचिः यजते) हविर्द्रव्य साध रखने
 वाला परिश्रम यजमान उस दूधका यज्ञ करता है ।

१७७ भाष्यार्थ—सत्य पाठक अग्निदेवो । तुमने गौमें दूध उत्पन्न किया है ।
 अपक्व गायमें भी उत्तम परिपक्व दूध उत्पन्न किया है । इसी दूधसे, जंगलके
 अन्दर साप जैसा सावधान रहता है, वैसा सावधान रहकर, शुचि होकर यज-
 मान अग्निदेवोंके उद्देश्यसेही यज्ञ करता है । (अग्निदेवोंने निर्माण किया दूध
 उन्नीके लिए अर्पण करता है ।)

१७७ मानवधर्म—गौका दूध बढ़ाना चाहिये । सावधान रहकर उस दूधका यज्ञ
 करना चाहिये ।

१७७ टिप्पणी—क्रतु-प्सू=सत्यका पाठन करनेवाले, वनिन=जंगलका वृक्ष
 समिधा । ह्यारः=घोर, चमटी, साप ।

[१७८]

१७८ युवं हे घमं मधुमन्तमत्रये ऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेवे ।
 तद् वां नरावशिना पश्वइष्टी रध्वेन चक्रा प्रति पन्ति
 मध्वः ॥४॥

१७८ युवम् । ॥ घर्मम् । मधुमन्तम् । अत्रये ।
 अपः । न । क्षोदः । अवृणीतम् । एपे ।
 तत् । चाम् । नरौ । अश्विना । पश्वःऽइष्टिः ।
 रथ्याऽइव । चक्रा । प्रति । यन्ति । मध्वः ॥४॥

१७८ अन्ययः—नरा अश्विना । एपे अत्रये युवं ह घर्मं मधुमन्तं अपः क्षोदः
 न अवृणीतं; तत् परं पश्व इष्टिः मध्वः रथ्या चक्रा इव प्रति यन्ति ॥४॥

१७८ अर्थ-हे (नरा) नेता आधिदेवो ! (एपे अत्रये) सुख चाहनेवाले
 अत्रिके लिए (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चय पूर्वक (घर्मं) गर्मीको (मधुमन्तं
 अवृणीतं) और मिठास चुक कर दिया । गर्मीका विचारण करके कीत बनाया ।
 (तत्) इसलिये (चां) तुम दोनोंके समीप (पश्व इष्टिः मध्वः) यज्ञ और
 मधुसंभार (रथ्या चक्रा इव) रथके पहियोंके समान (प्रति यन्ति) चके
 जाते हैं ।

१७८ भाषार्थ-हे नेता आधिदेवो ! अत्रि क्षपिको सुख देनेके लिए तुम
 दोनोंने गर्मीको जलके समान कीतक और मिठासके समान सुख कारक बना
 दिया । तब तुझारे लिये यह यज्ञ किया जाता है । (चक्रके समान चारोंबार
 चककर यज्ञ तुझारे पास आता है ।)

१७८ मानवधर्म-अनुयायियोंको सुख देनेके लिये नेता यत्न करे, और अनुया-
 यीनी नेताका हित करें ।

१७८ टिप्पणी- घर्म = गर्मी, उष्णता । पश्वःऽइष्टिः = पशुके दूध आदिसे
 होनेवाला यज्ञ ।

[१७९]

१७९ आ वां दानार्यं ववृतीयं दस्त्रा गोरोहेण तौग्न्यो न जित्रिः ।
 अपः क्षोणी संचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा ॥५॥
 १७९ आ । वाम् । दानार्यं । ववृतीयं । दस्त्रा ।
 गोः । ओहेन । तौग्न्यः । न । जित्रिः ।
 अपः । क्षोणी इति । संचते । माहिना । वाम् ।
 जूर्णः । वाम् । अक्षुः । अंहसः । यजत्रा ॥५॥

१७९ अन्वयः-दत्ता । यजज्ञा । जिद्रिः तौग्यः न गोः भोहेन वा दानाय भा
ववृतीय । वा माहिना अपः क्षोणी सचते, जूर्णः, वां भंहसः भक्षुः ॥५॥

१७९ अर्थ-दे (दत्ता) दानुविनाशक तथा (यजज्ञा) पूजनीय भाधिदेवो !
(जिद्रिः) विजयका इच्छुक (तौग्यः न) तुमका पुत्रजैसे (गोः भोहेन) वाणी
से प्रशंसा हाथ (वां दानाय) तुम दोनोंसे दान लेलेनेके लिए प्रवृत्त हुआ
वैसा (भा ववृतीय) मैं तुझारी ओरसे दान लेनेके लिए प्रवृत्त होजाऊँ;
(वां माहिना) तुम दोनोंकी महिमासे तो (अपः क्षोणी सचते) भन्तरिक्ष
और भूलोक व्याप्त हुए हैं, मैं इसकारण (जूर्णः) वृद्ध होता हुआ भी (वा)
तुम दोनोंकी कृपासे (भंहसः) जराकपी कष्टसे मुक्त हो (भक्षुः) दीर्घ-
जीवी बनूँ । इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ ।

१७९ भावार्थ-दे दानुविनाशक पूजायोग्य भाधिदेवो! जिस तरह विजयकी
पृच्छा करनेवाला तुमका पुत्र भुजु तुझारी स्तुति करनेसे मृत्युसे बच गया,
ऐसी तुझारी महिमा तो सब धाधा पृथिवीमें प्रसिद्ध है । इसलिये भति वृद्ध
हुआ मैं तुझारी कृपासे मुझको दूर करके दीर्घायु मनाना चाहता हूँ ।

१७९ मानवधर्म — विजय भी इच्छा करनेवालोंकी राहायता करो । विद्रिवा
द्वारा पृथ्वीकी भी तक्षण बना दे । ऐसे प्रयत्न करो कि संपूर्ण विधोमें महामय पैल
जाय ।

१७९ टिपणी - जिद्रिः = वृद्ध, दीर्घ, विजयका इच्छुक । तौग्यः =
भुज्युः देता ५७, ७७, ७९-८१, ११५ ६-

[१८०]

१८० नि यद् युवेथे निद्रुतः सुदानू उर्प स्वधार्मिः सृजधः
पुरंधिम् । प्रेपद् वेपद् वाता न मूरिरा महे ददे सुमतो न
वाजम् ॥६॥

१८० नि । यत् । युवेथे इति । निद्रुतः । सुदानू इति सुदान् ।
उर्प । स्वधार्मिः । सृजधः । पुरंधिम् ।
प्रेपत् । वेपत् । वातः । न । मूरिः ।
आ । महे । दुदे । सुमतः । न । वाजम् ॥६॥

१८० अन्वयः-सुदान् । यत् नियुतः नि युवेधे पुरन्धि स्वधाभिः स
सृजधः । सुमतः न, सूरिः महे वाजं भा ददे, प्रेपत्, वातः न वेपत् ॥६॥

१८० अर्थ-हे (सुदान्) अच्छे दान देनेवाले आशि देवो! (यत्) जब (नियुत
नि युवेधे) घोड़ोंकी रथमें जोतते हो, तब (पुरन्धि) बहुतोंका धारण कर
वाली बुद्धिको (स्वधाभिः) उपसृजधः) अश्वोंसे संयुक्त करवाले हो; (सुमतः न
अच्छे कार्य करने वालेके समान (सूरिः) विद्वानपुरुष (महे) महारके लिए
(वाजं भा ददे) अश्वका प्रहण करता है, (प्रेपत्) तुम्हें तृप्त करता है और
(वातः न) वायुके समान (वेपत्) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हो जाता है ।

१८० भावार्थ- अच्छा दान देने वाले हे आशिदेवो! तुम दोनों जब घोड़ोंकी
अपने रथमें जोतते हो तब बहुतोंका पालन पोषण करनेकी बुद्धि विपुल अश्वोंके
साथ अपने भक्तोंमें उत्पन्न करते हो । सर्वकर्म करनेवाला विद्वान इम महारूप पूर्ण
कार्यकेलिए जब लक्ष प्राप्त करता है, तब उसके दानसे वह तुम्हें तृप्त करता है
और वायुके गतिसे वह तुम्हें प्राप्त होता है ।

१८० मानवधर्म — नेता स्वयं बहुत दान करे, और अपने अनुयायियोंके
पर्याप्त भोजन देकर उनमें बहुतोंका पालन पोषण करनेकी उदार बुद्धि उत्पन्न करे ।
विद्वान लोग इस तरह बहुतोंके पालन पोषण करनेके शुभ कर्म करें और अपने
उदारतासे देवत्वको प्राप्त हों ।

१८० द्विष्णी — पुरन्धि= बहुतोंका पोषण करनेकी बुद्धि, नगरकी
विदुषी स्त्री ।

[१८१]

१८१ वयं चिदि वां जरितारः सत्या विपन्यामहे वि पणिहिंता-
वान् । अघा चिदि प्माश्विनावानिन्धा पाथो हि प्मा
नृपणावन्तिदेवम् ॥७॥

१८१ वयम् । चित् । हि । वाम् । जरितारः । सत्याः ।
विपन्यामहे । वि । पणिः । हित्तवान् ।
अघ । चित् । हि । स्म । अश्विनौ । अनिन्धा ।
पाथः । हि । स्म । नृपणौ । अन्तिदेवम् ॥७॥

१८१ अन्वयः नृपणौ अविन्धा अश्विनौ । वयं सत्या वां चित् दि जरितारः
विपन्यामहे, हित्तवान् पणिः वि, अघा चित् अन्तिदेवं पाथः हि स्म ॥७॥

१८१ अर्थ-हे (वृषणौ) बलवान् (अनिन्द्या) अनिन्दनीय भक्षिदेवो ? (वयं) हम (सया) सच्चे होकर (वां चित् दि जरितारः) तुम दोनोंकीही प्रशंसा करनेकी इच्छासे (वि पन्यामहे) बहुत स्तुति करते हैं परन्तु (हितवान् पनिः वि) धनसंग्रह करनेवाला व्यापारी यज्ञसे विरुद्ध हो रहा है । (भधा चित्) अब आप तो (अन्ति देवं) देवताके देने योग्य सोम (पाथः हि स्म) कोही तुम दोनों पीते हो ।

१८१ भावार्थ-हे बलवान् अनिन्दनीय भक्षिदेवो ! हम तुझारे सत्य भक्त हैं भतः तुझारे गुणोंका वर्णन करते हैं । परन्तु यह पूंजीपति धनका केवल संग्रह करता है, यस्तु यज्ञ करताही नहीं ! आप तो यज्ञ कर्ताके पास जाते हैं और देवोंके ही पीने योग्य सोमरसका पान करते हैं । (अर्थात् उस अयोजक धनाढ्यके पास तुम जातेंभी नहीं !

१८१ मानवधर्म-बलवान् धनो, अनिन्दनीय कर्म करते रहो । ऐसे कार्य करो कि जिनसे तुम्हारी श्रम प्रशंसा करें । जो यज्ञ नहीं करता, उस धनाढ्य के धनका कोई उपयोग नहीं है अतः जो धन अपने पास हो उसका यज्ञमें समर्पण करना चाहिये ।

१८१ टिप्पणी-हितवान्=धनका धरोहर रखनेवाला, स्थान स्थानपर रखनेवाला । पनिः=व्यापारी, वैश्य, लेनदेन करने वाला ।

[१८२]

१८२ युवां चिद्विष्मांश्चिनावनु धून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ ।
अगस्त्यो नरां नृपु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत्
सहस्रैः ॥८॥

१८२ युवाम् । चित् । दि । स्म । अश्विनौ । अनु । धून् ।
विरुद्रस्य । प्रस्रवणस्य । सातौ ।
अगस्त्यः । नराम् । नृपु । प्रशस्तः ।
काराधुनीइह्य । चितयत् । सहस्रैः ॥८॥

१८२ अन्वयः-भक्षिगै ! नृपु नरां प्रशस्तः अगस्त्यः अनु धून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ युवां चित् दि काराधुनी इव सहस्रैः चितयत् ॥८॥

१८२ अर्थ-हे भक्षिदेवो ! (नृपु नरां) मानवों और नेताओंमें (प्रशस्तः अगस्त्यः) प्रशंसनीय अगस्त्य ऋषि (अनु धून्) प्रति दिन (विरुद्रस्य प्रस्र

घणस्य तार्ता) विशेष गर्जना करनेवाले जलप्रवाहको पानेके लिए (गुवां धित् द्वि) तुम दोनोंकी ही (काराधुनीइव) बड़ा ध्वनि करनेवाले वाद्यके समान (महस्रैः धितयत्) सहस्रों श्लोकोसे स्तुति करता है ।

१८२ भावार्थ—मनुष्यों और नेताओंमें सुप्रसिद्ध भगवत् ऋषि प्रति दिन विशेष वेगवान् जल प्रवाहको प्राप्त करनेके लिए, वांसुरी कारीगरीसे बजाये वालेके समान, कोमल ध्वनिसे सहस्रों भालाओंसे तुह्यारी ही स्तुति गाता है ।

१८२ मानवधर्म—सब मानवों और नेताओंमें प्रसिद्ध नेता बनो । ऐसा मधुर गायन करो कि जिसको सुनकर सब प्रसन्न हो जायें । जल प्रवाहोंको काममें लाओ ।

१८२ टिप्पणी—वि-रुद्रः प्रस्रवणः=विशेष शब्द करमे वाला वेगवान् जलका झरना, सोत । काराधुनी=कारा = वांसुरी 'धुनी' = ध्वनी, काराधुनी = वांसुरी का ध्वनि ।

[१८३]

१८३ प्र यद् वहेथे महिना रथस्य प्र स्पन्द्रा याथो मनुषो न होता । धत्तं सुरिभ्य उत वा स्वश्व्यं नासत्या रयिपाचः स्याम ॥९॥

१८३ प्र । यत् । वहेथे इति । महिना । रथस्य ।
प्र । स्पन्द्रा । याथः । मनुषः । न । होता ।
धत्तम् । सुरिभ्यः । उत । वा । सुऽअश्व्यम् ।
नासत्या । रयिऽसाचः । स्याम ॥९॥

१८३ अन्वयः—नासत्या ! स्पन्द्रा । यत् रथस्य महिना ॥ वहेथे, मनुषः होता म प्रयाथः, सुरिभ्यः वा सु अश्व्यं धत्तं उत रयि-साचः स्याम ॥९॥

१८३ अर्थ—दे (नासत्या ! स्पन्द्रा) साथचालक और गतिशील भण्डियों ! (यत्) जो (रथस्य महिना) रथकी महनीयताके कारण (वहेथे) तुम दोनों डाकूट डंगते भागे बढने हो, (मनुषः होया न) मारवाँमें हयनकर्ता के समान तुम दोनों (प्रयाथः) यात्रा करने हो ऐसे तुम (सुरिभ्यः वा) विद्वानोंकोभी (सु अश्व्यं धत्तं) सुन्दर घोड़ोंसे पूर्ण धन देदो (उत रयि-साचः स्याम) और हम भी धनसे युक्त हों ।

१८३ भावार्थ— हे सत्यके पालनकर्ता और सर्वत्र संचार करनेवाले अभिदेवो ! तुम दोनों अपने उत्तम रथके वेगसे यज्ञकर्ताके पास मनुष्य-लोकमें गमन करते हो, अतः जो उत्तम विद्वान् है, उसको उत्तम घोड़े और धन दो और हमें भी धन दो ।

१८३ मानवधर्म— सत्यका पालन करो, अपने देशमें सर्वत्र संचार करके देख लो कि कहाँ क्या है । अपने उत्तम रथमें बैठकर साकर्मकर्ताके पास जाओ और उसका उत्साह बढ़ानेके लिये उसे घोड़े और धन दो ।

[१८४]

१८४ तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैराश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामिषानं विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥ १०

१८४ तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम ।
स्तोमैः । अश्विना । सुविताय । नव्यम् ।
अरिष्टनेमिम् । परि । द्याम् । इषानम् ।
विद्याम् । इपम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥ १० ॥

१८४ अन्वयः— अश्विना । अद्य सुविताय वां तं नव्यं, वां परि इषानं, अरिष्टनेमिं रथं स्तोमैः वयं हुवेम, जीरदानुं इपं वृजनं विद्याम् ॥ १० ॥

१८४ अर्थ— हे अश्विनी ! (अद्य सुविताय) आज सुविधाके लिये (वां तं नव्यं) तुम दोनोंके उस नये, [वां परि इषानं] पुछोछके चारों ओर सानेवाले [अरिष्टनेमि रथं] व बिपद्नेवाली नैमिसे युक्त रथको [स्तोमैः] स्तोत्रोंकी सहायतासे [वयं हुवेम] हम इधर बुलाते हैं, [जीर-दानुं] क्षीप्त दानको [इपं वृजनं] अन्न तथा बलको [विद्याम्] हम प्राप्त करें ।

१८४ भावार्थ— अभिदेवो ! आजही हमें सुखकी प्राप्ति हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारा कभी न बिगड़नेवाला रथ हमारे पास आ जाय और हमें अन्न, बल तथा धन प्राप्त हो ।

[१८५] (ऋ० १।१८।१-९)

१८५ कद्रु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् । अपं
वां यज्ञो अंकुत प्रशस्तिं वसुधित्ती अवितारा जनानाम् ॥ १

अश्विनी दे० २१

१८५ कत् । ॐ इति । प्रेष्ठी । इषाम् । रयीणाम् ।
 अध्वर्यन्ता । यत् । उत्तऽनिनीथः । अपाम् ।
 अयम् । वाम् । यज्ञः । अकृत । प्रऽर्शस्तिम् ।
 वसुधिति इति वसुऽधिति । अवितारा । जनानाम् ॥१॥

१८५ अन्वयः—जनानां अवितारा ! वसुधिति ! अयं यज्ञः वा प्रशस्ति
 भूतः, अध्वर्यन्ता प्रेष्ठी ! यत् अपां रयीणां ह्यां उत्तिनीथः कत् उ ॥ १ ॥

१८५ अर्थ—हे [जनानां अवितारा] जनोके रक्षक तथा [वसुधिति]
 धनोको देनेहारे भविष्यो ! [अयं यज्ञः] यह यज्ञ [वा प्रशस्ति भूत] तुम
 दोनोंकी सराहना कर चुका है; [अध्वर्यन्ता प्रेष्ठी] हे अध्वरमें जानेहारे
 अत्यन्त प्यारे भविष्यो ! [यत्] जो [अपां रयीणां ह्यां] जलोंको, धन
 संपदाओंको और भस्मोंको [उत्तऽनिनीथः] तुम दोनों ले चकते हो, [कत् उ]
 यह कार्य अब किम् समय शुरू होनेवाला है ?

१८५ भाषार्थ—हे जनोके संरक्षक और उनको धन देनेहारे देवों ! यह
 यज्ञ हम तुम्हारे लियेही करते हैं । हे यज्ञमें जानेवाले और प्रेमसे उसकी पूर्णता
 करनेवाले देवों ! जो तुम जल, धन और भस्मका दान करते हो यह कार्य तुम
 कब करोगे ? [हम उससे लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ।]

१८५ मानवधर्म—जनताका संरक्षण करो, धनका दान करो, यज्ञमें
 जाओ, यज्ञोंकी सहायता करो ।

[१८६]

१८६ आ वामश्वांसुः शुचयः पयस्या वार्तरंहसो विव्यासो
 अत्याः । मनोजुवो वृषणो वीतपृष्ठा एह स्वराजो अश्विना
 वहन्तु ॥२॥

१८६ आ । वाम् । अश्वांसुः । शुचयः । पयऽस्याः ।
 वार्तरंहसः । विव्यासः । अत्याः ।
 मनऽजुवः । वृषणः । वीतऽपृष्ठाः ।
 आ । इह । स्वऽराजः । अश्विना । वहन्तु ॥२॥

१८६ अन्वयः—हे अश्विना ! शुचयः विव्यासः, अत्याः वार्तरंहसः पयस्याः
 मनोजुवः, वृषणा, वीतपृष्ठाः स्व-राजः अश्वामः वा इह आ वहन्तु । २ ॥

१८६ अर्थ— हे अभिदेवों ! [सुचयः] विशुद्ध, [दिग्भासः,] दिग्भ, छेष्ट, [भस्माः] रामनशील, [वात-रंहसः] वायुके तुल्य वेगवाले [पयः-पाः] दूध पीनेवाले, [मनो-जुवः] मनके समान वेगयुक्त, [वृषणः] बलिष्ठ, [वीत-पृष्ठः] चमकीले पीठवाले [स्व-राजः अभ्यासः] और स्वयं तेजस्वी घोड़े [वां] तुम दोनोंको [इह वा बहन्तु] इधर ले भावें ।

१८६ भाष्यार्थ— उक्त प्रकारके घोड़े अभिदेवोंके होते हैं । ये उनको हमारे यज्ञमें ले भावें ।

[१८७]

१८७ आ वां स्थोऽवनिर्न प्रवत्वान्सुप्रवन्धुरः सुविताय गम्याः ।
वृष्णाः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या
यः ॥३॥

१८७ आ । वां । स्थः । अवनिः । न । प्रवत्वान् ।
सुप्रवन्धुरः । सुविताय । गम्याः ।
वृष्णाः । स्थातारा । मनसः । जवीयान् ।
अहमपूर्वः । यजतः । धिष्ण्या । यः ॥३॥

१८७ अन्वयः— धिष्ण्या ! स्थातारा । वां यः वृष्णाः मनसः जवीयान्, यजतः, सुप्रवन्धुरः, अवनिः न प्रवत्वान् अहं-पूर्वः रथः, सुविताय आ गम्याः ॥३॥

१८७ अर्थ— हे [धिष्ण्या !] ऊँचे स्थानपर रहनेवाले [स्थातारा] अपने पदपर स्थिर रहनेवाले अभिदेवों । [वां यः] तुम दोनोंका जो [वृष्णाः मनसः जवीयान्] प्रबल और मनसे भी अधिक वेगवान् [यजतः] यज्ञीय, (सुप्रवन्धुरः) सुन्दर अग्रभागवाला, (अवनिः न) भूमिके तुल्य [प्रवत्वान्] भक्ति विस्तृत, (अहं पूर्वः रथः) अहमहमिकासे भागे बढनेवाला रथ है, यह (सुविताय आ गम्याः) भलाईके लिए हमारे पास आ जाय ।

१८७ भाष्यार्थ— अभिदेवोंका उक्त प्रकारका रथ हमारे यज्ञके समीप आजाय ।

१८९ प्र । वाम् । निऽचेरुः । ककुहः । वशान् । अनु ।

विशङ्गऽरूपः । सदनानि । गम्याः ।

हरी इति । अन्यस्य । पीपयन्त । वाजैः ।

मथा । रजांसि । अश्विना । वि । घोषैः ॥५॥

१८९ अन्वयः— अभिना । वो विशङ्गरूपः निचेरुः वशान् ककुह अनु सदनानि प्र गम्या । अन्यस्य हरी मथा वाजै, घोषैः रजांसि वि पीपयन्त ॥ ५ ॥

१८९ अर्थ— हे आभिदेवो ! (वां) तुम दोनोंमेंसे एकका (विशङ्गरूप.) पीतवर्णवाला भर्मात् सुनहरा और (निचेर) सभी जगह जानेवाला रथ (वशान् ककुह अनु) वशीभूत दिशाओंमें स्थित (सदनानि प्र गम्या) यज्ञस्थानोंमें चला जावे, (अन्यस्य हरी) दूसरेके घोड़े (मथा) बिकोडनेसे उत्पन्न (वाजैः) भक्षोंसे तथा (घोषैः) घोषणाओंसे (रजांसि वि पीपयन्त) लोकोको विशेष दगसे पुष्ट करते हैं ।

१८९ भावार्थ— आभिदेव वो हैं । उनमेंसे एकका रथ सुनहरा है जो दिशावपदिशाओंके यज्ञस्थानोंमें जाता है । दूसरेके घोड़े बिकोडनेसे उत्पन्न घृतादि भक्षोंसे साथ लेकर सबही पुष्ट करते हुए चरते हैं ।

[१९०]

१९० प्र वां श्रुतवान् वृषभो न निष्पाद् पूर्वारिपश्चरति मध्वं
इष्णन् । एवैन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेपन्तीरुध्वा नद्यो न
आगुः ॥६॥

१९० प्र । वाम् । श्रुतऽवान् । वृषभः । न । निष्पाद् ।

पूर्वीः । इषः । चरति । मध्वः । इष्णन् ।

एवैः । अन्यस्य । पीपयन्त । वाजैः ।

वेपन्तीः । ऊर्ध्वाः । नद्यः । नः । आ । अगुः ॥६॥

१९० अन्वय— वा श्रुतवान् वृषभ न निष्पाद् मध्व इष्णन् पूर्वी इष प्र चरति, अन्यस्य एवै वाजै वेपन्ती ऊर्ध्वा, पीपयन्त नद्य न आ अगु ॥ ६ ॥

१९० अर्थ- (वां) तुम दोनोंमेंसे एक (शस्त्रान् वृषभः न) पुरातन, बलवान्, जैसा वीर (निष्पाद्) शत्रुदलको हटानेवाला है और (मध्वः इष्णन्) मीठे सोमको चाहता हुआ (पूर्वोः इषः प्रचरति) बहुतसी भस्म सामग्रियोंको साथ लेकर संचार करता है। (अन्यस्य) दूसरेके (एवैः) गमनशील (वाजैः) भस्मोंके साथ (वेपन्तीः) फैलती हुई (ऊर्ध्वाः) ऊपरकी ओर चढ़नेवाली (नद्यः) नदियों समको (पोषयन्त) पुष्ट करती हैं वे (नः आ जगुः) हमारे समीप आ जायें।

१९० भाष्यार्थ- अभिदेवोंमेंसे एक पुरातन वीर शत्रुको परास्त करता है और मीठा भस्म अपने साथ लेकर सर्वत्र संचार करता है। दूसरा भस्मोंको चढ़ानेवाली नदियोंको वेगसे बहाता है। (एक भस्ममें मीठे रसकी उत्पत्ति करता है और दूसरा नदियोंको महापूरसे भरपूर कर देता है।)

[१९१]

१९१ असर्जिं वां स्थविरा वेधसा गीर्वाळहे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती । उपस्तुतावतं नार्धमानं यामन्नयामञ्जृणुतं हवं मे ॥७॥

१९१ असर्जिं । वाम् । स्थविरा । वेधसा । गीः ।
वाळहे । अश्विना । त्रेधा । क्षरन्ती ।
उपस्तुतौ । अवतम् । नार्धमानम् । यामन् ।
अयामन् । शृणुतम् । हवम् । मे ॥७॥

१९१ अर्थ- वेधसा अश्विना ! वा स्थविरा गी त्रेधा क्षरन्ती वाळहे असर्जिं; मे हवं यामन् अयामन् शृणुतं, उपस्तुतौ नार्धमानं अवतम् ॥ ७ ॥

१९१ अर्थ- हे (वेधसा) कार्यकर्ता अभिदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (स्थविरा गीः) प्राचीन बाणों-स्तुति- (त्रेधा क्षरन्ती) तीन प्रकारसे तुम्हें प्राप्त होती हुई (वाळहे असर्जिं) बल बढ़ानेके लिए उत्पन्न हुई है। (मे हवम्) मेरी प्रार्थनाको (यामन् अयामन्) गमनके समय या गमन न करनेके समय तुम (शृणुत) सुन लो। और (उपस्तुतौ) प्रशंसित होनेपर इस (नार्धमानं अवतम्) भस्मकी रक्षा करो।

१९१ भावार्थ- हे रचनाकार्यमें कुशल, भविष्यदेवो ! यह प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति तीन प्रकारोंसे बल प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे पास पहुँचती है । मेरी की हुई हम प्रार्थनाको तुम सुन लो और प्रसन्नचित्त होकर मेरी रक्षा करो ।

१९१ टिप्पणी- स्थविरा = वृद्ध, नित्य, स्थायी, प्राचीन, पुरातन । स्थविरा गीः = प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति । प्रार्थनाका गीत । अङ्गणे वर्णनका श्लोक ।

[१९२]

१९२ उत स्या वां रुक्षतो वप्ससो गीर्वाहिषि सदासि पिन्वते नृन् । वृषां वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुष्यो दशस्यन् ॥८॥

१९२ उत । स्या । वाम् । रुक्षतः । वप्ससः । गीः ।
 गीर्वाहिषि । सदासि । पिन्वते । नृन् ।
 वृषा । वाम् । मेघः । वृषणा । पीपाय ।
 गोः । न । सेके । मनुष्यः । दशस्यन् ॥८॥

१९२ अन्वयः- उत वां रुक्षतः वप्ससः स्या गीः नृन् गीर्वाहिषि सदासि पिन्वते, वृषणा । वां वृषा मेघः मनुष्यः दशस्यन् गोः सेके न पीपाय ॥ १८ ॥

१९२ अर्थ- (उत वां) और तुम दोनोंके (रुक्षतः वप्ससः) घमकवाले स्वरूपका वर्णन करनेवाली (स्या गीः) वह वाणी (नृन्) मानवोंको (गीर्वाहिषि सदासि) तीन कुशामनोंसे युक्त यज्ञस्थानमें (पिन्वते) पुष्ट करती है । वृ (वृषणा) बलशाली भविष्यदेवो ! (वां वृषा मेघः) तुम दोनोंके लिये वृष्टि करनेवाला मेघ (मनुष्यः दशस्यन्) मानवोंको जल देता हुआ (गोः सेके न) गौके दूधके सेवन करनेके समानवही (पीपाय) पोषण करता है ।

१९२ भावार्थ- भविष्यदेवोंका वर्णन करनेवाली यह स्तुति यज्ञस्थानमें मनुष्योंकी भाँति बढ़ाती है । तुम्हारी प्रेरणाने वृष्टि करनेवाला यह मेघ मनुष्योंके लिये जल देकर, गौ दूध देकर पुष्ट करनेके समान, पोषण करता है ।

१९३ युवां पूषेवाश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जंरते हविष्मान् । हुये
यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेण वृजनं जीरदानुम् ॥९॥

१९३ युवाम् । पूषाऽईव । अश्विना । पुरम्ऽधिः ।
अग्निम् । उपाम् । न । जस्ते । हविष्मान् ।

हुये । यत् । याम् । वरिवस्या । गृणानः ।
विद्याम् । उपम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥९॥

१९३ मन्थयः— अश्विना । पुरन्धिः । पूषा इव हविष्मान् युवां यवां अग्निं न
जस्ते, यत् वां वरिवस्या गृणानः हुये जीरदानु वृजन इयं विद्याम् ॥९॥

१९३ अर्थ— हे अग्निदेवो ! (पुरन्धिः पूषा इव) यदुत्तोंका धारण करने-
वाला पूषा जिस प्रकार पोषण करता है वैसेही (हविष्मान्) हवि साथ रखने-
वाला यजमान (युवां) तुम दोनोंकी (यवां अग्निं न) यवा तथा अग्निके
समान (जस्ते) स्तुति करता है, (यत् वां वरिवस्या) जो मैं तुम दोनोंकी
सेवा करता हुआ (गृणानः हुये) स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ, वह इसलिये
कि हम लोग (जीरदानु वृजन इयं) शीघ्र दानद्वारा बल तथा भस्त्रको
(विद्याम्) प्राप्त करें ।

१९३ भावार्थ— हे अग्निदेवो ! हविष्वाद्य साथ लेकर यजमान यज्ञ
करता हुआ तुम्हारी प्रार्थना करता है । इससे हमें अतिशीघ्र भस्त्र, बल और
धन प्राप्त हो ।

[१९४] (अ. १।१८२।१-८) जगती: ६,८ त्रिष्टुप् ।

१९४ अमूद्रिदं वयुनमो पु मूषता रथो वृषण्वान् मर्दता मनी-
पिणः । धियंजिन्वा धिण्ययां विष्पलावसू द्विवो नपाता
सुकृते शुचिवता ॥१॥

१९४ अमूत् । इदम् । वयुनम् । ओ दत्तिं । सु । मूषत ।
रथः । वृषण्वान् । मर्दत । मनीपिणः ।
धियम्ऽजिन्वा । धिण्ययां । विष्पलावसू इति ।
द्विवः । नपाता । सुकृते । शुचिऽवता ॥१॥

१९४ अन्वयः- मनीषिणः ! इदं वयुनं अभूत्, वृषण्वान् रथः, मदत, सुभूयत; शुचिमतः, दिवः न-पाता, धिष्ण्या, विश्वकावस् सुकृते धियं जिम्वा ॥१॥

१९४ अर्थ- हे (मनीषिणः) मननशील विद्वानो ! (इदं वयुनं अभूत्-) यह ज्ञान हमें हुआ है कि अग्निदेवोंका (वृषण्वान् रथः) नरुवान् रथ हमारे पास आ पहुँचा है, इसलिये (मदत) आनन्दित होओ (सु-भूयत) भली-भाँति अलंकृत होओ, क्योंकि वे दोनों अग्निदेव (शुचिमतः) निर्दोष प्रतका अनुष्ठान करनेवाले (दिवः न-पाता) धुलोकका पतन न होने देनेवाले, (धिष्ण्या) प्रशंसनीय (विश्वकावस्) विश्वकाको यश देनेवाले, (सुकृते धियं जिम्वा) अच्छे कर्म करनेवालेको सुसुखि देनेवाले हैं ।

१९४ भावार्थ- हे मननशील विद्वानों ! हमें पता लगा है कि, अग्निदेवोंका सुख रथ हमारे यज्ञस्थानके पास आ पहुँचा है, उसे देखकर आनन्दित होओ, अच्छी तरह अलंकृत बनो । वे दोनों अग्निदेव सुख कर्म करनेवाले, धुलोकको आधार देनेवाले, विश्वकाकी सहायता करनेवाले, अच्छे कार्योंको शुभमति देनेवाले, एवं प्रशंसनीय हैं ।

१९४ मानवधर्म- अपने घर कोई बड़े वीर आवें तो उत्तम वेष-भूषा धारण करके उसका स्वागत करना योग्य है । बड़ा बलको कहते हैं कि जो उत्तम कर्म करता है, अनाथकी सहायता करता है, सुसुखि देता है और सबको आधार देता है ।

[१९५]

१९५ इन्द्रतमा हि धिष्ण्या मरुतमा वृक्षा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा । पूर्णं रथं वहेथे मध्व आचितं तेन वृश्वांसमुप याथो अश्विना ॥२॥

१९५ इन्द्रतमा । हि । धिष्ण्या । मरुतमा ।

वृक्षा । दंसिष्ठा । रथ्या । रथीतमा ।

पूर्णम् । रथम् । वहेथे इति । मध्वः । आचितम् ।

तेन । वृश्वांसम् । उप । याथः । अश्विना ॥२॥

१९५ अन्वयः- वृक्षा अश्विना ! धिष्ण्या इन्द्रतमा मरुतमा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा हि, मध्वः आचितं पूर्णं रथं वहेथे वृश्वांसं तेन उप याथः ॥ १ ॥ अश्विनो दे० १९५

१९५ अर्थ— हे (दत्ता) शत्रुविनाशक अभिदेवो ! तुम दोनों (धिष्ण्या) स्तुतिके योग्य, (इन्द्रतमा मरुत्तमा) इन्द्र एवं मरुतोंके अत्यन्त शुभ गुणोंको धारण करनेवाले, (दक्षिणा) अत्यन्त कार्यशील, (रथ्या रथीतमा हि) रथमें बैठने-वाले और अतीव श्रेष्ठ रथी हो, इसमें सशय नहीं; (मध्व आचित) मधुसे भरे हुए (पूर्ण रथ चहेथे) परिपूर्ण रथको लिए हुए तुम दोनों भागे बढते हो और (दाघांस) दानीके प्रति (तेन उपयाय) उसी रथके साथ जाते हो ।

१९५ भावार्थ— शत्रुविनाशकर्ता अभिदेवो ! तुम दोनों प्रशंसायोग्य तथा इन्द्र और मरुतोंके साथ शुभगुणोंका धारण करते हो। तुम सदा शुभ कार्यमें तत्पर, रथ चढानेमें तत्पर, उपाय रथियोंमें श्रेष्ठ हो । तुम रथपर सहजके घड़े भरकर रखते हो और यज्ञकर्ताके समीप उनके साथ पहुँचकर उसका दान करते हो ।

१९५ मानचर्चम— शत्रुका नाश करो । शुभगुणोंको धारण करो, रथ चढायेमें प्रवीण बनो । श्रेष्ठ महारथी बनो । सहज अपने पास रखो और अपने अनुयायियोंको दे दो ।

[१९६]

१९६ किमत्रं दत्ता कृणुथः किमासाथे जनो यः कश्चिदहवि-
महीयते । अति क्रमिष्टं जुरतं पणेरसुं ज्योतिर्विप्राय कृणुतं
वचस्यवे ॥३॥

१९६ किम् । अत्र । दत्ता । कृणुथः । किम् । आसाथे इति ।
जनः । यः । कः । चित् । अहविः । महीयते ।
अति । क्रमिष्टम् । जुरतम् । पणेः । असुम् ।
ज्योतिः । विप्राय । कृणुतम् । वचस्यवे ॥३॥

१९६ अन्वय — दत्ता । अत्र किं कृणुथ ? किं आसाथे ? यः कश्चित् जन
अहवि महीयते, अति क्रमिष्ट, पणेः असु जुरत, वचस्यवे विप्राय ज्योति
कृणुतम् ॥ ३ ॥

१९६ अर्थ— हे (दत्ता) शत्रुका नाश करनेवाले अभिदेवो ! (अत्र किं कृणुथः) इधर भला क्या करते हो ? (किं आसाथे) क्यों यहाँ बैठे हो ? (यः कश्चित्) जो कोई (जन अहवि महीयते) मुख्य यज्ञ न करता हुआ बसा बन बैठा है, उसे (अति क्रमिष्ट) छोड़कर भागे बढो और (पणे असु जुरत) कृपण, लोभी व्यापारीके प्राणोंको नष्ट करो, तथा (वचस्यवे विप्राय) स्तुति करनेके इच्छुक क्षत्री पुरुषके लिए (ज्योति कृणुत) प्रकाश करो ।

१९६ भावार्थ— हे शत्रुघ्न नाश करनेवाले अभिदेवो ! तुम इधर उधर न जाओ, विशेषतः यज्ञ न करनेवालेके पास न जाओ, उस कोभीके प्राण जाने दो । तुम सदा यज्ञकर्ताको प्रकाशका मार्ग बताओ ।

१९६ मान्यधर्म— जो सहायता पहुँचानी हो वह श्रेष्ठ सज्जनकीही प्रथम देनी योग्य है । धर्मही सन्मार्गवर्तिनोंकीही प्रकाशका सरल मार्ग बताना योग्य है ।

[१९७]

१९७ जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदधुस्तान्य-
श्विना । वाचंवाचं जरित् रत्तिनीं कृतमुभा शंसं नास-
त्यायतं गम ॥४॥

१९७ जम्भयतम् । अभितः । रायतः । शुनः ।
हतम् । मृधः । विदधुः । तानि । अश्विना ।
वाचम्ऽवाचम् । जरितुः । रत्तिनीम् । कृतम् ।
उभा । शंसम् । नास्त्या । अवतम् । गम ॥४॥

१९७ अन्यर्थः— नास्त्या अश्विना । शुनः रायतः अभितः जम्भयतं,
मृधः हतं, तानि विदधुः, जरितुः वाचं वाचं रत्तिनीं कृतं, उभा सम शंसं
भवतम् ॥ ४ ॥

१९७ अर्थ— हे (नास्त्या) सत्यके पाकक अभिदेवो । (शुनः रायतः)
कुत्तेके तथा काटनेकी जानेवालोंकी (अभितः जम्भयतं) पारो ओरसे बिनष्ट
करो, (मृधः हतं) लटनेवालोंकी मार डालो, (तानि विदधुः) उन्हें तुम
दोनों जानते हो, (जरितुः) स्तुतिकर्ताके (वाचं वाचं) प्रत्येक भाषणकी
(रत्तिनीं कृतं) धनयुक्त करो और (उभा) दोनों (सम शंसं भवतं) मेरे
प्रशंसाके भाषणकी रक्षा करो ।

१९७ भावार्थ— हे सत्यनिष्ठ अभिदेवो ! कुत्तेके समान हिंसकोंको नष्ट करो,
जो हमपर हमला करते हैं उनको मार डालो, इन सबको तुम जानते हो ।
तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी प्रत्येक स्तुतिके लिये उसे धन प्राप्त होता रहे,
तथा मुझ भक्तकी भी सुरक्षा करो ।

१९७ मान्यधर्म— सत्यका पाकन करो, हिंसकोंकी और पागलोंकी नष्ट
करो । सन्मार्गवर्तिनोंकी सुरक्षित रखो ।

[१९८]

१९८ युवमेतं चक्रथुः सिन्धुषु प्लवमात्मन्वन्तं पक्षिणं तौग्याय
कम् । येन देवत्रा मनसा निरुहथुः सुपत्नी पेतथुः
क्षोर्दसो महः ॥५॥

१९८ युवम् । एतम् । चक्रथुः । सिन्धुषु । प्लवम् ।
आत्मन्ऽवन्तम् । पक्षिणम् । तौग्याय । कम् ।
येन । देवत्रा । मनसा । निःऽऊहथुः ।
सुपत्तनि । पेतथुः । क्षोर्दसः । महः ॥५॥

१९८. अन्वयः— एतं आत्मन्वन्तं पक्षिणं प्लवं सिन्धुषु तौग्याय कं चक्रथुः
येन सुपत्नी मनसा देवत्रा निः ऊहथुः महः क्षोर्दसः पेतथुः ॥ ५ ॥

१९८. अर्थ— (एतं आत्मन्वन्तं) इस निजी शक्तिये पुष्प, (पक्षिणं),
पंछीके तुल्य उड़नेवाले, (प्लवं) नौकाको (सिन्धुषु) समुद्रमें (तौग्याय)
तुमपुत्रके, किए (कं चक्रथुः) सुलकारक वंगसे बना चुके, (येन)
शक्तिये (सुपत्नी) अच्छे वंगसे उड़नेवाले तुम दोनों (मनसा) मनःपूर्वक
(देवत्रा) देवोंके मध्य (निः ऊहथुः) ऊपर ऊपर हैं चके और (महः
क्षोर्दसः पेतथुः) बड़े भारी जलसमूहके बीच भा गये ।

१९८ भाषार्थ— तुमके पुत्र भुजुकी रक्षा करनेके लिये तुमने निजशक्तिये
चढ़नेवाके, पंछीके समान उड़नेवाके नौका जैसे वाहनोको बनाया और
मनके बेगसे महासागरके मध्यमें जा पहुँचे (और भुजुको बचाया) ।

१९८ टिप्पणी— देखो भुजु, तुम ५७, ७१, ७९-८१ ११५ इ०

[१९९]

१९९ अर्चविद्धं तौग्यमप्स्वन्तरनारम्मणे तमसि प्राविद्धम् ।
चर्तस्रो नावो जठलस्य जुष्टा उवृश्चिभ्यामिपिताः पारय-
न्ति ॥६॥

१९९ अर्चविद्धम् । तौग्यम् । अप्स्वम् । अन्तः ।
अनारम्मणे । तमसि । प्रऽविद्धम् ।
चर्तसः । नावः । जठलस्य । जुष्टाः ।
उत । अश्चिऽभ्याम् । इपिताः । पारयन्ति ॥६॥

१९९ अन्वयः— अप्सु अन्तः अवविद्धं, अनारम्भणे तमसि प्रविद्धं तौग्यं जलस्य जुष्टाः अश्विन्यां इयिताः चतस्रः नावः उत्पारयन्ति ॥ ६ ॥

१९९ अर्थ— (अप्सु अन्तः) जलोंके मध्य (अवविद्धं) गिराये हुए (अनारम्भणे तमसि) आश्वरहित अंधेरमें (प्रविद्धं तौग्यं) पीड़ित हुए तुमके पुत्रको (जलस्य जुष्टाः) समुद्रके मध्यतक पहुँची हुई और (अश्विन्यां इयिताः) अश्विदेवोंसे प्रेरित हुई (चतस्रः नावः) चार नौकाएँ (उत् पारयन्ति) ऊपर उठाकर पार पहुँचा देती हैं ।

१९९ भाषाार्थ— समुद्रके बीचमें आश्वरहित और अंधेर जलस्थानमें पड़े हुए पुत्र मुझको छुड़ानेके लिये अश्विदेवोंने चार नौकाएँ बलाई और उसको समुद्रके पार पहुँचा दिया ।

१९९ टिप्पणी— देखो तुम, मुज्यु,— ५७, ७१, ७२-८१, ११५ इ.

[२००] -

२०० कः स्विद्वृक्षो निर्धितो मध्ये अर्णसो यं तौग्यो नाधितः
पर्यपरवजत् । पूर्णा मृगस्य पुत्रोऽरिबारम् अवश्विना
ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७॥

२०० कः । स्विद्वृक्षः । निर्धितः । मध्ये । अर्णसः ।
यम् । तौग्यः । नाधितः । परिऽअसस्वजत् ।
पूर्णा । मृगस्य । पुत्रोऽरिब । आऽरमे ।
उत् । अवश्विनौ । ऊहथुः । श्रोमताय । कम् ॥७॥

२०० अन्वयः— अर्णसः मध्ये कः स्विद्वृक्षः निर्धितः यं नाधितः तौग्यः पर्यपरवजत्, पुत्रोः मृगस्य आरमे पूर्णा इव अवश्विनौ श्रोमताय कं उत् ऊहथुः ॥७॥

२०० अर्थ— (अर्णसः मध्ये) जलके बीच (कः स्विद्वृक्षः निर्धितः) भला कौनसा वृक्ष अर्थात् वृक्षसे निर्मित वध स्थिर रहा है (यं) जिसे (नाधितः तौग्यः) मायेया करता हुआ तुमका पुत्र मुझ (पर्यपरवजत्) छिपने लगा, नाधित होने लगा; (पुत्रोऽरिबारम्) पतनशील मृगके भाँड़बनके लिए (पूर्णा इव) पत्तों या पंखोंके समान (अवश्विनौ श्रोमताय) अश्विदेव कीर्ति पानेके लिए (कं) सुखकारक दंगसे उसको (उत् ऊहथुः) ऊपर उठा चुके ।

२०० भावार्थ-भग्निदेवोंका सुट्ट रथ समुद्रके बीचमें खड़ा रहा, इसपर तुमका पुत्र भुज्यु चढ़ने लगा । जिस तरह गिरनेवाले पशुको पंखोंका सहारा मिल जाय, उस तरह भुज्युको उस रथका आश्रय मिला और उसी समय भग्निदेवोंने भुज्युको अपनी तरफ ऊपर उठाया और रथमें बिठाया । इससे भग्निदेवोंकी कीर्ति बहुत हुई ।

२०० टिप्पणी- देखो भुज्यु, तुम ५७, ७१, ७९-८१, ११५, ११६, १३२, १४१, १४५, १७१, १७९, १९०-२००, ३११, ३४४, ३५३, ४०५, ५८६, ६०३, ६३१ ।

[२०१]

२०१ तद् वां नरा नासत्यावन्तु प्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन् ।
अस्मावुच सदसः सोम्यादा विद्यामेपं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

२०१ तत् । वाम् । नरा । नासत्यौ । अनु । स्यात् ।
यत् । वाम् । मानासः । उचथम् । अवोचन् ।
अस्मात् । अद्य । सदसः । सोम्यात् । आ ।
विद्याम् । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥८॥

२०१ ज्ञान्यय — नासत्यौ नरा ! यत् मानासः वां उचथ अवोचन्, तत् वां अनु स्यात्, अद्य अस्मात् सोम्यात् सदसः जीरदानुं वृजनं इपं विद्याम् ॥ ८ ॥

२०१ अर्थ— हे (नासत्यौ नरा) सत्यके पाकक, नेता भग्निदेवो ! (यत् मानासः) जो सम्माननीय लोग (वां) तुम दोनोंके द्विष्ट (उचथ अवोचन्) स्तोत्र कह चुके, (तद् वां अनु स्यात्) वह तुम्हें अनुकूल हो, (अद्य) आज (अस्मात् सोम्यात् सदसः) इस सोमयागके यज्ञस्थानसे (जीरदानु वृजन) विजयी, दान, बल, और (इष विद्याम्) अन्नको हम प्राप्त करें ।

२०१ भावार्थ— हे भत्यके पाकक भग्निदेवो ! स्त्रोता लोगोंने जो तुम्हारे स्तोत्र गाये हैं उनसे तुम प्रसन्न हो जाओ और इस यज्ञसे विजय देनेवाला धन, बल और अन्न हमें प्राप्त हो ।

[२०२] (ऋ० १।१८३।१-६)

२०२ ते युञ्ज्वाथाम्नसो यो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रि-
चक्रः । येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो
विर्न पूर्णः ॥१॥

२०२ तम् । युञ्ज्वाथाम् । म्नसः । यः । जवीयान् ।
त्रिवन्धुरः । वृषणा । यः । त्रिचक्रः ।
येन । उपयाथः । सुकृतः । दुरोणम् ।
त्रिधातुना । पतथः । विः । न । पूर्णः ॥१॥

२०२ अन्वयः— वृषणा ! यः त्रिचक्रः त्रिवन्धुरः, यः म्नसः जवीयान् तं युञ्ज्वाथाम्, येन त्रिधातुना सुकृतः दुरोणं उपयाथः, विः पूर्णः न पतथः ॥१॥

२०२ अर्थ— हे (वृषणा) ! चक्रवान् अग्निदेवो ! (यः त्रिचक्रः) जो तीन पहियोंवाला (त्रिवन्धुरः) तीन बैठनेके स्थानोंसे युक्त रथ है, (यः) जो (म्नसः जवीयान्) म्नससे भी अधिक वेगवान् है, (तं युञ्ज्वाथम्) उसे जोड़कर तैयार करो; (येन त्रिधातुना) जिस तीन धातुओंसे बनाये रथ-परसे (सुकृतः दुरोणं उपयाथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों चके जाते हो, और (विः पूर्णः न) पंछी हैनोसे जिस प्रकार उड़ता है, वैसेही (पतथः) तुम भन्तरालमें उड़ने लगते हो ।

२०२ भावार्थ— हे चक्रवान् अग्निदेवो ! तुम्हारा तीन पहियोंवाला, तीन बैठकोंके स्थानोंवाला, अत्यंत वेगवान् रथ जोड़ कर तैयार करो । इस तीन धारक शक्तिपोंसे युक्त रथपर बैठकर यज्ञकर्ताके घरपर जाओ । तुम तो पहियोंके समानही आकाशसे उड़कर जाते हो ।

२०२ मानवधर्म— अपने रथको अतिवेगसे चढ़ानेयोग्य सज्ज करो । आकाशमें भी पक्षी जैसे उड़नेवाले आकाशवात बनाओ ।

२०२ टिप्पणी—त्रिधातु = तीन धारक शक्तिपोंसे युक्त, तीन धातुओं-द्वारा सुशोभित ।

[२०३]

२०३ सुवृद्धो वर्तते यन्मि क्षां यत्तिष्ठयः क्रतुमन्तानुं पृक्षे ।
वर्पुर्वपुष्या संचतामियं गीद्विषो दुहित्रोपसा सचेथे ॥२॥

२०३ सुवृत् । रथः । वर्तते । यन् । अग्नि । क्षाम् ।
 यत् । तिष्ठथः । क्रतुमन्ता । अनु । पृक्षे ।
 वपुः । वपुष्या । सचताम् । इयम् । गीः ।
 दिवः । दुहित्रा । उपसा । सचेथे इति ॥२॥

२०३ अन्वयः— क्रतुमन्ता पृक्षे अनु यत् तिष्ठथः, क्षां यन् सुवृत् रथः
 अग्नि वर्तते; वपुष्या इयं गीः वपुः सचतां दिवः दुहित्रा उपसा सचेथे ॥ २ ॥

२०३ अर्थ— (क्रतुमन्ता) कार्यसे युक्त हुए तुम दोनों (पृक्षे अनु)
 हविष्य भक्तके पीछे जानेके लिये (यत् तिष्ठथः) जहाँ उहारे हो, वह
 (क्षां यन्) पृथ्वीपर घूमनेवाला तुम्हारा (सुवृत् रथः) सुन्दर रथ (अग्नि
 वर्तते) यज्ञभूमिके पास जाता है, (वपुष्या इयं गीः) यह सुन्दर रसमयी
 स्तुतिरूपी वाणी (वपुः सचतां) तुम्हारी रसमयी वृत्तिको प्राप्त हो जाए
 तुम्हें आनन्द देवे (दिवः दुहित्रा उपसा) चुकोककी कन्या उपासे (सचेथे)
 तुम दोनों युक्त होते हो ।

२०३ भावार्थ— हे अभिषेधो ! तुम मदा सरस्वती से तत्पर रहते हो । तुम
 हवनके यज्ञस्थानपर जानेके लिये अपने सुन्दर रथपर चढ़ते हो और वह रथ
 यज्ञके स्थानपर चला जाता है । तुम्हारा वर्णन करनेवाली यह स्तुति सुननेसे
 तुम्हें आनन्द हो, तुम तो उपाके साथही अर्थात् सचेरही रथपर चढ़ते हो ।

२०३ टिप्पणी—वपुष्या = सुन्दर, रसीली, उत्तम शरीरवाली । वपुः =
 शरीर, सौंदर्य, सुन्दरता, सरस्व, रसमय ।

[२०४]

२०४ आ तिष्ठतं सुवृत्तं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
 येन नरा नासत्येप्यथैव वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥

२०४ आ । तिष्ठतम् । सुवृत्तम् । यः । रथः । वाम् ।
 अनु । व्रतानि । वर्तते । हविष्मान् ।
 येन । नरा । नासत्या । इय्यथैव ।
 वर्तिः । यायः । तनयाय । त्मने । च ॥३॥

२०४ अन्वया- नासत्या नरा । यः हविष्मान् रथः वां नतानि भन्तु वर्तते, सुवृतं आ तिष्ठतं; येन तनयाय रमने च हृष्यथ्यै वर्तिः यावः ॥ ३ ॥

२०४ अर्थ- हे (नासत्या नरा) सत्यके पाळक नेता अग्निदेवो ! (यः हविष्मान् रथः) जो हविर्भागसे पूर्ण रथ (वां) तुम दोनोंको (नतानि वर्तते) कायोंको चढानेके लिए ले जाता है, उस (सुवृतं आतिष्ठतं) सुन्दर वाहनपर चढकर बैठो; (येन) जिसपरसे (तनयाय रमने च) पुत्र-को और उसको (हृष्यथ्यै) यज्ञकी प्रेरणा करनेके लियेही उनके (वर्ति यावः) घर चके जाते हो ।

२०४ भावार्थ- हे सत्यके पाळक अग्निदेवो ! हविर्द्रव्योंसे भरपूर नरा हुआ तुम्हारा रथ तुम दोनोंको अपने कार्य करनेके लिये ले जाता है, उसपर तुम बैठो और यज्ञमात्रको तथा उसके बालबच्चोंको यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये उनके यज्ञस्थानके प्रति जाओ ।

२०४ मानवधर्म- सत्यका पाळन करो, रथमें भस्त्रोंको रखो, और जहाँ यज्ञ चलते हों वहाँ जाओ और उनकी उचित सहायता करो ।

[२०५]

२०५ मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षन्मा परिं वर्त्तमुत मातिं धक्तम् । अयं वां मागो निहित इयं गीर्दत्ताविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

२०५ मा । वाम् । वृकः । मा । वृकीः । आ । वृधर्षत् ।
मा । परिं । वर्त्तम् । उत । मा । अति । धक्तम् ।
अयम् । वाम् । भागः । निऽहितः । इयम् । गीः ।
दत्ता । इमे । वाम् । निऽधर्यः । मधूनाम् ॥४॥

२०५ अन्वयः- वृको ! वां अयं भागः निहितः, इयं गीः, मधूनां इमे निधयः वा; मा परि वर्त्त, उत मा अति धक्तं, वां मा वृकः मा वृकीः आ दधर्षत् ॥ ४ ॥

अग्निमी दे० २३

२०५ अर्थ—हे (दत्ता) शत्रुविनाशकर्ता अभिदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं मागः निहितः) यह माग रखा है, (इयं गोः) यह स्तुति तैयार है, (मधूनां हमे निधयः) शत्रुओंके ये भाण्डार (वां) तुम्हारे लिए हैं, (ना परि घर्कं) हमें न छोड़ दो, (उत) और (मा भति घर्कं) न हमसे अन्य दूसरेको दान दो, (वां) तुम्हारी कृपासे (मा वृकीः मा वृकः) मुझे वृकियाँ तथा भेड़िया म (आ दधर्षति) आक्रान्त करें ।

२०५ भाधार्थ— हे शत्रुविनाशकर्ता अभिदेवो ! आपके लिये यह हवि-माग रखा है, यह स्तुति तुम्हारे लियेही है, ये शत्रुके पात्र तुम्हारे लिये तैयार रखे हैं, तुम हमें न छोड़ो, न दूसरेके पास जाओ । भेड़ी या भेड़िया हमारे ऊपर हमला न करें ।

२०५ मानवधर्म— नेता लोग अनुयायियोंमें रहें, उनको सुरक्षित रखनेके लिये सदा यत्न करें ।

[२०६]

२०६ युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दत्ता हवतेऽर्घसे हविष्मान् ।

दिशं न विष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५॥

२०६ युवाम् । गोतमः । पुरुमीळ्हः । अत्रिः ।

दत्ता । हवते । अर्घसे । हविष्मान् ।

दिशम् । न । विष्टाम् । ऋजूयाड्ईव । यन्ता ।

आ । मे । हवम् । नासत्या । उप । यातम् ॥५॥

२०६ अन्वयः— दत्ता नासत्या । हविष्मान् गोतमः, पुरुमीळ्हः, अत्रिः अर्घसे युवां हवते, ऋजूया हव यन्ता दिशं न मे हवं उप यातम् ॥ ५ ॥

२०६ अर्थ— हे (दत्ता नासत्या) शत्रुविनाशक और सत्यसे युक्त अभिदेवो ! (हविष्मान्) हवि साथ लेकर गोतम, अत्रि और पुरुमीळ्ह (अर्घसे) रक्षाके लिए (युवां हवते) तुम दोनोंको बुलाता है, (ऋजूया हव यन्ता) सरल मार्गसे जानेवाला जैसे (विष्टा दिशं न) दक्षार्थी हुई दिशाकी और जाता है ऐसेही (मे हवं) मेरी प्रकार सुनकर मेरे (उप यातं) समीप आ जाओ ।

२०६ भाचार्य— हे शत्रुविनाशक सत्यके पालक भस्मिदेवो ! हवि लेकर गोतम, भस्मि और पुरुमीठ के ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं । सरल मार्गसे जानेवाला इष्ट स्थानको सहजहीसे पहुँचता है। उस तरह मेरी प्रार्थना सुनकर सरल मार्गसे शीघ्रही मेरे पास पहुँच जाओ ।

२०६ मानवधर्म— मनुष्य अपनी सुरक्षाका यत्न करे । सरल मार्गसे चले और निर्विघ्न इष्ट स्थानको पहुँचे ।

[१०७]

२०७ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनाव-
धायि । एह यातं पृथिभिर्देवयानैर्विद्यामेधं वृजनं जीर-
दानुम् ॥६॥

२०७ अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य ।
प्रति । वाम् । स्तोमः । अश्विनी । अधायि ।
आ । इह । यातम् । पृथिभिः । देवयानैः ।
विद्यामे । वृपम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥६॥

२०७ अन्वयः— अस्य तमसः पारं अतारिष्म, हे अश्विनी ! यां प्रति स्तोमः
अधायि, देवयानैः पृथिभिः इह आयातं, जीरदानुं इधं वृजनं विद्यामे ॥ ६ ॥

२०७ अर्थ— (अस्य तमसः) इस अंधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम
चले गये, हे भस्मिदेवो ! (यां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि)
स्तोत्र तैयार कर दिया है, (देवयानैः पृथिभिः) देवतागण जिसपरसे चलते
हैं ऐसे मार्गसे (इह आयातं) इधर आओ (जीरदानुं इधं वृजनं विद्यामे)
शीघ्र विजय अन्न तथा यज्ञ हमें मिल आय ।

२०७ भाचार्य— इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके । तुम्हारे लिये यह
स्तोत्र किया है । देवोंके आनेके मार्गसे यहाँ हमारे पास आओ । हमें विजय,
अन्न तथा यज्ञ मिले ।

२०७ मानवधर्म— अन्धेरेका मार्ग शीघ्र समाप्त करो, प्रकाशमें शीघ्र आओ ।
जिन मार्गसे श्रेष्ठ क्रोध आते जाते हैं, उन मार्गोंसेही आओ । शीघ्रही विजय
अन्न और यज्ञ प्राप्त करो ।

॥ २०८ ॥ (अ० १।१८४।१-६)

२०८ ता वामद्य तावंपरं हुवेमोच्छन्त्यामुपसि वह्निरुक्थैः ।
 नासत्या कुहं चित्सन्तावर्यो दिवो नपाता सुदास्तराय ॥१॥

२०८ ता । वाम् । अद्य । तौ । अपरम् । हुवेम् ।
 उच्छन्त्याम् । उपसि । वह्निः । उक्थैः ।
 नासत्या । कुहं । चित् । सन्ता । अयः ।
 दिवः । नपाता । सुदाःस्तराय ॥१॥

२०८ अन्वयः- दिवः न पाता । नासत्या । अद्य ता वाम्, अपरं तौ हुवेम,
 उच्छन्त्या उपसि उक्थैः वह्निः, कुहं चित् सन्ता सुदास्तराय अयः ॥१॥

२०८ अर्थ- हे (दिवः न पाता) सुकोकको न गिरानेवाले (नासत्या)
 सत्यके पाकक अभिदेवो । (अद्य) आज (ता वाम्) इन विद्यवात तुम दोनोंको
 (अपरं) दूसरे दिन भी (तौ हुवेम) उम्हेंही तुम्हें, हम बुकाते हैं, (उच्छ-
 न्त्या उपसि) अभिपरी हटानेवाली उपायेकाके समीप जानेपर (उक्थैः
 वह्निः) स्तोत्रोंका पाठ करते करते अग्नि प्रवक्षिष्य किया जाता है, (कुहं
 चित् सन्ता) कही भी तुम विद्यमान रहो, पर (सुदास्तराय) उत्तम दानीके
 पास इन्तर भाओ, ऐसी (अर्थः) प्रगतिशील मानवकी प्रार्थना है ।

२०८ भाषार्थ- हे सुकोकको आधय देनेवाले अभिदेवो ! हम तुम्हें
 जैसा आज बुकाते हैं वैसे कल भी बुकावेंगे । हम प्रातःकालमें अग्निको
 प्रदीप्त करते हैं और तुम्हारे स्तोत्र गाते हैं । श्रेष्ठ पुरुष, तुम कहीं भी रहे तो,
 तुम्हेंही अपने पास बुकावेगा ।

२०८ मानवधर्म- श्रेष्ठ नेताओंको आदरसे अपने पास बुकाओ ।

२०८ टिप्पणी- सु-दास्-तर = अधिक दान देनेवाला, दाता ।

[२०९]

२०९ अस्मे ऊ पु वृषणा मादयेथामुत्पणीर्हंतमूर्ध्या मदन्ता ।
 श्रुतं मे अच्छोक्तिभिर्मतीनामेष्टां नरा निचेतारा च
 कर्णैः ॥२॥

२०९. अस्मे इति । ऊँ इति । सु । वृषणा । मादयेथाम् ।
 उत् । पणीन् । हतम् । ऊर्म्या । मदन्ता ।
 श्रुतम् । मे । अच्छोक्तिभिः । मतीनाम् ।
 एष्टा । नरा । निऽचेतारा । च । कर्णैः ॥२॥

२०९. अन्यथा- नरा ! वृषणा ! अस्मे ङ सु मादयेथां, ऊर्म्या मदन्ता
 पणीन् उत् हतं, मे अच्छोक्तिभिः मतीनां कर्णैः श्रुतं, एष्टा निचेतारा च ॥ १ ॥

२०९. अर्थ- हे (नरा वृषणा) नेता तथा ब्रह्मवान् ऋषिदेवो ! (अस्मे ङ)
 हमेंही (सु मादयेथां) भली भाँति हर्षित करो । (ऊर्म्या मदन्ता) सोम-
 पानसे आनन्दित होते हुए तुम (पणीन् उत् हतं) पणियोंका समूह दध
 करो, और (मे अच्छोक्तिभिः) मेरी निर्मल उक्तियोंसे उत्पन्न (मतीनां) मन-
 नीष स्तोत्रोंको (कर्णैः श्रुतं) अपने कानोंसे सुनलो, क्योंकि तुम दोनों
 (एष्टा निचेतारा च) हँदनेवाले और संग्रह करनेवाले हो ।

२०९. साचार्य- हे ब्रह्मवान् नेता ऋषिदेवो ! तुम हम सबको सुखी करो ।
 तुम सोमपानसे आनन्दित होकर पणियोंका नाश करो । मेरी स्तुतिका भवण
 करो । तुम अच्छे मनुष्यको हँदते हैं और उसीको अपना आश्रय देते हैं ।

२०९. मानवधर्म- जनताको सुखी करो । अच्छे मनुष्यको हँदकर निकालो
 और जितने अच्छे लोग मिलेंगे, उनका संग्रह करो ।

२०९. टिप्पणी- ऊर्म्या= सोम रसकी लहर, सोमपात्र । एष्टा (एष्ट) =
 हँदनेवाला । निचेष्ट = संग्रह करनेवाला ।

[११०]

२१०. श्रिये पूषन्निपुक्रतेव देवा नासत्या बहन्तु सूर्यायाः ।
 वृच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेष्व वरुणस्य
 भूरैः ॥३॥

२१०. श्रिये । पूषन् । निपुक्रताऽइव । देवा ।
 नासत्या । बहन्तुम् । सूर्यायाः ।
 वृच्यन्ते । वाम् । ककुहाः । अप्सु । जाताः ।
 युगा । जूर्णाऽइव । वरुणस्य । भूरैः ॥३॥

२१० अन्वयः— देवा ! नासत्या ! पूषन् ! सूर्यायाः बहत्तुं धिये द्युक्ता इव; अप्सु जाता ककुहाः भूरेः वरुणस्य जूर्णा इव युगा वां वक्ष्यन्ते ॥ ३ ॥

२१० अर्थ— हे (देवा !) दानी ! (नासत्या) मरुके पालक अभिदेवो ! (हे पूषन्) पोषणकर्ता ! (सूर्यायाः बहत्तुं) सूर्यकन्याको रथपर बिठाकर (धिये) यक्ष-पानेके छिपे तुम दोनों (द्युक्ता इव) बाणकी तरह सीधे चले जाते हो; (अप्सु जाता) सागरसे प्राप्त या उत्पन्न (ककुहाः) घोड़े (भूरेः वरुणस्य) अत्यन्त विशाल वरुणके (जूर्णा इव युगा) प्राचीन समयके रथोंके समानही (वां वक्ष्यन्ते) तुम दोनोंके भी प्रसंसित होते हैं ।

२१० भावार्थ— हे दानी सत्यपालक, पोषणकर्ता अभिदेवो ! सूर्यकी पुत्रीको अपने रथपर चढ़ानेका यश प्राप्त करनेके छिपे बाणके वेगसे तुम दोनों गये । इस समय समुद्रसे प्राप्त महान् वरुणदेवके प्राचीन रथके घोड़ोंके समानही तुम्हारे घोड़ोंकी स्तुति होती है ।

२१० मानवधर्म— दान दो, मरुका पालन करो, और अनुवायियोंका पोषण करो । अपने रथको वेगसे चलाओ ।

२१० टिप्पणी—पूषन् = पुष्टि करनेवाला । इस संक्रमे यह पद एकवचनी है, तथापि यह द्विवचनी अभिदेवोंका विशेषण माना जाता है । बहत्तु = रथपर बिठलाना, बड़ेज । द्युक्ता = बाणसे उत्पन्न वेग । अप् = जल, कर्म, यश । ककुहाः = उत्तम, सबमें श्रेष्ठ, रथका एक भाग, रथ, घोड़ा । अप्सु जात = समुद्रसे उत्पन्न, समुद्रके परे अरब देशसे उत्तम घोड़े आते हैं अतः वे जलसे उत्पन्न समझे जाते हैं । युगं = जोड़ी, दो, युग, जहाँ घोड़े जोते जाते हैं ।

[२११]

२११ अस्मे सा वां माध्वी रातिरस्तु स्तोमं हिनोतं मान्यस्य कारोः । अनु यद् वां अवस्या सुदानू सुवीर्याय चर्पणयो मदन्ति ॥ ४ ॥

२११ अस्मे इति । सा । वाम । माध्वी इति । रातिः । अस्तु । स्तोमम् । हिनोतम् । मान्यस्य । कारोः । अनु । यत् । वाम् । अवस्या । सुदानु इति सुदानू । सुवीर्याय । चर्पणयः । मदन्ति ॥ ४ ॥

२११. अन्वयः— सुदानू ! वां सा माध्वी रातिः अस्मे अस्तु, मान्यस्य कारोः स्तोमं हिमोतं; यत् वां अनु अथस्या चर्यणयः सुवीर्याय मदन्ति ॥ ४ ॥

२११ अर्थ— हे (सुदानू माध्वी) अच्छे दान देनेवाले, मधुर सोमरस पीने-वाले अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंकी (सा रातिः) वह देव (अस्मे अस्तु) हमारे लिएही रहे, (मान्यस्य कारोः) माननीय और कार्यशीलके (स्तोमं हिमोतं) स्तोत्रको चारों ओर तुम प्रेरित करो, (यत्) निश्चयसे (वां अनु) तुम दोनोंके अनुकूलतासे रहकर (अथस्या) यश पानेके लिए (चर्यणयः) सब लोग (सुवीर्याय मदन्ति) उत्तम पराक्रम करनेके लियेही आनंदित होते हैं।

२११ भावार्थ— हे उत्तम दान देनेवाले, 'मधुर रस' पीनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंका दान हमें प्राप्त होता रहे। सम्माननीय कुशल कारीगरका या कविकी स्वोय सुनो और उसका यश चारों ओर बढाओ। सब लोग तुम्हारी सहायतासे उत्तम पराक्रम करके श्रेष्ठ यश पानेकीही आनंदसे इच्छा करते हैं।

२११ मानवधर्म— उत्तम दान दो। मधुर अथका सेवन करो। उत्तम कविके काव्यका यश चारों ओर बढे। उत्तम पराक्रम करो और यश कमाओ।

२११ टिप्पणी—कारु = कर्मोंका कर्ता, कर्ता, कारीगर, कवि, स्तोत्रकी रचना करनेवाला। चर्यणिः = मनुष्य, खेती करनेवाले।

[२१२]

२१२ एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।

यातं वृतिस्तनयाय तमने अगस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥ ५ ॥

२१२ एषः । वाम् । स्तोमः । अश्विनौ । अकारि ।

मानेभिः । मघवाना । सुवृक्तिः ।

यातम् । वृतिः । तनयाय । तमने । च ।

अगस्त्ये । नासत्या । मदन्ता ॥ ५ ॥

२१२ अन्वयः— नासत्या अश्विनौ । मघवाना ! एष वां स्तोमः सुवृक्ति अकारि, तनयाय तमने च मदन्ता अगस्त्ये वृतिः यातम् ॥ ५ ॥

२१२ अर्थ— हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न । सत्यपालक अश्विदेवो ! (एषः) यह (वां स्तोमः) तुम दोनोंका स्तोत्र (सुवृक्ति अकारि) मकी भौति तैयार किया है, इसलिये (तनयाय तमने च) पुत्रके एवं अपने कामके लिए (मदन्ता) हर्षित होते हुए (अगस्त्ये) अगस्त्यके (वृतिः यातं) घर जाओ ॥ ५ ॥

२१२ भाषार्थ— हे ऐश्वर्यसंपन्न और सत्यपाठक भविष्यदेवो ! यह तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है । इससे भानंदित होकर तुम दोनों मुझ अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भला करो ।

[२१३]

२१३ अतारिष्म तमसस्पा॒रमस्य॑ प्रति॒ वां स्तोमो॑ अश्विनाव-
धायि । एह यातं॑ पृथिभिर्दे॒वयानैर्विद्यामे॑षं वृज॑नं जी॒रदा॑-
नुम् ॥६॥

२१३ अतारिष्म । तमसः । पा॒रम् । अ॒स्य ।
प्रति॑ । घा॒म् । स्तोमः॑ । अ॒श्विनो॑ । अ॒धायि॑ ।
आ । इ॒ह । या॒तम् । पृथि॑भिः । दे॒व॒यानैः॑ ।
वि॒द्यामे॑ । इ॒षम् । वृ॒ज॒नम् । जी॒रदा॑नुम् ॥६॥

२१३ पां मंत्र पूर्वस्थानमें अर्धके साथ दिया है । देखो २७७ पां मंत्र, ३७३ में भी यही मंत्र है ।

[२१४] (ऋ. २।३।७।५)

(२१४-२२५) गृत्समदः (आहूगिरसः शौनदोत्रः पञ्चाद्) भार्गवः शौनकः ।
(ऋतुसहितौ) । जगती ।

२१४ अ॒र्वाञ्च॑म॒द्य य॒र्यं नृ॒वाह॑णं रथं॑ यु॒क्ताथा॑मि॒ह वां वि॒मोच॑न-
नम् । पु॒ङ्क्तं॑ ह॒वींषि॑ मधु॒ना हि कं॑ ग॒तम॑था सोमं॑ पि॒बतं॑
वाजि॑नीवसू ॥५॥

२१४ अ॒र्वाञ्च॑म् । अ॒द्य । य॒र्यम् । नृ॒वाह॑नम् ।
रथं॑ । यु॒क्ताथा॑म् । इ॒ह । वा॒म् । वि॒मोच॑नम् ।
पु॒ङ्क्तम् । ह॒वींषि॑ । मधु॒ना । आ । हि । कम् । ग॒तम् ।
अथ॑ । सोमं॑ । पि॒ब॒तम् । वा॒जि॒नीव॑सू इति॑ वाजिनी-
वसू ॥५॥

२१४ अन्वयः— वाजिनीवसू ! अथ इह वां विमोचनं, यर्यं नृवाहणं
रथं अर्वाञ्चं युक्ताथाः, हवींषि मधुना पुङ्क्तं, जागतं हि अथ सोमं पिबतम् ॥५॥

२१४ अर्थ- हे (वाजिनी-नख) भक्तसे वमानेवाले भविर्देवो ! (भग) आज (इह वा विमोचने) इधर तुम दोनोंको उतारनेवाले (यत्न) गतिशील (नृ-वाहणं रथं) नेताओंको ले चलनेवाले रथको (वर्षाशं पुत्राणां) हमारे समीपही जोड़ दो, (इवीषि मधुना पृष्टुं) इदियोंको मधुसे जोड़ दो, (भागतं हि) इधर जरूर आओ, (अथ) पश्चात् (सोमं पिबतं) सोमका पान करो ।

२१४ भाषार्थ- हे सबके लिये भक्तका प्रबंध करनेवाले भविर्देवो ! आज तुम अपने रथको हमारे पासही ले आओ, तुम यहीं रथसे उतरों और अपने रथको यहाँ खोल दो ! इविरूप भक्तको मधुसे मिश्रित करो और पश्चात् सोम-रस पीओ ।

[२१५] (ऋ. २।३९।१-८) त्रिष्टुप् ।

२१५ आवाणेऽह्व तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
 ब्रह्माणेव विदथे उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा ॥
 २१५ आवाणाऽह्व । तत् । इत् । अर्थम् । जरेथे इति ।
 गृध्राऽह्व । वृक्षम् । निधिऽमन्तम् । अच्छ ।
 ब्रह्माणाऽह्व । विदथे । उक्थऽशासा ।
 दूताऽह्व । हव्या । जन्या । पुरुऽत्रा ॥ १ ॥

२१५ शान्वया-आवाणा ह्व तत् अर्थ इत् जरेथे, वृक्षं गृध्रा ह्व निधिमन्तं अच्छ; विदथे ब्रह्माणा ह्व उक्थशासा, जन्या दूता ह्व पुरुत्रा इत्या ॥ १ ॥

२१५ अर्थ- तुम दोनों [आवाणा ह्व] दो पक्षरोंकी नाई [तत् अर्थ इत्] उस एकही वस्तुके प्रति जाकर [जरेथे] उसकी स्तुति करते हो, [गृध्रं गृध्रा ह्व] पेड़के समीप जैसे दो मित्र पंढी आते हैं वैसेही तुम [निधिमन्तं अच्छ] निधि अपने पास रखनेवालेके प्रति जाते हो, [विदथे] यज्ञमें [ब्रह्माणा-ह्व] दो माहाणोंके समान तुम (उक्थशासा) स्तोत्र कहनेवाले हो और (जन्या दूता ह्व) जनताके हित लिये भेजे हुए दो दूतोंके समान तुम दोनों [पुरुत्रा इत्या] विविध स्थानोंमें कुलानेयोग्य हो ।

२१५ भाषार्थ- जैसे दो पायल एकही सोमबलीको कूटते हुए वाहर करते हैं, उस तरह तुम दोनों एकही विषयकी चर्चा करते हो । जैसे दो पक्षी एकही फलोंसे कवे वृक्षके पास जाते हैं वैसे तुम दोनों जनमानससम्बन्ध यज्ञमानके अधिनौ दे० ॥ ॥

२१२ भावार्थ— हे देवर्षिसंपन्न और सत्यपाकक अग्निदेवो ! यह तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है । इससे आनंदित होकर तुम दोनों सुख अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भक्त करो ।

[२१३]

२१३ अतारिष्म तमसस्पा रमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनाव-
धायि । एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेयं वृजनं जीरदा-
नुम् ॥६॥

२१३ अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य ।
प्रति । वाम् । स्तोमः । अश्विनौ । अधायि ।
आ । इह । यातम् । पथिभिः । देवयानैः ।
विद्यामे । वृजम् । वृजनम् । जीरदानुम् ॥६॥

२१३ वां मंत्र पूर्वस्थानमें अर्थके साथ दिया है । देखो २०७ वां मंत्र,
३७३ में भी यही मंत्र है ।

[२१४] (अ. २।३।५)

(२१४-२१५) गृत्तमदः (आदमिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) आर्गवः क्षीनकः ।
(ऋत्तुसहितौ) । जगती ।

२१४ अर्वाञ्चमद्य पथ्यं नृवाहणं रथं युक्ताथामिह वां विमोच-
नम् । पुङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गृत्तमथा सोमं पिबतं
वाजिनीवसू ॥५॥

२१४ अर्वाञ्चम् । अद्य । पथ्यम् । नृवाहनम् ।
रथम् । युक्ताथाम् । इह । वाम् । विमोचनम् ।
पुङ्क्तम् । हवींषि । मधुना । आ । हि । कम् । गृत्तम् ।
अथ । सोमम् । पिबतम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽ-
वसू ॥५॥

२१४ शब्दार्थः— वाजिनी-वसू ! अद्य इह वां विमोचनं, पथ्यं नृवाहणं
रथं भवाञ्चं युक्तायाः हवींषि मधुना पुङ्क्तं, आगतं हि मय सोमं पिबतम् ॥५॥

२१४ अर्थ— हे (वाजिनी-नप्त) भक्तसे बचानेवाले भविष्येवो ! (भक्त) भक्त (इह वा विमोचनं) इधर तुम दोनोंको उतारनेवाले (यत्न) गतिशील (नृ-वाहणं रथं) नेताओंको ले चलनेवाले रथको (अर्वाक्षं युञ्जार्था) हमारे समीपही जोड़ दो, (इर्वीणि मधुना पृद्वं) इवियोंको मधुसे जोड़ दो, (आगतं हि) इधर जरूर आओ, (अथ) पश्चात् (सोमं पिबतं) सोमका पाश करो ।

२१४ भावार्थ— हे सबके लिये भक्तका प्रबंध करनेवाले भविष्येवो ! भक्त तुम अपने रथको हमारे पासही ले आओ, तुम वहीं रथसे उतरों और अपने रथको वहाँ जोड़ दो ! इविरूप भक्तको मधुसे मिश्रित करो और पश्चात् सोम-पान पीओ ।

[२१५] (ऋ. १।३१।१-८) त्रिष्टुप् ।

२१५ ग्रावाणेव तदिदं जरेथे गृध्रं वृक्षं निधिमन्तमच्छ ।
ब्रह्माणेव विदथे उक्थशासां कृतेव हव्या जन्यां पुरुत्रा ।
२१५ ग्रावाणाऽइव । तत् । इत् । अर्थम् । जरेथे इति ।
गृध्राऽइव । वृक्षम् । निधिमन्तम् । अच्छ ।
ब्रह्माणाऽइव । विदथे । उक्थऽशासां ।
कृताऽइव । हव्या । जन्या । पुरुऽत्रा ॥ १ ॥

२१५ अन्वयाः—ग्रावाणा इव तत् अर्थ इत् जरेथे, वृक्षं गृध्रा इव निधिमन्तं अच्छ; विदथे ब्रह्माणा इव उक्थशासा, जन्त्या कृता इव पुरुत्रा इत्या ॥ १ ॥

२१५ अर्थ— तुम दोनों [ग्रावाणा इव] दो परपरोंकी नाई [तत् अर्थ इत्] उस एकही वस्तुके प्रति जाकर [जरेथे] उसकी स्तुति करते हो, [वृक्षं गृध्रा इव] पेड़के समीप जैसे दो गिद्ध पंछी जाते हैं वैसेही तुम [निधिमन्तं अच्छ] निधि अपने पास रखनेवालेके प्रति जाते हो, [विदथे] पक्षमें [ब्रह्माणा-इव] दो ब्राह्मणोंके समान तुम (उक्थशासा) स्तोत्र कहनेवाले हो और (जन्त्या कृता इव) जनताके हित लिये भेजे हुए दो वृत्तोंके समान तुम दोनों [पुरुत्रा इत्या] विविध स्थानोंमें बुरानेयोग्य हो ।

२१५ भावार्थ— जैसे दो परपर एकही सोमबलीको कूटते हुए ' वाग्द ' करते हैं, उस तरह तुम दोनों एकही विषयकी चर्चा करते हो । जैसे दो पक्षी एकही फलोंसे कड़े वृक्षके पास जाते हैं वैसे तुम दोनों धनधान्यसम्पन्न यजमानके भविष्यो दे० २४

पास जाते हो । यज्ञमें जैसे दो ब्राह्मण स्तोत्रपाठ करते हैं वैसे तुम भी करते हो । जैसे जनताके हित करनेके लिये राजाके द्वारा भेजे दो दूत बहुत मनुष्यों द्वारा आदर करनेके योग्य समझे जाते हैं, वैसाही तुम्हारा आदर होता है ।

२१५ मानवधर्म— सब मिलकर प्रस्तुत विषयकी घर्चा करो । सब मिलकर भक्तकी प्राप्ति करो । मिलकर प्रार्थना स्थापना करो । जनताका हित करने-वालोंका आदर करो ।

२१५ टिप्पणी— अर्थ = धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके साथ संबंध रखनेवाले विषय । ब्राह्मणः अर्थं जरेये = परस्पर शत्रुको क्षीण करते हैं (सायण) अर्थ = शत्रु । निधिमान् = जनवान् । जग्य = जनताका हितकर्ता । सुव्य = हवनीय, प्रशंसनीय, आदरणीय ।

[२१६]

२१६ प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराऽजेव यमा वरमा सचेथे ।

मेने इव तन्वा शुभ्रमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु ॥ २ ॥

२१६ प्रातःऽयावाना । रथ्याऽइव । वीरा ।

अजाऽइव । यमा । वरम् । आ । सचेथे इति ।

मेने इवेति मेनेऽइव । तन्वा । शुभ्रमाने इति ।

दम्पती इवेति दम्पतीऽइव । क्रतुविदा । जनेषु ॥ २ ॥

२१६. अन्वयः— जनेषु दम्पती इव क्रतुविदा, मेने इव तन्वा शुभ्रमाने, रथ्या इव वीरा प्रातः यावाना अजा इव यमा वरं आ सचेथे ॥ १ ॥

२१६. अर्थ— तुम दोनों (जनेषु) जनताके मध्य (दम्पती इव) पतिपत्नीके समान (क्रतुविदा) कार्य जाननेवाले हो, (मेने इव) दो महिलाओंके समान (तन्वा शुभ्रमाने) अपने शरीरोंकी सजावट करते हो, (रथ्या इव वीरा) महारथियोंके समान वीर हो, (प्रातः यावाना) प्रातःकालही उठकर यात्रा करनेवाले और (अजा इव यमा) दो बकरोंके समान युगल-मूर्ति होवे । तुम (वरं आ सचेथे) भेड़के पास जाते हो ।

२१६ भाषार्थ— तुम जनतामें पतिपत्नीके समान अपने कर्तव्यमें तत्पर, स्त्रियोंके समान शोभायमान, महारथियोंके समान वीर और युगल भाई जैसे हो । ये तुम भेड़ यज्ञमानके पास जाते हैं हो ।

२१६ मानवधर्म— पतिपत्नी अपने कर्तव्यमें तत्पर रहें, मनुष्य धीर बनें, अपनी वेपभूपासे सुशोभित रहें, भेष्ट पुरुषोंकी संगतिमें रहें ।

[२१७]

२१७ शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक्छफाविं जर्मुराणा
तरोभिः । चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्त्राऽर्वाश्वा यातं रथ्येव
शक्रा ॥३॥

२१७ शृङ्गाऽइव । नः । प्रथमा । गन्तम् । अर्वाक् ।
शफौऽइव । जर्मुराणा । तरःऽभिः ।
चक्रवाकाऽइव । प्रति । वस्तोः । उस्त्रा ।
अर्वाश्वा । यातम् । रथ्याऽइव । शक्रा ॥३॥

२१७. अन्वयः— तरोभिः शफौ इव अर्मुराणा नः अर्वाक् गन्तं, शृंगा इव प्रथमा, प्रति वस्तोः चक्रवाका इव उस्त्रा शक्रा रथ्या इव अर्वाश्वा यातम् ॥ ३ ॥

२१७ अर्थ— (तरोभिः) बेगोसे (शफौ इव जर्मुराणा) घोड़ेके सुरके समान खूब चकनेवाले (नः अर्वाक् गन्तं) हमारे पास आभो । (शृंगा इव प्रथमा) किसी पशुके सींगोंके समान पहिलेही हमारे पास चले आभो । (प्रति वस्तोः) हरदिन (चक्रवाका इव) चक्रवाकचक्रवाकीके समान हमारे पास आभो (उस्त्रा शक्रा) शत्रुओंकी हटानेवाले और शक्तिमंजल तुम दोनों (रथ्या इव अर्वाश्वा यातं) रथारुढ़ धीरोंके समान हमारे पास चले आभो ।

२१७. भाष्यार्थ— बेगसे घोड़ोंके समान दौड़ते हुए हमारे पास आभो । पशुके सींग जैसे पहिले पहुँचते हैं वैसे तुम भी हमारे पास पहिले पहुँचो । चक्रवाक पक्षीयोंके समान शीघ्रही हमारे पास आभो । शत्रुको परास्त करनेवाले शक्तिमान धीरोंके समान तथा महारथीयोंके समान तुम हमारे पास शीघ्र आ पहुँचो ।

२१७ मानवधर्म— बेगसे पड़ो । शत्रुको परास्त करनेकी शक्ति अपनेमें भराओ । महारथी शूरवीर बनो ।

[२१८]

२१८ नान्वेव नः पारयतं युगेव नर्म्येव न उपधीव प्रधीव ।
श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां सुगलेव विससः पातम-
स्मान् ॥४॥

२१८ नावाऽइव । नः । पारयतम् । युगाऽइव ।

नभ्याऽइव । नः । उपधी इवेत्युपधीऽइव । प्रधी इवेति

प्रधीऽइव । श्वानाऽइव । नः । अरिषण्या । तनूनाम् ।

सृगलाऽइव । विस्रसः । पातम् । अस्मान् ॥४॥

२१८. अन्वयः— नः नावा इव, युगा युव, नभ्या इव, उपधी इव, प्रधी इव पारयतं; श्वाना इव नः तनूनां अरिषण्या, अस्मान् सृगला इव विस्रसः पातम् ॥ ४ ॥

२१८. अर्थ— (नः) हमें (नावा इव) नौकाओंके समान, (युगा इव) रथके दंडोंके समान, (नभ्या इव) पहियोंके केन्द्रमें रखे लट्टोंके समान, (उपधी इव) चक्रके पार्श्वमें रखे तथ्योंके तुल्य, (प्रधी इव) चक्रके दृष्टिके समान संकटोंसे (पारयतं) पार के चको; (श्वाना इव) कुत्तोंके समान (नः तनूनां) हमारे शरीरोंकी (अरिषण्या) अहिंसक होकर रक्षा करो, (अस्मान्) हमें (सृगला इव) कवचके समान (विस्रसः पातं) जरासे या डिलेपनसे बचाओ ।

२१८ भाषार्थ— नौकाके समान तथा रथके भंगोंके समान हमें सब संकटोंसे पार के चको । कुत्तोंके समान हमारी रक्षा करो और कवचोंके समान हमें सुरक्षित रको, नाशसे बचाओ ।

२१८. मानवधर्म— वीर पुरुष जनताकी सब प्रकारसे सुरक्षा करें ।

[२१९]

२१९ वातिवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इव चक्षुषा यातमर्वाक् ।

हस्तायिव तन्वेऽ शर्मविष्ठा पादेव नो नयतं वस्यो
अच्छ ॥५॥

२१९ वाताऽइव । अजुर्या । नद्याऽइव । रीतिः ।

अक्षी इवेत्यक्षी इव । चक्षुषा । आ । यातम् । अर्वाक् ।

हस्ताऽइव । तन्वे । शर्मविष्ठा ।

पादाऽइव । नः । नयतम् । वस्यः । अच्छ ॥५॥

२१९. वाता इव अजुया, नद्या इव रीतिः, अक्षी इव चक्षुषा अर्वाह् आयातम् । तन्वे हस्तौ इव शंभविष्टा, नः यस्यः अच्छ पादा इव नयतम् ॥ ५ ॥

२१९ अर्थ- (वाता इव अजुया) वायुप्रवाहके तुल्य जीर्ण न होनेवाले, (नद्या इव रीतिः) नदियोंके समान सदा आगे बढ़नेवाले, (अक्षी इव चक्षुषा) आँखोंके तुल्य दृष्टिक्षमसे युक्त तुम दोनों (अर्वाह् आयातम्) हमारे पास आओ; (तन्वे हस्तौ इव शंभविष्टा) शरीरके छिपे हाथोंके समान सुख देनेवाले तुम दोनों (नः) हमें (यस्यः अच्छ) भेष्ट धनके प्रति (पादा इव नयतम्) पैरोंके समान के चलो ।

२१९ भावार्थ- वायुके समान क्षीण न होनेवाले, नदियोंके समान आगे बढ़ते रहनेवाले, आँखोंके समान देखनेवाले तुम दोनों हमारे पास आओ । हाथोंके समान शरीरके छिपे सुखदायक होओ और पावोंके समान हमें भेष्ट धनके पास के चलो ।

२१९. मानवधर्म- वायुके समान जीवन देनेवाले, नदियों समान आगे बढ़नेवाले, आँखोंके समान देखनेवाले बनो, पावोंके समान दृढान स्थानके पास पहुँचो और हाथोंके समान सुख दो ।

२१९ टिप्पणी- यस्यः = निवासके लिये आवश्यक धन ।

[२२०]

२२० ओष्ठाविव मध्वास्ने वर्दन्ता स्तनाविव पिप्पतं जीवसे नः । नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता भूतमुस्मे ॥ ६ ॥

२२० ओष्ठौऽइव । मधु । आस्ने । वर्दन्ता ।
स्तनौऽइव । पिप्पतम् । जीवसे । नः ।
नासाऽइव । नः । तन्वः । रक्षितारा ।
कर्णौऽइव । सुश्रुता । भूतम् । अस्मे इति ॥ ६ ॥

२२० अन्ययः- भास्ने ओष्ठौ इव मधु वर्दन्ता नः जीवसे स्तनौ इव पिप्पतम् । नासा इव नः तन्वः रक्षितारा अस्मे कर्णौ इव सुश्रुता भूतम् ॥ ६ ॥

२२०. अर्थ—(आस्ने) मुँहके लिप (जोड़ी हव) होंठोंके तुल्य (मधु पदन्ता) मिठास भरा घनन कहते-दुप तुम दोनों (नः जीवसे) हमारे जीवनके लिप हमें (स्वयौ हव विध्यतं) स्तनोंके समान पुष्ट करते रहो; (नासा हव) नासापुटके तुल्य (नः तन्वः रक्षितारा) हमारे शरीरोंके संरक्षक बनो, और (भस्मे) हमारे लिप (कर्णौ हव) कर्णेंन्द्रियके समान (सुधुता भूतं) भली भाँति सुननेवाले बनो ।

२२० भावार्थ— मुँहके लिये जैसे होंठ वैसे तुम मीठा मापण करो, स्तनोंके समान दीर्घ जीवनके लिये पोषक रससे हमें पुष्ट करो, नासिकासे जैसा प्राणके द्वारा संरक्षण होता है वैसी हमारी सुरक्षा करो, कानोंके समान हमारे काननका ध्रवण करो ।

२२० मानवधर्म— मीठा मापण करो, पोषक असपायसे पोषण करो, दीर्घायु बनो, सबके कानोंको सुनो, बहुधुत बनो ।

[२२१]

२२१ हस्तेव शक्तिमभि संवृवी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि ।
हमा गिरी अश्विना युष्मयन्तीः क्षोत्रेणैव स्वधितिं सं
शिशीतम् ॥७॥

२२१ हस्ताऽहव । शक्तिम् । अभि । संवृवी इति सम्ऽवृवी । नः ।
क्षामऽहव । नः । सम् । अजतम् । रजांसि ।
हमाः । गिरिः । अश्विना । युष्मयन्तीः ।
क्षोत्रेणऽहव । स्वधितिम् । सम् । शिशितिम् ॥७॥

२२१. अन्वयः— नः हस्ता हव शक्ति अभि संवृवी, क्षामा हव नः रजांसि
सं अजतम्, अश्विना । हमाः युष्मयन्तीः गिरिः स्वधिति क्षोत्रेण हव, सं शिशि-
तम् ॥ ७ ॥

२२१ अर्थ— (नः हस्ता हव) हमें दाहोंके समान (शक्ति अभि संवृवी) बल ठीक प्रकाश दे दो, (क्षामा हव) छायाप्राप्तिके समान (नः रजांसि सं अजतं) हमें पचास रहान भलीभाँति दो, दे अश्विरेयो ! (हमाः) ये (युष्मयन्तीः गिरिः) तुम्हारी कामना करनेवाले भापण (स्वधिति क्षोत्रेण हव) पुण्ड्रादीनो सानसे जिस तरह तीक्ष्ण करते हैं, वैसेही (सं शिशितं) भट्टी तरह तेज—प्रभावशाली बनवो !

२२१ भावार्थ— हाथोंके समान हमें शक्ति दे दो, चावागृधिवीके समान हमें पर्याप्त स्थान दे दो, ये जुम्हारी स्तुतिव्यों, शस्त्रको सानस तीक्ष्ण करती है उस तरह, तेजस्वी बना दो ।

२२१. मानवधर्म— शक्तिमान् बनो, कार्यक्षेत्र बढा दो, अपने ज्ञानको तेजस्वी रखो तथा शस्त्रोंको भी तीक्ष्ण करो ।

[२२२]

२२२ एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो
अक्रन् । तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे
सुवीराः ॥८॥

२२२ एतानि । वाम । अश्विना । वर्धनानि ।
ब्रह्म । स्तोमम् । गृत्समदासः । अक्रन् ।
तानि । नरा । जुजुषाणा । उप । यातम् ।
बृहत् । वदेम । विदथे । सुवीराः ॥८॥

२२२. अन्वयः— नरा अभिना । वो वर्धनानि एतानि ब्रह्म स्तोमं गृत्सम-
दासः अक्रन् । तानि जुजुषाणा उप यातं, विदथे सुवीराः बृहत् वदेम ॥ ८ ॥

२२२. अर्थ— हे (नरा) नेता अभिदेवो ! (वो वर्धनानि) जुम्हारे
यशकी वृद्धि करनेवाले (एतानि) वे (ब्रह्म स्तोमं) ज्ञानदायक स्तोत्र
(गृत्समदासः अक्रन्) गृत्समद परिवारके लोगोंने बनाये हैं, (तानि जुजुषाणा)
उनका स्वीकार करते हुए तुम दोनों (उप यातं) हमारे समीप आओ,
(विदथे) यक्ष्मं (सुवीराः) अच्छे वीरोंसे युक्त बनकर हम (बृहत् वदेम)
बहुत स्तुतिका मागण करें ।

२२२. भावार्थ— हे नेता अभिदेवो ! जुम्हारा वर्धन करनेवाले ये स्तोत्र
गृत्समद गोत्रके ऋषियोंने किये हैं । तुम इनका श्रवण करके हमारे पास आओ
और जब तुम आओगे तब हम यक्ष्म वीर बनकर जुम्हारे बहुत स्तोत्र
माँगेंगे ।

[२२३-२२४] (अ. २।४१।७-९) गावत्री ।

२२३ गोमदं पु नसित्पाश्वीवद्यातमश्विना ।

वर्ति रुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

२२४ न यत् परो भान्तर आकृधर्षत् वृषण्वसु ।

बुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥

२२२ गोऽमत् । ऊँ इति । सु । नासत्या ।

अश्वऽवत् । यातम् । अश्विना ।

वर्तिः । रुद्रा । नृऽपार्यम् ॥७॥

२२४ न । यत् । परः । न । अन्तरः ।

आऽकृधर्षत् । वृषण्वसु इति वृषण्वसु ।

बुःशंसः । मर्त्यः । रिपुः ॥८॥

२२३-२२४. अन्वयः— रुद्रा ! नासत्या अश्विना ! गोमत् अश्ववत् नृपार्यं वर्तिः सु यातं, यत् वृषण्वसु ! दुःशंसः रिपुः मर्त्यः न परः न अन्तरः आ-कृध-र्षत् ॥ ७-८ ॥

—२२३-२२४. अर्थ— हे (रुद्रा) शत्रुको हलानेवाले (नासत्या) सत्यपाक (अश्विना) ! अश्विवेको । तुम दोनों (गोमत् अश्ववत्) गायों और घोड़ोंसे पूर्ण (नृपार्यं वर्तिः) नेताओंसे पाकन करनेयोग्य घरके पास (सु यातं) भलीभाँति जाओ, (यत्) जिसे (वृषण्वसु) हे धनकी वर्षा करनेवाले ! (दुःशंसः रिपुः) बुरी बातें कहनेवाला शत्रुभूत (मर्त्यः) मानव (न परः न अन्तरः) न पराया न अन्दरका हमारे ऊपर (आकृधर्षत्) आक्रान्त कर-नेका साहस कर सके ।

२२३-२२४. आधार्थ— हे शत्रुको हलानेवाले सत्यके रक्षक अश्विवेको ! तुम दोनों गायों और घोड़ोंसे युक्त तथा वीरों द्वारा पाकन करनेयोग्य इनारे घरके पास जाओ । जिससे, हे धन देनेवाले देवो ! हमारे अन्दरका अथवा बाहरका कोई भी दुष्ट शत्रु हमपर आक्रमण करनेके लिये समर्थ नहीं होगा ।

२२३-२२४. मानवधर्म— शत्रुको भयभीत करो, सत्यका पाकन करो, घरमें बहुत गौवं और घोड़े पालो । अपनी बेमी सुरक्षा करो कि जिससे किसी तरहका शत्रु आक्रमण न कर सके ।

२२५ ता न आ वीँळ्हमश्विना रयि पिशङ्गसंहशम् ।

धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥

२२५ ता । नः । आ । वोळ्हम् । अश्विना ।

रयिम् । पिशङ्गऽसंदशम् ।

धिष्ण्या । चरिवऽविदम् ॥९॥

२२५ अन्वयः— धिष्ण्या अश्विना । नः चरिवोविदं पिशङ्गसंदशं रयिं ता
आ वोळ्हम् ॥९॥

२२५ अर्थ— हे (धिष्ण्या अश्विना) उक्तपदके योग्य आश्विदेवो ! (नः) हमारे
लिये (चरिवोविदं) धनको बढ़ाने हारे (पिशङ्गसंदशं) सुवर्णयुक्त होनेके
कारण पीले रंगवाली (रयिं) सपत्तिको (ता आ वोळ्हं) वे तुम दोनों
द्वार ले आओ ।

२२५ भावार्थ— हे प्रशंसायोग्य आश्विदेवो ! तुम दोनों हमें ऐसी संपत्ति
हो कि जिसमें सुवर्ण बहुत हो और जो धनको बढ़ानेमें समर्थ हो ।

[२२६] (अ. ३।५।८।१-९)

[२२६-२३४] गायत्रिनो विभ्वामिभः । त्रिष्टुप् ।

२२६ धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहान्ताऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।

आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोपसः स्तोमो अश्विनाप-
जीगः ॥१॥

२२६ धेनुः । प्रत्नस्य । काम्यम् । दुहान्ता ।

अन्तरिति । पुत्रः । चरति । दक्षिणायाः ।

आ । द्योतनिम् । वहति । शुभ्रयामा ।

उपसः । स्तोमः । अश्विनौ । अजीगरिति ॥१॥

२२६ अन्वयः— प्रत्नस्य काम्यं दुहाता धेनुः, दक्षिणायाः पुत्रः अन्तः
चरति, शुभ्रयामा द्योतनिं आ वहति, अश्विनौ स्तोमः उपसः अजीगः । १ ॥

२२६ अर्थ— (प्रत्नस्य काम्यं) पुरातन दृष्टाके अमुष्क (दुहाता
धेनुः) दुही जाती हुई गौ और (दक्षिणायाः पुत्रः) दक्षिणामें ही गौका
बच्चा प्रत्नस्यलके (अन्तः चरति) भीतर घूमता है (शुभ्रयामा) शुभ्रगति-
वाला भीर (द्योतनिं आ वहति) ज्योतिंको धारण करता है, (अश्विनौ)
अश्विनौकी प्रशंसा करनेके लिये (स्तोमः) स्तोत्र (उपसः अजीगः) उपाके
कारण जागृत हुआ है, उपःकारमें पढ़ा जाता है ।

अश्विनौ दे० २५

शुद्धि हमारे पास न रहे, हममें उदारता रहे। हमने तैयार किया भक्त तुम यहाँ आकर सेवक करो।

२२७ मानवधर्म— साक्षात्पिताके समान जनताकी सुरक्षा करो। व्यापारियोंका अधिक लाभ कमानेका भाव न धारण करो, उदारताका भाव मनमें बढाओ ॥

[२२८]

२२८ सुयुग्मिरथैः सुवृत्ता रथेन दत्ताविमं धृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वा प्रत्यवर्ति गमिष्ठाऽऽहुर्विप्रासो अश्विना
पुराजाः ॥३॥

२२८ सुयुग्मिः । अथैः । सुवृत्ता । रथेन ।
दत्ता । इमम् । धृणुतम् । श्लोकम् । अद्रेः ।
किम् । अङ्ग । वाम् । प्रति । अवर्तिम् । गमिष्ठा ।
आहुः । विप्रासा । अश्विना । पुराऽजाः ॥३॥

२२८. अन्वयः— दत्ता अश्विना ! अद्रेः इमं श्लोकं सुवृत्ता रथेन सुयुग्मिः ।
अथैः धृणुतं, किं पुराजाः विप्रासः वा अवर्तिं यदि गमिष्ठा आहुः अङ्ग ? ॥३॥

२२८. अर्थ— हे (दत्ता !) शत्रुविनाशक अश्विदेवो !— (अद्रेः इमं श्लोकं) पर्वत (पर गडानैवाके इस सोम) के इस काव्यको (सुवृत्ता रथेन) सुन्दर गतिवाके रथपरसे, (सुयुग्मिः अथैः) उत्तम शिक्षित घोड़ोंको जोतकर, आकर (धृणुतं) सुनते हैं (किं पुराजाः विप्रासः) कि, 'पूर्व काव्यमें उल्लेख ज्ञानी लोग (वाः) सुम्हें (अवर्तिं प्रति गमिष्ठा) दक्षिणकी इशानेके किए जाते हैं, ऐसा (आहुः अङ्ग) बतलाते हैं न ?

२२८. माध्वार्य— अश्विदेव शत्रुका नाश करते हैं, सुन्दर रथकी उत्तम घोड़े जोतकर यज्ञमें आते हैं, और वेदके काव्यको सुनते हैं, उस काव्यका भाव यह होता है कि अश्विदेव जनताकी 'दक्षिणको दूर करनेके लिये जनताके समीप जाते हैं' ।

२२८. मानवधर्म— जनताकी दक्षिण दूर करनेका भाव जाना योग्य है ।

[२२९]

२२९ आ मन्येथामा गतं कश्चिदेवैर्विश्वे जनांसो अश्विना हवन्ते ।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुसो
अग्रे ॥४॥

२२९ आ । मन्येथाम् । आ । गतम् । कत् । चित् । एवैः ।
विश्वे । जनांसः । अश्विना । हवन्ते ॥
इमा । हि । वाम् । गोऋजीका । मधूनि ।
प्र । मित्रासः । न । ददुः । उरुसः । अग्रे ॥४॥

२२९. अन्वयः— अश्विना ! आ मन्येथा, एवैः आ गतं, कश्चित्, विश्वे
जनांसः हवन्ते; उरुः अग्रे इमा गोऋजीका मधूनि वां हि मित्रासः न न ददुः ॥४॥

२२९. अर्थ— (हे अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (आ मन्येथा) शुभ (हमारे
इस कर्मका) अनुमोदन करो (एवैः आगतं कश्चित्) घोड़ोंसे भवइय
आओ, क्योंकि (विश्व जनांसः हवन्ते) सभी लोग तुम्हें बुलाते हैं, (उरुः
अग्रे) सूर्योदयके पहलेही (इमा गोऋजीका मधूनि) इन गोरसमिश्रित
मीठे सोमरसोंको (वां हि) तुम्हेंही (मित्रासः न न ददुः) मित्रोंके सामने
वे याजक देते हैं ।

२२९. भाष्यार्थ— अश्विदेवोंको सब लोग बुलाते हैं, वही वे घोड़ोंपर
सवार होकर प्रातःकालमें जाव और मित्र जैसे याजकोंसे दिये गोरसमिश्रित
सोमरस पीयें ।

[२३०]

२३० तिरः पुरु चिदश्विना रजोऽस्याङ्गपो वाँ मघवाना जनेषु ।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दत्ताविमैवां निधयो मधूनाम् ॥५॥

२३० तिरः । पुरु । चित् । अश्विना । रजोसि ।
आङ्गपः । वाम् । मघज्वाना । जनेषु ॥
आ । इह । यातम् । पथिभिः । देवयानैः ।
दत्ता । इमे । वाम् । निधयः । मधूनाम् ॥५॥

२३० अन्ययः— मघवाना अभिना ! पुरूरजांसि चित् तिरः वां भांगूपः जनेषु दस्यौ ! देवयानैः पथिभिः इह आयातं इमे मधूनां निधयः वां ॥ ५ ॥

२३० अर्थ— हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न अभिदेवो ! (पुरू रजांसि चित् तिरः) बहुतसे रजोगुणोंको भी— पार करके (वां भांगूपः) तुम्हारी स्तुति (जनेषु) जनतामें हो जावे; हे (दस्यौ) शत्रुविनाशक वीरो ! (देवयानैः पथिभिः) देवता गणजिनपरसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आ यातं) इधर पधारो, क्योंकि (इमे मधूनां निधयः वां) ये मधुरसोंके भण्डार तुम्हारे क्लिप्त रहते हैं ।

२३० भावार्थ— अभिदेव, भूलीके मक्तिन स्थानोंसे पार होकर जनतामें स्तुतिको मास करें । शत्रुका नाश करें, देवोंके मार्गोंसे पधारें और भीठा भक्ष सेवन करें ।

२३० मानवधर्म— भूलीके स्थानोंमें मनुष्य न रहें । स्तुतिके योग्य कार्य कर शत्रुका नाश करें । दिव्य मार्गसे आवें और जावें और मधुर सारिवक भक्षका सेवन करें ।

[२३१]

२३१ पुराणमोक्षः सख्यं शिवं वां युवोर्नरा द्रविणं जह्वाव्याम् ।
पुनः कृष्णानाः सख्या शिवानि मध्वा मदेम सह न
समानाः ॥ ६ ॥

२३१ पुराणम् । ओक्षः । सख्यम् । शिवम् । वाम् ।
युवोः । नरा । द्रविणम् । जह्वाव्याम् ॥
पुनरिति । कृष्णानाः । सख्या । शिवानि ।
मध्वा । मदेम । सह । नु । समानाः ॥ ६ ॥

२३१ अन्ययः— नरा ! वां पुराणं ओक्षः सख्यं शिवं, युवोः द्रविणं जह्वाव्याम्, पुनः शिवानि सख्या कृष्णानाः समानाः सह नु मध्वा मदेम ॥ ६ ॥

२३१ अर्थ— हे (नरा) नेता अभिदेवो ! (वां पुराणं ओक्षः) तुम्हारा पुराण यज्ञस्थान तथा तुम्हारी (सख्यं शिवं) मित्रता कृष्णानकारक है, (युवोः द्रविणं जह्वाव्याम्) तुम्हारा धन नदीके पास रखा है; (पुनः) फिरसे (शिवानि सख्या) दित करके मित्रता (कृष्णानाः) करते हुए (समानाः) समभावसे (सह नु) सब मिलकरही (मध्वा मदेम) भीटे रसपानसे द्रवित हों ।

१३१ भावार्थ— नेताओंका घर और उनका मित्रभाव कल्याणकारी हो, उनका धन सबका कल्याण करे। सब लोग समभावसे भीड़े-असक्तसेवन करते रहें।

[१३१]

२३२ अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना ।
नासत्या तिरोऽह्वयं जुषाणा सोमं पिबतमुत्तिधा सुदान् ॥७॥

२३२ अश्विना । वायुना । युवम् । सुदक्षा ।
नियुत्भिः । च । सजोषसा । युवाना ॥
नासत्या । तिरःऽह्वयम् । जुषाणा ।
सोमम् । पिबतम् । अस्तिधा । सुदान् इति सुदान् ॥७॥

१३२ अन्ययः— सुदान् अश्विना । नासत्या । सुदक्षा अश्विना युवाना युवं वायुना नियुद्भिः च सजोषसा तिरोऽह्वयं सोमं जुषाणा पिबतम् ॥ ७ ॥

१३२ अर्थ— हे (सुदान्) अच्छे दामी अश्विदेवो ! तुम (नासत्या) साथ पूर्ण (सुदक्षा) अच्छी शक्तिके युक्त (अश्विना) बिना किसी क्षतिके (युवाना युवं) साथ युवक तुम दोनों (वायुना नियुद्भिः च) वायु और घोड़ोंके साथ (सजोषसा) शीतिपूर्वक (तिरोऽह्वयं सोमं) कल मिचोबकर एक सोमको (जुषाणा पिबतं) आदरपूर्वक पान करो ।

१३२ भावार्थ— अच्छे दामी बनो, साथका पाळन करो, कार्यमें क्षति न रखो, तरण जैसे उरताही बीर बनो, घोड़ोंपर सवार होकर वायुवेगसे जाओ और कल तैयार किये सोमरसका पान करो ।

१३२ मानवधर्म— दान दो, सत्यका पाळन करो, प्रत्येक कार्य दक्षताके साथ करो, उसमें झुटी रहने न दो, बीरताका धारण करो ।

[१३३]

२३३ अश्विना परिं वामिपः पुरुचीरीयुर्गोभिर्यतमाना अमृधाः ।
रथो ह वामृतजा अद्रिजुतः परि घावापृथिवी याति
सधः ॥८॥

२३३ अश्विना । परि । वाम् । इषः । पुरुचीः ।
 ईयुः । गीऽमिः । यतमानाः । अमृधाः ॥
 रथः । ह । वाम् । ऋतऽजाः । अद्रिऽजूतः ।
 परि । द्यावापृथिवी इति । याति । सद्यः ॥ ८ ॥

२३३ अन्वयः— अश्विना ! पुरुचीः इषः वां परि ईयुः, यतमानाः अमृधाः गीमिः वां ऋतजाः अद्रिजूतः रथः ह सद्यः द्यावा-पृथिवी परि याति ॥ ८ ॥

२३३ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (पुरुचीः इषः) बहुतसी अन्नसामग्रियों (वां परि ईयुः) तुम्हें चारों ओरसे प्राप्त होती हैं, (यतमानाः) प्रपन्नकीक लोग (अमृधाः) किसी प्रकारकी क्षति वा रुकावट न पाते हुए, (गीमिः) अपने आपजोमें तुम्हारी स्तुति करते हैं, (वां ऋतजाः), तुम दोनोंका साथके लिये उत्पन्न (अद्रिजूतः रथः ह) सबतकी लकड़ियोंसे बनाया रथ सद्यसुख (सद्यः द्यावापृथिवी) तुरन्त भूलोक तथा सुलोकके (परि याति) इर्दगिर्द प्रयाण करता है ।

[२३४]

२३४ अश्विना मधुपुच्छमो युवाकुः सोमस्तं पातुमा गतं दुरोणे ।
 रथो ह वां भूरि वर्षः करिक्रतु सुतार्वतो निष्कृतमा-
 गमिष्ठः ॥ ९ ॥

२३४ अश्विना । मधुपुच्छस्तमः । युवाकुः । सोमः ।
 तम् । पातुम् । आ । गतम् । दुरोणे ॥
 रथः । ह । वाम् । भूरि । वर्षः । करिक्रतु ।
 सुतऽवतः । निऽकृतम् । आऽगमिष्ठः ॥ ९ ॥

२३४ अन्वयः— अश्विना ! युवाकुः सोमः मधुपुच्छमः, दुरोणे आगतं, तं पातुं, वां रथः ह भूरि वर्षः करिक्रतु सुतार्वतः निष्कृतं वा गमिष्ठः ॥ ९ ॥

२३४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (युवाकुः सोमः), तुम्हारी कामना पूर्ण काला हुआ सोम (मधुपुच्छमः) मीठेपनको रूप बढ़ाता है, इसलिये (दुरोणे आगतं) धरपर पधारकर (तं पातुं) उसका पान करो; (वां रथः ह) तुम्हारा रथ अत्यपहो (भूरि वर्षः करिक्रतु) बहुत स्वीकरणीय तेज हावब करता हुआ (सुतार्वतः) निचोढ़नेवालेके (निष्कृतं वा गमिष्ठः) घर नश्य-
 पिक रूपमें आ जाता है ।

[२३५] (ऋ० ४।१५।९—१०)

(२३५—२४३) वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

२३५ एष वाँ देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः ।

दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥

२३५ एषः । वाम् । देवौ । अश्विना ।

कुमारः । साहदेव्यः ॥

दीर्घऽआयुः । अस्तु । सोमकः ॥९॥

२३५ अन्वयः—देवौ अश्विना ! एषः सोमकः साहदेव्यः कुमारः वाँ दीर्घायुः
अस्तु ॥९॥२३५ अर्थ—हे (देवौ) देवतारूपी अश्विदेवो ! (एषः सोमकः) यह
सोमक नामवाला (साहदेव्यः कुमारः) सहदेवका पुत्र (वाँ) तुम्हारी कृपासे
(दीर्घायुः अस्तु) दीर्घ जीवनवाला बन जाय ।

[२३६]

२३६ तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् ।

दीर्घायुं कृणोतन ॥१०॥

२३६ तम् । युवम् । देवौ । अश्विना ।

कुमारम् । साहदेव्यम् ॥

दीर्घऽआयुम् । कृणोतन ॥१०॥

२३६ अन्वयः—देवौ अश्विना ! युवं तं साहदेव्यं कुमारं दीर्घायुं
कृणोतन ॥१०॥२३६ अर्थ—हे श्रोतमान अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (तं) उस सह-
देवके पुत्रको (दीर्घायुं कृणोतन) दीर्घ जीवनवाला बना दो ।

[२३७] (ऋ० ४।४५।१—७) जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

२३७ एष स्य भानुरुदियति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य
सानवि । पुक्षासो आसिन् मिथुना अधि त्रयो दतिस्तु-
रीयो मधुनो वि रंश्चते ॥१॥

२३७ एषः । स्यः । भानुः । उत् । इयति । युज्यते ।
 रथः । परिऽज्जमा । दिवः । अस्य । सानवि ॥
 पृक्षासः । अस्मिन् । मिथुनाः । अर्धः । त्रयः ।
 दतिः । तुरीयः । मधुनः । वि । रप्शते ॥१॥

२३७ अन्वयः—स्वः एषः भानुः उत् इयति, अस्य दिवः सानवि परिजमा
 रथ, युज्यते; अस्मिन् अर्धे त्रयः मिथुनाः पृक्षासः तुरीयः मधुनः दतिः वि
 रप्शते ॥ १ ॥

२३७ अर्थ—(स्वः एषः) वह यह (भानुः उत् इयति) सूर्य ऊपर
 आ रहा है, (अस्य दिवः सानवि) इस घुलोकके ऊँचे विभागमें (परिजमा रथः
 युज्यते) चारों ओर जानेवाला रथ जोड़ा जाता है; (अस्मिन् अर्धे)
 इसपर (त्रयः मिथुनाः पृक्षासः) तीन युगल भय रथे हुए हैं, (तुरीयः)
 चौथा (मधुनः दतिः) मधुका पात्र (वि रप्शते) विविध प्रकारसे विरा-
 जित होता है ।

[२३८]

२३८ उद् वाँ पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उपसो
 व्युष्टिषु । अपोर्णवन्तस्तम आ परिऽवृतं स्वर्णं शुक्रं
 तुन्वन्त आ रजः ॥२॥

२३८ उत् । वाम् । पृक्षासः । मधुमन्तः । ईरते ।
 रथाः । अश्वासः । उपसः । विऽउष्टिषु ॥
 अपऽऊर्णवन्तः । तमः । आ । परिऽवृतम् ।
 स्वः । न । शुक्रम् । तुन्वन्तः । आ । रजः ॥२॥

२३८ अन्वयः—उपसः व्युष्टिषु मधुमन्तः पृक्षासः अश्वासः रथाः परिऽवृतं
 तमः आ अपऊर्णवन्तः, शुक्रं रजः स्वः न आतुन्वन्तः वाँ उत् ईरते ॥ २ ॥

२३८ अर्थ—(उपसः व्युष्टिषु) उपासोंके निकट आनेपर (मधुमन्तः
 पृक्षासः) मीठाससे युक्त भय, (अश्वासः रथाः) घोड़े तथा रथ (परिऽवृतं
 तमः) चारों ओरसे घिरा हुआ अंधकार (आ अपऊर्णवन्तः) पूर्णतया दूर
 हटाते हुए, (शुक्रं रजः) दीप्त तेजकी (स्वः न) सूर्यके समान (आतुन्वन्तः)
 चारों ओर फैलाते हुए (वाँ उत् ईरते) हम दोनोंको ऊपर उठाते हैं ।

[२३९]

२३९ मध्वः पित्तं मधुपेभिः सभिः कृतं प्रियं मधुने युञ्जाथां
रथम् । आ वर्तन्ति मधुना जिव्वथस्पथो दृतिं वहथे
मधुमन्तमश्विना ॥३॥

२३९ मध्वः । पित्तम् । मधुपेभिः । आसभिः ।
उत्त । प्रियम् । मधुने । युञ्जाथाम् । रथम् ॥
आ । वर्तन्तिम् । मधुना । जिव्वथः । पथः ।
दृतिम् । वहथे दृतिं । मधुमन्तम् । अश्विना ॥३॥

२३९ अन्वयः— अश्विना ! मधुपेभिः आसभिः मध्वः पित्तं, उत्त प्रियं
रथं मधुने युञ्जाथां, वर्तन्ति पथः मधुना आ जिव्वथः, मधुमन्तं दृतिं वहथे ॥३॥

२३९ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (मधुपेभिः आसभिः) मीठे रसको पीने-
वाले सुखीसे (मध्वः पित्तं) मीठा रस पीजो, (उत्त) और (प्रियं रथं)
प्यारे रथको (मधुने युञ्जाथां) मधु पानेके लिये घोड़ोंसे जोत दो, (वर्तन्ति
पथः) धरतलके मार्गको (मधुना आ जिव्वथः) मधुसे पूरी तरह भर देते
हो (मधुमन्तं दृतिं वहथे) मीठास भरे वागको तुम दोनों छोटे हो ।

२३९ टिप्पणी— 'दृतिः' बह चमकेका पाव है, पखाळ, मसक । सोमका
रस इस चर्मपात्रमें भरकर दसते थे ऐसा इससे पता लगता है । मधुमन्तं
दृतिं । मीठा सोमरस जिसमें भरा है ऐसा दृति, पखाळ या मसक ।

[२४०]

२४० हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्त्रिधो हिरण्यपर्णा उद्भुव
उपधुधः । उदभ्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मज्जो न
मक्षः सर्वनानि गच्छथः ॥४॥

२४० हंसासः । ये । वाम् । मधुमन्तः । अस्त्रिधः ।
हिरण्यस्पृशाः । उद्भुवः । उपःस्पृधः ॥
उदभ्रुतः । मन्दिनः । मन्दिनिस्पृशः ।
मध्वः । न । मक्षः । सर्वनानि । गच्छथः ॥४॥

२४० अन्वयः— ये हंसाः मधुमन्ताः आसिधः हिरण्यवर्णाः, उषर्बुधः, उदुपुतः, मन्दिनः मन्दिनिस्पृहाः वा; मक्षः मध्वः न, सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥

२४० अर्थ— (ये) जो (हंसाः, मधुमन्तः) हंसतुल्य, मीठाससे पूर्ण, (असिधः हिरण्यवर्णाः) ग्रीह न करनेवाले, सुवर्णके समान चमकनेवाले पत्तोंसे युक्त (उषर्बुधः उदुपुतः) प्रातःकाल जागनेवाले, कूरतक पहुँचानेवाले, (उदुपुतः मन्दिनः) बेगसे जानेके कारण पसीनेके बुँदोंको टपकानेवाले, आनन्दिन (मन्दिनिस्पृहाः) हर्षित करनेवालेको छूनेवाले छोटे (वा) तुम्हें ले चलते हैं, इत्यक्षिप (मक्षः मध्वः न) मधु मन्त्रियों मधुकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसेही (सवनानि गच्छथः) हमारे सबकीमें तुम जाते हो ।

[२४१]

२४१ स्वध्वरासो मधुमन्तो अग्रय उक्षा जरन्ते प्रति
वस्तोरश्विना । यन्निकहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुपाव
मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥

२४१ सुध्वरासः । मधुमन्तः । अग्रयः ।
उक्षा । जरन्ते । प्रति । वस्तोः । अश्विना ॥
यत् । निकहस्तः । तरणिः । विचक्षणः ।
सोमम् । सुपाव । मधुमन्तम् । अद्रिभिः ॥५॥

२४१ अन्वयः— यत् विचक्षणः तरणिः निकहस्तः मधुमन्तं सोमं अद्रिभिः सुपाव, प्रति वस्तोः मधुमन्तः स्वध्वरासः अग्रयः उक्षा अश्विना जरन्ते ॥५॥

२४१ अर्थ— (यत्) जब (विचक्षणः तरणिः) बुद्धिमान् और कार्य पूरा करनेवाला मानव (निकहस्तः) हाथोंको स्वच्छ धोकर (मधुमन्तं सोमं सुपाव) मीठे सोम वनस्पतिको निचोटा चुका हो, तब (प्रति वस्तोः) हर प्रातःकाल (मधुमन्तः स्वध्वरासः अग्रयः) मीठाससे पूर्ण, अच्छे हिंसा-रहित कार्योंसे युक्त अग्निहोत्रमान दीक्षिमान् अगणी लोग (उक्षा अश्विना जरन्ते) साम करनेवाले अधिदेवोंकी स्तुति करते हैं ।

[१४०]

२४२ आकेनिपासो अहंभिर्दविष्णतः स्वर्णं शुक्रं तन्वन्त आ
रजः । सूरश्चिदश्वाङ् युयुजान ईयते विश्वो अनु स्वधया
चेतथस्पथः ॥६॥

२४२ आकेऽनिपासः । अहंभिः । दविष्णतः ।
स्वः । न । शुक्रम् । तन्वन्तः । आ । रजः ॥
सूरः । चित् । अश्वाङ् । युयुजानः । ईयते ।
विश्वान् । अनु । स्वधया । चेतथः । पथः ॥६॥

२४२ अन्वयः— शुक्र रज स्व न आ-तन्वन्तः अहंभि दविष्णत.
आकेनिपासः, अश्वाङ् युयुजान् सूरः चित् ईयते, स्वधया विश्वान् पथः अनु
चेतथः ॥ ६ ॥

२४२ अर्थ— (शुक्र रज) प्रदीप्त तेजको (स्व न) सूर्यके समान
(आ तन्वन्त) फैलाते हुए (अहंभि) दिनोंसे (दविष्णत) अधिपारीको
हटाते हुए (आकेनिपासः) समीप भा गिरनेवाले किरण होते हैं (अश्वाङ्
युयुजान) घोड़ोंको जोतता हुआ (सूर चित् ईयते) विद्वान् भी सवार
करता है, (स्वधया) स्वधासे-अपनी धारणाशक्तिके (विश्वान् पथ)
सभी मार्गोंको दृढ (अनु चेतथः) अनुक्रमसे जतकाते हो ।

[१४१]

२४३ प्र वामवोचमश्विना धियंघा रथः स्वर्षो अजरो यो
अस्ति । येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं
तरणिं भोजमच्छ ॥७॥

२४३ प्र । वाम् । अगोचम् । अश्विना । धियम्ऽघाः ।
रथः । सुऽअश्वः । अजरः । यः । अस्ति ॥
येन । सद्यः । परि । रजांसि । याथः ।
हविष्मन्तम् । तरणिम् । भोजम् । अच्छ ॥७॥

२४३ अन्वय— अश्विना ! धियघा यो प्र अवोच, य स्वर्षः अजरा रथ
अस्ति, येन हविष्मन्तं तरणिं भोज अच्छ सद्य रजांसि परि याथ ॥ ७ ॥

२४३ अर्थ— हे आग्निदेवो ! (धिक्धाः) बुद्धिको धारण करनेवाला मैं (वां ॥ शपोचं) तुम्हारे संबंधमें बहुत कुछ कह चुका हूँ, (यः स्वयः) जो अच्छे घोड़ोंवाला (अजरः रयः अस्ति) जीर्ण न होनेवाला रथ है, (येन) जिसपरसे (दक्षिण्यन्तं तारणि) दक्षिणसे युक्त तारण करनेवाले (भोजं भक्ष्य) तथा भोजन देनेवाले [यज्ञ] के प्रति (सद्यः) तुरन्तही (रजोसि परि याथः) लोकोंको पारकर तुम चले जाते हो ।

[२४४] (सू० ४।४३।१-७)

[२४४-२५७] पुरुमीळ्हातमीळ्हा सौहोर्त्ता । त्रिष्टुप् ।

२४४ क उ अ॒वत् क॒त॒मो य॒ज्ञिया॒नां व॒न्दार्क॑ दे॒वः क॒त॒मो
जु॒पाते । क॒स्ये॒मां दे॒वीम॒मृते॑षु प्रे॒ष्ठां हृदि॑ श्रे॒षाम्
सु॒प्तुति॑ सु॒ह॒व्याम् ॥१॥

२४४ कः । ऊँ इति । अ॒वत् । क॒त॒मः । य॒ज्ञिया॒नाम् ।
व॒न्दार्क॑ । दे॒वः । क॒त॒मः । जु॒पा॒ते ॥
क॒स्य॑ । इ॒माम् । दे॒वीम् । अ॒मृते॑षु । प्रे॒ष्ठाम् ।
हृदि॑ । श्रे॒षाम् । सु॒स्तुति॑म् । सु॒ह॒व्याम् ॥१॥

२४४ अन्वयः— यज्ञियानां कतमः कः उ अवत् कतमः देवः वन्दार्क जुपाते इमां सुप्तुतिं सुहव्यां प्रेष्ठां अमृतेषु कस्य हृदि श्रेषाम् ॥१॥

२४४ अर्थ— (यज्ञियानां कतमः कः उ) पूजनीय देवोंमेंसे कौनसा देव (अवत्) हमारी प्रार्थना सुन लेगा ? (कतमः देवः) इनमेंसे भला कौनसा देव (वन्दार्क जुपाते) वन्दनीय स्तोत्रका मनापूर्वक सेवन करता है ? (इमां) इस (सुप्तुतिं सुहव्यां) सुन्दर अच्छी (प्रेष्ठां) भयान्त पिण्ड स्तुति (अमृतेषु) अमरोंमें (कस्य हृदि श्रेषाम्) भला किसके लिये हम करें ?

[२४५]

२४५ को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः ।
रथं कर्माहुर्द्रवदश्ममाशुं यं सूर्यस्य दुहित्वाजृणीव ॥२॥

२४५ कः । मृच्छति । कृतमः । आऽगमिष्ठः ।
 देवानाम् । ॐ इति । कृतमः । अमृष्टमविष्ठः ॥
 रथम् । कम् । आहुः । ब्रवत्ऽअश्वम् । आशुम् ।
 यम् । सूर्यस्य । दुहिता । अवृणीत ॥२॥

२४५ अन्वयः— कः मृच्छति ? देवानां कृतमः आगमिष्ठः ? कृतमः ॐ संभ-
 विष्ठः ? कं आहुं ब्रवत् रथं आहुः ? सूर्यस्य दुहिता यं अवृणीत ॥२॥

२४४ अर्थ— (कः मृच्छति ?) कौन कुछ देता है ? (देवानां) देवोंमें
 (कृतमः आगमिष्ठः) भला कौनसा इधर जानेमें अत्यन्त आतुरता दर्शाता
 है ? (कृतमः उ संभविष्ठः) कौनसा देव सचमुच अत्यन्त सुखदायक है ?
 (कं आहुं ब्रवत् अश्वं रथं आहुः) किसे भला शीघ्रगामी और दौड़नेवाले
 घोड़ोंसे युक्त रथ है ऐसा कहते हैं (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (यं
 अवृणीत) जिसे स्वीकार कर चुकी ।

[२४५]

२४६ मक्षु हि ष्मा गच्छथ ईवतो यूनिन्द्रो न शक्तिं परित-
 क्म्यायाम् । दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां
 भवथः शचिष्ठा ॥३॥

२४६ मक्षु । हि । स्म । गच्छथः । ईवतः । यून् ।
 इन्द्रः । न । शक्तिम् । परितक्म्यायाम् ॥
 दिवः । आऽजाता । दिव्या । सुऽपर्णा ।
 कया । शचीनाम् । भवथः । शचिष्ठा ॥३॥

२४६ अन्वयः— दिव्या सुपर्णा । दिवः आ जाता । शचीनां कया शचिष्ठा
 भवथः, परितक्म्यायां इन्द्रः न शक्तिं, ईवतः यून् मक्षु हि गच्छथः स्म ॥३॥

२४६ अर्थ— हे (दिव्या सुपर्णा) दिव्य तथा सुन्दर पंखवाले और
 (दिवः आ जाता) सुलोकसे आनेवाले अग्निदेवो ! (शचीनां कया) अनेक
 शक्तिवर्धनसे भला किस शक्तिके कारण तुम (शचिष्ठा भवथः) अत्यन्त
 शक्तिमान् बन जाते हो, (परितक्म्यायां) शक्तिमें (इन्द्रः न) इन्द्रके पुरष
 तुम (शक्तिं) बल दर्शाते हो, (ईवतः यून्) आ जाते हुए दिनोंमें अथवा
 भागामी कालमें होनेवाले कार्योंके प्रति (मक्षु हि) बहुतही शीघ्र तुम
 (गच्छथः स्म) जाते हो ।

१४६ मानवधर्म—रात्रिके समय झुन्घेरा होनेके कारण बहुत कष्ट उत्पन्न होनेकी संभावना है, अतः वसी समय धीरोंकी अपाा वल प्रदर्शित करना चाहिये । और रात्रिके समय पहारा करें और दूसरोंकी सुरक्षा करें ।

[१४७]

१४७ का वां भूदुर्पमातिः कया न आश्विना गमथो ह्यमाना ।
को वां महश्चित् त्यजसो अभीकं उरुष्यते माध्वी दक्षा
न ऊती ॥४॥

१४७ का । वाम् । भूत् । उपमातिः । कया । नः ।

आ । अश्विना । गमथः । ह्यमाना ॥

कः । वाम् । महः । चित् । त्यजसः । अभीकं ।

उरुष्यतेम् । माध्वी इति । दक्षा । नः । ऊती ॥४॥

१४७ अन्वयः—माध्वी ! दक्षा ! अश्विना ! का उपमातिः वां भूत् कया ह्यमाना नः आगमथः; वां अभीके कः महः त्यजसः चित्, ऊती नः उरुष्य-
तम् ॥४॥

१४७ अर्थ—हे (माध्वी ! दक्षा !) गीठे स्वभाववाले तथा शत्रुविनाशक अश्विदेवी ! (का उपमातिः) भला कौनसी उपमा (वां भूत्) तुम्हारे [गुणोंका वर्णन करनेके] लिए पर्याप्त होगी ? (कया ह्यमाना) भला किस शक्तिसे हुलानेपर (नः आगमथः) हमारे पास तुम आभोगे ? (वां अभीके) तुम्हारे (महः त्यजसः चित्) बड़े भारी शोभकों (कः) भला कौन सहन करेगा ? (ऊती नः उरुष्यते) रक्षाकी आवश्यकतासे हमें सुरक्षित रखो ।

१४७ मानवधर्म—जनताकी सुरक्षाकी आयोजना करो ।

[१४८]

१४८ उरु वां रथः परिं नक्षति यामा यत् समुद्रादभि वर्तते
वाम् । मध्वा माध्वी मधु वां प्रुपायन् यत् सी वां पृक्षो
भुरजन्त पक्वाः ॥५॥

२४८ उरु । वाम् । रथः । परि । नक्षति । द्याम् ।

आ । यत् । समुद्रात् । आभि । वर्तते । वाम् ॥

मध्या । माध्वी इति । मधु । वाम् । प्रपायन् ।

यत् । सीम् । वाम् । पृथः । भुरजन्त । पक्वाः ॥५॥

२४८ अन्यथ - वा उरु रथः यत् समुद्रात् वा आ अभि वर्तते, द्यौं परि नक्षति, माध्वी । वा मधु मध्या प्रपायन्, यत् वा पृथ सीं पक्वा भुरजन्त ॥५॥

२४८ अर्थ - (वां उरु रथ) तुम दोनोंका विशाल रथ (यत्) जब (समुद्रात् वा आ अभिवर्तते) समुद्रमेंसे-अन्तरिक्षमेंसे तुम्हारी ओर आता है, तब (द्या परि नक्षति) धुलोकमें चारों ओर चला जाता है, हे (माध्वी) मीठे अग्निदेवो ! (वा मधु) तुम्हारे मीठे रस हमको (मध्या प्रपायन्) मीठाससे भर देते हैं (यत्) जब (वां पृथ) तुम्हारे अलोंको (सीं) सभी जगहसे (पक्वाः भुरजन्त) पके धान्य प्राप्त होते हैं ।

[२४९]

२४९ सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोऽरुपासः परि
गमन् । तद् पु वामजिरं चेति यानं येन पत्नी भवथः
सूर्यायाः ॥६॥

२४९ सिन्धुः । इ । वाम् । रसया । सिञ्चत् । अश्वान् ।
घृणा । वयः । अरुपासः । परि । गमन् ॥

तत् । ऊं इति । सु । वाम् । अजिरम् । चेति । यानम् ।
येन । पत्नी इति । भवथः । सूर्यायाः ॥६॥

२४९ अन्यथ - वां अश्वान् सिन्धु इ रसया सिञ्चत्, अरुपास स घृणा वयं परि गमन्, वा तद् अजिर यानं सु चेति, येन सूर्याया पत्नी भवथ ॥६॥

२४९ अर्थ - (वां अश्वान्) तुम्हारे घोड़ोंको (सिन्धु इ) घड़े भारी नदीने (रसया सिञ्चत्) रसीले जलसे सिञ्चित किया है, (अरुपास) लाल रंगवाले (घृणा वयं) दीसिमार् और पत्नीके सुख वेगवान् घोड़े (परि गमन्) चारों ओर चले गये हैं, (वां तद्) तुम्हारा वह (अजिर यान) क्षीप्र गामी रथ (सु चेति) अलौकिकी ज्ञात हो गया है, (येन) जिसकी सहायतासे (सूर्याया पत्नी भवथः) तुम दोनों सूर्याके पति-पावन कर्ता बनते हो ।

[२५०]

२५० इहेह यद् वा समना पपृक्षे सेयम्स्मे सुमतिर्वीजरत्ना ।
उरुष्यते जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्विक्
॥७॥

२५० इहेह । यत् । वाम् । समना । पपृक्षे ।
सा । इयम् । अस्मे इति । सुमतिः । वाज्ज्जत्ना ॥
उरुष्यतेम् । जरितारम् । युवम् । ह ।
श्रितः । कामः । नासत्या । युवद्विक् ॥७॥

२५० अन्वयः- वाज्जत्ना । नासत्या । यद् समना वो पपृक्षे, एवं सा
सुमतिः अस्मे; जरितारं युवं उरुष्यते, कामः युवद्विक् ह श्रितः ॥७॥

२५० अर्थ- हे (वाज्जत्ना नासत्या) बलरूप अथ अपने पास रखनेवाले
भाषिदेवो ! (यद् समना वो) जो समान मनवाले तुम्हें (पपृक्षे) मैं अन्न
भक्षण करता हूँ, (इयं सा सुमतिः) यही वह अच्छी बुद्धि है, इससे (अस्मे)
हमें (सुख हो) ; (जरितारं युवं उरुष्यते) प्रशंसकको तुम दोनों सुरक्षित
रखो, (कामः) हमारी इच्छा (युवद्विक् ह श्रितः) तुम्हारी ओर हो
जा रही है ।

२५० मानसधर्म- बलरूप रखने लौम्ब्यं बढ़ाना चाहिये । एक विचार-
वालोका संगठन करना चाहिये । सबको पर्याप्त अन्न मिलना चाहिये ।

[२५१] (अ. ४।४।१-७)

२५१ तं वा रथं वयमद्या हुवेम पृथुजर्घमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्या वहति बन्धुरागुर्गिर्वीहसं पुरुत्तमं वसूयुम् ॥१॥

२५१ तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम ।
पृथुजर्घम् । अश्विना । सम्जर्गतिम् । गोः ॥
यः । सूर्याम् । वहति । बन्धुरऽयुः ।
गिर्वीहसम् । पुरुत्तमम् । वसुऽयुम् ॥१॥

अश्विनी दे० २७

२५१ अश्वयः— अश्विना । तां त वसुधुं, पुस्तमं गिवांहसं गोः संगतिं
प्रधुञ्जयं रथं अथ हुवेम; यः वन्धुरयुः सूर्यां वहति ॥१॥

२५१ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (तां तं) तुम्हारे उस (वसुधुं) धनसे
पूर्ण (पुस्तमं) विषाल (गिवांहसं) भाषणोंको वूरतक पहुँचानेवाले (गोः
संगति) गायोंसे युक्त करनेवाले (प्रधुञ्जयं रथं) विख्यात वेगवाले रथको
(अथ हुवेम) आज बुलाते हैं, (यः वन्धुरयुः) जो कड़वाला होकर (सूर्यां
वहति) सूर्यको इष्ट स्थानपर पहुँचाता है ।

२५१ मानवधर्म— गायोंको प्राप्त करना चाहिये । वेगवान् रथ वीरोंके
पास रहे ।

[२५१]

२५२ युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः
शचीभिः । युवोर्वपुःश्रि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्
ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

२५२ युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् ।
दिवः । नपाता । वनथः । शचीभिः ॥
युवोः । वपुः । अभि । पृक्षः । सचन्ते ।
वहन्ति । यत् । ककुहासः । रथे । वाम् ॥२॥

२५२ अश्वयः— दिवः नपाता अश्विना । देवता युवं तां श्रियं शचीभिः
वनथः; यत् ककुहासः तां रथे वहन्ति पृक्षः युवोः वपुः अभि सचन्ते ॥२॥

२५२ अर्थ— हे (दिवः नपाता) सुलोकको न गिरानेवाले अश्विदेवो ।
(देवता युवं) देवतारूपी तुम दोनों (तां श्रियं) उस शोभाको (शचीभि
वनथः) शक्तियोंसे प्राप्त करते हो, (यत्) जब (ककुहासः) बड़े भारी घोड़े
(तां) तुम्हें (रथे वहन्ति) रथपर बैठनेपर इष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं, तब
(पृक्षः) भस्म (युवोः वपुः अभि सचन्ते) तुम दोनोंके शरीरको प्राप्त होते हैं,
प्रष्ट करते हैं ।

२५२ मानवधर्म— शक्तिसे प्राप्त होनेवाली शोभा प्राप्त करनी चाहिये ।
ऐसे भस्मका सेवन करना चाहिये कि जिससे शरीरका बल बढ़ता जाय ।

[१५३]

२५३ को चामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वाऽर्कैः ।
 ऋतस्य वा वनुये पूर्वाय नमो येमानो अश्विना ववर्तत् ॥३॥

२५३ कः । चाम् । अद्य । करते । रातहव्यः ।
 ऊतये । वा । सुतपेयाय । वा । अर्कैः ॥
 ऋतस्य । वा । वनुये । पूर्वाय ।
 नमः । येमानः । अश्विना । आ । ववर्तत् ॥३॥

२५३ अन्वयः— अश्विना ! रातहव्यः कः अर्कैः चामद्या ऊतये वा सुतपेयाय वा करते ? पूर्वाय ऋतस्य वनुये वा नमः येमानः आ ववर्तत् ॥३॥

२५३ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (रातहव्यः कः) दृविभाग दे चुकनेपर मका कौन (अर्कैः) पूजनीय साधर्मोसे (वा अद्य) तुम्हारी आज (ऊतये वा सुतपेयाय वा) संरक्षणके लिए या निषोदे हुए सोमको पीनेके लिए (करते) प्रशंसा करता है ? (पूर्वाय ऋतस्य वनुये वा) पूर्वकाहीन सत्य-धर्मकी प्राप्तिके लिए (नमः येमानः) नमन करता हुआ (आ ववर्तत्) अपनी ओर तुम्हें कौन प्रवृत्त करता है ?

[१५४]

२५४ हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेम यज्ञं नासत्याय यातम् ।
 पिवाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधत्ते जनाय ॥४॥

२५४ हिरण्ययेन । पुरुभू इति पुरुभू । रथेन ।
 इमम् । यज्ञम् । नासत्या । उप । यातम् ॥
 पिवाथः । इत् । मधुनः । सोम्यस्य ।
 दधथः । रत्नम् । विधत्ते । जनाय ॥४॥

२५४ अन्वयः— पुरुभू नासत्या ! हिरण्ययेन रथेन इमं यज्ञं उप यातं, मधुनः सोमस्य पिवाथः इत्, विधत्ते जनाय रत्नं दधथः ॥४॥

२५४ अर्थ— हे (पुरुभू नासत्या) बहुत प्रकारसे भवना आदिवा जतलाने-
 दारे तथा सत्यपाठक अभिदेवो ! (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथपरसे
 (इमं यज्ञं) इस यज्ञके (उप यातं) समीप आओ, (मधुनः सोमस्य)

मीठे सोमरसको (विषाधः इत्) पान करो और (विधते जनाय) पुरुषार्थ करनेहारे लोगोको (रत्नं दधयः) रत्न दे डालो ।

[२५५]

२५५ आ नो यातं दिवो अच्छा पृथिव्या हिरण्ययेन सुवृता रथेन । मा वामन्ये नि यमन् देवयन्तः सं यद् ददे नार्भिः पूर्या वाम् ॥५॥

२५५ आ । नः । यातम् । दिवः । अच्छ । पृथिव्याः । हिरण्ययेन । सुवृता । रथेन ॥
मा । वाम् । अन्ये । नि । यमन् । देवयन्तः ।
सम् । यत् । ददे । नार्भिः । पूर्या । वाम् ॥५॥

२५५ अन्वयः— दिवः पृथिव्याः नः अच्छा हिरण्ययेन सुवृता रथेन मा यातं, देवयन्तः अन्ये मा मा नियमन् यत् मा पूर्या नार्भिः सं ददे ॥५॥

२५५ अर्थ— (दिवः पृथिव्याः) तुलोकसे या मूलोकसे (नः अच्छ) हमारी ओर (हिरण्ययेन सुवृता रथेन) सुवर्णमय सुन्दर रथपरसे (मापातं) आओ, (देवयन्तः अन्ये) देवोंकी कारना करनेहारे दूसरे लोग (मा मा नियमन्) तुम्हें बीचमेंही न रोक रखें, (यत्) क्योंकि (पूर्या नार्भिः) पूर्वकालसे हमारा वह घर (वां) तुम्हें (सं ददे) भलीभाँति तुम्हें पद-कर चुका है । तुम्हारा संबंध हमसे पूर्वकालसे चला आया है ।

[२५६]

२५६ नू नो रयिं पुरुवीरं बृहन्तं दत्ता मिमाथामुमयेवस्मे । नरो यद् वामश्विना स्तोममावन्तसधस्तुतिमाजमीळ्हासो अगमन् ॥६॥

२५६ नु । नः । रयिम् । पुरुवीरम् । बृहन्तम् ।
दत्ता । मिमाथाम् । उमयेषु । अस्मे इति ॥
नरः । यत् । वाम् । अश्विना । स्तोमम् । आवन् ।
सधस्तुतिम् । आजमीळ्हासः । अगमन् ॥६॥

२५६ अन्वयः— दक्षा अधिना । नः नु पुरुवीरं बृहन्तं रयिं अस्मे उभयेषु मिमायां; यत् वा स्तोमं नरः आवन्, आजमीळहासः सघस्तुतिं अगमन् ॥६॥

२५६ अर्थ— हे (दक्षा) क्षत्रविनाशक अधिदेवी ! (नः नु) हमें जल्दानी (पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) अनेक वीरोसे युक्त प्रचण्ड धनको (अस्मे उभयेषु मिमायां) हमारे दोनों दिलोंमें दे टालो; (यत् वा स्तोमं) जब कि तुम्हारी स्तुतिको (नरः आवन्) नेवाओंने सुरक्षित कर रखा है तथा (आजमीळहासः) आजमीळहास परिहारके लोग (सघस्तुतिं अगमन्) मिलाकर की जानेवाली प्रशंसामें सम्मिलित होनेके लिये आगये है ।

[२५७]

२५७ इहेह यस् वां समना पंपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वोजरत्ना ।
उरुष्यते जरितारं पुवं हं श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक्
॥७॥

२५७ इहेह । यत् । वाम् । समना । पंपृक्षे ।
सा । इवम् । अस्मे इति । सुमतिः । वाजजरत्ना ॥
उरुष्यतेम् । जरितारम् । युवम् । ह ।
श्रितः । कामः । नासत्या । युवद्रिक् ॥७॥

२५७ [इस मंत्रको २५० पर देखो]

[२५८] (ऋ० ५।७३।१-१०)

(२५८—२७७) वीर आश्रयः । अनुपुष्ट ।

२५८ यदद्य स्थः परावति यदवावत्यश्विना ।
यद् वा पुरु पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१॥

२५८ यत् । अद्य । स्थः । परावति ।
यत् । अवावति । अश्विना ॥
यत् । वा । पुरु । पुरुभुजा ।
यत् । अन्तरिक्षे । आ । गतम् ॥१॥

२५८ अन्वयः— पुरुभुजा अधिना । यत् अद्य परावति इयः यत् अवावति, यत् अन्तरिक्षे यत् वा पुरु आ गतम् ॥१॥

२५८ अर्थ- हे (पुरुषुजा) घटे भुजोवाले अग्निदेवो ! (यत् अथ) जो भाज (परावति एषः) बहुत दूर स्थानमें तुम दोनों हो, (यत् अर्वापति) या समीप स्थानपर हो, (यत् अन्तरिक्षे) अथवा अन्तरिक्षमें (यत् वा पुरु) या किन्हीं अन्य अनेक स्थानोंमें तुम रहो, पर (आगतं) द्धर हमारे पास आओ ।

[२५९]

२५९ इह त्या पुरुभूतमा पुरु दंसांसि विभ्रता ।
वरस्या याम्यग्निगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥

२५९ इह । त्या । पुरुभूतमा ।
पुरु । दंसांसि । विभ्रता ॥
वरस्या । यामि । अग्निगू इत्यग्निगू ।
हुवे । तुविःस्तमा । भुजे ॥२॥

२५९ अन्वयः- त्या पुरु दंसांसि विभ्रता पुरुभूतमा वरस्या अग्निगू इह यामि, तुविष्टमा भुजे हुवे ॥२॥

२५९ अर्थ- (त्या) उन दोनों (पुरु दंसांसि विभ्रता) बहुतसे कर्म करनेवाले, (पुरुभूतमा) बहुतोंको आश्रयक रखनेवाले, (वरस्या) अग्नि (अग्निगू) विना रोक आगे बढ़नेवाले अग्निदेवोंके समीप (इह यामि) इधर मैं जा रहा हूँ, (तुविष्टमा) बहुत सारी सामग्रीको माध रखनेवाले उन्हीं (भुजे हुवे) भोजनके लिए मैं बुझाता हूँ ।

२५९ मानवधर्म- विविध शुभ कर्मोंको करो । अग्नि बल, ऐसी प्रशानि करो कि जो किसीसे होकी न जाय । पर्याप्त सामग्री अपने पास रखो ।

[२६०]

२६० ईर्मान्यद् वर्षुषे वर्षुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मृदा रजांसि दीयथः ॥३॥

२६० ईर्मा । अन्यत् । वर्षुषे । वर्षुः ।
चक्रम् । रथस्य । येमथुः ॥
परि । अन्या । नाहुषा । युगा ।
मृदा । रजामि । दीयथः ॥३॥

२६० अन्वयः— रयस्य अन्यत् वपुः चकं ईर्मा वपुषे येमधुः; अन्वा मङ्गा रक्षांसि मादृषा युगा परि दीवयः ॥३॥

२६० अर्थ— (रयस्य अन्यत्) रयका एक (वपुः चकं) सुंदर पहिया (ईर्मा वपुषे) गतिद्वारा शोभा बढ़ानेके लिए (येमधुः) सुगम शीनों स्थिर कर चुके, (अन्वा) दूसरे (रक्षांसि) लोकोंमें तथा अनेक (मादृषा युगा) मानवी पुद्गलोंमें (मङ्गा) अपनी महिमासे (परि दीवयः) तुम चक्रे जाले हो ।

२६० टिप्पणी— वपुः = शरीर, शोभा, सुन्दरता । ईर्मा = गति । मादृषा युगा = नहुषकी संतान, मानवी युग ।

[२६१]

२६१ तद् वु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु घृवे ।
नाना जाताररेपसा अस्मे वन्धुमेर्यधुः ॥४॥

२६१ तत् । ऊँ इति । सु । वाम् । एना । कृतम् ।
विश्वा । यत् । वाम् । अनु । स्तवे ॥
नाना । जातौ । अरेपसा ।
सम् । अस्मे इति । वन्धुम् । आ । ईर्यधुः ॥४॥

२६१ अन्वयः— विश्वा । यत् वा अनु स्तवे तत् वा उ एना कृतं, अरेपसा, नाना जातौ अस्मे वन्धुं सं आ ईर्यधुः ॥४॥

२६१ अर्थ— हे (विश्वा) सब देवो ! (यत् वा अनु) जो तुम दोनोंके अनुकूल (स्तवे) मैं स्तुति करता हूँ, (तत्) वह केवल (वा उ) तुम दोनोंके कियेही (एना कृतं) अलीभाँतिकी है, (अ-रेपसा) निर्दोष और (नाना जातौ) अनेक कर्मोंके किये प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (अस्मे) हमारे साथ (वन्धुं सं आ ईर्यधुः) वन्धुभावनको ठीक प्रकार दर्शाते हो ।

२६१ मानवधर्म— जो स्वयं निर्दोष रहकर अनेक कर्म कुशलताके साथ करते हैं, वेही परासायोग्य हैं ।

[२६२]

२६२ आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् द्युष्यदं सदा ।
परि वामरूपा वयौ घृणा धरन्त आतपः ॥५॥

२६२ आ । यत् । वाम् । सूर्या । रथम् ।
 तिष्ठत् । रघुऽस्यदम् । सदा ॥
 परि । वाम् । अरुणाः । वर्यः ।
 घृणा । वरन्ते । आऽसर्पः ॥५॥

२६२ अन्वय — यत् सूर्या वा सदा रघु-स्यद रथ आ तिष्ठत् घृणा आसर्प
 अरुणा वर्यः वा परि वरन्ते ॥५॥

२६२ अर्थ— (यत्) जब (सूर्या) सूर्यकी कन्या (वा) तुम्हारे (सदा)
 हमेशा (रघु-स्यद रथ) शीघ्रगामी रथपर (आ तिष्ठत्) चढ़ गयी, तब
 (घृणा प्रदीप्त (आसर्प) शत्रुभोंकी परिताप देनेहारे (अरुणा वर्य)
 लाल रंगवाले पक्षीसदृश गतिशील घोड़े (वां परि वरन्ते) तुम्हें घेर लेते हैं ।

[२६३]

२६३ युधोरत्रिंशिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
 घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ता भुरण्यति ॥६॥

२६३ युवोः । अत्रिः । चिकेतति ।
 नरा । सुम्नेन । चेतसा ॥
 घर्मम् । यत् । वाम् । अरेपसम् ।
 नासत्या । आस्ता । भुरण्यति ॥६॥

२६३ अन्वय — नासत्या नरा । अत्रि सुम्नेन चेतसा युवो चिकेतति,
 यत् आस्ता वा अरेपस घर्मं भुरण्यति ॥६॥

२६३ अर्थ— हे (नरा) नेता अग्निदेवो ! (अत्रिः सुम्नेन चेतसा) अपि
 आग्नि आनन्दिन मनसे (युवो चिकेतनि) तुम्हारी प्रशंसा करता है, (यत्)
 जबकि (आस्ता वां) मुँहसे तुम दोनोंकी स्तुति करके (अरेपसं घर्मं) निर्दोष
 भाग्यको (भुरण्यति) प्राप्त करता है ।

[२६४]

२६४ उग्रो वां क्रुद्धो युधिः ध्रुणे यामेषु संतुनिः ।
 यद् वां दंसोमिरक्षिनाऽत्रिर्नराऽवर्तति ॥७॥

२६४ उग्रः । वाग् । ककुहः । ययिः ।
 शृण्वे । यामेषु । समस्तनिः ॥
 यत् । याम् । दंसोभिः । अश्विना ।
 अत्रिः । नरा । आश्ववर्तति ॥७॥

२६४ अन्वयः— अश्विना ! यामेषु वां उग्रः ककुहः संतनिः ययिः शृण्वे;
 यत् अत्रिः वां दंसोभिः आश्ववर्तति ॥७॥

२६४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (यामेषु) चढाहूयोंमें (वां) तुम्हारे (उग्रः
 ककुहः) भीषण, ऊँचे (संतनिः) हमेशा भागे बढनेवाले (ययिः) गतिशील
 रथका (शृण्वे) शब्द सुनाई देता है, (यत्) जब अत्रि (वां दंसोभिः)
 तुम दोनोंको अपने कर्मोंसे (आश्ववर्तति) अपनी ओर आकर्षित करता है ।

[२६५]

२६५ मध्व ऊ पु मधुयुवा रुद्रा सिषक्ति विप्युषी ।
 यत् समुद्राति पर्यथः पक्षाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥
 २६५ मध्वः । ऊँ इति । सु । मधुयुवा ।
 रुद्रा । सिषक्ति । विप्युषी ॥
 यत् । समुद्रा । अति । पर्यथः ।
 पक्षाः । पृक्षः । भरन्त । वाम् ॥८॥

२६५ अन्वयः— मधुयुवा ! रुद्रा ! मध्वः सु विप्युषी सिषक्ति, समुद्रा
 यत् अति पर्यथः वां पक्षाः पृक्षः भरन्त ॥८॥

२६५ अर्थ— हे (मधुयुवा) मधुको निमित्त करनेवाले (रुद्रा) शत्रुको
 रक्षानेवाले अश्विदेवो ! (मध्वः सु विप्युषी) मधुर रससे भलीभाँति पुष्ट
 करनेवाली प्रशंसा तुम्हारी (सिषक्ति) सेवा करती है, (समुद्रा यत्)
 समुद्रोंको चूँकि (अति पर्यथः) तुम दोनों पारकर चले जाते हो, (वां)
 तुम्हें (पक्षाः पृक्षः भरन्त) पक्षे हुए भय दिये जाते हैं ।

[२६६]

२६६ सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोधुवा ।
 ता यामन् यामहर्तमा यामन्ना मृलयत्तमा ॥९॥
 अश्विनी २० २८

२६६ सत्यम् । इत् । वै । ॐ इति । अश्विना ।

युवाम् । आहुः । मयऽश्रुवा ॥

ता । यामन् । यामऽहृतमा ।

यामन् । आ । मृळयत्ऽतमा ॥९॥

२६६ अन्वयः— अश्विना ! युवां सत्यं इत् मयोभुवा आहुः वै; यामन् ता यामहृतमा, यामन् आ मृळयत्तमा ॥९॥

२६६ अर्थ— हे भग्विदेवो ! (युवां सत्यं इत्) तुम्हें सचमुच (मयो-भुवा आहुः वै) सुलदायक बतलाते हैं, (यामन्) यात्राके समय (ता) वे दोनों (यामहृतमा) युद्धोंमें लड़वाने योग्य हैं इसलिष् (यामन् मृळय-त्तमा) नाकमणके समय ये बहुत सुख देनेवाले बनो ।

[२६७]

२६७ इमा ब्रह्माणि वर्धनाऽश्विभ्यां सन्तु शतमा ।

या तक्षाम् रथीं इवाचौचाम बृहन्मः ॥१०॥

२६७ इमा । ब्रह्माणि । वर्धना ।

अश्विभ्याम् । सन्तु । शम्ऽतमा ॥

या । तक्षाम् । रथीन्ऽइव ।

अचौचाम । बृहत् । नमः ॥१०॥

२६७ अन्वयः— अश्विभ्यां इमा ब्रह्माणि शतमा वर्धना सन्तु या रथीन् इव तक्षाम्, बृहत् नमः अचौचाम ॥१०॥

२६७ अर्थ— (अश्विभ्यां) भग्विदेवोंके लिष् (इमा ब्रह्माणि) वे स्तोत्र (शतमा वर्धना सन्तु) शान्तिदायक तथा शक्य यज्ञ बढ़ानेवाले हों, (या) जिन्हें (रथीन् इव) रथोंके समान (तक्षाम्) हम बना चुके हैं और (बृहत् नमः अचौचाम) बड़ा भारी अन्न भी देनेके लिये कह चुके ।

२६७ मानवधर्म— काव्य ऐसा हो कि जो शान्ति बढ़ानेवाला, यज्ञ बढ़ानेवाला और नम्रता बढ़ानेवाला हो अथवा अन्न देनेवाला हो ।

[२६८] (अ० ५।७७।१-१०) अनुष्टुप्, ८ निष्ठत् ।

२६८ कूर्षो देवावश्विनाऽद्या दिवो र्मनावस्र ।

तच्छ्रेयधो वृषण्वसु अर्त्रिर्वाभा निवासति ॥१॥

२६८ कूस्थः । देवौ । अश्विना ।

अथ । दिवः । मनावसू इति ॥

तत् । अथथः । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ।

अग्निः । वाम् । आ । विवासति ॥१॥

२६८ अन्वयः— मनावसू देवौ अश्विना । कूस्थः अथ दिवः, वृषण्वसू ।
अग्निः वां आविवासति, तत् अथथः ॥१॥

२६८ अर्थ— हे (मनावसू) उत्कृष्ट मनवाके अग्निदेवो ! (कूस्थः)
तुम दोनों भूमिपर बहनेकी इच्छा काके (अथ दिवः) आज सुलोकसे हजर
आओ । हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाके ! अग्नि (वां आ विवासति)
गुम्हारी सेवा करता है, (तत् अथथः) उसे सुन लो ।

[२६९]

२६९ कुह त्वा कुह नु भ्रुता दिवि देवा नासत्या ।

कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥

२६९ कुह । त्वा । कुह । नु । भ्रुता ।

दिवि । देवा । नासत्या ॥

कस्मिन् । आ । यतथः । जने ।

कः । वाम् । नदीनाम् । सचा ॥२॥

२६९ अन्वयः— नासत्या देवा दिवि, कुह नु भ्रुता, त्वा कुह, कस्मिन् जने
आ यतथः, वां नदीनां कः सचा ॥२॥

२६९ अर्थ— (नासत्या देवा दिवि) सत्यवाक्यक अग्निदेव सुलोकमें या
(कुह) किधर (नु भ्रुता) विषयात हैं ? (त्वा कुह) हे दोनों कहाँ हैं ?
(कस्मिन् जने) किस मनुष्यके घर (आ यतथः) तुम प्रपन्न करते हो ।
(वां नदीनां) गुम्हारी नदियोंका (कः सचा) भवा कौन सद्गामी है ?

[२७०]

२७० कं यायः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।

कस्य मत्तानि रथ्यथो वयं वासुधमसीष्ट्ये ॥३॥

२७० कम् । याथः । कम् । ह । गच्छथः ।
 कम् । अच्छ । युञ्जाथे इति । रथम् ॥
 कस्य । ब्रह्माणि । रण्यथः ।
 वयम् । वाम् । उदमसि । इष्टये ॥३॥

२७० अन्वयः— वयं इष्टये यां उदमसि, कं ह गच्छथः, कं याथः, रथं कं अच्छा युञ्जाथे, कस्य ब्रह्माणि रण्यथः ॥३॥

२७० अर्थ— (वयं) हम (इष्टये) इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए (यां उदमसि) तुम्हारी कामना करते हैं, (कं ह गच्छथः) भला तुम किसके समीप जाते हो ? (कं याथः) किसके पास चले जाते हो ? (कं अच्छा) किसके प्रति पहुँचनेके लिए (रथं युञ्जाथे) रथको जोड़ते हो और (कस्य ब्रह्माणि) किसके स्तोत्रोंसे (रण्यथः) तुम रममाण होते हो ?

[२७१]

२७१ पौरं चिद्व्युदप्रुतं पौरं पौराय जिन्वथः ।
 यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४॥
 २७१ पौरम् । चित् । हि । उद्व्युदप्रुतम् ।
 पौरं । पौराय । जिन्वथः ॥
 यत् । ईम् । गृभीततातये ।
 सिंहम् । ईव । द्रुहः । पदे ॥४॥

२७१ अन्वयः— पौर । पौराय उद्व्युदप्रुतं पौरं चित् हि जिन्वथः, यत् गृभीततातये ईं द्रुहः पदे सिंह इव ॥४॥

२७१ अर्थ— हे (पौर) नागरिक ! ऐसी हाँक (पौराय) नागरिकावासी जनके लिए (उद्व्युदप्रुतं) जलमें दूबनेवाले (पौरं चित् हि) नागरिककी सहायता (जिन्वथः) तुमने मारी थी, (यत् गृभीततातये) जब शत्रुद्वारा भेरे हुएको मुहफानेके लिये (ईं) इसे (द्रुहः पदे सिंह इव) वनमें सिंहके समान तुमने सहायता की ।

२७१ भावार्थ— जनताकी सहायता करो, क्योंकि नागरिकोंकी सुरक्षा करो । शत्रुसे भेरे गये मनुष्योंकी सहायता करके छुड़ानो ॥

[१७२]

२७२ प्र च्यवानाञ्जुजुरुषो वयिमत्कं न मुञ्चथः ।

युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वर्ध्वः ॥५॥

२७२ प्र । च्यवानात् । जुजुरुषः ।

वयिम् । अत्कम् । न । मुञ्चथः ॥

युवा । यदी । कृथः । पुनः ।

आ । कामम् । मृण्वे । वर्ध्वः ॥५॥

१७२ अन्वयः— जुजुरुषः च्यवानात् वयि अत्कं न प्र मुञ्चथः, यदि पुनः युवा कृथः वर्ध्वः कामं भा मृण्वे ॥५॥

२७२ अर्थ— (जुजुरुषः च्यवानात्) बूढ़े व्यवसले (वयि) दहनेवाली चमड़ीको (अत्कं न) कवचके समान (प्र मुञ्चथः) तुमने उतार डाला (यदि) और (पुनः) फिर (युवा कृथः) उसे युवक बना दिया तब वह (वर्ध्वः कामं) बधूकी कामनाकी करनेयोग्य रूपको (भा मृण्वे) प्राप्त हुआ ।

२७२ भाषार्थ— भविष्येणोने बूढ़े व्यवस जदिके शरीरपारसे चमड़ी, कवच उतारनेके समान, उतार दी, तब वह युवा बना और बधूकी इच्छा करने लगा ।

२७२ मामदधमं— औषधि योजनासे बूढ़ेके शरीरपारसे चमड़ी उतार दी जाय, तो वह फिरसे तद्वय बनेगा और वह तरुण स्त्रीकी कामना करनेयोग्य धीर्यवान् हो जायगा । (आयुर्वेदके ज्ञानियोंने इत औषधि-प्रयोगका विज्ञान निश्चित करना चाहिये ।)

[१७३]

२७३ अस्ति हि वाग्निह स्तोता स्मर्ति वा सुन्दरि श्रिये ।

नू श्रुतं म आ गतमर्वाभिर्वाजिनीवस्र ॥६॥

२७३ अस्ति । हि । वाम् । इह । स्तोता ।

स्मर्ति । वाम् । समुन्दरि । श्रिये ॥

नु । श्रुतम् । मे । आ । गतम् ।

अर्वाऽभिः । वाजिनीवस्र इति वाजिनीवस्र ॥६॥

२७३ अन्वयः— वां इह स्तोता अस्ति हि, श्रिये वा संदधि स्याति, वाजिनीयसू । मे तु धृतं, भवोभिः आगतम् ॥६॥

२७३ अर्थ— (वां) तुम्हारी (स्तोता इह अस्ति हि) प्रशंसा करनेवाला यही है, (श्रिये वा संदधि स्याति) गोमाके लिए तुम्हारी दृष्टिकी कक्षामें हम रहते हैं, हे (वाजिनी-यसू) सेनारूपी धनसे युक्त भविष्यदेवो ! (मे तु धृतं) मेरी पुकार अब सुन लो और (भवोभिः आगतं) संरक्षणकी भाषाजनाओंसे युक्त होकर आओ ।

२७३ भाषार्थ— संरक्षकोंकी सेनासे युक्त वीर भयने संरक्षक साधनोंके साथ आ जाय और जनताकी सुरक्षा करें ।

२७३ मानवधर्म— संरक्षक इह निवृत्त रह्यो और संरक्षक साधनोंसे नागरिकोंकी सुरक्षा करो । दुष्टोंद्वारा नागरिक न मारे जाय ।

[२७४]

२७४ को वाम्थ पुरुणामा वने मर्त्यानाम् ।

को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीयसू ॥७॥

२७४ का । वाम् । अथ । पुरुणाम् ।

आ । वने । मर्त्यानाम् ॥

कः । विप्रः । विप्रवाहसा ।

कः । यज्ञैः । वाजिनीयसू इति वाजिनीयसू ॥७॥

२७४ अन्वयः— विप्र-वाहसा । वाजिनी यसू ! अथ पुरुणां वा वः, कः विप्रः, वः यज्ञैः आ गते ॥७॥

२७४ अर्थ— वे (विप्र-वाहसा) ज्ञानियोंद्वारा खेवनीय और (वाजिनी-यसू) सेनाको पास रखनेवाके भविष्यदेवो ! (अथ पुरुणां) आज नागरिकोंसे (कः क विप्र) कौन ज्ञानी, तथा (व यज्ञैः) भला कौन पुरुष यज्ञोंसे (आ गते) पूर्णतया (वां) तुम्हें स्वीकार करता है ।

[२७५]

२७५ आ वां रथो रथानां येष्टो यात्वश्विना ।

परु चित्मयुस्तिर आद्रूपो मर्त्येणा ॥८॥

२७५ आ । वाम् । रथः । रथानाम् ।

येष्टः । यातु । अश्विना ॥

पुरु । चित् । अस्मद्वयुः । तिरः ।

आङ्गूयः । मर्त्येषु । आ ॥८॥

२७५ अन्वयः—अश्विन! रथानां येष्टः वां रथः आ यातु, मर्त्येषु अस्मद्वयुः, पुरु चित् तिरः आङ्गूयः आ ॥८॥

२७५ अर्थ— हे भगिदेवो ! (रथानां) रथोंमें (येष्टः वां रथः) विशेष वेगवाला तुम्हारा रथ (आ यातु) इधर आजाए; (मर्त्येषु) मानवोंमें (अस्मद्वयुः) हमारीही कामना करनेवाला तथा (पुरु चित् तिरः) भलेक शत्रुओंको भी हरा देनेवाला (आङ्गूयः आ) वह प्रवासनीय रथ इधर आवे ।

[२७६]

२७६ शम् पु वां मधुयुवाऽस्माकमस्तु चर्कृतिः ।

अर्वाचीना विचेतसा विमिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥

२७६ शम् । ऊँ इति । सु । वाम् । मधुयुवा ।

अस्माकम् । अस्तु । चर्कृतिः ॥

अर्वाचीना । विचेतसा ।

विमिः । श्येनाइव । दीयतम् ॥९॥

२७६ अन्वयः— मधु-युवा ! अस्माकं वां चर्कृतिः सु वां अस्तु; विचेतसा अर्वाचीना श्येना इव विमिः दीयतम् ॥९॥

२७६ अर्थ— हे (मधु-युवा) मधुसे युक्त भगिदेवो ! (अस्माकं) हमारा (वां चर्कृतिः) तुम्हारे लिए किया हुआ काम (सु वां अस्तु) भलीभाँति सुलभायक हो, (विचेतसा) तुम विशिष्ट चेतनशक्तिसे युक्त हो, इसलिये (अर्वाचीना) हमारे सामने (श्येना इव) काम पंछीके तुल्य (विमिः दीयतम्) वेगवान् घोड़ोंसे आ जाओ ।

[२७७]

२७७ अश्विना यद्वा कर्हि चिच्छ्रयातमिमं हवम् ।

वर्षीरु पु वां भुजः पुशन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

२७७ अश्विना । यत् । ह । कर्हि । चित् ।
 शुश्रुयातम् । हुमम् । हवम् ॥
 वस्वीः । ऊँ इति । सु । वाम् । भुजः ।
 पृश्नन्ति । सु । वाम् । पृचः ॥१०॥

२७७ अन्वयः— अश्विना ! इमं हवं यत् कर्हि चित् हं शुश्रुयातं, वस्वीः
 भुजः वां सु, पृचः वां सु पृश्नन्ति ॥१०॥

२७७ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (इमं हवं) इस पुकारको (यत्) जहाँ
 (कर्हि चित् ह) कहीं भी तुम रहो लेकिन (शुश्रुयातं) तुम लो (वस्वीः
 भुजः) प्रशंसनीय भोजन (वां सु) तुम्हें ठीक प्रकार मिके इतकिए रखे हैं,
 (पृचः वां) भक्षोंको तुम्हारे लिए (सु पृश्नन्ति) भक्षीभाँति मिश्रित करते हैं ।

[२७८] (फ० ५।७५।१-२)

(२७८-२८६) अथत्युराग्रेयः । पद्विः ।

२७८ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
 स्तोता वामश्विनाष्टपिः स्तोमेन प्रति भूपति
 माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

२७८ प्रति । प्रियतमम् । रथम् ।
 वृषणम् । वसुवाहनम् ॥
 स्तोता । वाम् । अश्विनौ । ऋषिः ।
 स्तोमेन । प्रति । भूपति ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥१॥

२७८ अन्वयः— माध्वी अश्विनौ ! स्तोता ऋषिः वा प्रियतमं वसुवाहः
 वृषणं रथं प्रति स्तोमेन प्रति भूपति, मम हवं श्रुतम् ॥१॥

२७८ अर्थ— हे (माध्वी) मधुरतासे युक्त आश्विदेवो ! (स्तोता ऋषिः)
 प्रशंसा करनेवाला ऋषि (वां) तुम्हारे (प्रियतमं) अत्यन्त प्रिय, (वसु-
 वाहनं) धन ढोनेवाले और (वृषणं रथं प्रति) बलवान् रथका (स्तोमेन प्रति
 भूपति) स्तोत्रसे वर्णन करता है, तुम (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकारको
 सुन लो ।

[१७९]

२७९ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
 दक्षा हिरण्यवर्तनी सुपुञ्जा सिन्धुवाहसा
 माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

२७९ अतिऽआयातम् । अश्विना ।
 तिरः । विश्वाः । अहम् । सना ॥
 दक्षा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ।
 सुऽपुञ्जा । सिन्धुऽवाहसा ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥२॥

१७९ अन्वयः— माध्वी अश्विना । सिन्धुवाहसा । हिरण्यवर्तनी । सु-पुञ्जा ।
 दक्षा ! मम हवं श्रुतं, अति-आयातं, अहं सना विश्वाः तिरः ॥१॥

१७९ अर्थ— हे (माध्वी) मिठाससे युक्त (सिन्धु-वाहसा) नदियोंमें
 जानेवाले ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रखवाले ! (सु-पुञ्जा । दक्षा) अच्छे
 मनसे युक्त शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन को
 और (अति आयातं) विघ्नोंको काँचकर इधर आजाओ, तथा ऐसा प्रबंध
 करो कि (अहं) मैं (सना) हमेशा (विश्वाः तिरः) सभी वाद्याओंको
 हटा लूँ ।

[१८०]

२८० आ नो रत्नानि विभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
 रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुपाणा वाजिनीवसू
 माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

२८० आ । नः । रत्नानि । विभ्रतौ ।
 अश्विना । गच्छतम् । युवम् ॥
 रुद्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ।
 जुपाणा । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥३॥

१८० अन्वयः— रुद्रा ! हिरण्यवर्तनी ! वाजिनी-वसू भक्षिना ! नः
रत्नानि विधत्तौ जुषाणा युवं आ गच्छतं माध्वी ! मम हवं श्रुतम् ॥३॥

१८० अर्थ— हे (रुद्रा) वायुको रुकानेवाले (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय
रथवाले (वाजिनी-वसू) सेनारूप धनवाले भक्षिदेवो ! (नः रत्नानि विधत्तौ)
हमारे लिए रत्नोंको ले आते हुए (जुषाणा) हमारे कथनको ध्यानपूर्वक
सुनते हुए (युवं) तुम दोनों (आ गच्छतं) भावो । हे (माध्वी) मधुर-
तासे युक्त ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुनो ।

[१८१]

१८१ सुष्टुभो वा वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।

उत वा ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥

१८१ सुऽस्तुभः । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ।
रथे । वाणीची । आऽहिता ॥

उत । वाम् । ककुहः । मृगः ।

पृक्षः । कृणोति । वापुषः ।

माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥४॥

१८१ अन्वयः— वृषण्वसू । वा सु-स्तुभः, वाणीची रथे आहिता, उत
ककुह मृगः वापुषः वा पृक्षः कृणोति, माध्वी ! मम हवं श्रुतम् ॥४॥

१८१ अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनोंकी रथों करनेवाले देवो । मैं (वा
सुस्तुभः) तुम दोनोंका अच्छा प्रशंसक हूँ, (वाणीची रथे आहिता) मेरी स्तुति
तुम्हारे रथके विषयमें हो रही है (उत) और (ककुहः मृगः) महान्, तुम्हारा
अभ्येषण कर्ता (वापुषः) बड़े शरीरवाला (वा) तुम्हारे लिए (पृक्षः कृणोति)
इविभाग तैयार करता है, इसलिये हे (माध्वी) मित्रतासे पूर्ण देवो ! (मम
हव श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो ।

[१८२]

१८२ योधिन्मनसा रथ्येपिरा हवनश्रुता ।

विमिश्रयवानमग्निना नि याथो अद्रयाविनं
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥

२८२ बोधित्मनसा । रथा ।
 इपिरा । हवनश्रुता ॥
 विभिः । च्यवानम् । अश्विना ।
 नि । यायः । अद्रवाविनम् ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥५॥

२८२ अन्वयः— माध्वी अश्विना । रथा, इपिरा, हवन-श्रुता, बोधित्मनसा अद्रवाविनं च्यवानं विभिः नि यायः, मम हवं श्रुतम् ॥५॥

२८२ अर्थ— हे (माध्वी) मिठाससे युक्त अश्विदेवी ! (रथा) रथपर चढ़े (इपिरा) गतिशील, (हवन-श्रुता) प्रकार सुननेवाले और (बोधित्मनसा) ज्ञानयुक्त मनवाले तुम दोनों (अद्रवाविनं च्यवानं) मनमें कुछ और बाहर कुछ ऐसे बतों न करनेवाले च्यवानके समीप (विभिः नि यायः) वेगपूर्वक जानेवाले मोड़ोंसे पहुँचते हो, इसलिङ्गे मेरी प्रकार सुनो ।

[२८३]

२८३ आ वाँ नरा मनोयुजोऽश्वांसः प्रुषितप्सवः ।
 वयो वहन्तु पीतये सह सुमेर्मिरश्विना
 माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥
 २८३ आ । घाम् । नरा । मनःयुजः ।
 अश्वांसः । प्रुषितप्सवः ॥
 वयः । वहन्तु । पीतये ।
 सह । सुमेर्मिः । अश्विना ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥६॥

२८३ अन्वयः— नरा अश्विना ! मनोयुजः प्रुषितप्सवः वयः अश्वांसः वाँ सुमेर्मिः सह पीतये आ वहन्तुः माध्वी । मम हवं श्रुतम् ॥६॥

२८३ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवी ! (मनोयुजः) मनके इशारेसे कार्यमें श्रुत आनेवाले, (प्रुषितप्सवः) धन्वेवाले रूपोंवाले (वयः अश्वांसः)

गतिशील घोड़े (वां) तुम दोनोंको (सुम्नेभिः सह पीतये) सुखोंके साथ
सोमपातके लिए (आ वहन्तु) इधर ले जायें । हे (माध्वी) मधुरतासे पूर्ण ।
(मम हवं) मेरा पुछावा (श्रुतं) सुनो ।

[१८४]

२८४ अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
तिरश्चिदर्यया परि वर्तिर्यातमदाभ्या
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥७॥

२८४ अश्विनौ । आ । इह । गच्छतम् ।
नासत्या । मा । वि । वेनतम् ॥
तिरः । चित् । अर्यया । परि ।
वर्तिः । यातम् । अदाभ्या ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥७॥

१८४ अन्वयः— अदाभ्या नासत्या माध्वी अश्विना । इह आ गच्छतं, मा
वि वेनतं अर्यया तिरः चित् वर्तिः परि यातं, मम हवं श्रुतम् ॥७॥

२८४ अर्थ— हे (अदाभ्या) न दबनेवाले । सखपाकक । मधुगिता-
वाले अश्विदेवो । (इह आ गच्छतं) इधर आओ, (मा वि वेनतं) न
उदासीन बनो, (अर्यया) तुम दोनों अभिपति हो इसलिये (तिरः चित्)
दूर देशसे भी (वर्तिः परि यात) घर चले आओ और (मम) मेरी (हव श्रुत)
पुकार सुनो ।

२८४ मानवधर्म— किसीके स्वावसे न दब जाओ, सखपा पाकन करो,
मीठे स्वभाववाले बनो, आवेगके योग्य व्यवहार करो, कभी उदास न बनो,
सुदूर स्थानसे भी अपने घर आओ ।

[१८५]

२८५ असिन् यज्ञे अदाभ्या जरितारं शुभस्पती ।
अवस्युर्मधिना युवं गृणन्तगुपं भूपयो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥८॥

२८५ अस्मिन् । यज्ञे । अद्वाभ्या ।
 जरितारम् । शुभः । पती इति ॥
 अवस्युम् । अश्विना । युवम् ।
 गुणन्तम् । उप । मूपयः ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥८॥

२८५ वाच्यः— शुभस्वती । अद्वाभ्या माध्वी अश्विना । अस्मिन् यज्ञे
 जरितारं अवस्युं युवं गुणन्तं उप मूपयः, मम हवं श्रुतम् ॥ ८ ॥

२८५ अर्थ— हे (शुभस्वती) शुभोके पाछनकर्ता (अद्वाभ्या माध्वी)
 न दण्डेवाले, मधुरिसामय आश्विनेको ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (जरितारं)
 प्रशंसक (अवस्युं) रक्षणकी इच्छा करनेहारे (युवं गुणन्तं) तुम दोनोंकी
 प्रशंसा करनेवालेके (उप मूपयः) समीप जाकर उसे अर्पण करते हो,
 इसलिये (मम हवं) मेरे शुकावेको (श्रुतं) सुनो ।

[२८६]

२८६ अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरध्याग्न्युत्थिर्यः ।
 अयोजि वा वृषण्वसू रथो दत्तायमर्त्यो
 माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥

२८६ अभूत् । उषाः । रुशत्पशुः ।
 आ । अग्निः । अध्याग्निः । अग्निर्यः ॥
 अयोजि । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ।
 रथः । दत्तौ । अमर्त्यः ।
 माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥९॥

२८६ अन्वयः— माध्वी दत्तौ । वृषण्वसू । उषा अभूत्, अग्निर्यः रुशत्पशुः
 अग्निः आ अध्याग्निः वा अमर्त्यः रथः अयोजि, मम हवं श्रुतम् ॥ ९ ॥

२८६ अर्थ-हे (माध्वी दत्तो) मधुतिमामय शत्रुविनाशक (वृषणवत्) बलको
स्थिर करनेहारे भग्निदेवो ! (उपा भभूत्) प्रातःकाल हो चुका, (ऋतियः)
ऋतुके अनुसार (रुशन्-पशुः भग्निः) प्रदीप्त तेजवाला भग्नि (भा भवायि)
पूर्णतया रक्षा गया है, (वा) तुम्हारा (भक्त्यः रथः) न नष्ट होनेवाला रथ
(भवोजि) युक्त किया गया है, इसलिये (मम हन्ते भुतं) मेरी पुकार
सुन लो ।

३७

[२८७] (अ० पा० १-५)

(२८७-२९६) भौमोऽग्निः । त्रिष्टुप् ।

२८७ आ भ्रात्यग्निरुपसामनीकमुद् विप्राणां देवया वाचो
अस्थुः । अर्वाश्वा नूनं रथ्येह यातं पीपिवांसमश्विना
घर्ममच्छ ॥१॥

२८७ आ । भ्राति । अग्निः । उपसाम् । अनीकम् ।
उत् । विप्राणाम् । देवयाः । वाचः । अस्थुः ॥
अर्वाश्वा । नूनम् । रथ्या । इह । यातम् ।
पीपिवांसम् । अश्विना । घर्मम् । अच्छ ॥१॥

२८७ अन्वयः- उपसामनीक भग्निः भा भ्राति, विप्राणां देवया वाचा उत्
अस्थुः । रथ्या अश्विना । पीपिवांस घर्म अच्छ नून इह अर्वाश्वा यातम् ॥ १ ॥

२८७ अर्थ- (उपसामनीकं) प्रातःवेलाके समीप (भग्निः भा भ्राति)
भग्नि पूर्णतया प्रदीप्त हो उठता है (विप्राणां देवया वाचा) ज्ञानियोंके
देवोंको चाहनेवाले भाषण (उत् अस्थुः) होने लगे, हे (रथ्या अश्विना)
रथपर चढ़े हुए भग्निदेवो (पीपिवांस घर्म अच्छ) पुष्ट होनेवाले भग्निके प्रति
(नूनं इह) भवइयटी इधर (अर्वाश्वा यातं) हमारे पास आओ ।

[२८८]

२८८ न संस्कृतं प्र मिमीतो यमिष्टाऽन्ति नूनमश्विनोपस्तुतेह ।
दिवाऽभिपित्वेऽवसार्गामिष्टा प्रत्यर्वन्ति दाशुपे शर्मविष्टा ॥२॥

२८८ न । संस्कृतम् । प्र । मिमीतः । गर्मिष्ठा ।
 अन्ति । नूनम् । अश्विना । उपऽस्तुता । इह ॥
 दिवा । अभिऽपित्वे । अवसा । आऽगमिष्ठा ।
 प्रति । अवर्तिम् । दाशुषे । शम्ऽर्भविष्ठा ॥२॥

२८८ अन्वयः— संस्कृतं न प्र मिमीतः, नूनं उपस्तुता अश्विना इह अन्ति गर्मिष्ठा; अवर्तिं प्रति दिवा अभिपित्वे अवसा आगमिष्ठा, दाशुषे शंभविष्ठा ॥२॥

२८८ अर्थ— (संस्कृतं न प्र मिमीतः) जो संस्कार करके सिद्ध किया है उसे वे दोनों नष्ट नहीं करते हैं, (नूनं उपस्तुता) अवश्वही प्रशंसित होनेपर अश्विदेव (इह अन्ति गर्मिष्ठा) इधर समीप आनेमें तैयार रहते हैं, (अवर्तिं प्रति) दशमिताके समीप उसे हटानेके लिए (दिवा अभिपित्वे) दिनके प्रारंभमें (अवसा आगमिष्ठा) संरक्षणके साथ आनेवाले और (दाशुषे शंभविष्ठा) दामी पुरुषको अत्यन्त सुख देनेवाले हैं ।

२८८ मानवधर्म— जो सुसंस्कृत है उसका नाश न करो, दशमिताको करो, सबकी सुरक्षा करो, दाताको सुख दो ।

[२८९]

२८९ उता पातं संगवे प्रातरहो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
 दिवा नक्तमवसा श्रतमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान ॥३॥
 २८९ उत । आ । यातम् । स्मऽगवे । प्रातः । अहः ।
 मध्यंदिने । उत्ऽहता । सूर्यस्य ॥
 दिवा । नक्तम् । अवसा । शम्ऽर्भमेन ।
 न । इदानीम् । पीतिः । अश्विना । आ । ततान ॥३॥

२८९ अन्वयः— उत संगवे अहः प्रातः मध्यंदिने, सूर्यस्य उदिता, दिवा नक्तं श्रतमेन अवसा आ पातं, इदानीं पीतिः न अश्विना आ ततान ॥३॥

२८९ अर्थ— (उत) और (संगवे अहः) दिनके उस समय जब कि सूर्य एकही होती है, (प्रातः) सुबह, (मध्यंदिने) धूपहरके समय, (सूर्यस्य उदिता) सूर्यके उदय होनेपर (दिवा नक्तं) दिन और रात (श्रतमेन अवसा) सुरुदायक संरक्षणके साथ (आ पातं) इधर पधारो, (इदानीं) अबही (पीतिः) यह रहस्यवान (अश्विना) अश्विदेवोंके साथ (आ ततान न) हो रहा है ऐसा नहीं है ।

[२९०]

२९० इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक्त इमे गृहा अश्विनेदं
दुरोणम् । आ नो दिवो बृहत्तः पर्वतादाऽद्भ्यो
यातमिपमूर्जं वहन्ता ॥४॥

२९० इदम् । हि । वाम् । प्रदिवि । स्थानम् । ओक्तः ।
इमे । गृहाः । अश्विना । इदम् । दुरोणम् ॥
आ । नः । दिवः । बृहत्तः । पर्वतात् । आ ।
अद्भ्यः । यातम् । इपम् । ऊर्जम् । वहन्ता ॥४॥

२९० अन्वयः— अश्विना ! इदं ओक्तः वां हि प्रदिवि स्थानं, इमे गृहाः,
इदं दुरोणं; दिवः बृहत्तः पर्वतात् अद्भ्यः इपं ऊर्जं वहन्ता नः आ यातम् ॥४॥

२९० अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इदं ओक्तः) यह वसतिगृह
(वां हि) तुम दोनोंके लिएही (प्रदिवि स्थानं) उत्कृष्ट जगह है, इसी प्रकार
(इमे गृहाः) ये घर (इदं दुरोणं) यह गकाम भी तुम्हारे लिएही हैं; (दिवः)
सुलोकसे, (बृहत्तः पर्वतात्) बड़े भारी पहाडसे (अद्भ्यः) जलोंसे
(इपं ऊर्जं वहन्ता) भक्त और बल ले जाते हुए (नः आयातं) हमारे
समीप आओ ।

[२९१]

२९१ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयि बृहत्तमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि
॥५॥

२९१ सम् । अश्विनोः । अवसा । नूतनेन ।
मयःऽभुवा । सुप्रणीती । गमेम ॥
आ । नः । रयिम् । बृहत्तम् । आ । त्वत् । वीरान् ।
आ । विश्वानि । अमृता । सौभगानि ॥५॥

२९१ अन्वयः— अश्विनोः नूतनेन मयोभुवा अवसा सुप्रणीती सं गमेम; नः
रयि आ बृहत्तं त्वत् वीरान् विश्वानि सौभगानि अमृता ॥ ५ ॥

१९१ अर्थ— (अश्विनोः नूतनेन) अश्विदेवोंके नये (मयोभुवा सवमा) सुखकारक संरक्षणसे, (सुप्रणीती) सुन्दर नेतृत्वसे (सं गमेम) हम भकी प्रकार जीवन बितायें; (नः रयिं आ वहतं) हमें जन के आओ, (उत) और वैसेही (वीरान्) वीरोंको तथा (विश्वानि सौभगाणि भवता) सभी सौभाग्य हमें देदो ।

[१९१] (ऋ० पा० ७।१-५)

२९२ प्रातर्यजिषा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुपः पिबातः ।
प्रातर्हि यज्ञमश्विना दुधाते प्र शंसन्ति कुवयः पूर्वभाजः
॥१॥

२९२ प्रातः।ऽयावाना । प्रथमा । यजध्वम् ।
पुरा । गृध्रात् । अररुपः । पिबातः ॥
प्रातः । हि । यज्ञम् । अश्विना । दुधाते इति ।
प्र । शंसन्ति । कुवयः । पूर्वभाजः ॥१॥

१९२ अन्वयः— प्रातः—यावाना प्रथमा यजध्वं, अररुपः गृध्रात् पुरा पिबातः, अश्विना प्रातः हि यज्ञं दुधाते पूर्वभाजः कुवयः प्र शंसन्ति ॥ १ ॥

१९२ अर्थ— (प्रातः—यावाना प्रथमा) सुबह मयले प्रथम आनेवाले अश्विदेवोंकी (यजध्वं) पूजा करो, (अररुपः गृध्रात्) अदानी तथा आतिलोभीसे (पुरा पिबातः) पहलेही ये सोमको पीते हैं, क्योंकि अश्विदेव (प्रातः हि) सुबहही (यज्ञं दुधाते) यज्ञके पास आते हैं और (पूर्वभाजः कुवयः) पूर्वकाकीन विद्वान् उनकी (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं ।

[१९३]

२९३ प्रातर्यजध्वमश्विनां हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम् ।
उतान्यो असद यजते वि चावः पूर्वंःपूर्वो यजमानो
वनीयान् ॥२॥

२९३ प्रातः । यजध्वम् । अश्विना । दिनोत्त ।
 न । सायम् । अस्ति । देवऽयाः । अजुष्टम् ॥
 उत । अन्वः । असात् । यजते । वि । च । आसः ।
 पूर्वःऽपूर्वः । यजमानः । वनीयान् ॥२॥

२९३ अन्वयः— अश्विना प्रातः यजध्वं, दिनोत्त, सायं अजुष्टं, देवता न भस्ति, उत अस्मत् अन्वः यजते वि भावः च, पूर्वः-पूर्वः यजमानः वनीयान् ॥ २ ॥

. २९३ अर्थ— अश्विदेवोंके लिए (प्रातः यजध्वं) सुबह यजन करो, (दिनोत्त) प्रेरणा करो, (सायं अजुष्टं) कामको वह भस्मणीय बनता है और (देव याः न भस्ति) देवोंके समीप जानेवाला नहीं रहता, (उत) और (अस्मत् अन्वः) हमसे पूर्व दूसरा कोई (यजते) यजन करता है तो (वि भावः च) उनकी विशेष तृप्ति करता है, क्योंकि (पूर्वः-पूर्वः यजमानः) पहले पहले जो यजन करनेवाला होता है, वही (वनीयान्) देवोंके लिए सादरणीय बनता है ।

२९३ मानवधर्म— प्रातःकाल उठो और देवोंकी पूजा करो । अपने पूर्व दूसरा कोई न उठे और वह हमसे पूर्व पूजा न करे । जो प्रथम पूजा करता है, उसपर देव प्रसन्न होते हैं ।

प्रभातमें उठनेका यह आदेश मगनीय है ।

[२९४]

२९४ हिरण्यस्त्वक्ष्मर्षुवर्णो घृतस्तुः पृक्षो वहन्मा रथो वर्तते
 वाम् । मनोजवा अश्विना वार्तरंहा येनावियाथो
 दुरितानि विम्या ॥३॥

२९४ हिरण्यस्त्वक् । मर्षुऽवर्णः । घृतस्तुः ।
 पृक्षः । वहन् । आ । रथः । वर्तते । वाम् ॥
 मनःऽजवाः । अश्विना । वार्तरंहाः ।
 येन । अविऽयायः । दुःऽदुतानि । विम्या ॥३॥

२९४ अन्ययः—वां हिरण्य-रत्नक् मधुवर्णः घृतस्तुः रघः पूषः वहन् भा वर्तते; मनो-जयाः वात-रंहाः हे अग्निता येन विद्या दुरिता भति याधः ॥ ३ ॥

२९४ अर्थ— (वां हिरण्य-रत्नक्) तुम दोनोंका सुवर्णसे ढका हुआ (मधुवर्णः) मनोहर रंगवाला (घृत-स्तुः रघः) घृत टपकाता हुआ रघ (पूषः वहन्) भक्त होता हुआ, (भा वर्तते) हमारे सामने आता है, (मनो-जयाः) वह मनके तुल्य वेगवान् (वात-रंहाः) वायुके समान तेज दौड़नेवाला है, हे अग्निदेवो ! (येन) जिस रथसे (विद्या दुरिता) सभी बुराईयोंको (भति याधः) पार करके चके जाते हो ।

२९४ मान्यधर्म— रघ सुवर्ण जैसा तेजस्वी और अत्यंत वेगवान् हो । इसमें रत्नकर भी तथा भक्त जाया जाय और उनसे सब दुःखदायक पाप दूर दिव्य जाय ॥

[२९५]

२९५ यो भूर्यिष्ठं नासत्वाभ्यां विवेप चनिष्ठं पित्वो ररंते
विभागे । स तोकर्मस्य पीपरच्छमींभिरनूर्ध्वभासः
सद्रमित् तुतुर्यात् ॥४॥

२९५ यः । भूर्यिष्ठम् । नासत्वाभ्याम् । विवेप ।
चनिष्ठम् । पित्वः । ररंते । विऽभागे ॥
सः । तोकम् । अस्य । पीपरत् । शमीभिः ।
अनूर्ध्वभासः । सद्रम् । इत् । तुतुर्यात् ॥४॥

२९५ अन्ययः— यः विभागे नामत्या-यो भूर्यिष्ठं चनिष्ठं विवेप विवः ररंते
सः अस्य तोकं शमीभिः पीपरत् सद्रमित् अनूर्ध्वभासः तुतुर्यात् ॥४॥

२९५ अर्थ— (यः) जो (विभागे) विभाग करनेके मौकेपर (नास-
त्वाभ्यां) अग्निदेवोंको (भूर्यिष्ठं चनिष्ठं विवेप) आत्यन्त अधिक मात्रामें
भक्त परोसता है और (पित्वः ररंते) भक्तका दान करता है, (यः अस्य तोकं)
यह अपने पुत्रका (शमीभिः पीपरत्) तुम कमोंसे पाकन करता रहता, और
(सद्रमित्) इच्छा (अनूर्ध्व-भासः) बहुत कम तेजवालोंको (तुतुर्यात्)
हिमित होता ।

[२९६]

२९६ समश्चिनोर्वसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
 आ नो रयि वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि
 ॥५॥

२९६ सम् । अश्चिनोः । अवसा । नूतनेन ।
 मयःऽभुवा । सुऽप्रणीती । गमेम ॥
 आ । नः । रयिम् । वहतम् । आ । उत । वीरान् ।
 आ । विश्वानि । अमृता । सौभगानि ॥५॥

२९६ [इस मंत्रको २९१ पर देखो]

[२९७] (म. ५।७।८।१—९)

(२९७—३०५) मत्स्यधिराश्रेयः । (५—९ गर्भं द्याविष्णुपतिषत्) । भनुष्टुप्,
 १—३ उज्जिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

२९७ अश्चिनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
 हंसार्विष पततमा सुता उर्ष ॥१॥
 २९७ अश्चिनौ । आ । इह । गच्छतम् ।
 नासत्या । मा । वि । वेनतम् ॥
 हंसीऽहं । पततम् । आ । सुतान् । उर्ष ॥१॥

२९७ अन्वयः— नासत्या अश्चिनाः । इह आ गच्छतं, मा वि वेनतं, सुतान्
 उर्ष हंसी इव आ पततम् ॥१॥

२९७ अर्थ— हे अश्विदेवो । (इह आ गच्छतं) इधर आओ, (मा वि
 वेनत) डरास न बनो (सुतान् उर्ष) निचोडे हुए सोमरसोंके समीप (हंसी
 इव आ पततं) हंसके लक्ष्य वेगपूर्वक आ जाओ ।

[२९८]

२९८ अश्चिना हरिणार्विष गौराविवान् यवसम् ।
 हंसार्विष पततमा सुता उर्ष ॥२॥

२९८ अश्विना । हरिणीऽइव ।

गौरौऽइव । अनु । यवसम् ॥

हंसौऽइव । पतत्म् । आ । सुतान् । उप ॥२॥

२९८ अन्वयः— अश्विना ! यवसं अनु हरिणी इव गौरौ इव, सुतान् उप हंसौ इव भा पतत्म् ॥२॥

२९८ अर्थ— हे अश्विदेवो । (यवसं अनु) मृणके पीछे (हरिणी इव) हिरनोंकी नाहं (गौरौ इव) गौरमृगके समान (सुतान् उप) निचोटे हुए सोमोंके पास (हंसौ इव भा पतत्) हंसोंके समान जल्द भा गिरो ।

[२९९]

२९९ अश्विना वाजिनीवस जुपेथां यज्ञसिष्टये ।

हंसाधिव पतत्मा सुता उप ॥३॥

२९९ अश्विना । वाजिनीवसु इति वाजिनीऽवसु ।

जुपेथाम् । यज्ञम् । इष्टये ॥

हंसौऽइव । पतत्म् । आ । सुतान् । उप ॥३॥

२९९ अन्वयः— वाजिनी-वसु अश्विना । इष्टये यज्ञं जुपेथां, हंसौ इव सुतान् उप भा पतत्म् ॥३॥

२९९ अर्थ— हे (वाजिनी-वसु) सेनाकी भसादेवाके अश्विदेवो । (इष्टये) इष्टिके लिए (यज्ञं जुपेथां) यजन करो, और हंसोंके समान निचोटे हुए सोमोंके पास भा जाओ ।

[३००]

३०० अत्रिर्यद् वामवरोहं भूमीसमजोहवीनार्धमानेव योषा ।

इयेनस्य चिज्वसा नूर्तनेनाऽऽगच्छतमश्विना दार्तमेन ॥४॥

३०० अत्रिः । यत् । वाम् । अवरोहन् । ऋषीसम् ।

अजोहवीत् । नार्धमानाऽइव । योषा ॥

इयेनस्य । चित् । ज्वसा । नूर्तनेन । आ ।

अगच्छतम् । अश्विना । दम् दार्तमेन ॥४॥

३०० अन्वयः— अभिना । यत् ऋषीसं अपरोहन् अग्निः नाधमाना
 बोधा इव सो अजोदधीत्, अतमेन इयेनस्य नूतनेन चित् जवसा
 आगच्छतम् ॥ ४ ॥

३०० अर्थ— हे अग्निदेवो ! (यत्) अब (ऋषीसं अपरोहन्) भँधरेसे पूर्ण
 जेलमें दतरते समय (अग्निः नाधमाना बोधा इव) अग्निने याचना करती हुई
 नारीके समान (सो अजोदधीत्) तुम दोनोंको सुलाया, तब (अतमेन)
 शान्तिदायक (इयेनस्य नूतनेन जवसा चित्) बाज पछीके मने बेगसेही
 (आगच्छतम्) तुम दोनों आगये ।

३०० भाषार्थ— अग्नि ऋषिवो जब कारागृहमें डाका गया, तब
 उसने स्त्रीके समान गगोभाषसे अग्निदेवोंकी प्रार्थना की । अग्निदेव शीघ्र आये
 और जल्दहीने अग्नि ऋषिवी मढ़ायना की ।

[३०१]

३०१ वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूर्यन्त्या इव ।

श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

३०१ वि । जिहीष्व । वनस्पते ।

योनिः । सूर्यन्त्याऽइव ॥

श्रुतम् । मे । अश्विना । हवम् ।

सप्तवध्रिम् । च । मुञ्चतम् ॥ ५ ॥

३०१ अन्वयः— वनस्पते ! सूर्यन्त्या योनि इव वि जिहीष्व, अश्विना !
 मे हव श्रुत सप्तवध्रिं मुञ्चत च ॥ ५ ॥

३०१ अर्थ— हे वनके अभिपति वेद ! (सूर्यन्त्याः योनिः इव)
 प्रसयोग्मुख नारीकी योनिके समान (वि जिहीष्व) सुखा रह । हे अग्निदेवो !
 (मे हव श्रुत) मेरी पृथगर सुख करो, (सप्तवध्रिं मुञ्चत च) और सप्तवध्रिकी
 मुक्त करो ।

[३०२]

३०२ भीताय नार्धमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।

मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि वाचयः ॥ ६ ॥

३०२ भीतार्य । नार्धमानाय ।

ऋणये । सप्तद्वयये ॥

मायाभिः । अश्विना । युगम् ।

वृक्षम् । सम् । च । वि । च । अचयः ॥६॥

३०२ अन्ययः— अश्विना । ऋणये सप्तद्वयये भीतार्य नार्धमानाय मायाभिः युगं वृक्षं सं च वि च अचयः ॥ ६ ॥

३०२ अर्थ— हे अश्विदेवो ! ऋण सप्तद्विको जोकि (भीतार्य नार्धमानाय) भयभीत हो (सहायतार्थ) प्रार्थना कर रहा था, (मायाभिः) अपनी शक्तियोंसे (युगं) तुम दोनोंने (वृक्षं) पेड़को (सं च वि च) (अचयः) विहीन कर दिया ।

[३०३]

३०३ यथा वातः पुष्करिणीं समिद्भयति सर्वतः ।

एवा ते गर्भं एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥

३०३ यथा । वातः । पुष्करिणीम् ।

समिद्भयति । सर्वतः ॥

एव । ते । गर्भः । एजतु ।

निरैतु । दशमास्यः ॥७॥

३०३ अन्ययः— पुष्करिणीं यथा वातः सर्वतः ॥ इजयति, एव ते गर्भः दशमास्यः एजतु निरैतु ॥ ७ ॥

३०३ अर्थ— (पुष्करिणीं) तालाबको (यथा वातः) जैसे वायु (सर्वतः सं इजयति) सभी ओरसे ठीक तरह दिलाता है, (एव) वैसीही (ते गर्भः) तैसा गर्भ (दशमास्यः) दस महिनेका होकर (एजतु) इजयत करण शुरू करे ओर (निरैतु) बाहर निकल आये ।

[३०४]

३०४ यथा नातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।

एवा त्वं दशमास्य सहवैहि जरायुणा ॥८॥

३०४ यथा । वार्ताः । यथा । वनम् ।
 यथा । समुद्रः । एजति ॥
 एव । त्वम् । दशऽमास्य ।
 सह । अवं । इहि । जरायुणा ॥८॥

३०४ अन्वयः— यथा वातः यथा वनं, समुद्रः यथा एजति दशमास्य ।
 एव एवं जरायुणा सह भव इहि ॥ ८ ॥

३०४ अर्थ— (यथा वातः) जैसे पवन हिलती है, (यथा वनं) जैसे
 लंगूर हिलता झुलता है, (समुद्रः यथा एजति) समुन्द्र जैसे घलाघमान
 होता है, हे (दशमास्य) दस महिनोके बने हुए गर्भ । (एव एवं) उसी
 प्रकार तू (जरायुणा सह) वेष्टनके साथ (भव इहि) नीचे गिर जा ।

[३०५]

३०५ दश मासाञ्छशयानः कुमारो अग्निं मातरि ।
 निरैतुं जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अग्निं ॥९॥

३०५ दश । मासान् । शशयानः ।
 कुमारः । अग्निं । मातरि ॥
 निःऽपेतुं । जीवः । अक्षतः ।
 जीवः । जीवन्त्याः । अग्निं ॥९॥

३०५ अन्वयः— कुमारः दश मासान् मातरि अग्निं शयान , अक्षतः जीवः
 निः पेतु, जीवन्त्याः अग्निं जीवः ॥ ९ ॥

३०५ अर्थ— (कुमारः) बालक (दश मासान्) दस महिनोत्तक (मातरि
 अग्निं शयानः) मातामें सोता हुआ (अक्षतः जीवः) बिना किसी क्षति या
 ब्यथाके जीवित दुनामें (निः पेतु) बहार निकल जाये (जीवन्त्याः अग्निं
 जीवः) माताके जीवित रहते वह जीव निकल जाये ।

३०५ भाष्यार्थ— ये तीन भेद सुख प्रसूतिके हैं । गर्भ दश महिनोत्तक
 माताके गर्भाशयमें रहे और दसमें महिनेमें सुखसे प्रसूति हो । अग्निदेव वैश
 हैं वे इस सुखप्रसूतिके कर्ममें प्रवीण हैं ।

[३०६] (ऋ० ६।६२।१-११)

(३०६-३२७) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

३०६ स्तुपे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताऽश्विना हुवे जरमाणो अर्केः ।
या सद्य उस्ता व्युपि जमो अन्तान्पुयूपतः पर्युरु वरांसि १

३०६ स्तुपे । नरा । दिवः । अस्य । प्रऽसन्ता ।
अश्विना । हुवे । जरमाणः । अर्केः ॥
पा । सद्यः । उस्ता । विऽउपि । जमः । अन्तान् ।
पुयूपतः । परि । उरु । वरांसि ॥१॥

३०६ अन्वयः— दिवः नराः अस्य प्रसन्ता अश्विना अर्केः जरमाणः हुवे स्तुपे; सद्यः उस्ता या व्युपि जमः अन्तान् उरु वरांसि परि पुयूपतः ॥१॥

३०६ अर्थ— (दिवः नरा) सुखोक्ते नेतावीरो । (अस्य प्रसन्ता अश्विना) इस दृश्यमान जगत्के प्रभु होते हुए अश्विदेवोंको (अर्केः जरमाणः) अर्चनीय मंत्रोंसे प्रशंसित करता हुआ मैं (स्तुपे) स्तुति करता हूँ, (सद्यः उस्ता या) तुम्हा सन्तुष्टोंको इतनेवाले मे दोनों देव (व्युपि) उपःकारमें (जमः अन्तान्) पृथ्वीके अन्ततक (उरु वरांसि) विशाल भँधरेको (परि पुयूपतः) दया देते हैं ॥

[३०७]

३०७ ता यज्ञमा शुचिमिधक्रमाणा रथस्य भानुं रुतुचू रजोमिः ।
पुरु वरांस्यमिता मिमानाऽपो घन्वान्यति याथो अजान् २

३०७ ता । यज्ञम् । आ । शुचिऽमिः । चक्रमाणा ।
रथस्य । भानुम् । रुतुचूः । रजऽमिः ॥
पुरु । वरांसि । अमिता । मिमाना ।
अपः । घन्वानि । अति । याथः । अजान् ॥२॥

अश्विनो दे० ३१

३०७ अन्वयः— यज्ञं शुचिभिः ता आ चक्रमाणा, रजोभिः रथस्य भातुं रुह्युः, अमिता पुरु वरांसि मिमाना धन्वानि जति अत्रान् अपः पाथः ॥२॥

३०७ अर्थ— (यज्ञं शुचिभिः) यज्ञके प्रति निर्मल तेजोंके साथ भाते हुए (ता) अधिदेव (आ चक्रमाणा) भाते समय (रजोभिः) तेजोंसे (रथस्य भातुं) रथकी दोस्तिको (रुह्युः) उद्दीप्त करते हैं, (अमिता पुरु) अलंकृत बहुसंख्य (वरांसि मिमाना) तेजोंको उत्पन्न करते हुए (धन्वानि जति) मरु-प्रदेशोंको पारकर (अत्रान् अपः पाथः) योद्धोंको जलोंके समीप ले चलते हैं ॥

३०७ मानवधर्म— रथका प्रवास होनेपर योद्धोंको समयपर जल देना चाहिये ।

[३०८]

३०८ ता ह त्वद् वर्तिर्यदरंभ्रमुग्रेत्था धियं ऊह्युः शश्वदश्वैः ।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्वे परि व्यथिर्दाशुपो मर्त्यस्य ॥३॥

३०८ ता । ह । त्वत् । वर्तिः । यन् । अरंभ्रम् । उग्रा ।
इत्था । धियः । ऊह्युः । शश्वत् । अश्वैः ॥
मनःऽजवेभिः । इषिरैः । शयध्वे ।
परि । व्यथिः । दाशुपः । मर्त्यस्य ॥३॥

३०८ अन्वयः— उग्रा ता ह यत् अरंभ्रं त्वत् वर्तिः इत्था मनोजवेभिः इषिरैः अश्वैः शश्वत् धियः ऊह्युः दाशुपः मर्त्यस्य व्यथिः परि शयध्वे ॥३॥

३०८ अर्थ— (उग्रा ता ह) उग्र रूपवाले वे दोनोंही धीर (यत् अरंभ्रं) दूरिगतासे युक्त भक्तके (त्वत् वर्तिः) घरके प्रति (इत्था) इस वंशसे (मनोजवेभिः) मनके तुल्य योगवान् (इषिरैः अश्वैः) इसारेसेही चलनेवाले घोड़ोंसे (शश्वत्) हमेशा (धियः ऊह्युः) कर्मोंको चलानेके लिये जातें हैं, और (दाशुपः मर्त्यस्य व्यथिः) दानी मानवको कष्ट पहुँचानेवालेको (परि शयध्वे) लंबी निद्रामें सुलाते हैं ॥

३०८ मानवधर्म— सत्कर्म करनेवाला गरीब भी हुआ तो भी उसको सहायता पहुँचाकर उसके यज्ञकर्मको सफल बनाना चाहिये और जो राजनोंको पीडा देते हैं उनको रोकना चाहिये ।

[३०९]

३०९ ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोषं भूपतो युयुजानससी ।
शुभं पृक्षमिपमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रतो अधुग्युवाना ॥४॥

३०९ ता । नव्यसः । जरमाणस्य । मन्म ।
उप । भूपतः । युयुजानससी इति युयुजानऽससी ॥
शुभम् । पृक्षम् । इपम् । ऊर्जम् । वहन्ता ।
होता । यक्षत् । प्रतनः । अधुक् । युवाना ॥४॥

३०९ अन्वयः— शुभं पृक्षं इपं ऊर्जं वहन्ता युयुजान-ससी ता मन्मसः
जरमाणस्य मन्म उप भूपतः; अधुक् प्रतनः होता युवाना यक्षत् ॥४॥

३०९ अर्थ— (शुभं पृक्षं) सुन्दर अन्न, (इपं ऊर्जं वहन्ता) पुष्टि तथा
बल दूसरोको पहुँचानेके लिए होते हुए (युयुजानससी ता) घोड़ोंको जोतने-
वाले वे दोनों (नव्यसः) लघे (जरमाणस्य मन्म) स्तोत्राके मन्त्रीय
स्तोत्रके (उप भूपतः) समीप जाकर उसकी शोभा पढ़ाते हैं, (अधुक् प्रतनः
होता) मोह न करनेवाला पुराना हवनकर्ता (युवाना) युवक भविष्यदेवोंकी
(यक्षत्) पूजा करता है ॥

३०९ मानचधर्म— शुष्टि, बल और आरोग्य बढ़ानेवाला अन्न प्राप्त करो ।
मोह न करो ।

[३१०]

३१० ता वल्गू दुस्ता पुरुशार्कतमा प्रत्ता नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवर्तुर्गुणते चित्रराती ॥५॥

३१० ता । वल्गू इति । दुस्ता । पुरुशार्कऽतमा ।
प्रत्ता । नव्यसा । वचसा । आ । विवासे ॥
या । शंसते । स्तुवते । शम्भविष्ठा ।
बभूवर्तुः । गुणते । चित्रराती इति चित्रराती ॥५॥

३१० अन्वयः— शंसते स्तुवते या शम्भविष्ठा गृणते चित्रराती प्रभुवतुः;
ता वल्गु वृद्धा पुरुषाकृतमा प्रत्ना नवयसा वचसा भा विवासे ॥५॥

३१० अर्थ— (शंसते) दूसरोंके सामने विस्तारसे वर्णन करनेवालेको (स्तुवते) स्तुति करनेवालेको (या) जो दो भविदेव (शम्भविष्ठा) अत्यन्त सुख देनेवाले और (गृणते चित्रराती प्रभुवतुः) स्तुति करनेवालेको अद्भुत दान देनेवाले हो चुके, (ता) उन दोनों (वल्गु) सुन्दर (वृद्धा) शत्रु-विनाशकर्ता (पुरुषाकृतमा) बहुत कार्य करनेकी शक्ति रखनेवाले (प्रत्ना) पुरातन भविदेवोंको (नवयसा वचसा) नये स्तोत्रसे (भा विवासे) पूर्णतया सम्पुष्ट करता हूँ ॥

[३११]

३११ ता भुज्युं विभिरुद्ग्रथः समुद्रात्तुग्रस्य सनुमूहथु रजोभिः ।

अरेणुभिर्योजनेभिर्भुजन्ता पतत्रिभिरर्णसो निरुपस्थात् ॥६॥

३११ ता । भुज्युम् । विडभिः । अत्तुग्रस्यः । समुद्रात् ।

तुग्रस्य । सनुम् । ऊहथुः । रजःडभिः ॥

अरेणुडभिः । योजनेभिः । भुजन्ता ।

पतत्रिडभिः । अर्णसः । निः । उपडस्थात् ॥६॥

३११ अन्वयः— तुग्रस्य सनुं भुज्युं भुजन्ता ता समुद्रस्य अर्णसः भज्यः
उपस्थात् अरेणुभिः रजोभिः योजनेभिः पतत्रिभिः विभिः निः ऊहथुः ॥६॥

३११ अर्थ— (तुग्रस्य पुत्रं भुज्युं) तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको (भुजन्ता ता) सुरक्षित रखनेवाले वे दोनों (समुद्रस्य अर्णसः) समुन्द्रके विषाक चमकीके (भद्रस्यः उपस्थात्) जलसमूहके समीपसे (अरेणुभिः रजोभिः) धूलिरहित लोकोसे (योजनेभिः) योजनाओंसे (पतत्रिभिः विभिः) ढङ्गे-पाके भतः पंछीतुल्य यानोंसे (निः ऊहथुः) पूर्णतया ले चले ॥

३११ भावार्थ— तुग्रपुत्र भुज्युको भविदेवोंने ऊपर उड़ाया और अपने विमानमें रखकर उसको सुरक्षित स्थानपर पहुँचाया ।

[३१२]

१३२ वि ज्युषा रथ्या यातमार्द्रि श्रुतं हवै वृषणा वध्रिमृत्याः ।

दृशस्पन्ता श्रयवै पिप्पयुर्गामिति च्यवाना सुमतिं

भूरण्य ॥७॥

३१२ वि । ज॒युषा । र॒थ्या । या॒तम् । अ॒ग्निम् ।
 श्रु॒तम् । ह॒वम् । वृ॒षणा । व॒ग्निऽम॒त्याः ॥
 द॒श॒स्यन्ता । श॒यवे । पि॒प्यथुः । गाम् ।
 इति । च॒यवा॒ना । सु॒ऽम॒तिम् । भुर॒ण्यु इति ॥७॥

३१२ अन्वयः— वृषणा रथ्या ! जयुषा अग्निं वि यातं, वग्निमत्याः हव श्रुतं,
 दशस्यन्ता शयने गां पिप्यथुः इति सुमतिं चयवानां भुरण्यु ॥७॥

३१२ अर्थ— हे (वृषणा ! रथ्या) बलवान् और रथपर चढ़नेवाले अग्नि-
 देवों ! (जयुषा) विजयी रथपरसे (अग्निं वि यातं) पहाड़को छाँपकर जाओ,
 (वग्निमत्याः हव) वग्निमतीकी पुकारको (श्रुतं) सुन लो, (दशस्यन्ता)
 दश देते हुए तुम दोनोंने (शयवे गां पिप्यथुः) शयुके लिए गायको दुधारू
 बनाया, (इति) इस ढंगकी (सुमतिं चयवानां) उत्तम बुद्धि रखनेवाले तुम
 दोनों सबके (भुरण्यु) भरणकर्ता हो ॥

३१२ भावार्थ— अग्निदेव बलिष्ठ और रथपर चढ़नेवाले हैं। विजयी
 रथपरसे वे पर्वतको भी छाँपते हैं, वग्निमतीकी प्रार्थना सुनते हैं, दान देते हैं,
 शयुके लिये गौको दुधारू बनाते हैं और उत्तम मंत्रणा देते हैं।

[३१३]

३१३ यद्रो॒दसी प्र॒दि॒वो अ॒स्ति भू॒मा हेळो॑ दे॒वाना॑मु॒त म॒र्त्यत्रा॑ ।
 तदा॑दि॒त्या वस॒वो रु॒द्रिया॒सो र॒क्षोयु॒जे त॒र्पु॒र्यं द॒द्यात् ॥८॥
 ३१३ यत् । रो॒दसी इति॑ । प्र॒ऽदि॒वः । अ॒स्ति । भू॒म् ।
 हे॒ळः । दे॒वाना॑म् । उ॒त । म॒र्त्यऽत्रा॑ ॥
 तत् । आ॒दि॒त्याः । व॒सवः॑ । रु॒द्रिया॒सः ।
 र॒क्षःऽयु॒जे । त॒र्पुः । अ॒मम् । द॒द्यात् ॥८॥

३१३ अन्वयः— यत् देवानां उत मर्त्यत्रा प्रदिवः भूम हेळः अस्ति तत् तपुः
 अमं, आदित्याः ! वसवः ! रुद्रियासः ! रोदसी ! रक्षो युजे दद्यात् ॥८॥

३१३ अर्थ— (यत्) जो (देवानां उत मर्त्यत्रा) देवोंका या मानवोंमें
 विद्यमान (प्रदिवः भूम) अत्यन्त तेजस्वी तथा बड़ा आरौ (हेळः अस्ति)

३१६ भावार्थ— घरके पास गौओंके खुरद बाड़े हों, उनमें बहुत गौवें रहें । ऐसे घरोंके पास धीर खाजाय और उनके दूध पीनेके लिये उन बाड़ोंके द्वार खोले जाय ।

[३१७] (क. ६।६३।१—११)

त्रिष्टुप्, १ विशाट्, ११ एकपदा त्रिष्टुप् ।

३१७ क॒त्या व॒ल्गू पु॒रुहु॒ताद्य दू॒तो न स्तोमो॑ऽविदु॒न्नम॑स्वान् ।
आ यो अ॒र्वाङ्नास॑त्या व॒वर्त॑ प्रे॒ष्टा ह्यस॑थो अस्य
मन्मन् ॥१॥

३१७ क॒ । त्या । व॒ल्गू इति॑ । पु॒रुऽहु॒ता । अ॒द्य ।
दू॒तः । न । स्तोमः॑ । अ॒विदु॒त् । नम॑स्वान् ॥
आ । यः । अ॒र्वाक् । नास॑त्या । व॒वर्त॑ ।
प्रे॒ष्टा । हि । अस॑थः । अ॒स्य । मन्मन् ॥१॥

३१७ सन्धयः— त्या पुरुहुता वल्गू कव ? अद्य नमस्वान् स्तोमः दूतः न अविदत्, यः नासत्या अर्वाक् आ ववर्त, अस्य मन्मन् प्रेष्टा हि असथः ॥ १ ॥

३१७ अर्थ— (त्या पुरुहुता) वे दोनों बहुतों द्वारा बुकाये हुए (वल्गू कव) सुन्दर अधिदेव कहाँ हैं ? (अद्य) आजके दिन (नमस्वान् स्तोमः) नमनसे पुष्ट स्तोत्र (दूतः न) दूतके समान (अविदत्) उन्हें प्राप्त होगया, (यः) जो (नासत्या) अधिदेवोंको (अर्वाक् आ ववर्त) हमारे सम्मुख आकर्षित कर चुका है, (अस्य मन्मन्) इसके मनवीर्य काव्यमें तुम दोनों (प्रेष्टा हि असथः) अत्यन्त समान हो जाओ ॥

[३१८]

३१८ अरै मे गन्तुं हवेनायास्मै गृणाना यथा पिवायो
अन्यः । परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रियो न यत् परो
नान्तरस्तुत्यात् ॥२॥

३१८ अरम् । मे । गन्तम् । हर्षनाय । अस्मै ।

गुणाना । यथा । पिबाथः । अन्धः ॥

परि । ह । त्यत् । वृत्तिः । याथः । रिपः ।

न । यत् । परः । न । अन्तरः । तुतुर्यात् ॥२॥

३१८ व्युत्पत्त्यः— अस्मै मे हर्षनाय अरं गन्तं, यथा गुणाना अन्धः पिबाथः, त्यत् वृत्तिः ॥ रिपः परि याथः यत् न परः न अन्तरः तुतुर्यात् ॥२॥

३१८ अर्थ— (अस्मै मे) इस मेरे (हर्षनाय अरं गन्तं) तुलानेपर तुम दोनों ठीक तरह भाओ, (यथा गुणाना) जैसे जैसे हम तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, वैसे (अन्धः पिबाथः) सोमरसको पीते रहो; (त्यत् वृत्तिः ॥) उस घरकी अवश्यही (रिपः परि याथः) हिंसक शत्रुसे घृणाते रहो (यत्) जिस घरको (न परा) न दूसरा (न अन्तरः) न समीपका शत्रु (तुतुर्यात्) हिंसित करे ॥

३१८ भावार्थ— वीर हमारे घरपर भाजीय, शत्रुसे उस घरकी सुरक्षा करें, और प्रशंसित होकर सोमरस पीयें और जानन्द प्रसक्त रहें ।

[३१९]

३१९ अकारि वामन्धसो वरीमृक्षस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।

उत्तानहस्तो युवयुर्व्वन्दो वां नक्षन्तो अद्रय आजन् ॥३॥

३१९ अकारि । वाम् । अन्धसः । वरीमन् ।

अस्तारि । बर्हिः । सुप्रऽअयनतमम् ॥

उत्तानऽहस्तः । युवऽयुः । व्वन्दुः ।

आ । वाम् । नक्षन्तः । अद्रयः । आजन् ॥३॥

३१९ अन्वयः— वां अन्धसः वरीमन् अकारि, सुप्रायणतमं बर्हिः अस्तारि, युवयुः उत्तानहस्तः आ व्वन्दु, अद्रयः वां नक्षन्तः आजन् ॥ ३ ॥

३१९ अर्थ— (वां) तुम दोनोंके लिए (अन्धसः वरीमन् अकारि) सोमको निचोड़ रक्षना अत्युत्कृष्ट स्थानमें किया गया है, (सुप्रायणतमं बर्हिः) अत्यन्त कोमल कुशासन तुम्हारे किये (अस्तारि) फैलाकर रखा है; (युवयुः उत्तानहस्तः) तुम दोनोंको चाइनेवाला हाथ ऊपर उठाकर (आ व्वन्दु) नमन कर रहा है, (अद्रयः) घरपर (वां नक्षन्तः) तुम दोनोंको रसपान करानेकी इच्छा करते हुए (आजन्) सोमरसको निकाल चुके हैं । अर्थात् सोमवल्लीसे रस निकाल दिया है ॥

अभिधौ दे० ३९

क्रोध है (तत् तपुः मयं) वह तापक दुःख, हे अदितिके पुत्रो ! पशुभो !
रुद्रके पुत्रो ! तथा धावापृथिवी ! (रक्षो युजे) राक्षसोंके साथ रहनेवालेके लिए
(दधात) रख दो, अर्थात् हमें उससे कोई कष्ट न भिड़ ॥

३१३ भाषार्थ— दुष्टोंका नाश करनेके लियेही क्रोध करना योग्य है ।

[३१४]

३१४ य ई राजानायूतथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चित् वचसे आनवाय
॥९॥

३१४ यः । ईम् । राजानौ । ऋतुऽथा । विऽवधत् ।
रजसः । मित्रः । वरुणः । चिकेतत् ॥
गम्भीराय । रक्षसे । हेतिम् । अस्म्य ।
द्रोघाय । चित् । वचसे । आनवाय ॥९॥

३१४ अन्ययः— य. ई रजसः राजानौ ऋतुथा विदधत्, मित्रः वरुणः
चिकेतत्, अस्म्य हेति द्रोघाय आनवाय वचसे चित् गम्भीराय रक्षसे ॥९॥

३१४ अर्थ— (यः ई) जो इन (रजसः राजानौ) लोकोंके अधिपति
अग्निदेवोंकी (ऋतुथा विदधत्) समयानुसार सेवा करता है, उसके उस
पार्षको मित्र और वरुण (चिकेतत्) पदचामते हैं और वह (अस्म्य हेति)
इसके आयुषको (द्रोघाय आनवाय वचसे चित्) द्रोह करनेवाले मानवके
माताके छिद् और (गम्भीराय रक्षसे) प्रबल राक्षसके लिए भी उपयोगमें
लाता है ॥

३१४ भाषार्थ— इंश्वरके भक्तका द्रवियार विद्रोही दुष्ट मानवके भयना
राक्षसके नाशके लिये यत्न जाय ।

३१४ टिप्पणी—ऋतुथा = ऋतुके अनुकूल । हेतिः = द्रवियार । अन्ययः
(अनु. = प्राणी तस्य) = प्राणी, मानव, असंस्कृत मानव ।

[३१५]

३१५ अन्तरैष्यैस्तर्नयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन ।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि ग्रीर्षा
ववृक्तम् ॥१०॥

३१५ अन्तरैः । चक्रैः । तनयाय । वर्तिः ।

द्युऽमता । आ । यातम् । नृऽवता । रथेन ॥

सन्तुत्येन । त्यजसा । मर्त्यस्य ।

चनुष्यताम् । अपि । शीर्षा । ववृक्तम् ॥१०॥

३१५ अन्वयः— अन्तरैः चक्रैः द्युमता नृवता रथेन तनयाय वर्तिः आ यातं ; मर्त्यस्य चनुष्यतां शीर्षा सन्तुत्येन त्यजसा अपि ववृक्तम् ॥ १० ॥

३१५ अर्थ— (अन्तरैः चक्रैः) दूरतक जानेवाले पादियोंसे युक्त (द्युमता) प्रकाशमान (नृवता रथेन) मानवी वीरोंको के जानेवाले रथपरसे (तनयाय) संतानको सुख देनेके लिए (वर्तिः आ यातं) घर भागाभी (मर्त्यस्य चनुष्यतां) मानवोंको कष्ट देनेवालेको (शीर्षा) सर (सन्तुत्येन त्यजसा) तिरस्करणीय शोधपूर्णक (अपि ववृक्तं) अलग कर डालो ॥

३१५ भावार्थ— मानवोंको दुःख देनेवालेको बुर करो । घरका पालन करो ।

[३१६]

३१६ आ परमाभिः । मध्यमाभिर्नियुद्धिर्यातमवमाभिर्वाक् ।

द्वन्द्वस्य चिद् गोमते वि व्रजस्य दुरो वर्त गृणते

ती/ चित्रराश्री ॥११॥

३१६ आ । परमाभिः । उत । मध्यमाभिः ।

नियुद्धभिः । यातम् । अवमाभिः । अर्वाक् ॥

द्वन्द्वस्य । चित् । गोऽमते । वि । व्रजस्य ।

दुरः । वर्तम् । गृणते । चित्रराती इति चित्रऽराती ॥११॥

३१६ अन्वयः— परमाभिः मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्धिः अर्वाक् आ यातं ; गृणते चित्रराती गोमतः व्रजस्य द्वन्द्वस्य चित् दुरः वि वर्तम् ॥११॥

३१६ अर्थ— (परमाभिः) आश्रित्य श्रेष्ठ, (मध्यमाभिः) मध्यम श्रेणीके (उत अवमाभिः) और निम्न श्रेणीके (नियुद्धिः) बाहनोंके साथ (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप भाओं । (गृणते चित्रराती) स्तोत्राके लिए विचित्र दान देनेवाले तुम दोनों (द्वन्द्वस्य चित् गोमत व्रजस्य) गाँवोंसे युक्त सुदृढ़ बाँटके (दुरः वि वर्तं) द्वार खोल दो ॥

[३१०]

३२० ऊर्ध्वो वांमधिरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४॥

• ३२० ऊर्ध्वः । वांम् । अग्निः । अध्वरेषु । अस्थात् ।
प्र । रातिः । एति । जूर्णिनी । घृताची ॥
प्र । होता । गूर्तमनाः । उराणः ।
अयुक्त । यः । नासत्या । हवीमन् ॥४॥

३१० व्याख्ययः— अध्वरेषु अग्निः वां ऊर्ध्वः अस्थात्; जूर्णिनी घृताची
रातिः प्र एति । यः हवीमन् नासत्या अयुक्त प्र होता गूर्तमना उराणः ॥ ४ ॥

३२० अर्थ— (अध्वरेषु) हिंमरहित कार्योंमें अग्नि (वां) दुम दोनोंके
लिप् [ऊर्ध्वः अस्थात्] ऊँचा हो खड़ा है, जल रहा है, (जूर्णिनी घृताची)
तमनशील और घृतसे लिपित (राति प्र एति) देन प्रकर्षसे आगे बढ़ रही
है, (यः हवीमन्) जो हवी लेकर (नासत्या अयुक्त) अभिदेवोंके लिये
अन्नदान करता है, वह (प्र होता) अच्छा दागी (गूर्तमनाः) एव मन
छगाकर काम करनेवाला तथा (उराणः) विशाल मात्रामें कार्य करनेवाला
बनता है ॥

[३११]

३२१ अर्धि श्रिये दुहिता स्वर्गस्य रथं तस्थौ पुरुषुजा श्रुतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृत्तु जनिमन्
यज्ञियानाम् ॥५॥

३२१ अर्धि । श्रिये । दुहिता । स्वर्गस्य ।
रथम् । तस्थौ । पुरुषुजा । श्रुतः ।
प्र । मायाभिः । मायिना । भूतम् । अत्र ।
नरा । नृत्तु इति । जनिमन् । यज्ञियानाम् ॥५॥

३२१ अनवः— पुरुमुजा ! शतौर्ति रथं सूर्यस्य दुहिता भिये अभि तस्यौ ।
अग्र यज्ञियानां जनिमन् नृत् नरा मायिना मायाभिः प्र भूतम् ॥ ५ ॥

३२१ अर्थ— (पुरु-मुजा) बड़े मुजावाले अभिदेवों ! (शतौर्ति रथं) सौ संरक्षणोंसे पूर्ण रथपर (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (भिये अभि तस्यौ) शोभाके लिए चढ गयी (अग्र यज्ञियानां जनिमन्) इधर पूजनीयोंके जन्मके अवसरपर आनन्दसे (नृत्) नृत्य करनेवाले (नरा) नेता (मायिना) कुशल अग्निदेव (मायाभिः प्रभूतं) अपनी अमृत चाकियोंसे अत्यधिक प्रभवशाली बने ॥

[३२२]

३२२ युवं श्रीभिर्दक्षेताभिराभिः शुभे पुष्टिर्मुहधुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽर्जु पसन्नक्षत्राणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम् ॥ ६ ॥

३२२ युवम् । श्रीभिः । दर्शेताभिः । आभिः ।
शुभे । पुष्टिम् । ऊर्ध्वधुः । सूर्यायाः ॥
प्र । वाम् । वयः । वपुषे । अर्जु । पसन् ।
नक्षत् । वाणी । सुऽस्तुता । धिष्ण्या । वाम् ॥ ६ ॥

३२२ अन्वयः— धिष्ण्या । शुभं आभिः दर्शेताभिः श्रीभिः सूर्यायाः शुभे पुष्टिं ऊर्ध्वधुः वा वपुषे अर्जु वयः ॥ पसन्, सुष्टुता वाणी वा नक्षत् ॥ ६ ॥

३२२ अर्थ— हे (धिष्ण्या) प्रशंसनीय अग्निदेवो ! (शुभे) तुम दोनों (आभिः) हल (दर्शेताभिः श्रीभिः) सुन्दर शोभाभोंके साथ (सूर्यायाः शुभे) सूर्याके कक्षयाणके लिए (पुष्टिं ऊर्ध्वधुः) पुष्टिकी साथ रखते हो, तथा (प्र वां वपुषे) तुम्हारे शरीरकी पुष्टिके लिये (अर्जु वयः प्र पसन्) अर्जुनक भक्ष तुम्हें प्राप्त होता है । और (सुष्टुता वाणी) अच्छी स्तुतिकी वाणी भी (वां नक्षत्) तुम दोनोंको प्राप्त होती है ॥

[३२३]

३२३ आ वां वयोऽश्वास्तौ वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्पा वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजया असर्ज्विषः पृथ इपिथो अर्जु पूर्वाः ॥ ७ ॥

३२३ आ । वाम् । वयः । अश्वासः । वहिष्ठाः ।
 अभि । प्रयः । नासत्या । वहन्तु ॥
 प्र । वाम् । रथः । मनःऽजवाः । असर्जि ।
 ह्यः । पृक्षः । इषिधः । अनु । पूर्वीः ॥७॥

३२३ अन्वयः— नामत्या । वहिष्ठाः वयः अश्वासः प्रयः अभि वां आ
 वहन्तु; वां मनोजवा रथः पूर्वीः पृक्षः इषिधः ह्यः अनु प्र असर्जि ॥ ७ ॥

३२३ अर्थ— (नासत्या) हे सत्यपाकक अग्निदेवो ! (वहिष्ठाः वयः)
 अश्वन्त दोनेवाके, गतिशील (अश्वासः) घोड़े (प्रयः अभि) भक्त (वां आ
 वहन्तु) तुम दोनोंके समीप के जायँ । (वां मनोजवा रथः) तुम दोनोंका
 मनके तुल्य वेगवान् रथ (पूर्वीः पृक्षः) बहुतसी पुष्टिकारक (इषिधः ह्यः)
 चाहनेयोग्य भक्त सामग्रियोंको (अनु प्र असर्जि) विशेष रीतिसे लाकर
 रखता है ॥

[३२४]

३२४ पुरु हि वां पुरुषुजा दुष्णं धेनुं न ह्ये पिन्वतमसक्राम् ।
 स्तुतं च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्

३२४ पुरु । हि । वाम् । पुरुऽभुजा । दुष्णम् ।
 धेनुम् । नः । ह्यम् । पिन्वतम् । असक्राम् ॥
 स्तुतः । च । वाम् । माध्वी इति । सुऽस्तुतिः । च ।
 रसाः । च । ये । वाम् । अनु । रातिम् । अग्मन् ॥८॥

३२४ अन्वयः— पुरुषुजा ! वां दुष्णं हि पुरु, नः धेनुं पिन्वतं, असक्रां
 ह्यं, माध्वी वां स्तुतः च सुष्टुतिः च रसाः च ये वां रातिं अनु अग्मन् ॥८॥

३२४ अर्थ— हे (पुरुषुजा) बड़े भुजावाले अग्निदेवो ! (वां दुष्णं हि)
 तुम दोनोंका दान तो (पुरु) बहुत होता है, तुमने (नः धेनुं) हमारे लिए
 गाय दी है, (असक्रां ह्यं पिन्वतं) दूसरेके पास न जानेवाली भक्त सामग्रीको
 यथेष्ट दी है । (वां) तुम दोनोंकी (स्तुतः च माध्वी सुष्टुतिः च रसाः च),
 अच्छी स्तुति तथा सोमरस भी लैवार रखे हैं, (ये) जो (वां रातिं) तुम
 दोनोंकी देनको (अनु अग्मन्) अनुकूल रहते हैं ॥

३२४ टिप्पणी—अ-सका = दूसरी जगह संक्रमण न होनेवाली, एक जगह सुस्थिर रहनेवाली ।

[३२५]

३२५ उत मे ऋजे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेठके च पक्का ।
शाण्डो दाद्विरणिनः स्मर्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाचं
ऋष्वान् ॥९॥

३२५ उत । मे । ऋजे इति । पुरयस्य । रघ्वी इति ।
सुऽमीळ्हे । शतम् । पेठके । च । पक्का ॥
शाण्डः । दात् । द्विरणिनः । स्मत्स्मर्दिष्टीन् ।
दश । वशासः । अभिऽसाचः । ऋष्वान् ॥९॥

३२५ अन्वयः— उत पुरयस्य रघ्वी ऋजे सुमीळ्हे शतं पेठके च पक्का
द्विरणिनः स्मर्दिष्टीन् ऋष्वान् अभिषाचः दश वशासः शाण्डः मे दात् ॥ ९ ॥

३२५ अर्थ— (उत पुरयस्य) पुरयकी (रघ्वी ऋजे) शीघ्र जानेवाली,
घोड़ियों (सुमीळ्हे शतं) सुमीळ्हे नरेशमें विद्यमान सौ गावों और (पेठके च
पक्का) पेठके घर बाड़े जानेवाले पक्के कंक (द्विरणिनः) सुवर्णभूषण धारण
करनेवाले (स्मर्दिष्टीन्) सुन्दररूपवाले, (ऋष्वान्) दर्शनीय (अभिषाचः)
राज्यके परामवकर्ता (दश वशासः) दस आज्ञासुवर्ती सेवकोंकी (शाण्डः
मे दात्) शांडके मुझे देदी ॥

३२५ भावार्थ— [यही दातका वर्णन है ।]

[३२६]

३२६ सं वो ज्ञता नासत्या सहस्राऽर्थानां पुरुषन्थां गिरे दात ।
भ्ररद्वाजाय वीर न गिरे दाद्वता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः
॥१०॥

३२६ सम् । वाम् । शता । नासत्या । सहस्रा ।
 अश्वानाम् । पुरुषान्याः । गिरे । दात् ॥
 भरतर्वाजाय । वीर । नु । गिरे । दात् ।
 हता । रक्षसि । पुरुषदंससा । स्युरिति स्युः ॥१०॥

३२६ अन्वयः— नासत्या । वां गिरे पुरुषान्या अश्वानां शता सहस्रा ।
 दात्, पुरुषससा । वीर । भरतर्वाजाय गिरे नु दात्, रक्षसि हताः स्युः ॥ १० ॥

३२६ अर्थ— हे सत्यपाकक भग्निदेवो ! (वां गिरे) तुम्हारे स्वोत्ता मुस-
 को पुरुषान्या नरेवाने (अश्वानां शता सहस्रा) सैकड़ों हथारों घोड़े (सं दात्)
 दिये, हे (पुरुषससा) बहुत कार्य करनेवाले वीरभग्निदेवो (भरतर्वाजाय गिरे)
 मुझ भरतर्वाजको (नु) अभी यह दान (दात्) दिया है, भव (रक्षसि हताः
 स्युः) राक्षस मारेही गये होंगे ॥

[३२७]

३२७ आ वां सुम्ने वरिमन्सूरिभिः ध्याम् ॥११॥

३२७ आ । वाम् । सुम्ने । वरिमन् । सूरिभिः । ध्याम् ॥११॥

३२७ अन्वयः— वां वरिमन् सुम्ने सूरिभिः आ ध्याम् ।

३२७ अर्थ— हम दोनोंके दिये श्रेष्ठ सुखमें विद्वानोंके साथ मैं रहूँ ॥

[३२८] (अ० ७।६७।१-१०)

(३२८-३८३) मैत्रावरुणिर्यसिष्ठः । त्रिषु ।

३२८ प्रति वां रथं नृपती जरध्वै हविष्मता मनसा युज्जियेन ।
 यो वां दूतो न धिष्ण्यावजींगरच्छा सूनुर्न पितरां
 विचक्षि ॥१॥

३२८ प्रति । वाम् । रथम् । नृपती इति नृपती । जरध्वै ।
 हविष्मता । मनसा । युज्जियेन ॥

यः । वाम् । दूतः । न । धिष्ण्या । अजींगः ।

अच्छ । सूनुः । न । पितरां । विचक्षि ॥१॥

३२८ अन्वयः— नृपती धिष्णवी । यज्ञियेन हविष्मता मनसा वा रथं प्रति जारथैः, यः वा दूतः न भजीगः, सूनुः पितरा न अष्ट विवस्मि ॥ १ ॥

३२८ अर्थ— हे (नृपती धिष्णवी) जनताके पालक एवं बुद्धिमान् अग्निदेवो ! (यज्ञियेन) पवित्र तथा (हविष्मता मनसा) भस्मके साथ मननपूर्वक भजनेवाले (वा रथं प्रति) तुम्हारे रथकी (जारथैः) स्तुति करनेके लिए, (यः) जो (वा) तुम्हें (दूतः न) दूतके समान (भजीगः) जगा शुका है ऐसा मैं, (सूनुः पितरा न) पुत्र मातापिताके सामने जैसे खड़ा रहता है, वसी प्रकार, (अष्ट विवस्मि) तुम्हारे सम्मुख विशेष रीतिसे भाषण करता हूँ ॥

[३२९]

३२९ अशोच्यग्निः समिधानो अस्मे उपो अदध्नन्तर्मसश्चिदन्ताः ।
अचेति केतुरुपसः पुरस्ताच्छ्रिये दिवो दुहितुर्जायमानः ॥ २

३२९ अशोचि । अग्निः । समऽइधानः । अस्मे इति ।
उपो इति । अदध्नन् । तर्मसः । चित् । अन्ताः ॥
अचेति । केतुः । उपसः । पुरस्तात् ।
श्रिये । दिवः । दुहितुः । जायमानः ॥ २ ॥

३२९ अन्वयः— अग्ने समिधानः अग्निः अशोचि, तर्मसः अन्ताः— चित् उपो अदध्नन्; दिवः दुहितुः उपसः पुरस्तात् जायमानः केतुः श्रिये अचेति ॥ २ ॥

३२९ अर्थ— (अग्ने समिधानः) हमारे लिए भलीमूर्ति प्रवर्धित होता हुआ (अग्निः अशोचि) अग्नि जलमग्न रहा है, (तर्मसः अन्ताः चित्) अंशकाके अंतिम विभाग भी (उपो अदध्नन्) दिखाई देने लगे हैं; अर्थात् अभ्यकार नष्ट हो रहा है, (दिवः दुहितुः उपसः) धुल्लोककी कन्या उपाके (पुरस्तात्) सामने (जायमानः) प्रकट होता हुआ (केतुः) ध्वजस्वरूप सूर्य (श्रिये अचेति) शोभाके लिए प्रकटरूपसे ज्ञात हुआ है ।

३२९ भावार्थ— अग्नि प्रदीप्त हो गया है, इसके प्रकाशसे अभ्यकार नष्ट होता है, उपा प्रकट हो गयी है, उसका सूर्यरूपी ध्वज चहरने लगा है ।

[३३०]

३३० अ॒भि वाँ नून॑मा॒श्विना॒ सुहो॑ता॒ स्तोमैः॑ सि॒पक्ति॑ नास॒त्या
वि॒व॒क्तान् । पू॒र्वीभि॑र्यातं प॒थ्याभि॑र॒र्वाक्स्व॒र्विदा॑ वसु॒मता॑
रथे॑न ॥३॥

३३० अ॒भि । वा॒म् । नून॑म् । अ॒श्विना॒ । सुहो॑ता ।
स्तोमैः॑ । सि॒स॒क्ति॑ । ना॒स॒त्या । वि॒व॒क्तान् ॥
पू॒र्वीभिः॑ । या॒त॒म् । प॒थ्याभिः॑ । अ॒र्वाक् ।
स्वः॒ऽवि॒दा । वसु॑मता । रथे॑न ॥३॥

३३० अन्वयः— नासत्या अश्विना । विवक्त्वान् सुहोता वाँ अभि नूनं स्तोमैः
सिप्तवित्, वसुमता एव विद्वा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभिः यातम् ॥३॥

३३० अर्थ— हे सत्यपालक अश्विदेवो । (विवक्त्वान् सुहोता) विशेष
हंगसे तुकानेवाका (वाँ अभि) तुम्हारे सामने (नूनं स्तोमैः 'सिप्तवित्') भव
यज्ञोंसे सेवा करता है, (वसुमता स्वःविदा रथेन) धनसे युक्त और प्रकाशको
देनेवाले रथपरसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः) पहलेसे दिक्कत मार्गोंसे ही (यातं)
तुम भागे बहो ॥

३३० भावार्थ— यज्ञोंसे जनताकी सेवा करो । धनका बंटवारा करते हुए
प्रसिद्ध प्राचीन यज्ञके मार्गोंसे दक्षतिके पथपर आक्रमण करो ।

[३३१]

३३१ अ॒वोर्वाँ नून॑मा॒श्विना॒ युवा॑र्कुर्हुवे वद् वाँ सु॒ते मा॑ध्वी
वसु॒युः । आ वाँ वह॑न्तु॒ स्थर्वि॑रासो अ॒श्याः पि॒त्राथो॑
अ॒स्मे सु॒पु॒ता म॑र्धूनि ॥४॥

३३१ अ॒वोः । वा॒म् । नून॑म् । अ॒श्विना॒ । युवा॑र्कुः ।
हु॒वे । यत् । वा॒म् । सु॒ते । मा॑ध्वी इति । वसु॑युः ॥
आ । वा॒म् । वह॑न्तु । स्थर्वि॑रासः । अ॒श्याः ।
पि॒त्राथः॑ । अ॒स्मे इति॑ । सु॒पु॒ता । म॑र्धूनि ॥४॥

३३१ अन्वयः— माप्नी अधिना ! नूनं भवोः वा युवाङ्गः, यत् पशुयुः सुते वा हुवे स्पविरासः अथाः वा आ यद्वन्तु, अस्मै सुमुता मभूनि विवाधः ॥ ४ ॥

३३१ अर्थ— हे (माप्नी अधिना) मधुरभाषी अभिदेवो ! (नूनं भवोः वा) सचमुच तुम रक्षणकर्ताओंके साथ (युवाङ्गः) संबंध रखनेवाला मैं (यत्) अब (पशुयुः) धनकी कामना करता हुआ (सुते वा हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें युक्ताता हूँ, तुम्हारे (स्पविरासः अथाः) पृथ्वी छोटे (वा आ यद्वन्तु) तुम्हें इधर के आवें, और (अस्मै) हमारे बनाये (सुमुताः मभूनि विवाधः) मलीमौलि निचोटे हुए भीठे सोमरसोंका पान करो ॥

३३१ भाषार्थ— मधुर भाषण करो । संरक्षण करनेवालोंके साथ रहो और धनकी प्राप्ति करनेका चरम करो । मीठा सोमरस पीओ ।

[३३२]

३३२ प्रार्थीषु देवाऽअग्निना धियं मेऽमृधां सातये कृतं वसुयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती
शचीभिः ॥५॥

३३२ प्रार्थीम् । ऊँ इति । देवा । अग्निना । धियम् । मे ।
अमृधाम् । सातये । कृतम् । वसुयुम् ॥
विश्वाः । अविष्टम् । वाजे । आ । पुरंम्ऽधीः । ता ।
नः । शक्तम् । शचीपती इति शचीऽपती । शचीभिः ॥५॥

३३२ —अन्वयः— शचीपती देवा अग्निना । मे वसुमे अमृधां प्रार्थी धियं सातये कृतं, वाजे विश्वाः पुरंधीः आ अविष्टं, ता शचीभिः नः शक्तम् ॥ ५ ॥

३३२ अर्थ— हे (शचीपती) शक्तिवर्णोंके अभिपति (देवा) देवो ! (मे वसुयुं) मेरी धनकी कामना करनेवाली (अमृधां प्रार्थी धियं) अर्द्धसित सरस बुद्धिकी (सातये) अमृतसिक्के छिड़ के योग्य (कृतं) बना दो, (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरंधीः) सभी बुद्धियोंका (आ अविष्टं) पूर्णतया पाकन करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (नः शक्तं) हमें सामर्थ्यवान् बना दो ॥

३३२ भाषार्थ— अपनी शक्ति बढ़ाओ । धन प्राप्त करो, बुद्धिकी बढ़ाओ, युद्धमें अपनी सुरक्षाकी शक्ति प्राप्त करो । अपनी शक्तियों बढ़ाकर सामर्थ्यवान् बनो ।

अग्निनौ वे० ३३

[३३३]

३३३ अविष्टं धीर्बन्धिना न आसु प्रजावद्रेतो अह्यं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम ॥

३३३ अविष्टम् । धीषु । अन्धिना । नः । आसु ।
प्रजाऽर्वत् । रेतः । अह्यम् । नः । अस्तु ॥
आ । वाम् । तोके । तनये । तूतुजानाः ।
सुरत्नासः । देवऽवीतिम् । गमेम ॥ ६ ॥

३३३ अन्वयः— अन्धिना ! आसु धीषु नः अविष्टं, नः प्रजामव रेतः अह्यं
अस्तु; वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासः देववीतिं आ गमेम ॥ ६ ॥

३३३ अर्थ— हे अन्धिदेवों ! (आसु धीषु) इन बुद्धिपौत्रों में या कर्मों में (नः
अविष्टं) हमें सुरक्षित रखो, (नः प्रजामव रेतः) हमारा सुसन्तान वरपन्न
करनेमें समर्थ-वीर्य (अह्यं अस्तु) अधीन रहे; (वां) तुम्हें (तोके तनये
तूतुजानाः) पुत्रपौत्रोंके सुखसंवर्धनके बारेमें स्वरा करनेके लिए प्रवृत्त करते
हुए (सुरत्नासः) अच्छे राज धारण करके हम (देववीतिं आ गमेम) देवोंकी
पवित्रताकी प्राप्ति करें ॥

३३३ भावार्थ— शुभ कर्मोंको करते हुए हम सुरक्षित रहें । सुसन्तान
वरपन्न करनेवाला वीर्य हमारे अन्दर घटे । पुत्रपौत्रोंका हित करनेकी स्वरा करो ।
हम अच्छे वस्त्रालंकार धारण करके देवोंके सन्निध पहुँचें ।

३३३ मानवधर्म— शुभ कर्म करो और अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति
प्राप्त करो । अपना वीर्य ऐसा शुभ संस्कारसंपन्न करो कि जिससे उत्तम संतान
वरपन्न हो सके । पुत्रपौत्रोंको शुभ संस्कारसंपन्न करो । अच्छे वस्त्रालंकार
धारण करके दिव्य विष्णुओंके पास जाकर उनके जैसे दिव्य भाव धारण
करो ।

[३३४]

३३४ एष स्य वां पूर्वगतैव सूर्ये निधिर्हितो मांश्ची रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विशु ॥ ७

३३४ एषः । स्वः । चाम् । पूर्वगत्वाऽइव । सख्ये ।
 निऽधिः । हितः । साध्वी इति । रातः । अस्मे इति ॥
 अहेळता । मनसा । आ । यातम् । अर्वाक् ।
 अश्वन्ता । हव्यम् । मानुषीषु । विष्णु ॥७॥

३३४ अन्वयः— माध्वी । अस्य रातः एषः स्वः निधिः वा सख्ये पूर्वगत्वा इव निधितः, मानुषीषु विष्णु हव्यं अश्वन्ता अहेळता मनसा अर्वाक् आ यातम् ॥ ७ ॥

३३४ अर्थ— हे (माध्वी) मधुर माषणकर्ता भक्तिदेवों ! (अस्य रातः) हमने दिया हुआ (एषः स्वः निधिः) यह यह भाण्डार (वा सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिए (पूर्वगत्वा इव हितः) भ्रमगन्ताके समान भागे रहा है, (मानुषीषु विष्णु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्वन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोधरहित मनसे (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ ॥

[३३५]

३३५ एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वा सप्त स्रवतो रथो
 गात् । न वायन्ति सुम्बो देवयुक्ता ये वा धूर्ध्रु तरणयो
 वहन्ति ॥८॥

३३५ एकस्मिन् । योगे । भुरणा । समाने ।
 परि । वाम् । सुप्त । स्रवतः । रथः । गात् ॥
 न । वायन्ति । सुम्बः । देवयुक्ताः ।
 ये । वाम् । धूर्ध्रुः । तरणयः । वहन्ति ॥८॥

३३५ अन्वयः— भुरणा । एकस्मिन् समाने योगे वा रथः सप्त स्रवतः, परि गात्, ये तरणयः धूर्ध्रु वा वहन्ति सुम्बः देवयुक्ताः न वायन्ति ॥ ८ ॥

३३५ अर्थ— हे (भुरणा) भरण करनेवाले भक्तिदेवों ! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वा रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात वहनेवाले घोड़ोंके भी (परि गात्) आगे बढ जाता है, (ये तरणयः) जो तारण करनेवाले घोड़े (धूर्ध्रु वा वहन्ति) धुराओंमें तुम्हे डोले हैं, वे (सुम्बः) बस्कृष्ट ढंगसे डरपथ (देवयुक्ताः) देवोंके जोते हुए होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं ॥

[३३६]

३३६ असञ्चता मघवद्भ्यो हि भूतं ये राया मघदेयं जुनन्ति ।
 य ये बन्धुं सुनृताभिस्तिरन्ते गव्या पृञ्चन्तो अश्व्या
 मघानि ॥९॥

३३६ असञ्चता । मघवत्भ्यः । हि । भूतम् ।
 ये । राया । मघदेयम् । जुनन्ति ॥
 य । ये । बन्धुम् । सुनृताभिः । तिरन्ते ।
 गव्या । पृञ्चन्तः । अश्व्या । मघानि ॥९॥

३३६ अन्वयः— ये गव्या अश्व्या मघानि पृञ्चन्तः बन्धुं सुनृताभिः य तिरन्ते
 राया मघदेयं जुनन्ति, मघवद्भ्यः असञ्चता हि भूतम् ॥ ९ ॥

३३६ अर्थ— (ये) जो (गव्या अश्व्या) गावों तथा घोड़ोंसे पूर्ण
 (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्यका दान करते हुए (बन्धुं) बन्धुको (सुनृताभिः
 य तिरन्ते) सखी प्राणिनोंसे दान देते हैं और (राया) धनसे युक्त होकर
 (मघदेयं जुनन्ति) धनके देनेको प्रेरित करते हैं, ऐसे जन (मघवद्भ्यः)
 वैभवशाही लोगोंके लिए (असञ्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले
 बनो ॥

३३६ भावार्थ— गावों, घोड़ों और धनोका दान करो । धनोका दान करते
 हुए शुभ भाषण करो । योग्य रीतिसे दान करनेवाले दाताओंके पासही
 पहुँचो ।

[३३७]

३३७ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरश्विनाविरावत् ।
 धत्तं रत्नानि जरतं च सूरिन्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥

३३७ नु । मे । हवम् । आ । शृणुतम् । युवाना ।
 यासिष्टम् । वर्तिः । अश्विनौ । इराज्वत् ॥
 धत्तम् । रत्नानि । जरतम् । च । सूरिन् ।
 यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥१०॥

३३७ अन्ययः— युवाना अभिनौ । मे हवं नु भा मृणुं, द्वापत् धर्तिः
पासिष्टं, शतानि धसं सूरौ न् जरतं च, द्वादिभिः यूयं नः सदा पात ॥ १० ॥

३३७ अर्थ— हे (युवाना अभिनौ) युवक अभिदेवों ! (मे हवं) मेरी
शुकार (नु भा मृणुतं) जब सुन को, (द्वापत् धर्तिः पासिष्टं) अन्नयुक्त
घरतक पहले जाओ, (शतानि धसं) रत्नोंकी अपने पास धारण करो,
(सूरौ न् जरतं च) विद्वानोंकी सराहना करो, (स्वस्तिभिः यूयं) हितकारक
हवायोंसे तुम (नः सदा पात) हमें हमेशा सुरक्षित रखो ॥

३३७ भावार्थ— जो शुकार करता है उसकी यातनो सुनो । जिस घरमें
पर्याप्त अन्न है और जो दाता है, नहीं जाओ । स्वर्ग रत्नोंका धारण करो और
रत्नोंका दान करो । सच्चे ज्ञानियोंकीही प्रशंसा करो । बहवाणवारक साधनोंसे
सबकी सुरक्षा करो ।

[३३८] (अ. ७।६।१—९) विराट्, ८-९ त्रिष्टुप् ।

३३८ आ जुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरौ दत्ता जुजुपाणा
युवाकौ । हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥ १॥

३३८ आ । जुभ्रा । यातम् । अश्विना । सुडअश्वा ।
गिरौ । दत्ता । जुजुपाणा । युवाकौः ॥

हव्यानि । च । प्रतिभृता । वीतम् । नः ॥ १॥

३३८ अन्ययः— जुभ्रा ! स्वश्वा ! दत्ता अभिना । युवाकौः गिरः जुजुपाणा
आ यातं, नः प्रतिभृता हव्यानि च वीतम् ॥ १ ॥

३३८ अर्थ— हे (जुभ्रा ! स्वश्वा) श्वेतवर्णवाले और अच्छे घोड़े रखने-
वाले (दत्ता) शत्रुविनाशक अभिदेवों ! (युवाकौः गिरः) तुम्हारी सेवा
करनेवालेके माधवोंको (जुजुपाणा) आदरपूर्वक स्वीकार करते हुए (आ यातं)
जाओ, (नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि च वीतं)
हविर्भागोंका सेवन करो ॥

[३३९]

३३९ प्र वामन्धौसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे ।
तिरो अयो हवनानि श्रुतं नः ॥ २॥

३३९ प्र । वाम् । अन्धासि । मद्यानि । अस्थुः ।
 अरम् । गन्तम् । हविषः । वीतये । मे ॥
 तिरः । अर्यः । हवनानि । श्रुतम् । नः ॥ २ ॥

३३९ अन्ययः— वां मद्यानि अन्धासि प्र अस्थुः, मे हविषः वीतये अरं गन्तं, अर्यः तिरः नः हवनानि श्रुतम् ॥ २ ॥

३३९ अर्थ— (वां मद्यानि) तुम्हारे लिए आनन्ददायक (अन्धासि प्र अस्थुः) लक्ष रखे गये हैं । (मे हविषः वीतये) मेरे हविके आस्वादनके लिए (अरं गन्तं) लीचे वहाँ आगमन करो, (अर्यः तिरः) क्षत्रुओंको हटाकर, (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ॥

३३९ भावार्थ— हवैवर्चक भक्षोंका सेवन करो और क्षत्रुओंको हटा दो ।

[३४०]

३४० प्र वां रथो मनोजवा इयति तिरो रजांस्यश्विना श्रुतोतिः ।
 अस्मभ्यं सूर्यावसु इयानः ॥ ३ ॥

३४० प्र । वाम् । रथः । मनःऽजवाः । इयति ।
 तिरः । रजांसि । अश्विना । श्रुतऽकृतिः ॥
 अस्मभ्यम् । सूर्यावसु इति । इयानः ॥ ३ ॥

३४० अन्ययः— सूर्यावसु अश्विना । वां मनोजवाः रथः श्रुतोतिः अस्मभ्यं इयानः रजांसि तिरः प्र इयति ॥ ३ ॥

३४० अर्थ— हे (सूर्यावसु) सूर्याकी वसनेवाले अग्निदेवी !, (वां) तुम्हारा (मनोजवाः) मनके तुल्य वेगवान् रथ (श्रुतोतिः) सैकड़ों संरक्षकोंसे सुरक्षित होकर (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास आता हुआ (रजांसि तिरः प्र इयति) भूलिके प्रदेशोंको पार करके प्रकृपसे समीप आता है ॥

३४० भावार्थ— वेगवान् रथमें विराजोऔर उसकी सुरक्षा सैकड़ों प्रकारोंसे करो ।

[३४१]

३४१ अयं ह यद्वा देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवर्त्ति सोमसुद्
 युवभ्याम् । आ बल्गू विप्रो बवृतीत हव्यैः ॥ ४ ॥

३४१ अयम् । ह । यत् । वाम् । देवऽयाः । ऊँ इति । अद्रिः ।
ऊर्ध्वः । विपक्तिः । सोमऽसुत् । युवऽभ्याम् ॥
आ । वल्गू इति । विप्रः । वयुतीत । हर्ष्यः ॥४॥

३४१ अन्वयः— अयं सोमसुत् अद्रिः ह यत् ऊर्ध्वः देवया वां ह युवभ्यां विपक्तिः, विप्रः वल्गू हर्ष्यः आ वयुतीत ॥ ४ ॥

३४१ अर्थ— (अयं सोमसुत्) यह सोमरस निघोटनेवाला (अद्रिः ६) पाथर (यत्) जब (ऊर्ध्वः देवया) ऊँचे पदपर [सोमपर] आरुढ़ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त हो (वां उ) तुम दोनोंकोही कक्षमें रखकर (युवभ्यां विपक्तिः) तुम दोनोंका ध्यान भावपित करनेके लिए विशेष रूपसे [सोम घटनेका] वाद्य करता है, तब (विप्रः) शानी याजक, (वल्गू) सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हर्ष्यः आ वयुतीत) हवनीय अन्नसे अपनी ओर भावपित करता है ॥

३४१ भायार्थ— सोम घटनेका पाथर सोमपर चढ़कर जो घटनेका वाद्य करता है, वह वाद्य तुम्हें वज्रके लिये तुलानेके लियेही होता है ।

[३४२]

३४२ चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं
युयोतम् । यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५॥
३४२ चित्रम् । ह । यत् । वाम् । भोजनम् । नु । अस्ति ।
नि । अत्रये । महिष्वन्तम् । युयोतम् ॥
यः । वाम् । ओमानम् । दधते । प्रियः । सन् ॥५॥

३४२ अन्वयः— यत् वां चित्रं भोजनं नु अस्ति हः अत्रये महिष्वन्तं नि युयोतं, यः प्रियः सन् वां ओमानं दधते ॥ ५ ॥

३४२ अर्थ— (यत् वां चित्रं) जो तुम दोनोंका विकक्षण (भोजनं नु अस्ति ह) अन्नरूपी वान है जो (अत्रये) ऋषि अग्निके लिए (महिष्वन्तं नि युयोतं) क्षति बढानेके लिये तुमने दिया, क्योंकि (यः प्रियः सन्) जो तुम्हारा प्यारा होनेके कारण (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुखदायक आशयका धारण करता है ॥

३४२ भावार्थ— भग्निदेवोंने पास उलम पुष्टिप्राप्त भजन दे, यह उम्होंने भगिनी कति बढानेके लिये दिया था । क्योंकि यह बनवा भिन्न भक्त दे भक्त उमकी सुरक्षाओं यह सब बढना दे ।

३४३ मानवधर्म— हमको पुष्ट करनेके लिये देना भजन देना चाहिये कि जो भीमही उसे पुष्ट बलवान् और सुदृढ बना सके ।

[३४३]

३४३ उत त्यद् वां जुस्ते अश्विना भूज्यवानाय प्रतीत्यं
हविर्दे । अधि यद् वर्षं इतर्कति घृत्यः ॥६॥

३४३ उत । त्यत् । वाम् । जुस्ते । अश्विना । भूत् ।
ज्यवानाय । प्रतीत्यम् । हविःऽदे ॥
अधि । यत् । वर्षः । इतःऽर्कति । घृत्यः ॥६॥

३४३ अन्वय — उत अश्विना । हविर्दे जुस्ते ज्यवानाय वां त्यद् प्रतीत्यं भूत्
यद् इतर्कति वर्षः अधि घृत्यः ॥ ६ ॥

३४३ अर्थ— (उत अश्विना) और हे भग्निदेवों ! (हविर्दे) हविका दान
करनेवाले (जुस्ते ज्यवानाय) बृद्ध ज्यवानके लिए (वां त्यद्) तुम्हारा वह
उमके पास (प्रतीत्यं भूत्) वापस जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यद्) जो-
कि (इतर्कति वर्षं) इस मृत्युसे संरक्षण देनेवाला रूप (अधि घृत्यः) तुम
दोनोंने उसे दे दिया ॥

३४३ भावार्थ— ज्यवन ऋषि भतिबृद्ध हुआ था, उसके पास भग्निदेव गये
और उसको तरुण जैसा रूप दिया, उनकी उस ऋषिपर बड़ी कृपा हुई ।

[३४४]

३४४ उत त्वं भुज्युमंश्विना सखायो मध्ये जहृर्दुरेवासः
समुद्रे । निरी पर्पदरावा यो युवाकुः ॥७॥

३४४ उत । त्वम् । भुज्युम् । अश्विना । सखायः ।
मध्ये । जहृः । दुःऽएवासः । समुद्रे ॥
निः । ईम् । पर्पत् । अरावा । यः । युवाकुः ॥७॥

३४४ अन्वयः— उत भविता ! त्वं भुज्यं दुरेवासः सखायः समुद्रे मध्ये
जहुः यः युवाकुः शराणा इ निः पर्यत् ॥ ७ ॥

३४४ अर्थ— (उत भविता) और हे भविदेवो ! (त्वं भुज्यं) उस
भुज्युको (दुरेवासः सखायः) दुष्टी चालवाले मित्र (समुद्रे मध्ये जहुः)
समुन्दरके मध्य छोड़ चुके, (यः युवाकुः) जो सुन्दारी भक्ति करता हुआ
(शराणा) सुन्दारे समीप सहायकार्य करने लगा था, (इ निः पर्यत्) उसे
तुम पूर्णतया पार छे चके ॥

३४४ भावार्थ— राजपुत्र भुज्यु समुद्रमें डूबता था, उसको भविदेवोंने
डूबाया और समुद्रपार करके घर पहुँचाया ।

[३४५]

३४५ वृकाय चित्समाप्ताय शक्तमुत श्रुतं शयवे ह्यमाना ।
यावद्वनामर्पिन्वतमपो न स्तर्यं चित्त्वत्पश्विना शचीभिः ॥

३४५ वृकाय । चित् । जसमानाय । शक्तम् ।
उत । श्रुतम् । शयवे । ह्यमाना ॥
यौ । अष्टम्याम् । अर्पिन्वतम् । अपः । न ।
स्तर्यम् । चित् । शक्ती । अश्विना । शचीभिः ॥ ८ ॥

३४५ अन्वयः— अश्विना । जसमानाय वृकाय चित् शक्तं उत ह्यमाना
शयवे श्रुतं, यौ शचीभिः शक्ती स्तर्यं चित् अष्टम्यां अपः न अर्पिन्वतम् ॥ ८ ॥

३४५ अर्थ— हे भविदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले
वृकके भी हितके लिए (शक्तं) तुम दान दे चुके, (उत) और (ह्यमाना
शयवे श्रुतं) चुकावा भविष्यत शयुका हित हो इसलिये तुम उसके कथनकी ओर
ध्यान दे चुके । (यौ) जो तुम दोनों (शचीभिः) कमसे (शक्ती) सामर्थ्यसे
(स्तर्यं चित् अष्टम्यां) बन्धवा गायको भी (अपः न) जलसमूहकी न्वाह
(अर्पिन्वतं) तुम दुष्टारू बना चुके ॥

३४५ भावार्थ— भविदेवोंने वृकके लिये सहायकार्य दान दिया, शयुकी
पुकार सुन ली, बन्धवा गौको उसके लिये दुष्टारू बनाया ।

३४६ एष स्य कारुर्जरते सुक्तरग्रे बुधान उपसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदध्न्या पर्योभिर्युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९॥

३४६ एषः । स्यः । कारुः । जरते । सुऽउक्तेः ।
अग्रे । बुधानः । उपसाम् । सुऽमन्मा ॥
इषा । तम् । वर्धत् । अध्न्या । पर्यऽभिः ।
युयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥९॥

३४६ अन्वयः— स्यः एषः सुमन्मा कारुः उपसां अग्रे बुधानः सुक्तेः जरते,
अध्न्या पर्योभिः इषा तं वर्धत्, युयं नः स्वस्तिभिः सदा पात ॥ ९ ॥

३४६ अर्थ— (स्यः एषः) वही यह (सुमन्मा) उत्तम बुद्धिवाला (कारुः)
कर्मकुशल पुरुष (उपसां अग्रे) उपाभोंके पहले (बुधानः) ज्ञानुत होता
हुआ, (सुक्तेः जरते) सुक्तेसे प्रशंसा करता है; (अध्न्या पर्योभिः इषा)
अवध्य गाव दूधसे और भत्तसे (तं वर्धत्) उसे बढ़ावे, (युयं नः) तुम
हमें (स्वस्तिभिः सदा पात) हितकारक साधनोंसे हमेशा सुरक्षित रखो ॥

३४६ भाषार्थः— उपाःकालमें भक्त उठे और इष्टदेवताकी स्तुति करे ।
जो क्षीण होते हैं उनकी पुष्टि गो अपने दूधरूपी भत्तसे करती है । इस तरह
तुम हम सबका संरक्षण करो ।

[३४७] (अ० ७।६९।१-८) त्रिष्टुप् ।

३४७ आ वां रथो रोदसी वद्वधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्तश्चैः ।
घृतवर्तनिः पविर्भी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान् ॥

३४७ आ । वाम् । रथः । रोदसी इति । वद्वधानः ।
हिरण्ययः । वृषऽभिः । यात्तु । अश्वैः ॥
घृतऽवर्तनिः । पविऽभिः । रुचानः ।
इषाम् । वोळ्हा । नृऽपतिः । वाजिनीऽवान् ॥१॥

३४७ अन्वयः— वां हिरण्ययाः, पृतवर्तनिः पविभिः रुचानः, इषां योळहा पाजिनीयान् नृपतिः, रोदसी यद्बभानः । रथः नृपभिः अश्वैः आ यातु ॥ १ ॥

३४७ अर्थ— (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय, (पृतवर्तनिः) मार्गमें पृतको देनेवाला, (पविभिः रुचानः) भरोसे जगमगाता हुआ (इषां योळहा) भरोसे वधित स्थानपर पहुँचानेवाला, (पाजिनीयान् नृपतिः) सेनासे युक्त सार्वभौम नरेश जैसा (रोदसी यद्बभानः) सुलोक और भूलोकको गर्भमासे प्रतिध्वनित करता हुआ रथ (नृपभिः अश्वैः) बलिष्ठ घोड़ोंसे युक्त होकर (आ यातु) इधर आजाय ॥

[३४८]

३४८ सः पप्रधानो अभि पञ्च भूमां त्रिवन्धुरो मनसा यातु युक्तः ।
विशो येन गच्छथो देवयन्तीः कुत्रा चित् याममश्विना
दधाना ॥२॥

३४८ सः । पप्रधानः । अभि । पञ्च । भूमः ।
त्रिवन्धुरः । मनसा । आ । यातु । युक्तः ॥
विशः । येन । गच्छथः । देवयन्तीः ।
कुत्र । चित् । यामम् । अश्विना । दधाना ॥२॥

३४८ अन्वयः— अभिना ! कुत्रचित् यामं दधाना येन देवयन्तीः विशः गच्छथः सः त्रिवन्धुरः पञ्च भूमा पप्रधानः भगता युक्तः अभि यातु ॥ २ ॥

३४८ अर्थ— हे अभिदेवो ! (कुत्रचित् यामं दधाना) कहीं गी यात्राका मार्ग करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथः) जिसपरसे तुम देवोंकी कामना करनेवाली पञ्चाशोंके समीप जाते हो, (सः त्रिवन्धुरः) वह तीन सुन्दर लट्टोंसे युक्त और (पञ्च भूमा पप्रधानः) पाँचोंको विस्तारित करता हुआ रथ (मनसा युक्तः अभि यातु) दशारेसेही ओता हुआ संचार करे ॥

[३४९]

३४९ स्वश्वा यशसा यातमर्वाग्दसां निधिं मधुमन्त्रं पिपाथः ।
वि वां रथो वृष्णाई यार्दमानोऽन्तान् दिवो बधते
वर्तनिभ्याम् ॥३॥

३४९ सुऽअर्था । यशसा । आ । यातम् । अर्वाक् ।
 दस्ता । निऽधिम् । मधुऽमन्तम् । विवाथः ॥
 वि । वाम् । रथः । वध्वा । यादमानः ।
 अन्तान् । दिवः । बाधते । वर्तनिऽभ्याम् ॥ ३ ॥

३४९ अन्वयः— दत्ता ! स्वभा यशसा अर्वाक् आ यातं मधुमन्तं निधिं
 विवाथः, वो रथः वध्वा यादमानः वर्तनिभ्यां दिवः भक्तान् वि बाधते ॥ ३ ॥

३४९ अर्थ— हे (दत्ता) शत्रुनाशक देवो ! (स्वभा यशसा) अच्छे
 घोड़ों और यशस्वी कावंचे युक्त होकर (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास
 आओ और (मधुमन्तं निधिं विवाथः) मिठाससे पूर्ण इस रसके भाण्डारको
 पी जाओ, (वो रथः) तुम्हारा रथ (वध्वा यादमानः) वधूके साथ आगे
 बढ़ता हुआ (वर्तनिभ्यां) पहिनेसे (दिवः भक्तान् वि बाधते) सुकोकके
 अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है ॥

[३५०]

३५० युवोः श्रियं परि योषाऽवृणीत सूरौ दुहिता परितक्म्यायाम् ।
 यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परिं घंसमोमनां वां वयो
 गात् ॥ ४ ॥

३५० युवोः । श्रियंम् । परि । योषा । अवृणीत ।
 सूरः । दुहिता । परिऽतक्म्यायाम् ॥
 यत् । देवऽयन्तम् । अवथः । शचीभिः ।
 परि । घंसम् । ओमना । वाम् । वयः । गात् ॥ ४ ॥

३५० अन्वयः— सूरः दुहिता योषा परितक्म्यायां युवोः श्रियं परि अवृणीत
 यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः, वो ओमना घंसं वयः परि गात् ॥ ४ ॥

३५० अर्थ— (सूरः दुहिता) सूर्यकी कन्या (योषा) युवती तथा
 (परितक्म्यायां) राज्ञीके अवसरपर (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी
 सोभा बढ़ानेवाले रथका स्वीकार कर लुकी, (यत्) जब (देवयन्तं शचीभिः

अवधः) देवोंको चाहनेवालोंको शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हो, जब (वां ओमता) तुम्हारी रक्षाके कारण (असं वयः) दीप्त अन्न (परि मात्) चारों ओर फैल चुका होता है ॥

३५० भावार्थ—सूर्यपुत्री उषा रात्रीके समय आती है, और प्रकाशती है, तथा वह अग्निदेवोंकी शोभा बढ़ाती है। जो यज्ञकर्म करनेवाले हैं उनकी सुरक्षा अग्निदेव करते हैं और उस समय यज्ञमें चारों ओर अन्नदान होता रहता है।

[३५१]

३५१ यो ह स्य वां रथिरा वस्तं उस्मा रथो युजानः परियाति
वर्तिः । तेन नः शं योरुपसो व्युष्टौ न्यश्चिना वहतं यज्ञे
अस्मिन् ॥५॥

३५१ यः । ह । स्यः । वाम् । रथिरा । वस्तं । उस्माः ।
रथः । युजानः । परिऽयाति । वर्तिः ॥
तेन । नः । शम् । योः । उपसः । निऽउष्टौ ।
नि । अश्चिना । वहतम् । यज्ञे । अस्मिन् ॥५॥

३५१ अन्वयः—रथिरा ! यः वां स्यः रथः युजानः वर्तिः परि याति, उस्माः वस्ते तेन अग्निना । उपसः व्युष्टौ अस्मिन् यज्ञे नः शं यो, नि वहतम् ॥५॥

३५१ अर्थ—हे (रथिरा) रथवाले देवों ! (यः वां) जो तुम्हारा (स्यः रथः), वह रथ (युजानः) घोड़ोंसे युक्त होनेपर (वर्तिः परि याति) घर चला जाता है, और (उस्माः वस्ते) तेजस्वी किरणोंसे पिघको आच्छादित रहता है, (तेन) उसी रथसे हे अग्निदेवों ! (उपसः व्युष्टौ) उपाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः) हमारे लिए शान्तिभी प्राप्ति तथा दुःखोंका हटाना (नि वहतं) करो ॥

[३५२]

३५२ नरां गीरेर्व विद्युतं तृपाणाऽस्मार्कमद्य मव्नोर्ष यातम् ।
पुरुषा हि वां गतिमिहवन्ते मा वांगन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥

३५२ नरा । गौराऽइव । त्रिऽद्युतम् । तृपाणा ।

अस्माकम् । अद्य । सर्वना । उप । यातम् ॥

पुरुऽथा । हि । वाम् । मतिऽभिः । हवन्ते ।

मा । वाम् । अन्ये । नि । यमन् । देवऽयन्तः ॥६॥

३५२ अन्वय - नरा । अद्य अस्माकं सर्वना उप यात, तृपाणा विद्युत गौरा
इव, यां पुरुषा हि मतिभि हवन्ते, अन्ये देवयन्तः यां मा नि यमन् ॥ ६ ॥

३५२ अर्थ - हे (नरा) नेता अश्विद्वौ ! (अद्य अस्माकं सर्वना)
आज हमारे सधनोके (उप यात) समीप आओ, (तृपाणा) प्यासे तुम दोनों
(विद्युत गौरा इव) चमकनेवाले मोमरसके प्रति गौरमृगीके तुल्य जलद
जाओ और पीओ । (वा) तुम्हें (पुरुषा हि) अनेक स्थानोंमें सचमुच
(मतिभि हवन्ते) बुद्धिपूर्वक सैयार किये स्तोत्रोंसे (हवन्ते) लोग
बुलाते हैं, (अन्ये देवयन्त) दूसरे लोग जो देवोंकी कामना करते हों वे (वा
मा नि यमन्) तुम्हें न रोक सकें ॥

[३५३]

३५३ युनं भुज्युमनंविद्धं समुद्र उदंइथुरर्णसो अस्त्रिधानैः ।

पुत्रिभिश्चमैरन्वयिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥७॥

३५३ युवम् । भुज्युम् । अवऽविद्धम् । समुद्रे ।

उत् । ऊदथुः । अर्णमः । अस्त्रिधानैः ॥

पुत्रिऽभिः । अश्वमैः । अन्वयिऽभिः ।

दंसनाभिः । अश्विना । पारयन्ता ॥७॥

३५३ अन्वय - अश्विना । समुद्र अवविद्ध युज्यु युव अस्त्रिधानैः अश्वमैः
अन्वयिभि पात्रिभि, दंसनाभि पारयन्ता अर्णस उत् ऊदथु ॥७॥

३५३ अर्थ - हे अश्विद्वौ ! (समुद्रे अवविद्ध भुज्यु) समुन्द्रमें गिरे
हुए भुज्युकी (युव) तुम दोनों (अस्त्रिधानैः) क्षीण न होनेवाले (अश्वमैः
अन्वयिभि) न बरकनेवाले, अन्वयसे रक्षित (पात्रिभि) पत्नीके तुल्य उदने
पाल पादनसे और (दंसनाभिः) क्रियाओंसे (पारयन्ता) पार के चलन हुए
(अर्णसः उत् ऊदथु) समुद्रपलममे ऊपर उठाकर दूर पहुँचा चुके ॥

३५३ भावार्थ— सुन्य समुद्रमें गिरा था । भस्मिदेवोंने उसे उठाया, अपने वाहनमें, पक्षीसदृश विमानमें, उसको लिया और समुद्रके पार ले जाकर उसको घर पहुंचा दिया ।

[३५४]

३५४ नू मे हवमा शृणुतं युवाना यासिष्टं वर्तिरंश्चिनाविरावत् ।
धत्तं रत्नानि जरतं च सूरिन् युयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥

३५४ नु । मे । हवम् । आ । शृणुतम् । युवाना ।
यासिष्टम् । वर्तिः । अश्चिना । इरावत् ॥
धत्तम् । रत्नानि । जरतम् । च । सूरिन् ।
युयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः॥८॥

३५४ [यह मंत्र ३३७ में देखिये]

[३५५] (क० ७।७०।१-७)

३५५ आ विश्ववाराऽश्चिना गतं नः प्र तत् स्थानमवाचि वा
पृथिव्याम् । अश्वो न वाजी शुनपृष्ठो अस्थादा यत्
सेदधुर्ध्रुवसे न योनिम् ॥१॥

३५५ आ । विश्ववारा । अश्चिना । गतम् । नः ।
प्र । तत् । स्थानम् । अवाचि । वाम् । पृथिव्याम् ॥
अश्वः । न । वाजी । शुनपृष्ठः । अस्थात् ।
आ । यत् । सेदधुः । ध्रुवसे । न । योनिम् ॥१॥

३५५ अन्ययः— विश्ववारा अश्चिना । पृथिव्यां वा तत् स्थानं प्र अवाचि,
नः आगतं, यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदधुः शुनपृष्ठः वाजी अश्वः न अस्थात् ॥१॥

३५५ वार्थ— हे (विश्ववारा अश्चिना) सवसे वरणीय भस्मिदेवों !
(पृथिव्यां वा तत् स्थानं) भूमिमें तुम दोनोंका यह स्थान (न अवाचि)
विशेष रंगसे वर्णित किया जा चुका है, यहांसे (नः आगतं) हमारे समीप

आभो, और (यत् भुवसे योनिं न भा सेदधुः) जिसपर स्थिर बैठनेके लिए अपने निज स्थानपर बैठनेके समानही तुम बैठो, वह स्थान (शुनपृष्ठः यात्री अथ. न) जिसकी पीठपर बैठना सुखकारक हो, ऐसे बलिष्ठ घोड़ेके समान यही (अरथात्) रहा है ॥

[३५६]

३५६ सिसंक्ति सा वां सुयतिश्चनिष्ठाऽर्तापि धर्मो मनुषो दुरोणे ।
यो वां समुद्रान्तसरितः पिपर्येतग्वा चित् सुयुजा युजानः ॥

३५६ सिसंक्ति । सा । वाम् । सुयमतिः । चनिष्ठा ।
अर्तापि । धर्मः । मनुषः । दुरोणे ॥
यः । वाम् । समुद्रान् । सरितः पिपति ।
एतद्गवा । चित् । न । सुयुजा । युजानः ॥२॥

३५६ अन्वय - सा चनिष्ठा सुयतिः वां सिसक्ति, मनुषः दुरोणे धर्मः अर्तापि, यः सुयुजा युजानः एतद्गवा चित् न, वां समुद्रान् सरितः पिपति ॥२॥

३५६ अर्थ - (सा चनिष्ठा सुयतिः) वह अत्यन्त वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिसक्ति) तुम्हारी सेवा करती है, (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (धर्म, अर्तापि) भक्ति प्रदीप्त है (यः) जो (सुयुजा युजानः) उत्तम जीव जानेवाले (एतद्गवा चित् न) घोड़ेके तुल्य (वां) तुम्हारे समीप जाता है और (समुद्रान् सरितः पिपति) समुन्दरों तथा नदियोंको पूर्ण करता है ॥

३५६ भावार्थ - हमारी बुद्धि अग्निदेवोंकी स्तुतिद्वारा सेवा करती है । अब यही याज्ञिकके घरमें अग्नि प्रदीप्त हुआ है, यज्ञ शुरू हुआ है । वह अग्निदेवोंके समीप इति पहुँचाया है और वृष्टिद्वारा नदियों और समुद्रोंको जलसे भर देता है ।

[३५७]

३५७ यानि स्थानान्पश्विना दुधार्थं दिवो यद्दीप्श्वोपघीषु विश्व ।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदन्तेषु जनाय दाशुपे यदन्ता ॥३॥

३५७ यानि । स्थानानि । अश्विना । दधाये इति ।
 दिवः । यद्दीपु । ओषधीषु । विक्षु ॥
 नि । पर्वतस्य । मूर्धनि । सदनता ।
 इपम् । जनाय । दाशुपे । वहन्ता ॥३॥

३५७ अन्वयः— अश्विना । दाशुपे जनाय इपं वहन्ता, पर्वतस्य मूर्धनि
 नि सदनता दिवः यद्दीपु ओषधीषु विक्षु यानि स्थानानि दधाये ॥ ३ ॥

३५७ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (दाशुपे जनाय) दानी पुरुषके लिए तुम (इपं
 वहन्ता) भक्त पहुँचाते हैं, (पर्वतस्य मूर्धनि) पहाड़के शिखरपर (नि सदनता)
 बैठते हैं, (दिवः) छुकोरकी (यद्दीपु ओषधीषु) बड़ी बड़ी सोमभादि
 वनस्पतियोंमें तथा (विक्षु) प्रजाओंमें (यानि स्थानानि दधाये) जो वनस्थान
 हैं वनका धारण करते हैं ॥

३५७ भावार्थ— अश्विदेव दाता पुरुषके लिये भक्त देते हैं, पर्वतके
 शिखरपर बैठते हैं, वहाँकी सोमादि औषधियाँ लाकर जो प्रजाजन वन
 करते हैं, वनकी सुरक्षा करते हैं ।

[३५८]

३५८ चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्वैवे यो ऋषीणाम् ।
 पुरुणि रत्ना दधतौ न्यस्मे अनु पूर्वाणि चरुयधुर्युगानि ४

३५८ चनिष्टम् । देवौ । ओषधीषु । अप्सु ।
 यत् । योग्याः । अश्वैवे इति । ऋषीणाम् ॥
 पुरुणि । रत्ना । दधतौ । नि । अस्मे इति ।
 अनु । पूर्वाणि । चरुयधुः । युगानि ॥४॥

३५८ अन्वयः— देवा । यत् ऋषीणां योग्याः अश्वैवे, ओषधीषु अप्सु
 चनिष्टं, अस्मे पुरुणि रत्नाणि दधतौ पूर्वाणि युगानि अनु चरुयधुः ॥ ४ ॥

३५८ अर्थ— हे (देवा) दानी अश्विदेवों ! (यत् ऋषीणां योग्याः) जो
 ऋषियोंके योग्य भक्त (अश्वैवे) तुम प्राप्त करते हो, वह (ओषधीषु)
 वनस्पतियोंमें (अप्सु) जलोंमें (चनिष्टं) सेवनीय वस्तु (अस्मे) हमें दो,
 अश्विनी दे० ३५

और (पुरुषि रत्नानि) अनेक रत्न भी हमें (नि वषत्सी) दो, तथा (पूर्वाणि युगानि) पूर्व युगोंके समानही (अनुचक्ष्यथुः) इन युगोंको प्रकट करो ॥

३५८ भावार्थ— आपियेकें योग्य पवित्र अन्न तुम औपधियोंसे और जलोंसे प्राप्त करते हो और अच्छी बहुत रत्न भी देते हो, इसलिये जैसे तुम पूर्व समयमें मयकी सहायता करते रहे, वैसेही सहायता अब भी करते जाओ ।

३५८ टिप्पणी— यहाँका अन्न औपधि और जलसे उत्पन्न होनेवाला है । चाकभोजनही है । मांस नहीं है । यहाँ 'पूर्वयुग' कहे हैं । इससे 'मये युग' जाने जाते हैं ।

[३५९]

३५९ शुश्रुवांसां चिदश्विना पुरुष्यमि ब्रह्माणि चक्षथे ऋषीणाम् ।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चर्निष्ठा ॥५॥

३५९ शुश्रुवांसां । चित् । अश्विना । पुरुषि ।
अभि । ब्रह्माणि । चक्षथे इति । ऋषीणाम् ॥
प्रति । प्र । यातम् । वरम् । आ । जनाय ।
अस्मे इति । वाम् । अस्तु । सुमतिः । चर्निष्ठा ॥५॥

३५९ शब्दार्थः— अश्विन । ऋषीणां पुरुषि ब्रह्माणि शुश्रुवांसां चित्
अभि चक्षथे, वरं प्रति आ प्र यातं, अस्मे जनाय वा सुमतिः चर्निष्ठा अस्तु ॥५॥

३५९ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (ऋषीणां) ऋषियोंके (पुरुषि) बहुतसे (ब्रह्माणि) स्तोत्र (शुश्रुवांसां चित्) सुनते हुएही (अभि चक्षथे) तुम सबका निरीक्षण करते हो, तथा (वरं प्रति) देखके प्रति (आ प्र यातं) आते हो, (अस्मे जनाय) हम लोगोंके लिए (वां सुमतिः) तुम्हारी अच्छी पुष्टि (चर्निष्ठा अस्तु) अन्न देनेवाली हो जाए । सहायक बन जाय ॥

[३६०]

३६० यो वाँयज्ञो नासित्या हविष्मान्कृतम्रह्मा समयोऽं भवाति ।
उप प्र यातं वरमा चर्निष्ठमिमा ब्रह्माण्यच्यन्ते युवम्याम्

३६० यः । वाम् । यज्ञः । नासत्या । हविष्मान् ।
 कृतऽब्रह्मा । सऽमर्यः । भवति ॥
 उप । प्र । यातम् । वरम् । आ । वसिष्ठम् ।
 इमा । ब्रह्माणि । ऋच्यन्ते । युवऽभ्याम् ॥६॥

३६० अन्वयः— नासत्या ! वां यः यज्ञ हविष्मान् कृत-ब्रह्मा समर्यः
 भवति; वरं वसिष्ठं उप आ प्र यातं, युवभ्यां इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते ॥ ६ ॥

३६० अर्थ— हे सत्य-पालक अग्निदेवों ! (वां यः यज्ञः) तुम्हारा जो यज्ञ
 (हविष्मान्) हविसे युक्त, (कृत-ब्रह्मा) जिसमें स्तोत्रनिर्माण पूर्ण हो चुका
 पैसा, (मर्यः भवति) मानवोंसे युक्त होता है, उन (वरं वसिष्ठं) श्रेष्ठ
 जनोंको बसानेहारे यज्ञ-कार्यके (उप) समीप तुम (आ प्र यातं) आ जाओ,
 क्योंकि (युवभ्यां) तुम्हारे छिपड़ी (इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते) ये सब स्तोत्र
 किये जाते हैं ॥

३६० भाषार्थ— यज्ञ किये जाते हैं, उनमें अनेक जनसमुदाय सम्मिलित
 होते हैं, उन मानवोंको सुलसे बसानेका कार्य होता है । यह यज्ञका मुख्य
 स्वरूप है ।

[३६१]

३६१ इयं मनीषा इयमैश्विना गीरिमां सुवृत्तिं वृषणा जुपेथाम् ।
 इमा ब्रह्माणि युवयून्मन्मन्मन् पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥७॥
 ३६१ इयम् । मनीषा । इयम् । अश्विना । गीः ।
 इमाम् । सुऽवृत्तिम् । वृषणा । जुपेथाम् ॥
 इमा । ब्रह्माणि । युवऽयूनि । अमन् ।
 यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥७॥

३६१ अन्वयः— वृषणा अश्विना । इयं मनीषा, इयं गीः, इमा सुवृत्ति
 जुपेथां, युव-यूनि इमा ब्रह्माणि अमन्, नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात ॥७॥

३६१ अर्थ— हे (वृषणा) बलवान् आग्निदेवों ! (इयं मनीषा) यह
 हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारा आपण है, हमारी (इमा सुवृत्ति

जुपेथां) इस सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करो, क्योंकि (युव-यूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा मरुताणि) ये स्तोत्र अव (अग्मन्) प्रचलित हुए हैं, (नः सदा) हमें हमेशा (यूवं) तुम लोग (स्वस्तिभिः पात) हितकारक साधनोंसे सुरक्षित रहो ॥

[३६२] (ऋ० ७।७१।१-६)

३६२ अप स्वसुखसो नजिहीते रिणक्ति कृष्णीरुपाय पन्थाम् ।
अश्वामघा गोमघा वा हुवेम दिवा नक्तं शरुमस्मद्
युयोतम् ॥१॥

३६२ अप । स्वसुः । उपसः । नक् । जिहीते ।
रिणक्ति । कृष्णीः । अरुपाय । पन्थाम् ॥
अश्वामघा । गोमघा । वाम् । हुवेम ।
दिवा । नक्तम् । शरुम् । अस्मत् । युयोतम् ॥१॥

३६२ अन्ययः— नक् स्वसुः उपसः अप जिहीते, अरुपाय कृष्णीः पन्था रिणक्ति, अश्वामघा गोमघा वा हुवेम, अस्मत् दिवा नक्तं शरुं युयोतम् ॥ १ ॥

३६२ अर्थ— (नक्) रात (स्वसुः उपसः) बहुत उपासे (अप जिहीते) दूर हटती है; (अरुपाय) काळ रंगवाले सूर्यके किये (कृष्णीः) काकी रात (पन्था रिणक्ति) मार्ग सुला करती है, (अश्वामघा गोमघा) घोड़ों तथा गायोंको बैभवके स्वरूपमें देनेवाले (वा हुवेम) तुम दोनोंको बुलाते हैं, (अस्मत्) हमसे (दिवा नक्तं) दिन तथा रात (शरुं युयोतं) हिंसा करनेवालेको दूर करदो ॥

३६२ भावार्थ— रात्री उपासे दूर हो रही है, और वह सूर्यके उदयके किये मार्ग दे रही है। इसी तरह तेजस्वी यीरोंको उचितिका मार्ग सुला कर देना चाहिये। यीरोंको उचिन है कि वे धातपास करनेवाले समानके शत्रुओंको दूर करें और जनताको सुरक्षित रहें।

[३६३]

३६३ उपायातं द्राक्षुपे मर्त्याय रथेन वाममश्विना वहन्ता ।
युयुतमस्मदनिराममीवां दिवानक्तं माध्वी त्रासीथां नः ॥२॥

३६३ उपऽआयातम् । दाशुपे । मर्त्यीय ।
 रथेन । वामम् । अश्विना । वहन्ता ॥
 युयुत्तम् । अस्मत् । अनिराम् । अमीवाम् ।
 दिवा । नक्तम् । माघ्नी इति । त्रासीधाम् । नः ॥२॥

३६३ अन्वयः— माघ्नी अश्विना । रथेन वामं वहन्ता दाशुपे मर्त्याय उप-
 आयातं; अस्मत् अश्विना अमीवा युयुत्तं; नः दिवा नक्तं त्रासीधाम् ॥ २ ॥

३६३ अर्थ— हे (माघ्नी) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवों ! (रथेन वामं
 वहन्ता) रथपर सुन्दर अश्व लेकर (दाशुपे मर्त्याय उप-आयातं) दानी
 मानवके लयीय आभे; (अस्मत्) हमसे (अनिराम्-हरां) अश्वके अभावको
 और (अमीवा युयुत्तं) रोगको दूर कर दो, (नः) हमें (दिवा नक्तं दिन-रात
 (त्रासीधाम्) सुरक्षित रहो ॥

३६३ भाषार्थ— अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अश्व रखें और हमारे पास
 आकर हमें दें । अकाल भाग रोग हमसे दूर हों और सदा हमारी सुरक्षा हो ।

३६३ मानसधर्म— जनताको उत्तम अश्व मिले, उनसे अकाल और रोग
 दूर किये जाय और प्रजाकी सदा सुरक्षा होती रहे ।

[३६४]

३६४ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
 स्यूमगमस्तिमृत्युग्भिर्ग्यैराश्विना वसुमन्तं वहधाम् ॥३॥
 ३६४ आ । वाम् । रथम् । अवमस्याम् । विऽउष्टौ ।
 सुम्नऽयवः । वृषणः । वर्तयन्तु ॥
 स्यूमऽगमस्तिम् । ऋतयुक्ऽभिः । अश्वैः ।
 आ । अश्विना । वसुमन्तम् । वहधाम् ॥३॥

३६४ अन्वयः— अवमस्यां व्युष्टौ वृषणः सुम्नायवः वां रथं आ वर्तयन्तु;
 अश्विना ! ऋतयुभिः अश्वैः स्यूम-गमस्तिं वसुमन्तं; आ वहधाम् ॥ ३ ॥

३६४ अर्थ— (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उपाके उदय होनेपर
 (वृषणः सुम्नायवः) बधवान् सुसम्पन्नक जानेवाले घोड़े (वां रथं) तुम्हारे

रथको (आ चरैयन्तु) इधर के भायें, हे भविदेवों ! (ऋतयुग्मिभः) सरलता-पूर्वक जोते जानेवाले (भयैः स्यूमगमस्ति) घोड़ोंसे सुखदायक किरणवाले (वसुमन्तं आ चरैधौ) धनयुक्त रथको इधर के आओ ॥

३६४ भावार्थ— उपकाशमें उठो, बलवान् और उत्तम गतिवाले घोड़े अपने रथको जोतो और उस रथको जनताके रहनेके स्थानोंमें के जाओ (और उनकी स्थिति देखो) ।

[३६५]

३६५ यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमां
उस्रयामा । आ न एना नासत्पोर्य यातमभि यद्वां
विश्वप्स्यो जिगाति ॥४॥

३६५ यः । वाम् । रथः । नृपती इति नृस्पती । अस्ति । वोळ्हा ।
त्रिवन्धुरः । वसुमान् । उस्रयामा ॥
आ । नः । एना । नासत्या । उप । यातम् ।
अभि । यत् । वाम् । विश्वप्स्यः । जिगाति ॥४॥

३६५ अन्वय — नृपती नासत्या ! वां यः रथः वसुमान् उस्रयामा त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति, एना नः उप आ यातं, यत् विश्वप्स्यः वां जिगाति ॥४॥

३६५ अर्थ— हे (नृपती नासत्या) मानवीके रक्षक और सख-पालक भवि-देवों ! (वां यः रथः) तुम्हारा जो रथ (वसुमान् उस्रयामा) धनयुक्त एवं प्रातःकालमें जानेवाला, (त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बंधनोवाला तथा स्थानपर शीघ्र पहुँचानेवाला है, (एना) उससे (नः उप आ यातं) हमारे समीप आओ, (यत्) ऐक (विश्वप्स्यः) सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र लाता है ॥

३६५ भावार्थ— मानवीकी सुरक्षा करनेवाले भविदेव हैं, उनकी रथ अनेक धर्मोंसे युक्त है, उसमें तीन बैटनेके स्थान हैं और वह शीघ्र पहुँचाने-वाला है, वह सब स्थानोंमें जा सकता है, उस रथमें बैठकर वे हमारे पास आजाय ।

[३६६]

३६६ युवं ज्यवानं जुरसोऽमुमुक्तं नि वेदव ऊहयुराशुमश्वम् ।
निरहेसस्तमसः स्पर्तमग्निं नि जाहुपं शिथिरे घातमन्तः ॥५॥

३६६ युवम् । ज्यवानम् । जुरसः । अमुमुक्तम् ।
नि । वेदवे । ऊहयुः । आशुम् । अश्वम् ॥
निः । अंहसः । तमसः । स्पर्तम् । अग्निम् ।
नि । जाहुपम् । शिथिरे । घातम् । अन्तरिति ॥५॥

३६६ अन्वयः— जसः ज्यवानं अमुमुक्तं, युवं भातुं अश्वं वेदवे नि ऊहयुः,
अग्निं तमसः अंहसः निस्पर्तं, जाहुपं शिथिरे अन्तः नि घातम् ॥ ५ ॥

३६६ अर्थ— (जसः) सुहावेसे ज्यवानको सुमने (अमुमुक्तं) सुहा दिया,
(युवं भातुं अश्वं) सुमने शीघ्रगामी घोड़ेको (वेदवे नि ऊहयुः) वेदु नरे-
शके पास पहुँचा दिया, (अग्निं तमसः अंहसः) अग्निको अँधेरेसे और कष्टसे
(निस्पर्तं) पूर्णतया पार किया और (जाहुपं शिथिरे अन्तः) नरेश जाहुप-
को अश्व हुप उसके राज्यमें पुनः (नि भातं) सुमने बिडला दिया ॥

[३६७]

३६७ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुपेयाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यगमन् युय पात स्वस्तिभिः सदा
नः ॥६॥

३६७ इयम् । मनीषा । इयम् । अश्विना । गीः ।
इमाम् । सुवृक्तिम् । वृषणा । जुपेयाम् ॥
इमा । ब्रह्माणि । युवयूनि । अगमन् ।
युयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥६॥

३६७ [यह मंत्र ३६१ पर देखो ।]

[३६८] (अ० आ० ११-५)

३६८ आ गोमता नासत्या रथेनाश्रिता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पर्हया श्रिया तन्वा
शुभाना ॥१॥

३६८ आ । गोमता । नासत्या । रथेन ।
अश्ववता । पुरुश्चन्द्रेण । यातम् ॥
अभि । वाम् । विश्वाः । नियुतः । सचन्ते ।
स्पर्हया । श्रिया । तन्वा । शुभाना ॥१॥

३६८ अन्वयः— नासत्या । गोमता अश्ववता पुरुश्चन्द्रेण रथेन आ यातः
स्पर्हया श्रिया तन्वा शुभाना वा अभि विश्वाः नियुतः सचन्ते ॥ १ ॥

३६८ अर्थ— हे सत्य-याक अश्विदेवों ! (गोमता अश्ववता) गावों और
अश्वोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) विविध जातहावदायक धनसे पूर्ण रथपरसे
(आ यातं) आओ; (स्पर्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा
शुभाना) शरीरसे शोभायमान होते हुए (वा अभि) तुम्हें (विश्वाः नियुतः
सचन्ते) सनी घोड़े सेवा करते हैं ॥

• ३६८ भाषार्थ— अश्विदेव सत्यके याकक हैं, गाँवों और घोड़ों तथा सुन्दर
रथ उनके पास हैं । वे सुन्दर और सुशोभित हैं । घोड़ोंकी रथमें जोतकर वे
आते हैं ।

[३६९]

३६९ आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोहि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य
वित्तम् ॥२॥

३६९ आ । नः । देवेभिः । उप । यातम् । अर्वाक् ।
सजोषसा । नासत्या । रथेन ॥
युवोः । हि । नः । सख्या । पित्र्याणि ।
समानः । बन्धुः । उत । तस्य । वित्तम् ॥२॥

३६९ अन्वयः— नास्तया ! देवेभिः सजोपसा नः अर्वाक् रथेन उप
यायातम् । नः युवोः द्वि सस्यौ पिश्याणि उग्र बन्धुः समानः तस्य वित्तम् ॥२॥

३६९ अर्थ— हे सायके पालक अभिदेवों ! (देवेभिः सजोपसा) देवता-
ओंके साथ तुम दोनों (नः अर्वाक्) हमारे समीप (रथेन उप यायातम्) अपने
रथपर बैठकर आजाओ क्योंकि (नः युवोः द्वि) हमारी तुम्हारे साथ (सस्यौ
पिश्याणि) मित्रता पितृपरंपरागत है, (उग्र बन्धुः समानः) और तुम्हारा
बंधुभाव भी समान है, (तस्य वित्तम्) उस बातको तुम जानचोड़ी हो ॥

३६९ टिप्पणी— इस मंत्रमें (नः युवोः पिश्याणि सस्यौ) कहा है ।
अर्थात् 'हमारी तुम्हारे साथ मित्रता पितृपरंपरासे चली आयी है' इससे यह
सिद्ध हो रहा है कि अभिदेवोंकी उपासना इस वसिष्ठ ऋषिके कुलमें पितृपिता-
महसे चली आती रही है ।

[३७०]

३७० उदु स्तोमासो अश्विनोरघुधञ्जामि ब्रह्माण्युपसश्च देवीः ।
आविवांसन् रोदसी धिष्ण्येमे अच्छा विप्रो नास्तया
विवक्ति ॥३॥

३७० उद् । ऊँ इति । स्तोमासः । अश्विनोः । अघुधन् ।
जामि । ब्रह्माणि । उपसः । च । देवीः ॥
आऽविवांसन् । रोदसी इति । धिष्ण्ये इति । इमे इति ।
अच्छ । विप्रः । नास्तया । विवक्ति ॥३॥

३७० अन्वयः— अश्विनोः स्तोमासः देवीः उपसः जामि ब्रह्माणि च उद्
अघुधन्, इमे धिष्ण्ये रोदसी आविवांसन् विप्रः नास्तया अच्छ विवक्ति ॥३॥

३७० अर्थ— (अश्विनोः स्तोमासः) अभिदेवोंके स्तोत्र (देवीः उपसः) सेजखी
— उधामोंकी (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंकी भी (उद् अघुधन्) जागृत
कर चुके हैं । (इमे धिष्ण्ये रोदसी) इन स्तुत्य सावाण्यदेवोंकी (आविवांसन्
विप्रः) परिचर्चा करता हुआ ज्ञानी पुरुष (नास्तया अच्छ विवक्ति) साय-
पालक अभिदेवोंका वर्णन करता है, स्तुति करता है ॥

३७० भावार्थ— अभिदेवोंके स्तोत्र उपःकालमेंही गाये जाते हैं, जिससे
सब बन्धु-बान्धव जाग्रत होते हैं । सुलोक और पृथ्वीकी स्तुति करता हुआ भक्त
साय साय अभिदेवोंके भी स्तोत्र गाता है ।

अश्विनी दे० ३६

[३७१]

३७१ वि चेदुच्छन्त्यश्विनां उपासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो
भरन्ते । ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अथेद् बृहदुग्रयः
समिधा जरन्ते ॥४॥

३७१ वि । च । इत् । उच्छन्ति । अश्विनौ । उपसः ।
प्र । वाम् । ब्रह्माणि । कारवः । भरन्ते ॥
ऊर्ध्वम् । भानुम् । सविता । देवः । अथेत् ।
बृहत् । अग्रयः । समुद्भवा । जरन्ते ॥४॥

३७१ अन्ययः— अश्विनौ ! उपासः वि उच्छन्ति चेत् वां कारवः ब्रह्माणि प्र
भरन्ते, देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अथेत् समिधा अग्रयः बृहत् जरन्ते ॥४॥

३७१ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (उपासः) उपासों (वि उच्छन्ति चेत्)
मैंधेरा हटा दें तो (वां) तुम्हें (कारवः) कार्यकर्ता लोग (ब्रह्माणि ॥ भरन्ते)
स्तोत्र भर देते या पूर्ण करते या गाते हैं, (देवः सविता) सविता देव
(ऊर्ध्वं भानुं अथेत्) ऊँचे प्रकाशका आश्रय केता है, अर्थात् सूर्य भग-
वान् अपने तेजस्वी किरणोंसे जगमगाने लगा है, तब (समिधा) समि-
धासे (अग्रयः) (बृहत् जरन्ते) बहुत प्रशंसित होते हैं ॥

[३७२]

३७२ आ पृश्वातां नसत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पार्श्वजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा
नः ॥५॥

३७२ आ । पृश्वातात् । नसत्या । आ । पुरस्तात् ।
आ । अश्विना । यातम् । अधरात् । उदक्तात् ॥
आ । विश्वतः । पार्श्वजन्येन । राया ।
यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥५॥

३७२ अन्वयः— नासत्या अधिना ! अधरात् उदक्तात् पश्चात्तात् पुरस्तात्
आ यातम्; पाश्चाज्येन राया विधत्तः आ (यातं) यूयं नः स्वस्तिभिः सदा
पात ॥ ५ ॥

३७२ अर्थ— हे सत्यपालक अग्निदेवों ! (अधरात्) नीचेसे (उदक्तात्)
ऊपरसे (पश्चात्तात्) पीछेसे और (पुरस्तात्) आगेसे (आ यातं)
तुम आओ; (पाश्चाज्येन राया) पाँचों प्रकारके लोगोंके हितकारी धनके साथ
(विधत्तः) चारों ओरसे (आयातं) तुम आओ, और (यूयं नः) तुम लोग
हमें (स्वस्तिभिः) कष्टार्थोंसे (सदा पात) हमेशा सुरक्षित रहो ॥

[३७३] (अ. ७।७३।१-५)

३७३ अतारिष्म तमसस्पा रमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजाऽमर्त्या हवते अग्निना गीः ॥ १ ॥

३७३ अतारिष्म तमसः । पारम् । अस्म ।
प्रति । स्तोमम् । देवयन्तः । दधानाः ॥
पुरुदंसा । पुरुतमा । पुराजा ।
अमर्त्या । हवते । अग्निना । गीः ॥ १ ॥

३७३ अन्वयः— देवयन्तः स्तोमं प्रति दधानाः अस्म तमसः पारं
अतारिष्म, गीः पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा अमर्त्या अग्निना हवते ॥ १ ॥

३७३ अर्थ— (देवयन्तः) देवोंकी कामना करते हुए (स्तोमं प्रति
दधानाः) स्तोत्रकी धारण करते हुए (अस्म तमसः पारं अतारिष्म) इस
अँधेरेके पार हम चले गये । (गीः) बाणी (पुरुदंसा) अनेक कार्यवाहके,
(पुरुतमा) अत्यन्त विशाल (पुराजा अमर्त्या अग्निना) पूर्वकाकले सुप्रसिद्ध
अमर अग्निदेवोंकी (हवते) बुलाती है, उनकी स्तुति गाती है ॥

३७३ भावार्थ— देवोंकी स्तुति करते करते अँधेरी रात्र समाप्त हुई, यथापि
अग्निदेवोंकी स्तुति चलही रही है ।

[३७४]

३७४ न्यु प्रियो मनुषः साद्वि होता नासत्या यो यजते चन्दते
च । अश्रीतं मध्वो अग्निना उपाक आ वां वोचे विदधेपु
प्रयस्वान् ॥ २ ॥

३७४ नि । ऊँ इति । प्रियः । मनुषः । सादि । होता ।
 नासत्या । यः । यजते । वन्दते । च ॥
 अक्षीतम् । मध्वः । अश्विनौ । उपाके ।
 आ । वाम् । वोचे । विदथेषु । ग्रयस्वान् ॥२॥

३७४ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! यः यजते वन्दते च, होता मनुषः
 प्रियः नि सादि; उपाके मध्वः अक्षीतं, विदथेषु ग्रयस्वान् वां आ वोचे ॥२॥

३७४ अर्थ— हे सत्यपाकक अश्विदेवों ! (यः यजते) जो यज्ञ करता है,
 (वन्दते च) और प्रणाम करता है, ऐसा यह (होता मनुषः प्रियः) दानी और
 मानवका प्यारा यही (नि सादि) बैठ गया है, तुम दोनों (उपाके मध्वः
 अक्षीतं) समीप जाकर मधुररसका पान करो, (विदथेषु ग्रयस्वान्)
 यज्ञोंमें भक्त साथ लेकर मैं (वां आ वोचे) तुम्हारी स्तुति करता हूँ ॥

३७४ भाष्यार्थ— मैं अश्विदेवोंके किये यजन करता हूँ, उनको प्रणाम
 करता हूँ, मैं उनका प्रिय भक्त यही बैठा हूँ, अश्विदेव यहाँ आवें और मधुर
 सोमरसका पान करें । मैंने इन यज्ञोंमें कथमभक्त सिद्ध किया है और उसके
 साथ मैं तुम्हारी स्तुति करता हूँ ।

[३७५]

३७५ अहेम युज्ञं पथाग्राणा इमां सुवृत्तिं वृपणा जुपेथाम् ।
 शुष्टीवेव प्रेषितो वामवोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥३॥
 ३७५ अहेम । युज्ञम् । पथाम् । उराणाः ।
 इमाम् । सुवृत्तिम् । वृपणा । जुपेथाम् ॥
 शुष्टीवाऽहम् । प्रऽहंपितः । वाम् । अवोधि ।
 प्रति । स्तोमैः । जरमाणः । वसिष्ठः ॥३॥

३७५ अन्वयः— वृपणा ! इमां सुवृत्तिं जुपेथा, वो प्रति प्रेषितः जरमाणः
 वसिष्ठः शुष्टीवा इव स्तोमैः अवोधि । पथां उराणाः यज्ञं अहेम ॥ ३ ॥

३७५ अर्थ— हे (वृपणा) बलिष्ठ अश्विदेवों ! तुम (इमां सुवृत्तिं जुपेथा)
 मैं भगुड़ी स्तुतिका सेवन करो, (वो प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा

दुःखा (जरमाणः वसिष्ठः) स्तुति करता दुःखा वसिष्ठ (धुलीवा इव) ग्रीष्म-
गामी वृत्तके पृथक् तुम्हें (रत्नोमैः भवोधि) स्तुति रत्नोमैसे जागृत कर चुका
है । (पथां उवाणाः) यज्ञमार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम सब तुम्हारे किये
(यज्ञं भवेम) यज्ञको सम्पन्न करते हैं ॥

३७५ भावार्थ— जिसका मन देवतापरही लगा है ऐसा एकाम्र भक्त
यह वसिष्ठ है, यह तुम्हारे स्तोत्र गा रहा है । यज्ञमार्गका अनुसरण करने-
वाले हम सब तुम्हारे कियेही थे यज्ञ कर रहे हैं । (एकाम्रतासे स्तुति करनी
चाहिये और अपना सब कर्म प्रभुको समर्पण करना चाहिये ।)

[३७६]

३७६ उप त्या वही गमतो विशं नो रक्षोहणा संभृता
वील्लपाणी । समन्धांस्यगमत मत्सराणि मा नो
मर्धिष्टमा गतं शिवेन ॥४॥

३७६ उप । त्या । वही इति । गमतः । विशम् । नः ।
रक्षःहना । सम्भृता । वील्लपाणी इति वील्लपाणी ॥
सम् । अन्धांसि । अगमत । मत्सराणि ।
मा । नः । मर्धिष्टम् । आ । गतम् । शिवेन ॥४॥

३७६ अन्वयः— त्या वही वील्लपाणी रक्षोहणा संभृता नः विशं उप
गमतः, मत्सराणि अन्धांसि सं अगमत, न मा मर्धिष्टं शिवेन आ गतम् ॥ ४ ॥

३७६ अर्थ— (त्या वही) वे होनेवाले, (वील्लपाणी) दह हाथोंसे युक्त,
(रक्षोहणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और संभारयुक्त अधिदेव
(नः विशं उप गमतः) हमारी प्रजाके क्षमीय आवे हैं, (मत्सराणि अन्धांसि
सं अगमत) मानन्द देनेवाले अब हकट्टे हो चुके, (नः मा मर्धिष्टं) हमें कष्ट
न दो, और (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे हथर आओ ॥

३७६ भावार्थ— अपने हाथोंमें अब यदाओ, दुष्टोंका वध करो, सब संभार
एकत्र करो, प्रजाजनोके पास जाओ, मानन्ददायक अब हकट्टे करो, किसीको
कष्ट न दो, शुभभावसे हथर आओ । (शुभभावसे गमन करो ।)

[३७७]

३७७ आ पश्चात्तां नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पार्श्वजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः
सदा नः ॥५॥

३७७ आ । पश्चात्तात् । नासत्या । आ । पुरस्तात् ।
आ । अश्विना । यातम् । अधरात् । उदक्तात् ॥
आ । विश्वतः । पार्श्वजन्येन । राया ।
यूयम् । पात । स्वस्तिभिः । सदा । नः ॥५॥

३७७ [यह मंत्र ३७९ पर देखो]

[३७८]

(न. ७।७४।१-६) प्रगाथः = (विषमा बृहती + लमा सती बृहती)

३७८ इमा उ वां दिविष्टय उस्त्रा हवन्ते अश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसु विश्विंशं हि गच्छथः ॥१॥
३७८ इमाः । ऊँ इति । वाम् । दिविष्टयः ।
उस्त्रा । हवन्ते । अश्विना ।
अयम् । वाम् । अह्ने । अवसे । शचीवसु इति शचीवसु ।
विश्वम् विश्वम् । हि । गच्छथः ॥१॥

३७८ अन्वयः— शचीवसु । उस्त्रा अश्विना । इमाः दिविष्टयः वां उ हव-
न्ते, अवसे अयं वामह्वे, विश्वविश्वं हि गच्छथः ॥१॥

३७८ अर्थ— हे (शचीवसु) शक्तिरूपी धनसे युक्त भौर (उस्त्रा) प्रकाशने
हारे भक्षिदेवो ! (इमा दिविष्टयः) ये सुलोककी प्राप्ति की इच्छा करनेवाले
(वां उ) तुम्हें ही (हवन्ते) बुलाते हैं ; (अवसे) रक्षा के लिए (अयं वाम-
ह्वे) यह मैं तुम्हें बुलाता हूँ, क्योंकि (विश्वविश्वं हि गच्छथः) तुम हर
प्रजा के समीप जाते हो ॥

३७८ भावार्थ— भक्षिदेव शक्तिसे संबन्ध हैं, ये भवत उनकी प्रार्थना
करते हैं, सुरक्षा के लिये मैं भी उनकी ही स्तुति करता हूँ, क्योंकि भक्षिदेव
प्रायः मनुष्य के पास जाते हैं । (भौर उनकी सहायता करते हैं ।)

[३७९]

३७९ युवं चित्रं ददधुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिवतं सोम्यं मधु ॥२॥

३७९ युवम् । चित्रम् । ददधुः । भोजनम् । नरा ।
चोदेथाम् । सूनृतावते ॥
अर्वाक् । रथम् । समनसा । यच्छतम् ।
पिवतम् । सोम्यम् । मधु ॥२॥

३७९ अन्वयः— नरा ! युवं चित्रं भोजनं ददधुः, सूनृतावते चोदेथां, समनसा रथं अर्वाक् नि यच्छतं सोम्यं मधु पिवतम् ॥२॥

३७९ अर्थ— हे (नरा) नेता अधिदेवों ! (युवं चित्रं भोजनं) तुम दोनों विविध प्रकारका भोजन (ददधुः) दे चुके हो, और उसे (सूनृतावते चोदेथां) सच्ची वाणीसे युक्त मनुष्यको प्रेरित करो; (समनसा रथं) एक विचारवाले होकर रथको (अर्वाक् नि यच्छतं) हमारे सम्मुख रोके रखो और (सोम्यं मधु पिवतं) सोमसे युक्त मीठे रसका पान करो ॥

३७९ भावार्थ— मानवोंके नेता अधिदेव विविध प्रकारका भोजन भक्तोंको देते हैं, मनुष्योंको सरकर्मकी ओर प्रेरणा करते हैं, अतः वे शुभ मनोभावनासे हमारेवास्त आजीव और मधुर सोमरस पीयें ।

[३८०]

३८० आ यातुर्धुर्भूषतं मर्ध्वः पिवतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसु मा नो मर्षिष्टमा गतम् ॥३॥

३८० आ । यातम् । उप । भूषतम् ।
मर्ध्वः । पिवतम् । अश्विना ॥
दुग्धम् । पयः । वृषणा । जेन्यावसु इति ।
मा । नः । मर्षिष्टम् । आ । गतम् ॥३॥

३८० अन्वयः— जेम्हा-वसू वृषणा अश्विना आयातं, उप भूपतं मयः ।
पिबतं, नः मा मर्षिष्टं आ गतं वयः दुग्धम् ॥ ३ ॥

३८० अर्थ— हे (जेम्हा-वसू) धनोंकी जीतनेवाले (वृषणा) बलि तु
अश्विदेवों । (आ यातं) आओ, (उप भूपतं) अर्ककृत करो, (मयः
पिबतं) मधुररसका पान करो, (नः मा मर्षिष्टं) हमें न हिंसित करो,
(आगतं) आओ और (वयः दुग्धं) दुग्धका दोहन किया है ॥

[३८१]

३८१ अश्वासो ये वामुप दाशुपो गृहं युवा दीयन्ति विभ्रतः ।
मक्षुयुभिर्नरा हयैभिरश्विना ऽऽ देवा यातमस्मयू ॥४॥

३८१ अश्वासः । ये । वाम् । उप । दाशुपः । गृहम् ।
युवाम् । दीयन्ति । विभ्रतः ॥
मक्षुयुभिः । नरा । हयैभिः । अश्विना ।

आ । देवा । यातम् । अस्मयू इत्यस्मयू ॥४॥

३८१ अन्वयः— वा ये अश्वास विभ्रतः युवा दाशुपः गृहं उप दीयन्ति ;
नरा अश्विना । देवा । अस्मयू मक्षुयुभिः हयैभिः आ यातम् ॥ ४ ॥

३८१ अर्थ— (वा ये अश्वासः) तुम्हारे जो घोड़े (विभ्रतः युवा) धारण
करनेवाले तुम्हें (दाशुपः गृहं) दागी पुष्टपके चरतक (उप दीयन्ति)
पहुँचा देते हैं, हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! तथा (देवा) देवताहारी तुम
(अस्मयू) हमसे मिलनेकी चाह रखनेवाले होकर (मक्षुयुभिः हयैभिः)
शीघ्रगामी घोड़ोंसे (आ यात) आ जाओ ॥

[३८२]

३८२ अधो ह यन्तो अश्विना पृथः सचन्त सूरयः ।

ता यंसतो मघर्वद्भ्यो ध्रुवं यशश्छर्दिस्मभ्यं नासत्या ॥५॥

३८२ अध । ह । यन्तः । अश्विना ।

पृथः । सचन्त । सूरयः ॥

ता । यंसतः । मघर्वद्भ्यः । ध्रुवम् । यशः ।

छर्दिः । अस्मभ्यम् । नासत्या ॥५॥

३८२ अन्वयः— नास्तया अभिजा ! अथा सूरयः यन्तः पृक्षः सचन्तः, मघवद्भ्यः अरमभ्यं ता छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः ॥ ५ ॥

३८२ अर्थ— हे सत्यपालक अभिदेवो ! (अथा सूरयः) अथ विद्वान् लोग (यन्तः) यत्न करनेपर (पृक्षा सचन्त इ) अन्न प्राप्त करते हैं, (मघवद्भ्यः अरमभ्यं) घनिक इम लोगोंको (ता) मालिख तुम दोनों (छर्दिः) घर और (ध्रुवं यशः यंसतः) स्थिर यश देदो ॥

३८२ भावार्थ— विद्वान् लोग प्रयत्न करके अन्न प्राप्त करते हैं । उस अन्नका वे यज्ञ करते हैं, जिससे उत्तम घर और स्थिर यश मिलता है ।

३८२ मान्यधर्म— मनुष्य सत्यका पालन करें, विद्वान् बनकर प्रयाससे विविध अन्न प्राप्त करें, उसका यज्ञ करें, (सबकी मलाईके लिये उसका समर्पण करें,) और इससे अनेकोंको भाग्य देनेवाला घर और स्थायी यश कमावें ।

[३८३]

३८३ प्र ये ययुर्युक्तासो रथाश्च नृपातारो जनानाम् ।

उत स्वेन शर्वसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम् ॥ ६ ॥

३८३ प्र । ये । ययुः । अयुक्तासः । रथाःश्च ।

नृपातारः । जनानाम् ॥

उत । स्वेन । शर्वसा । शूशुवुः । नरः ।

उत । क्षियन्ति । सुक्षितिम् ॥ ६ ॥

३८३ अन्वयः— ये जनानां नृपातारः अयुक्तासः रथाश्च ययुः उत नरः स्वेन शर्वसा शूशुवुः उत सुक्षितिं क्षियन्ति ॥ ६ ॥

३८३ अर्थ— (ये जनानां) जो लोगोंके (नृपातारः) पालक (अ-युक्तासः) भेदियेके गुणोंको भर्पाव कूरताको छोड़कर (रथाःश्च ययुः) रथोंके समान भागे बढते हैं, (उत नरः) तथा वे नेता (स्वेन शर्वसा) अपने निजी बलसे (शूशुवुः) बढ़ गये और (उत सुक्षितिं क्षियन्ति) वैसेही अच्छे स्थानमें रहते हैं ॥

३८३ भावार्थ— सब लोगोंकी सुरक्षा करो, कूर न बनो, आगे बढ़कर प्रगति करो, अपना बल बढ़ाकर समर्थ बनो और उत्तम भूमिमें उत्तम देगले रहो ।

[३८४] (अ. ८।५।१—३७)

(३८४-४९०) अज्ञातिथिः काण्वः । (३७ पूर्वार्धस्य) । गायत्री; ३७ बृहती ।

३८४ दूराद्विद्वेयं यत् सत्यरुणप्सुराशिक्षितत् ।
वि भ्रातुं विश्वघातनत् ॥१॥३८४ दूरात् । इह इह । यत् । सती ।
अरुणप्सुः । अशिक्षितत् ॥
वि । भ्रातुम् । विश्वघा । अतनत् ॥१॥

३८४ अन्वयः— यत् अरुणप्सुः दूरात् इह इह सती अशिक्षितत् भ्रातुं विश्वघा वि अतनत् ॥ १ ॥

३८४ अर्थ— (यत्) जब (अरुणप्सुः) काल रंगवाली डपा (दूरात् इह इह सती) दूरसेही मानों इधरही जाती हुई सी (अशिक्षितत्) क्रमशः खेत वर्णवाली हुई, तब (भ्रातुं) सूर्यको (विश्वघा) सभी प्रकारसे (वि अतनत्) कैला चुकी है ॥

३८४ भावार्थ— जब काल रंगवाली डपा खेत वर्णवाली बनने लगी तब विशेष प्रकाश हुआ और सूर्य भी चमकने लगा ।

[३८५]

३८५ नृवद् दक्षा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।
सचैथे अश्विनोपसम् ॥२॥३८५ नृवत् । दक्षा । मनःयुजा ।
रथेन । पृथुपाजसा ॥
सचैथे हर्त । अश्विना । उपसम् ॥२॥

३८५ अन्वयः— दक्षा अश्विना । नृवत् मनोयुजा पृथुपाजसा रथेन उपसं सचैथे ॥२॥

३८५ अर्थ— हे (दक्षा) शत्रुविनाशक अग्निदेवों ! (नृवत्) मुझ ने त-
के समान हो और (मनो-युजा) मनमें इच्छा करतेही भाते हैं, और (पृथु-
पाजसा रथेन) बड़े विशाल बल या अक्षवाले रथसे (उपसं सचैथे) वषाके
साथ साथ चलने लगते हो ॥

[३८६]

३८६ युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदक्षत ।
वाचं दूतो यथोहिषे ॥३॥

३८६ युवाभ्याम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
प्रति । स्तोमाः । अदक्षत ॥
वाचम् । दूता । यथा । ओहिषे ॥३॥

३८६ अन्वयः— वाजिनीवसू । युवाभ्यां प्रति स्तोमाः अदक्षत, दूता यथा वाचं ओहिषे ॥३॥

३८६ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) धनको घसानेवाके अभिदेवों । (युवाभ्यां प्रति) तुम्हारी ओर (स्तोमाः अदक्षत) स्तोत्र आते हुए दीज पड़ते हैं, (दूता यथा) दूत जैसे कारण है, ऐसेही (वाचं ओहिषे) वाणीको मैं तुम्हारेतक पहुँचाता हूँ ॥

३८६ भावार्थ— अभिदेव धनको देते हैं, इसलिये उनके स्तोत्र गाये जाये हैं, और सेवकके समान उनके विषयमें बर्णन करते हैं ।

[३८७]

३८७ पुरुप्रिया न ऊतये पुरुमन्द्रा पुरुवसू ।
स्तुपे कणासो अश्विना ॥४॥

३८७ पुरुऽप्रिया । नः । ऊतये ।
पुरुऽमन्द्रा । पुरुवसू इति पुरुऽवसू ॥
स्तुपे । कणासः । अश्विना ॥४॥

३८७ अन्वयः— नः ऊतये पुरुप्रिया पुरुमन्द्रा पुरुवसू अश्विना कणासः स्तुपे ॥ ४ ॥

३८७ अर्थ— (नः ऊतये) हमारी सुरक्षाके लिये (पुरुप्रिया) बहुतोंके प्यारे (पुरुमन्द्रा) बहुतोंको अत्यन्त हर्षित करनेवाले (पुरुवसू) अधिक धन देनेवाले अभिदेवोंकी (कणासः स्तुपे) कण्व परिवारका मैं स्तुति करता हूँ ॥

३८७ टिप्पणी — यहाँ 'कणासः' पद कण्व कुलके अनेक ऋषियोंका वाचक है ।

[३८८]

३८८ मंहिष्ठा वाजसातमेपयन्ता शुभस्पती ।
गन्तारा दाशुपौ गृहम् ॥५॥

३८८ मंहिष्ठा । वाजसातमा ।
इपयन्ता । शुभः । पती इति ॥
गन्तारा । दाशुपः । गृहम् ॥५॥

३८८ अन्वयः— मंहिष्ठा वाजसातमा शुभस्पती इपयन्ता, दाशुपः गृहं
गन्तारा ॥ ५ ॥

३८८ अर्थ— (मंहिष्ठा) मध्यन्त महनीय, (वाजसातमा) पथेष्ट भक्त,
बल वैनेहारे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पावनकर्ता (इपयन्ता) भक्त
उत्पन्न करनेहारे और (दाशुपः गृहं) दासी पुत्रके घरपर (गन्तारा) जाने-
वाले अभिदेव हैं ॥

३८८ भावार्थ—बड़े, भक्तदाय करनेवाले, शुभ कार्य करनेवाले, भक्त
उत्पन्न करनेवाले, दाताकी सहायतायें उसके घर जानेवाले अभिदेव हैं । (वैसे-
ही मनुष्य बनें) ।

[३८९]

३८९ ता सुदेवाय दाशुपे सुमेधामवितारिणीम् ।
घृतैर्गन्धूतिमुक्षतम् ॥६॥

३८९ ता । सुदेवाय । दाशुपे ।
सुमेधाम् । अवितारिणीम् ॥
घृतैः । गन्धूतिम् । उक्षतम् ॥६॥

३८९ अन्वयः— सुदेवाय दाशुपे ता अवितारिणीं सुमेधां गन्धूतिं घृतैः
उक्षतम् ॥ ६ ॥

३८९ अर्थ— (सुदेवाय) अच्छे सेवस्त्री (दाशुपे) दासीके किये (ता)
ये विस्वात तुम दोनों अभिदेव (अवितारिणीं) नष्ट न होनेवाली (सुमेधां)
भरपूर बुद्धि तथा (गन्धूतिं घृतैः उक्षतं) गौर्भोंकी सुरक्षा करनेवाली शक्तिको
पत्नीसे सींच देवें ॥

३८९ भावार्थ— अच्छे दाताकी तारक और गोरक्षक-सुखिकी और संरक्षक-
वाकितकी अभिदेव पृथाविसे अधिक समर्थ बनायें ।

३८९ मानवधर्म— पृथावि पदार्थोंका सेवन करके अपनी तारक-शक्ति,
सुखवि और गोरक्षणकी शक्ति बढ़ावें ।

[३९०]

३९० आ० नः स्तोममूर्ध्वं द्रवत् तूर्यं इयेनेभिः आशुभिः ।
यातमश्वेभिरश्विना ॥७॥

३९० आ । नः । स्तोमम् । उर्ध्वम् । द्रवत् ।
तूर्यम् । इयेनेभिः । आशुभिः ॥
यातम् । अश्वेभिः । अश्विना ॥७॥

३९० अन्वयः— अश्विना । इयेनेभिः आशुभिः अश्वेभिः नः स्तोमं दप तूर्यं
द्रवत् आ यातम् ॥ ७ ॥

३९० अर्थ— हे अश्विदेवों ! (इयेनेभिः) इयेनपक्षीके समान (आशुभिः
अश्वेभिः) जीवगामी घोड़ोंसे (नः स्तोमं दप) हमारे यज्ञके समीप (तूर्यं
द्रवत्) जलद और दौड़ते दौड़ते (आ यातं) आओ ॥

[३९१]

३९१ येभिस्त्रिभिः परावर्तं दिवो विश्वानि रोचना ।
त्रीन् अक्षन् परिदीयथः ॥८॥

३९१ येभिः । त्रिभिः । परावर्तः ।
दिवः । विश्वानि । रोचना ॥
त्रीन् । अक्षन् । परिदीयथः ॥८॥

३९१ अन्वयः— त्रिभिः दिवः त्रीन् अक्षन् परावर्तः येभिः विश्वानि रोचना
परिदीयथः ॥ ८ ॥

३९१ अर्थ— (त्रिभिः दिवः) तीन दिन और (त्रीन् अक्षन्) तीन रातों-
तक (परावर्तः) दूर देशसे (येभिः) जिन जानोंकी सहायतासे (विश्वानि
रोचना) सभी जगद्गतासे सेवो-मोक्षोंके (परि-दीयथः) इदंमिदं तुम संचार
करते हो उन्हीपर बैठकर इधर आओ ॥

३९१ टिप्पणी—अधिदेवोंके यान इयेनपक्षीके सदृश आकाशमें तीन दिन और तीन रातोंतक अधिकल रूपसे संचार करते थे ।

[३९२]

३९२ उ॒त नो गोम॑तीरि॒प उ॒त सा॒तीर॑हर्वि॒दा ।

वि प॒थः सा॒तये॑ सितम् ॥९॥

३९२ उ॒त । नः । गोऽम॑तीः । इ॒पः ।

उ॒त । सा॒तीः । अ॒हःऽवि॒दा ॥

वि । प॒थः । सा॒तये॑ । सि॒तम् ॥९॥

३९२ अन्यय - अहर्विदा । उत नः गोमती इपः उत साती, सातये पथ वि सितम् ॥ ९ ॥

३९२ अर्थ— हे (अहर्विदा) दिनको जल्लानेहारे । (उत) और एक बात है कि (न. गोमती इप) हमें गायोंसे युक्त भक्ष (उत सातीः) और बाँटने-योग्य सपत्तियों वेदों, (सातये) ठीक दान करनेके लिये (पथ वि सित) मार्ग प्रस्तुत हो ॥

[३९३]

३९३ आ नो गोम॑न्तम॒श्विना सु॒वीरं॑ सु॒रथं॑ रु॒पिम् ।

यो॒ऽहम् अ॒श्वीव॑तीरि॒पः ॥१०॥

३९३ आ । नः । गोऽम॑न्तम् । अ॒श्विना ।

सु॒वीरि॑म् । सु॒रथं॑म् । रु॒पिम् ॥

यो॒ऽहम् । अ॒श्वीव॑तीः । इ॒पः ॥१०॥

३९३ अन्ययः— अश्विना । न अश्वीवती इप गोमन्त सुरथ सुवीर रपि आ योऽहम् ॥ १० ॥

३९३ अर्थ— हे अधिदेवों ! (न) हमें (अश्वीवती इप) योरोसे पूर्ण भक्त (सुरथ सुवीर रपि) अष्ट रथ तथा वीर सतानसे युक्त धन (आ योऽहम्) पहुँचा दो ॥

[३९४]

३९४ याव॑द्याना शु॒मस्प॑ती द॒स्रा हि॑र॒ण्यव॑र्तनी ।

पि॒पतं॑ सो॒म्यं म॑धु ॥११॥

३९४ वृधुधाना । शुभः । पती इति ।
 दक्षा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ॥
 पिबतम् । सोम्यम् । मधु ॥ ११ ॥

३९४ अन्वयः— शुभस्वती । दक्षा । हिरण्यवर्तनी । वृधुधाना सोम्यं मधु
 पिबतम् ॥ ११ ॥

३९४ अर्थ— हे (शुभः—पती) शुभ कायोंके अधिपति । (दक्षा) शत्रु-
 विनाशक । (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय रथवाले अधिदेवों । (वृधुधाना)
 पढते हुए तुम दोनों (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरससे भिक्षादे बाह्यका
 पान करो ॥

[३९५]

३९५ अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः ।
 छुर्दिषेन्तमदाभ्यम् ॥ १२ ॥
 ३९५ अस्मभ्यम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
 मघवत्ऽभ्यः । च । सऽप्रथः ॥
 छुर्दिः । यन्तम् । अदाभ्यम् ॥ १२ ॥

३९५ अन्वयः— वाजिनी-वसू । अस्मभ्यं मघवद्भ्यः च सप्रथः अदाभ्यं
 छुर्दिः यन्तम् ॥ १२ ॥

३९५ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) सेनाकपी धनवाले । (अस्मभ्यं)
 हमें (मघवद्भ्यः च) और धनिकोंको (सप्रथः) आवश्यक विस्तीर्ण (अदाभ्यं
 छुर्दिः यन्तं) दवानेमें अस्मभव याने सुरङ्ग घर देदो ॥

[३९६]

३९६ नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं त्वमा गतम् ।
 मो ष्वरुन्मा उपारतम् ॥ १३ ॥
 ३९६ नि । षु । ब्रह्म । जनानाम् ।
 या । अविष्टम् । त्वयम् । आ । गतम् ॥
 मो इति । मु । अन्यान् । उप । अरतम् ॥ १३ ॥

३९६ अन्वयः— या जनानां मद्य सु नि भविष्टं, त्वं आगतं, अन्यान् मो
 हयारतम् ॥ १३ ॥

३९६ अर्थ— (या) जो तुम दोनों (जनानां मद्य) जनताके ज्ञानको
 (सु नि भविष्टं) भली भौति खूब सुरक्षित रख चुके, ऐसे तुम (त्वं आगतं)
 बहुत बलद् भाओ (अन्यान्) दूसरोंके (मय) समीप (मो हयारतं) कभी न
 जाओ ॥

[३९७]

३९७ अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः ।
 मध्वो रातस्य धिण्या ॥ १४ ॥

३९७ अस्य । पिबतम् । अश्विना ।
 युवम् । मदस्य । चारुणः ॥
 मध्वः । रातस्य । धिण्या ॥ १४ ॥

३९७ अन्वयः— धिण्या अश्विना । अस्य चारुणः मदस्य मध्वः रातस्य
 पिबतम् ॥ १४ ॥

३९७ अर्थ— हे (धिण्या) पूजनीय अश्विदेवों ! (अस्य चारुणः)
 इस सुन्दर (मदस्य मध्वः) हर्षजनक, मीठे सोमको जोकि (रातस्य)
 दान दिया जा चुका है (पिबतं) तुम पीजाओ ॥

[३९८]

३९८ अस्मे आ वहतं रयि शतवन्तं सहस्रिणम् ।
 पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥ १५ ॥

३९८ अस्मे इति । आ । वहतम् । रयिम् ।
 शतवन्तम् । सहस्रिणम् ॥
 पुरुक्षुम् । विश्वधायसम् ॥ १५ ॥

३९८ अन्वयः— पुरुक्षुं विश्वधायसं शतवन्तं सहस्रिणं रयि अस्मे आ
 वहतम् ॥ १५ ॥

३९८ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (पुरुक्षुं) बहुतोंको निवास देनेवाले (विश्व-
 धायसं) समीका धारण करनेवाले (शतवन्तं सहस्रिणं रयिं) सैकड़ों हजारों
 संख्यावाले धनको (अस्मे आ वहतम्) हमें पहुँचाओ ॥

[३९९]

३९९ पुरुषा चिद्धि वां नरा विद्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्विरश्विना गतम् ॥१६॥

३९९ पुरुषा । चित् । हि । वाम् । नरा ।
विद्वयन्ते । मनीषिणः ॥
वाघत्तुर्भिः । अश्विना । आ । गतम् ॥१६॥

३९९ अन्वयः— अश्विना ! मनीषिणः नराः वां पुरुषा चित् हि विद्वयन्ते;
वाघद्विः आ गतम् ॥ १६ ॥

३९९ अर्थ— (मनीषिणः नराः) समनशील नैका (वां) तुम्हें (पुरुषा
चित् हि) सभी स्थानोंमें जरूर (विद्वयन्ते) विशेष रूपसे बुकाते हैं,
हसकिप् (वाघद्विः आ गतं) वाहनोसे आगये ॥

[४००]

४०० जनांसो वृक्तवर्हिपो हविष्मन्तो अरंकृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥१७॥

४०० जनांसः । वृक्तवर्हिपः ।
हविष्मन्तः । अरम्भकृतः ॥
युवाम् । हवन्ते । अश्विना ॥१७॥

४०० अन्वयः— अश्विना ! वृक्तवर्हिपः हविष्मन्तः अरंकृतः जनांसः युवां
हवन्ते ॥ १७ ॥

४०० अर्थ— (वृक्तवर्हिपः) कुशासन कैलासे हुए (हविष्मन्तः अरंकृतः)
हविषाळे, भक्तकृत (जनांसः) लोग (युवां हवन्ते) तुम्हें बुकाते हैं ।

[४०१]

४०१ अस्मार्कमथ वामयं स्तोमो चार्हिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

४०१ अस्मार्कम् । अथ । वाम् । अयम् ।
स्तोमः । चार्हिष्ठः । अन्तमः ॥
युवाभ्याम् । भूत्तु । अश्विना ॥१८॥

अश्विनो दे० ३८

४०१ अन्वयः— अद्य अग्निना । अस्माकं अयं वां वाहिष्ठः स्तोमः युवाभ्यां
अन्तमः भूतु ॥ १८ ॥

४०१ अर्थ— (अद्य) आज हे अग्निदेवों । (अस्माकं अयं) हमारा यह
(वां वाहिष्ठः) तुम्हारे प्रति अत्यन्त आतुरतासे जानेवाला (स्तोमः) स्तोत्र
(युवाभ्यां अन्तमः भूतु) तुम्हारे अतीव निकट चला जाए ॥

[४०२]

४०२ यो ह वां मधुनो दितिराहितो रथचर्षणे ।
ततः पिपतमग्निना ॥ १९ ॥

४०२ यः । ह । वाम् । मधुनः । दितिः ।
आहितः । रथचर्षणे ॥
ततः । पिपतम् । अग्निना ॥ १९ ॥

४०२ अन्वयः— अग्निना । वां रथचर्षणे यः मधुनः दितिः आहितः ह ततः
पिपतम् ॥ १९ ॥

४०२ अर्थ— हे अग्निदेवों । (वां रथचर्षणे) तुम्हारे रथके देखनेयोग्य
भागमें (यः मधुनः दितिः) जो मधुका बर्तन (आहितः ह) रत्ना हुआ है,
(ततः पिपतम्) उससे पान करो ॥

[४०३]

४०३ तेन नो वाजिनीवसू पथे तोकाय शं गवे ।
वहत पीवरीरिपः ॥ २० ॥

४०३ तेन । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ।
पथे । तोकाय । शम् । गवे ॥
वहतम् । पीवरीः । रिपः ॥ २० ॥

४०३ अन्वयः— वाजिनीवसू । नः पथे तोकाय गवे शं पीवरीः इत्या
तेन वहतम् ॥ २० ॥

४०३ अर्थ— हे (वाजिनीवसू) यज्ञकियाको धन माननेवाले अग्निदेवों ।
(नः पथे तोकाय) हमारे पशु तथा संखान और (गवे) गौके लिए (शं)
सुखकारक हो इस दंगासे (पीवरीः रिपः) पुष्ट अन्नसामग्रियों (तेन वहतम्)
इस रथसे इधर आओ ॥

[४०४]

४०४ उत नो दिव्या इप उत सिन्धूरद्विदा ।

अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥

४०४ उत । नः । दिव्याः । इपः ।

उत । सिन्धून् । अहः । द्विदा ॥

अप । द्वाराऽइव । वर्षथः ॥२१॥

४०४ अन्ययः— अद्विदा । उत नः दिव्याः इपः उत सिन्धून् द्वारा इव
अप वर्षथः ॥ २१ ॥

४०४ अर्थ— हे (अहः विदा) दिवको जलकानेहारे । (उत) और (नः)
हमें (दिव्याः इपः) उष्णकोटिकी भस्मसामग्रियों (उत सिन्धून्) तथा
बहनेवाले जलसमूहोंको, (द्वारा इव) मार्गसे जल जैसे छोटे जाते हैं वैसेही,
(अप वर्षथः) तुम बारिश लगातार कर देते रहो ॥

[४०५]

४०५ कदा वां तौग्न्यो विधत् समुद्रे जडितो नरा ।

यद् वां रथो विमिष्यतात् ॥२२॥

४०५ कदा । वाम् । तौग्न्यः । विधत् ।

समुद्रे । जडितः । नरा ॥

यत् । वाम् । रथः । विमिषिः । पतात् ॥२२॥

४०५ अन्ययः— नरा । समुद्रे जडितः तौग्न्यः वां कदा विधत् ? वा रथः
यत् विमिषिः पतात् ॥२२॥

४०५ अर्थ— हे (नरा) नेता अभिरेवों ! (समुद्रे जडितः तौग्न्यः) समुद्रमें
कैका हुआ तुमका पुत्र (वां कदा विधत्) तुम्हारी स्तुति भला कब करणुका ?
(वा रथः) तुम्हारा रथ (यत् विमिषिः पतात्), जब पक्षी जैसा बहते हुए
आगया था ॥

[४०६]

४०६ युवं कण्वाय नासत्याऽपिरिप्ताय हर्म्ये ।

- शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥

४०६ युवम् । कण्वाय । नासत्या ।

अपिरिप्ताय । हर्म्ये ॥

शश्वत् । ऊतीः । दशस्यथः ॥२३॥

४०६ अन्वयः— नासत्या । अपिरिप्ताय कण्वाय युवं शश्वत् हर्म्ये ऊतीः दशस्यथः ॥ २३ ॥

४०६ अर्थ— हे सारवपाकक भाषिदेवों ! (अपिरिप्ताय कण्वाय) दुःखी कण्वको (युवं) तुम (शश्वत्) हमेसा (हर्म्ये) ऊँचे महकमें (ऊतीः दशस्यथः) अनेक संरक्षण देते हो ॥

[४०७]

४०७ तामिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः ।

यद् वां वृषण्वसू हुवे ॥२४॥

४०७ तामिः । आ । यातम् । ऊतिऽभिः ।

नव्यसीभिः । सुशस्तिभिः ॥

यत् । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्वसू । हुवे ॥२४॥

४०७ अन्वयः— वृषण्वसू । यद् वां हुवे, नव्यसीभिः सुशस्तिभिः तामि कतिभिः आ यातम् ॥२४॥

४०७ अर्थ— हे (वृषण्वसू) पनकी वर्षा करनेवाले भाषिदेवों ! (यद् वां हुवे) चूँकि मैं तुम्हें बुला रहा हूँ इसलिये (नव्यसीभिः सुशस्तिभिः) नई नलीमौलि प्रसन्नगीम शालोंसे और (तामिः कतिभिः) उन संरक्षणोंसे तुफ होकर (आ यातं) इधर आओ ॥

[४०८]

४०८ यथा चित् कण्वमार्वतं प्रियमैधमुपस्तुतम् ।

अग्निं शिञ्जारमश्विना ॥२५॥

४०८ यथा । चित् । कर्णम् । आर्चतम् ।
 प्रियमैधम् । उपस्तुतम् ॥
 अत्रिम् । शिञ्जारम् । अश्विना ॥२५॥

४०८ अन्वयः— अश्विना । यथा शिञ्जारं अत्रिं उपस्तुतं प्रियमैधं कर्णं चित् भाषतम् ॥२५॥

४०८ अर्थ— हे अश्विदेवो । (यथा शिञ्जारं अत्रिं) जैसे शिञ्जारको, अत्रिको, (उपस्तुतं प्रियमैधं कर्णं चित्) उपस्तुतको, प्रियमैधको और कर्णको भी (भाषतं) तुमने सुरक्षित किया ॥

[४०९]

४०९ यद्योत कृत्व्ये धनेऽंशुं गोष्वगस्त्यम् ।
 यथा वाजेषु सोमरिम् ॥२६॥
 ४०९ यथा । उत । कृत्व्ये । धने ।
 अंशुम् । गोषु । अगस्त्यम् ॥
 यथा । वाजेषु । सोमरिम् ॥२६॥

४०९ अन्वयः— उत यथा कृत्व्ये धने अंशुं गोषु अगस्त्यं, यथा सोमरिं वाजेषु ॥२६॥

४०९ अर्थ— (उत) और (यथा कृत्व्ये धने) जैसे संपादन करनेयोग्य धनको पानेमें (अंशुं) अंशुको (गोषु अगस्त्यं) गौर्षोकी प्राप्तिमें अगस्त्यको (यथा सोमरिं वाजेषु) जैसे सोमरिको बुद्धीमें तुमने बधाया था ॥

[४१०]

४१० एतावद् वां वृषण्वसु अतो वा भूयो अश्विना ।
 गृणन्तः सुममीमहे ॥२७॥
 ४१० एतावन् । वाम् । वृषण्वसु इति वृषण्वसु ।
 अतः । वा । भूयः । अश्विना ॥
 गृणन्तः । सुमम् । ईमहे ॥२७॥

४१० अन्वयः— वृषण्वसू अग्निना । गृणन्तः वा एतावत् अतः भूयः वा सुम्न ईमहे ॥२७॥

४१० अर्थ— वैसेही है (वृषण्वसू) घनकी वर्षा करनेहारे आग्निदेवों । (वा गृणन्तः) गुम्हारी सराहना करते हुए (एतावत्) इतना (अतः भूयः वा) वा इससे भी अधिक (सुम्न ईमहे) सुखकी वाचना हम करते हैं ॥

[४११]

४११ रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमग्निना ।

आ हि स्थायीं दिविस्पृशम् ॥२८॥

४११ रथम् । हिरण्यवन्धुरम् ।

हिरण्यवन्धुरम् । अग्निना ॥

आ । हि । स्थायीः । दिविस्पृशम् ॥२८॥

४११ अन्वयः— अग्निना । हिरण्यवन्धुरं हिरण्य-अभीशुं दिवि स्पृशं रथे आस्थाप्य हि ॥ २८ ॥

४११ अर्थ— है अग्निदेवों । (हिरण्यवन्धुरं) सुवर्णमय लट्टवाले (हिरण्य-अभीशुं) सुनहरे चातुक या लतामवाले (दिवि-स्पृशं) धुकोककी छूनेवाले (रथं आ स्थाप्य हि) रथपर तुम अवश्य चढ़ जाते हो ॥

[४१२]

४१२ हिरण्ययीं धां रभिरीपा अक्षौ हिरण्ययः ।

उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

४१२ हिरण्ययीं । वाम् । रभिः ।

ईपा । अक्षः । हिरण्ययः ॥

उभा । चक्रा । हिरण्यया ॥२९॥

४१२ अन्वयः— यो रभिः ईपा हिरण्ययी अक्षः हिरण्ययः उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

४१२ अर्थ— (यो रभिः ईपा हिरण्ययी) गुम्हारी आकंवन देनेवाली छकरी सुनहरी है, (अक्षः हिरण्ययः) पहियेकी छुरी सुवर्णमय है (उभा चक्रा हिरण्यया) दोनों पहिये भी सुवर्णके घने हुए हैं ॥

[४१३]

४१३ तेन नो वाजिनीवसु परावतश्चिदा गतम् ।

उपेमां सुष्टुतिं मम ॥३०॥

४१३ तेन । नः । वाजिनीवसु इति वाजिनीवसु ।

परावतः । चित् । आ । गतम् ॥

उपे । इमाम् । सुस्तुतिम् । मम ॥३०॥

४१३ अन्वयः— वाजिनी-वसु । तेन इमां मम सुष्टुतिं नः परावतः
चित् उप आ गतम् ॥३०॥४१३ अर्थ— हे (वाजिनी-वसु) बलको धन समझनेवाले ! (तेन)
उस रथसे (इमां मम सुष्टुतिं) इस मेरी अच्छी स्तुतिकी सुननेके लिये
(नः) हमारे पास (परावतः चित्) दूर देशसे भी (उप आ गतं) समाप्त
आयो ॥

[४१४]

४१४ आ वदेथे पराकात् पूर्वीरभन्तावश्विना ।

इयो दासीरमर्त्या ॥३१॥

४१४ आ । वदेथे इति । पराकात् ।

पूर्वीः । अभन्तौ । अश्विना ॥

इयः । दासीः । अमर्त्या ॥३१॥

४१४ अन्वयः— अभर्त्या अश्विना । पूर्वीः दासीः इयः अभन्तौ पराकात्
आ वदेथे ॥ ३१ ॥४१४ अर्थ— हे (अभर्त्या) अ-भरणशील अश्विदेवों ! (पूर्वीः दासीः
इयः) बहुतसी दासोंकी अक्षसामग्रियाँ (अभन्तौ) प्राप्त करते हुए
(पराकात् आ वदेथे) सुदूर देशसे इधर आ पहुँचते हो ॥

[४१५]

४१५ आ नो धुमैरा श्वोमिरा राया यातमश्विना ।

शुर्वश्वन्त्रा नासत्या ॥३२॥

४१५ आ । नः । युष्मैः । आ । अवाऽभिः ।

आ । राया । यातम् । अश्विना ॥

पुरुऽचन्द्रा । नासत्या ॥ ३२ ॥

४१५ अन्वयः— पुरु-चन्द्रा । नासत्या अश्विना । नः युष्मैः अवाभिः
राया आ यातम् ॥ ३२ ॥

४१५ अर्थ— हे (पुरु-चन्द्रा) बहुतोंको आनन्द देनेवाके एवं सार्वपूर्ण
अधिदेवों ! (नः) हमारे समीप (युष्मैः अवाभिः राया) धनों, मन्त्रों तथा
वैभवसे युक्त होकर (आ यातं) आओ ॥

[४१६]

४१६ एह वां प्रुषितप्सवो वयं वहन्तु पर्णिनः ।

अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥ ३३ ॥

४१६ आ । इह । वाम् । प्रुषितप्सवः ।

वयः । वहन्तु । पर्णिनः ॥

अच्छा । सुऽअध्वरम् । जनम् ॥ ३३ ॥

४१६ अन्वयः— इह पर्णिनः प्रुषित-प्सवः वयः स्वध्वरं जनं अयच्छ
वां आ वहन्तु ॥ ३३ ॥

४१६ अर्थ— (इह) इधर (पर्णिनः) पंचवाके (प्रुषितप्सवः वयः)
द्विगुणरूपवाके एवं गणिनीय पक्षी जैसे घोड़े (स्वध्वरं जनं अयच्छ) अच्छे अहि-
सक कार्य करनेवाके लोगोंके प्रति (वां आ वहन्तु) तुम्हें के आर्य ॥

[४१७]

४१७ रथं वामनुंगायसं य इषा वर्तते सह ।

न चक्रमभि वाधते ॥ ३४ ॥

४१७ रथम् । वाम् । अनुंगायसम् ।

यः । इषा । वर्तते । सह ॥

न । चक्रम् । अभि । वाधते ॥ ३४ ॥

४१७ अन्वयः— यः इषा सह वर्तते (तं) वां अनुगायसं रथं चक्रं न
अभि बाधते ॥ ३४ ॥

४१७ अर्थ— (यः इषा सह वर्तते) जो अश्वके साथ रहता है उस (वां
अनुगायसं रथं) सुम्हाते रथको जिसके पीछे स्तुति करनेवाले लोग रहते हैं
(चक्रं न अभि बाधते) बाधुसैव्य कष्ट नहीं पहुँचाता है ॥

[४१८]

४१८ हिरण्ययेन रथेन द्रुवत्पाणिभिरश्वैः ।

धीज्वना नासत्या ॥३५॥

४१८ हिरण्ययेन । रथेन ।

द्रुवत्पाणिभिः । अश्वैः ॥

धीज्वना । नासत्या ॥३५॥

४१८ अन्वयः— धीज्वना नासत्या । द्रुवत्पाणिभिः अश्वैः हिरण्ययेन
रथेन (भा वात्तम्) ॥ ३५ ॥

४१८ अर्थ— हे (धी-ज्वना) सुशिके तुल्य वेगवाले सत्यपूर्ण अश्वदेवों !
(द्रुवत्-पाणिभिः अश्वैः) दौड़ते हुए घोड़ोंसे और (हिरण्ययेन रथेन)
सुवर्णमय रथसे भागो ॥

[४१९]

४१९ युवं मुगं जागृवांसं स्वदधो वा वृषण्वसू ।

ता नः पृङ्क्तमिषा रुयिम् ॥३६॥

४१९ युवम् । मुगम् । जागृवांसम् ।

स्वदधः । वा । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ॥

ता । नः । पृङ्क्तम् । इषा । रुयिम् ॥३६॥

४१९ अन्वयः— वृषण्वसू ! युवं वा जागृवांसं अहं स्वदधः, ता नः रुयि
इषा पृङ्क्तम् ॥ ३६ ॥

अभिनी दे० ३९

४१९ अर्थ— हे (वृषभवत्) धनकी वर्षा करनेहारि ! (युषं वा) तुम तो (जामृतांसं मृगं स्वदयः) जामृत पत्र हूँडनेयोग्य सोमका सेवन करते हो, ऐसे (ता) ने दोनों (नः सर्वं) हमारे धनको (दद्याद्दृष्टं) भग्नसे जोड़ दो ॥

[४२०]

४२० ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ॥३७॥

४२० ता । मे । अश्विना । सनीनाम् ।
विद्यातम् । नवानाम् ॥३७॥

४२० अन्वयः— अश्विना । ता मे नवानां सनीनां विद्यातम् ॥ ३७ ॥

४२० अर्थ— हे अश्विदेवों ! ऐसे तुम विकपात (ता) वे दोनों (मे) मेरे लिए (नवानां सनीनां विद्यातं) नये प्रदानोंको जान लो ॥

॥४२१॥ (ऋ. ८।८।१-२३)

(४२१-४४३) सध्वंसः काण्वः । अट्टपुत्रः ।

४२१ आ नो विश्वामिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दत्ता हिरण्यवर्तनी पिवतं सोम्यं मधु ॥१॥

४२१ आ । नः । विश्वामिः । ऊतिभिः ।
अश्विना । गच्छतम् । युवम् ॥
दत्ता । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यवर्तनी ।
पिवतम् । सोम्यम् । मधु ॥१॥

४२१ अन्वय — अश्विना । दत्ता । हिरण्यवर्तनी । युवं विश्वामिः ऊतिभिः
नः आगच्छतं, सोम्यं मधु पिवतम् ॥ १ ॥

४२१ अर्थ— हे अश्विदेवों ! हे (दत्ता) अनुविध्वंसक ! हे (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णमय रथवाले ! (युवं) तुम दोनों (विश्वामिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ (नः आगच्छतं) हमारे समीप आओ और (सोम्यं मधु पिवतं) सोमरसरूपी भीठे रसका पान करो ॥

[४२२]

४२२ आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।

भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥२॥

४२२ आ । नूनम् । यातम् । अश्विना ।

रथेन । सूर्यस्त्वचा ॥

भुजी इति । हिरण्यपेशसा ।

कवी इति । गम्भीरचेतसा ॥२॥

४२२ अन्वयः— भुजी । हिरण्यपेशसा । कवी । गम्भीरचेतसा अश्विना । नूनं सूर्यत्वचा रथेन आ यातम् ॥ २ ॥

४२२ अर्थ— हे (भुजी) योगयोग्य साधनोंसे पूर्ण ! हे (हिरण्यपेशसा) सुवर्णके बने अलंकार धारण करनेवाले । हे (कवी गम्भीरचेतसा) क्रांतदर्शी विशाक मनवाके अभिदेवों ! (नूनं) अब सचमुच (सूर्यत्वचा रथेन आ यातं) सूर्यसदृश कोशिकाके रथपर चढ़कर श्वर पधारो ॥

[४२३]

४२३ आ यातं नहुषस्पर्षाऽन्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।

पिवाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥३॥

४२३ आ । यातम् । नहुषः । परि । आ ।

अन्तरिक्षात् । सुवृक्तिभिः ॥

पिवाथः । अश्विना । मधु ।

कण्वानाम् । सवने । सुतम् ॥३॥

४२३ अन्वयः— अश्विना ! सुवृक्तिभिः अन्तरिक्षात् नहुषः परि आ यातं ; कण्वानां सवने सुतं मधु पिवाथः ॥ ३ ॥

४२३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियोंके कारण भाकपित होकर (अन्तरिक्षात् नहुषः परि) अन्तरिक्षमेंसे या मानवी लोकमें-से भी (आ यातं) आओ और कण्वोंके (सवने सुतं) बड़में निष्पादित (मधु पिवाथः) मीठे सोमरसको भी जानो ॥

[४२४]

४२४ आ नो यातं दिवस्पयाऽन्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुपाव सोम्यं मधु ॥४॥

४२४ आ । नः । यातम् । दिवः । परि । आ ।
अन्तरिक्षात् । अधऽप्रिया ॥
पुत्रः । कण्वस्य । वाम् । इह ।
सुपाव । सोम्यम् । मधु ॥४॥

४२४ अन्वयः— दिवः परि आ अन्तरिक्षात् नः आ यातं, अधप्रिया ।
कण्वस्य पुत्रः इह वा सोम्यं मधु सुपाव ॥ ४ ॥

४२४ अर्थ— (दिवः परि) युक्तोक्ते तथा (आ अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष-
से भी (नः आ यातं) हमारे समीप आओ, हे (अधप्रिया) अधोभाग अधोल
मूलोक्तो चाहनेवालो । (कण्वस्य पुत्रः) कण्वके पुत्रने (इह) इस
जगह (वा) तुम्हारे लिए (सोम्यं मधु सुपाव) सोमसे युक्त शहदका सृजन
क्रिया है ॥

[४२५]

४२५ आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्याहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिमिर्नरा ॥५॥

४२५ आ । नः । यातम् । उपऽश्रुति ।
अश्विना । सोमऽपीतये ॥
स्याहा । स्तोमस्य । वर्धना ।
प्र । कवी इति । धीतिऽभिः । नरा ॥५॥

४२५ अन्वयः— नरा ! कवी । अश्विना ! स्याहा स्तोमस्य प्र वर्धना नः
उपश्रुति धीतिभिः सोमपीतये आ यातम् ॥ ५ ॥

४२५ अर्थ— हे (नरा ! कवी) नेता और कान्ठदर्शी अधिदेवों ! तुम
(स्याहा स्तोमस्य प्र वर्धना) सर्वस्व त्यागद्वारा स्तोत्रके बढ़ानेद्वारे दो, इस-
लिए (नः उपश्रुति) हमारे यज्ञमें (धीतिभिः सोम-पीतये आ यातं)
कर्मोंके साथ क्रिये जानेवाले सोमपानके लिए आओ ॥

[४२६]

४२६ यच्चिद्धि वाँ पुर ऋषयो जुहुरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गंतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥६॥

४२६ यत् । चित् । हि । वाम् । पुरा । ऋषयः ।
जुहुरे । अवसे । नरा ॥
आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
उपे । हमाम् । सुऽस्तुतिम् । मम ॥६॥

४२६ अन्वयः—नरा अश्विना ! पुरा ऋषयः यत् चित् अवसे वाँ हि जुहुरे, आ यातं; मम हमां सुष्टुतिं उपे आ गतम् ॥ ६ ॥

४२६ अर्थ—हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (पुरा ऋषयः) पहले ऋषिजीने (यत् चित्) जब कभी (अवसे) रक्षाके लिए (वाँ हि जुहुरे) तुम्हें ही पुकारा था तब हमने उसे सुन लिया था, इसलिये अब भी (आ यातं) आभो; (मम हमां सुस्तुतिं) मेरी इस अच्छी स्तुतिको सुनकर (उपे आ गतं) समीप आजाओ ॥

[४२७]

४२७ दिवश्चिद् रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमैर्भिर्हवनधृता ॥७॥

४२७ दिवः । चित् । रोचनात् । अर्षि ।
आ । नः । गन्तम् । स्वाऽविदा ॥
धीभिः । वत्सऽप्रचेतसा ।
स्तोमैभिः । हवनऽधृता ॥७॥

४२७ अन्वयः—स्वः-विदा । हवन-धृता ! वत्स-प्रचेतसा ! स्तोमैभिः धीभिः रोचनात् दिवः चित् नः अधि आ गन्तम् ॥ ७ ॥

४२७ अर्थ—(स्वा-विदा) हे स्वकीय जगिहो जाननेवाले ! (हवन-धृता) हमारी पुकारको सुननेवाले ! (वत्स-प्रचेतसा) पुत्रपर करनेयोग्य प्रेम करनेवाले ! (स्तोमैभिः धीभिः) स्तोत्रोंसे और कर्मोंसे (रोचनात् दिव-चित्) जगमगाते सुनोकर भी (नः अधि आ गन्तम्) हमारे समीप आओ ॥

[४२८]

४२८ किमन्ये पर्यासतेऽस्मत् स्तोमैभिरश्विना ।
पुत्रः कर्णस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥८॥

४२८ किम् । अन्ये । परि । आसते ।
अस्मत् । स्तोमैभिः । अश्विना ॥
पुत्रः । कर्णस्य । वाम् । ऋषिः ।
गीःऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥८॥

४२८ अन्वयः— अस्मत् अन्ये किं स्तोमैभिः अश्विना परि आसते ?
कर्णस्य पुत्रः ऋषिः वत्सः वां गीर्भिः अवीवृधत् ॥ ८ ॥

४२८ अर्थ—(अस्मत् अन्ये) हमें छोड़कर दूसरे को (किं स्तोमैभिः)
यथा स्तोत्रोक्ते (अश्विना परि आसते) अश्विदेवोंके चारों ओर प्रार्थना करनेके
लिए बैठते हैं ? कर्णके पुत्र वत्स ऋषिने (वां) तुम्हें (गीर्भिः अवीवृधत्)
स्तुतिसे एव बढ़ाया है— प्रोत्साहित किया है ॥

[४२९]

४२९ आ वां विप्र इहावसेऽह्वत् स्तोमैभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥९॥

४२९ आ । वाम् । विप्रः । इह । अवसे ।
अह्वत् । स्तोमैभिः । अश्विना ॥
अरिप्रा । वृत्रहन्तमा ।
ता । नः । भूतम् । मयःऽभुवा ॥९॥

४२९ अन्वयः— अरिप्रा वृत्रहन्तमा अश्विना ! इह अवसे विप्रः वां आ
अह्वत् ; ता नः मयोभुवा भूतम् ॥ ९ ॥

४२९ अर्थ— हे (अ-रिप्रा) वीररहित तथा (वृत्रहन्तमा) वृत्रके
भावग्न विनाशकर्ता अश्विदेवों ! (इह अवसे) हथर रक्षाके लिए (विप्रः)
जानी पुरुष (वां आ अह्वत्) तुम्हें मुझाता है (ता) वे विपदात तुम दोनों
(नः मयोभुवा भूतं) हमारे लिए मुझदायक बनो ॥

[४३०]

४३० आ यद् वां योषणा रथमर्तिष्ठद्वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१०॥

४३० आ । यत् । वाम् । योषणा । रथम् ।
अर्तिष्ठत् । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ॥
विश्वानि । अश्विना । युवम् ।
प्र । धीतानि । अगच्छतम् ॥१०॥

४३० अन्वयः— वाजिनी-वसू ! अश्विनौ ! यत् वां रथं योषणा आ
अर्तिष्ठत् युवं विश्वानि धीतानि प्र अगच्छतम् ॥ १० ॥

४३० अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) वज्रभागी जनवाले अग्निदेवों !
(यत् वां रथं) जब तुम्हारे रथपर (योषणा आ अर्तिष्ठत्) महिका पूर्णतया
चढ़ गयी थी, तब (युवं) तुम दोनों (विश्वानि धीतानि-) सभी ध्यानमें रखे
हुए विषयोंके समीप (प्र अगच्छतं) प्रकर्यसे चले गये थे ॥

[४३१]

४३१ अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वृत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत् काव्यः कविः ॥११॥

४३१ अतः । सहस्रं निर्णिजा ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥
वृत्सः । वाम् । मधुमत् । वचः ।
अशंसीत् । काव्यः । कविः ॥११॥

४३१ अन्वयः— कविः काव्यः वत्सः वां मधुमत् वचः अशंसीत् अतः
अश्विना ! सहस्र-निर्णिजा रथेन आ यातम् ॥ ११ ॥

४३१ अर्थ— (कविः) विद्वान् (काव्यः) वत्सः (कविः) कविका पुत्र प्रायः वत्स
(वां) तुम दोनोंके लिए (मधुमत् वचः अशंसीत्) मधुर भाषण कह चुका,
(अतः) इसलिये हे अग्निदेवों ! (सहस्र—निर्णिजा रथेन आ यातं) सहस्र
प्रकारसे तेजस्वी रथपर चढ़कर आओ ॥

[४३२]

४३२ पुरु॒म॒न्द्रा पुं॒रु॒व॒स्व॒ मनो॒तरा॑ र॒यी॒णाम् ।
स्तोमं॑ मे अ॒श्विना॑विम॒मभि॑ व॒ह्नी अनु॒पा॒ताम् ॥१२॥

४३२ पुरु॒ऽम॒न्द्रा । पु॒रु॒व॒सु इति॑ पु॒रु॒ऽव॒स्व॒ ।
मनो॒तरा॑ । र॒यी॒णाम् ॥
स्तोमं॑म् । मे । अ॒श्विनौ । इमम् ।
अ॒भि । व॒ह्नी इति॑ । अनु॒पा॒ताम् ॥१२॥

४३२ अन्वय — रयीणां मनोतरा । पुरमन्द्रा । पुरुवस्व अश्विना । वह्नी मे इम स्तोम अभि अनुपाताम् ॥ १२ ॥

४३२ अर्थ— हे (रयीणां मनोतरा) धनसंपदाओंके मनापूर्वक देने-वाले ! (पुरमन्द्रा) बहुत आनन्द देनेवाले ! (पुरुवस्व) अधिक धनवाले अश्विदेवों ! तुम (वह्नी) देनेवाले हो और (मे इम स्तोमं) मेरे इस स्तोत्रको (अभि अनुपातां) सुनकर प्रसन्न हो जाओ ॥

[४३३]

४३३ आ नो॑ वि॒श्वान्य॑श्विना ध॒त्तं राधां॑स्य॒हया॑ ।
कृतं॑ न॒ ऋ॒त्वि॒याव॑तो मा नो॑ रीरध॒तं नि॒दे ॥१३॥

४३३ आ । नः । वि॒श्वानि॑ । अ॒श्विना॑ ।
ध॒त्तम् । राधां॑सि । अ॒हया॑ ॥
कृतम् । नः । ऋ॒त्वि॒र्य॑ऽव॒तः ।
मा । नः । रीरध॑तम् । नि॒दे ॥१३॥

४३३ अन्वय — अश्विना । न विश्वानि अहया राधांसि या धत्त नः ऋत्विष्यावतः कृत, निदे ॥ मा रीरधतम् ॥ १३ ॥

४३३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (न , हमें (विश्वानि अहया राधांसि) सभी प्रकारके लज्जा न करनेवाले घन (या धत्त) कादो, (नः ऋत्विष्यावतः कृतं) हमें समथके अनुकूल कार्य करनेवाले बना दो और (निदे) निन्दकके लिए (न मा रीरधत) हमें न दे डालो [अर्थात् हम निन्दकसे कोसों दूर रह सकें ऐसा प्रणय कर डालो] ॥

[४३४]

४३४ यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४॥

४३४ यत् । नासत्या । परावति ।
यत् । वा । स्थः । अश्वि । अध्यम्बरे ॥
अतः । सहस्रनिर्णिजा ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥१४॥

४३४ अन्वयः— नासत्या अश्विना । यत् परावति स्थः यत् वा अध्यम्बरे अश्वि
(स्थः) अतः सहस्रनिर्णिजा रथेन आ यातम् ॥१४॥

४३४ अर्थ— हे सत्यवृक्ष अश्विदेवों ! (यत् परावति स्थः) जो तुम सुदूर
देशमें हो (यत् वा) या तो (अध्यम्बरे अश्वि स्थः) समीपही कहीं विद्यमान
हो, (अतः) उस स्थानसे (सहस्रनिर्णिजा रथेन) सहस्रों शोभावाले रथपरसे
(आ यातं) आओ ॥

[४३५]

४३५ यो वा नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वृत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्रुतम् ॥१५॥

४३५ यः । वाम् । नासत्यौ । ऋषिः ।
गीःऽभिः । वृत्सः । अवीवृधत् ॥
तस्मै । सहस्रनिर्णिजम् ।
इषम् । धत्तम् । घृतश्रुतम् ॥१५॥

४३५ अन्वयः— नासत्यौ । यः वसतः ऋषिः वा गीर्भिः अवीवृधत् तस्मै
घृतश्रुतं सहस्रनिर्णिजं इषं धत्तम् ॥ १५॥

४३५ अर्थ— हे सत्यनिष्ठ अश्विदेवों ! (यः वसतः ऋषिः) जो ऋषि
वास (वा गीर्भिः अवीवृधत्) सुम्हें अपने भापगोसे वृद्धिगत-प्रशंसित-
का घृहा दे, (तस्मै) (उसे घृतश्रुतं) यी उपकानेवाले (सहस्रनिर्णिजं
इषं धत्तं) सहस्र शोभा देनेवाले अन्नको दे ढालो ॥

अश्विनौ दे० ४०

[४३६]

४३६ प्रास्मा ऊर्जे घृतश्रुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
 यो वा सुम्नाय तुष्टवदसूयादानुनस्पती ॥१६॥

४३६ प्र । अस्मै । ऊर्जम् । घृतश्रुतम् ।
 अश्विना । यच्छतम् । युवम् ॥
 यः । वाम् । सुम्नाय । तुष्टवत् ।
 वसुधात् । दानुनः । पती इति ॥१६॥

४३६ अन्वयः— दानुनःपती अश्विना ! यः सुम्नाय वां तुष्टवत्, वसु-धात्
 अस्मै युवं घृतश्रुतं ऊर्जं प्र यच्छतम् ॥ १६ ॥

४३६ अर्थ— हे (दानुनःपती) दानके अधिपति अश्विदेवों ! (यः सुम्नाय)
 जो सुखके लिए (वां तुष्टवत्) तुम्हारी स्तुति कर चुका है और (वसु-धात्)
 धनकी कामना करने लगे, (अस्मै) इसके लिए (युवं) तुम दोनों (घृतश्रुतं
 ऊर्जं प्र यच्छतं) धी टपकानेवाले बलकारी भस्म देओ ॥

[४३७]

४३७ आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।
 कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७॥

४३७ आ । नः । गन्तम् । रिशादसा ।
 इमम् । स्तोमम् । पुरुभुजा ॥
 कृतम् । नः । सुश्रियः । नरा ।
 इमा । दातम् । अभिष्टये ॥१७॥

४३७ अन्वयः— नरा ! रिशादसा पुरुभुजा ! नः इमं स्तोमं आ गन्तं,
 नः सुश्रियः कृतं, अभिष्टये इमा दातम् ॥ १७ ॥

४३७ अर्थ— हे (नरा) नेता ! (रिशादसा पुरुभुजा) हिंसकोंके
 विनाशकर्ता और बहुत भोगवाले ! (नः इमं स्तोमं) हमारे इस स्तोत्रको
 सुनकर (आ गन्तं) आओ, (नः सुश्रियः कृतं) हमें सुन्दर शोभासे युक्त
 करो और (अभिष्टये इमा दातं) सुखकी प्राप्तिके लिए इन आवश्यक वस्तु-
 ओंको देओ ॥

[४३८]

४३८ आ वां विश्वाभिरुतिभिः प्रियमेधा अहूपत ।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥

४३८ आ । वाम् । विश्वाभिः । रुतिभिः ।
प्रियमेधाः । अहूपत ॥
राजन्तौ । अध्वराणाम् ।
अश्विना । यामहूतिषु ॥१८॥

४३८ अन्वयः— अश्विना ! अध्वराणां राजन्तौ वां याम-हूतिषु विश्वाभिः
रुतिभिः प्रियमेधाः आ अहूपत ॥ १८ ॥

४३८ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (अध्वराणां राजन्तौ वां) हिंसारहित
कार्योंमें विशाजमान तुम्हें (याम-हूतिषु) यान्नामें सम्मिश्रित होनेके लिए किये
जानेवाले रतोप्रपादोंमें (विश्वाभिः रुतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके
साथ आनेके लिये (प्रियमेधाः आ अहूपत) प्रियमेध लोगोंने पूर्णतया तुम्हें
शुकाया है ॥

[४३९]

४३९ आ नो गन्तं मयोभुवाऽश्विना शुभ्रवा युवम् ।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृषत् ॥१९॥

४३९ आ । नः । गन्तुम् । मयःऽभुवा ।
अश्विना । शुम्ऽभुवा । युवम् ॥
यः । वाम् । विपन्यू इति । धीतिभिः ।
गीऽभिः । वत्सः । अवीवृषत् ॥१९॥

४३९ अन्वयः— विपन्यू अश्विना ! युवं नः आ गन्तं यः वत्सः मयो-भुवा
शंसुवा वां धीतिभिः गीर्भिः अवीवृषत् ॥ १९ ॥

४३९ अर्थ— हे (विपन्यू) प्रशंसनीय अश्विदेवों ! (युवं नः आ गन्तं)
तुम दोनों हमारे समीप आओ ; (यः वत्सः) जो वह वत्स ऋषि (मयो-भुवा
शंसुवा वां) पुस्तकायक एवं शान्तिदायक तुम्हें (धीतिभिः गीर्भिः अवीवृषत्)
कर्मोंसे तथा भाषणोंसे प्रशंसित करता है ॥

[४४०]

४४० याभिः कण्वं मेघातिथिं याभिर्विशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥

४४० याभिः । कण्वम् । मेघातिथिम् ।
याभिः । वशम् । दशव्रजम् ॥
याभिः । गोशर्यम् । आवतम् ।
ताभिः । नः । अवतम् । नरा ॥२०॥

४४० अन्वयः— नरा । याभिः मेघातिथिं कण्वं, याभिः दश-व्रजं वशं,
याभिः गो-शर्यं आवतं ताभिः नः अवतम् ॥ २० ॥

४४० अर्थ— हे (नरा) मेला भविष्ये ! (याभिः) जिनकी सहायतासे
मेघातिथि कण्वकी (याभिः दशव्रज वशं) जिनसे दस बाहे रखनेवाले वश की
और (याभिः गो शर्य आवत) जिनसे जीर्णशीर्ण गायें रखनेवालेकी रक्षा की
धी, (ताभिः नः अवतं) उनसे हमें बचाओ ॥

[४४१]

४४१ याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्स्न्ये धने ।
ताभिः स्मर्त्तुमाँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१॥

४४१ याभिः । नरा । त्रसदस्युम् ।
आवतम् । कृत्स्न्ये । धने ॥
ताभिः । सु । अस्मान् । अश्विना ।
प्र । अवतम् । वाजसातये ॥२१॥

४४१ अन्वय — नरा अश्विना । कृत्स्न्ये धने याभिः त्रसदस्युं आवतं ताभिः
अस्मान् वाजसातये सु प्र अवतम् ॥२१॥

४४१ अर्थ— (कृत्स्न्ये धने) निष्पादनीय धनके बारेमें जिनसे त्रसदस्युकी
(आवतं) रक्षा की धी, (ताभिः) उनसे (अस्मान्) हमें (वाजसातये)
धनका घेटपारा करनेके लिए (सु प्र अवतं) भलीभाँति सुरक्षित रखो ॥

[४४२]

४४२ प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरौ वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुषा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२॥

४४२ प्र । वाम् । स्तोमाः । सुवृक्तयः ।
गिरः । वर्धन्तु । अश्विना ॥
पुरुषा । वृत्रहन्तमा ।
ता । नः । भूतम् । पुरुस्पृहा ॥२२॥

४४२ अन्ययः— पुरुषा । वृत्रहन्तमा अश्विना । वां सुवृक्तयः गिरः स्तोमाः
प्र वर्धन्तु, ता नः पुरुस्पृहा भूतम् ॥ २२ ॥

४४२ अर्थ— हे (पुरुषा) बहुत लोगोंके प्राणकर्ता और (वृत्रहन्तमा)
वृत्रके अत्यन्त विनाशकर्ता अश्विदेवों ! (वां सुवृक्तयः गिरः) तुम दोनोंको
भलीभाँति रचे हुए भाषण और (स्तोमाः प्र वर्धन्तु) स्तोम छूट पड़ावे,
(ता) वे विष्णुवात तुम दोनों (नः पुरुस्पृहा भूतं) हमारे लिए अत्यन्त स्पृह-
णीय बनो ॥

[४४३]

४४३ त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्नमभिरवाग् जीवेभ्यस्परि ॥२३॥

४४३ त्रीणि । पदानि । अश्विनोः ।
आविः । सन्ति । गुहा । परः ॥
कवी इति । ऋतस्य । पत्नमभिः ।
अवाक् । जीवेभ्यः । परि ॥२३॥

४४३ अन्ययः— अश्विनोः गुहा त्रीणि पदानि परः आविः सन्ति, ऋतस्य
पत्नमभिः कवी जीवेभ्यः अवाक् परि ॥ २३ ॥

४४३ अर्थ— अश्विदेवोंके (गुहा) गुहामें रहे हुए (त्रीणि पदानि) तीन पद
(परः आविः सन्ति) परले स्थानमें प्रकट हुए हैं, (ऋतस्य पत्नमभिः) ऋतके
मागोंसे (कवी) विद्वान् अश्विदेव (जीवेभ्यः अवाक्) जीवोंके लिए अमि-
शुष्य दोकर (परि) ऊपरसे आते हैं ॥

[४४४] (अ. ८।९।१-२१)

(४४४-४६४) वाक्यार्थः काण्वः । अनुष्टुप् ; १, ४, ६, १४-१५, गृहती ;
२-३, २०-२१ मावग्री ; ५ ककुप् ; १० त्रिष्टुप् ; ११ विराट्, १२ जगती ।

४४४ आ नूनमश्विना युवं वृत्सस्य गन्तुमवसे ।

प्रस्मै यच्छतमवृकं पृथु छर्दिष्युतं या अरातयः ॥१॥

४४४ आ । नूनम् । अश्विना । युवम् ।

वृत्सस्य । गन्तुम् । अवसे ॥

प्र । अस्मै । यच्छतम् । अवृकम् । पृथु । छर्दिः ।

युयुतम् । याः । अरातयः ॥१॥

४४४ अन्वयः— अश्विना ! युवं नूनं वरसस्य अवसे आ गन्तं, अस्मै पृथु
अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं, याः अरातयः युयुतम् ॥ १ ॥

४४४ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (युवं) तुम दोनों (नूनं) अथ सचमुच
(वरसस्य अवसे आगतं) वरसकी रक्षाके लिए आओ (अस्मै) इसे (पृथुं)
विस्तीर्ण (अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं) धृक-भेदिये जैसे कोधी कोणोंसे रहित घर
देवों; पश्चात् (याः अरातयः युयुतं) जो शत्रु हैं, उन्हें दूर कर दो ॥

[४४५]

४४५ यदन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषां अनु ।

नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥२॥

४४५ यत् । अन्तरिक्षे । यत् । दिवि ।

यत् । पञ्च । मानुषान् । अनु ।

नृम्णम् । तत् । धत्तम् । अश्विना ॥२॥

४४५ अन्वयः— अश्विना ! यत् नृम्णं अन्तरिक्षे, यत् दिवि, यत् पञ्च मानु-
षान् अनु तत् धत्तम् ॥ २ ॥

४४५ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (यत् नृम्णं) जो धन अन्तरिक्षमें (यत्
दिवि) जो ध्रुवोंके (यत् पञ्च मानुषान् अनु) जो पाँच तरहके मानव-वर्गोंके
पास पाया जाता है, (यत् धत्तं) इसे हमारे लिए धर दो ॥

[४४६]

४४६ ये वां दंसांस्यश्विना विप्रांसः परिमामृशुः ।

एवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥३॥

४४६ ये । वाम् । दंसांसि । अश्विना ।

विप्रांसः । परिमामृशुः ॥

एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥३॥

४४६ अन्वयः— अश्विना । ये विप्रांसः वां दंसांसि परि ममृशुः एव इत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

४४६ अर्थ— हे अश्विदेवों । (ये विप्रांसः) जो ज्ञानी (वां दंसांसि तुम्हारे कर्मोंको (परि ममृशुः) पूर्णतया सोच चुके हैं, (एव इत्) उसी प्रकार (काण्वस्य बोधतम्) कण्व पुत्रकी प्रार्थनाको जान लो ॥

[४४७]

४४७ अयं वां धर्मो अश्विना स्तोमेन परि पिच्यते ।

अयं सोमो मधुमान् वाजिनीवसु येन वृत्रं चिकेतथः ॥४॥

४४७ अयम् । वाम् । धर्मः । अश्विना ।

स्तोमेन । परि । सिच्यते ॥

अयम् । सोमः । मधुमान् । वाजिनीवसु इति वाजिनीवसु ।

येन । वृत्रम् । चिकेतथः ॥४॥

४४७ अन्वयः— वाजिनी—वसु अश्विना । वां अयं धर्मः स्तोमेन परि पिच्यते, मधुमान् अयं सोमः येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

४४७ अर्थ— हे (वाजिनी—वसु) सेनारूपी धनवाके ! (वां) तुम्हारे लिए (अयं धर्मः) यह यज्ञ (स्तोमेन) स्तोत्रपाठके साथ (परि सिच्यते) पूर्णतया सँगा जाता है : (मधुमान् अयं सोमः) मधुरिमामय यह सोम है (येन) जिससे, तुम (वृत्रं चिकेतथः) वृत्रको पहचान छेपे हो ॥

[४४८]

४४८ यदप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम् ।
तेन माऽविष्टमश्विना ॥५॥

४४८ यत् । अप्सु । यत् । वनस्पतौ ।
यत् । ओषधीषु । पुरुदंससा । कृतम् ॥
तेन । मा । अविष्टम् । अश्विना ॥५॥

४४८ अन्वयः— पुरुदंससा अश्विना । यत् ओषधीषु यत् वनस्पतौ यत्
अप्सु कृतं तेन मा अविष्टम् ॥ ५ ॥

४४८ अर्थ— हे (पुरु-दंससा) विविध कार्यवाले ! (यत् ओषधीषु) जो
ओषधियोंमें (यत् वनस्पतौ) जो वने भारी पेड़में तथा (यत् अप्सु) जो
जलोंमें (कृतं) तुमने कार्य किया है, (तेन) उसीसे (मा अविष्टं)
मेरी भी रक्षा करो ॥

[४४९]

४४९ यनासत्या भुरण्यथो यद् वा देवाभिपूज्यथः ।
अयं वा वत्सो मतिभिर्न विन्धते हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥

४४९ यत् । नासत्या । भुरण्यथः ।
यत् । वा । देवा । मिपूज्यथः ॥
अयम् । वाम् । वत्सः । मतिभिः । न । विन्धते ।
हविष्मन्तम् । हि । गच्छथः ॥६॥

४४९ अन्वयः— देवा नासत्या । यत् भुरण्यथः यत् वा मिपूज्यथः अयं
वत्सः वा मतिभिः न विन्धते, हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

४४९ अर्थ— हे (देवा) दानी या द्योतमान सत्यपूर्ण अधिदेवो ! (यत्
भुरण्यथः) जो तुम भरणका कार्य करते हो, (यत् वा) वा जो तुम
(मिपूज्यथः) औपध देकर पैसका कार्य करते हो, (अयं वत्सः) यह वत्स
(वा) तुम्हें (मतिभिः न विन्धते) बुद्धियोंसे नहीं पाता है, क्योंकि तुम
(हविष्मन्तं हि गच्छथः) हवि प्राय रत्ननेवालेके पासही जाते हो ॥

[४५०]

४५० आ नूनम॒श्विनो॒ऋषिः॑ स्तोमं चिकेत वामया ।

आ सोमं मधु॑मत्तमं घ॒र्म सि॒ञ्चाद॑र्य॒र्वाणि ॥७॥

४५० आ । नूनम् । अ॒श्विनोः । ऋषिः ।

स्तोमम् । चिकेत । वामया ।

आ । सोमम् । मधु॑मत्तमम् ।

घ॒र्मम् । सि॒ञ्चात् । अ॒र्य॒र्वाणि ॥७॥

४५० अन्वयः— नूनं ऋषिः अश्विनोः स्तोमं वामया आ चिकेत, मधुमत्तमं सोमं घर्मं मयर्वणि आ सिञ्चात् ॥७॥

४५० अर्थ— (नूनं) सचमुच ऋषि (अश्विनोः स्तोमं) अश्विदेवोंके स्तोत्रको (वामया आ चिकेत) उत्कृष्ट बुद्धिसे पूर्णतया पहचाना है (मधु-मत्तमं सोमं घर्मं) आत्यन्त मीठे सोमको तथा घर्मको (मयर्वणि आ सिञ्चात्) मयर्वाणि सौच शुका है ॥

[४५१]

४५१ आ नूनं रघु॑वर्तनि रथं तिष्ठा॒यो अ॒श्विना ।

आ वां स्तोमा॑ इमे मम॒ नमो॑ न चु॒च्यवी॑रत् ॥८॥

४५१ आ । नूनम् । रघु॑वर्तनिम् ।

रथम् । तिष्ठा॒यः । अ॒श्विना ॥

आ । वाम् । स्तोमाः । इमे । मम ।

नमः । न । चु॒च्यवी॑रत् ॥८॥

४५१ अन्वयः— नूनं रघुवर्तनि रथं अश्विना । आ तिष्ठायः, मम इमे स्तोमाः नमः न वा आ चुच्यवीरत् ॥८॥

४५१ अर्थ— (नूनं) सचमुच (रघुवर्तनि रथं) क्षीरनामी रथपर अश्विदेवों । (आ तिष्ठायः) तुम खड़े हो; (मम इमे स्तोमाः) मेरे मे स्तोत्र (नमः न) आकाशकी तरह विज्ञात (वां) तुम्हारे (आ चुच्यवीरत्) पास पहुँचे हैं ॥

अश्विनो दे- ४१

[४५२]

४५२ यद्वा वां नासत्योक्त्यैराञ्जुच्युवीमहि ।

यद्वा वाणीमिराश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥९॥

४५२ यत् । अद्य । वाम् । नासत्या ।

उक्त्यैः । आञ्जुच्युवीमहि ॥

यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना ।

एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥९॥

४५२ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! यद्वा उक्त्यैः अद्य वा आञ्जुच्युवीमहि
यद्वा वाणीभिः, काण्वस्य एव इत् बोधतम् ॥९॥

४५२ अर्थ— हे नासत्यसे रहित अग्निदेवों ! (यद्वा) जब (उक्त्यैः)
स्तोत्रोंसे (अद्य वा) आज दिन हम तुम्हें (आञ्जुच्युवीमहि) अपनी ओर
प्रयत्न करते हैं, (यद्वा वा वाणीभिः) वा साधारण भाषणोंसे ऐसा करते हैं,
तो (काण्वस्य एव इत् बोधतम्) निश्चय जानो कि यह कण्वपुत्रकाही
कार्य है ॥

[४५३]

४५३ यद्वा वां कक्षीवां उत यद्वा व्यश्च ऋषिर्यद्वा वां दीर्घतमा
जुहाव । पृथी यद्वा वां वैन्यः सार्दनेष्वेवेदतो अश्विना
चेतयेयाम् ॥१०॥

४५३ यत् । वाम् । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः ।

ऋषिः । यत् । वाम् । दीर्घस्तमाः । जुहाव ।

पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सार्दनेषु ।

एव । इत् । अर्तः । अश्विना । चेतयेयाम् ॥१०॥

४५३ अन्वयः— अश्विना ! वां यद्वा कक्षीवान् उत यद्वा व्यश्च, यद्वा वां
दीर्घतमाः जुहाव, सार्दनेषु यद्वा वैन्यः पृथ्वी वां, अतः एव चेतयेयाम् ॥१०॥

४५३ अर्थ— हे भाईदेवों ! (यां यत्) तुम्हें जब कक्षीवान्ने (उत यत्) और जब बध्ने तथा (यत् यां दीर्घतमाः जुदाव) जिस समय तुम्हें दीर्घतमाने सुकाया था; (सधनेषु यत्) योंमें जबकि वेनपुत्र पृथीने (यां) तुम्हें पुकारा था, तब तुमने ऊपर ध्यान दिया, (भवः एव) इसीलिप् भवकी पार भी (चेतयेया) हमारी पुकारको पहचान लो ॥

[४५४]

४५४ यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा ।
वृत्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥११॥

४५४ यातम् । छर्दिःपा । उत । नः । परःपा ।
भूतम् । जगत्पा । उत । नः । तनूपा ॥
वृत्तिः । तोकाय । तनयाय । यातम् ॥११॥

४५४ अन्वयः— छर्दिःपा । यातं, उत नः परःपा भूतम्, जगत्पा—पा उत नः तनूपा, तोकाय तनयाय वृत्तिः यातम् ॥११॥

४५४ अर्थ— हे (छर्दिःपा) घरके संरक्षक ! (यातं) जाओ (उत) और (नः परःपा भूतं) हमारे अस्वन्त उच्च कोटिके रक्षक बनो, तथा (जगत्पा—पा) गतिशीलके रक्षक (उत नः तनूपाः) एवं हमारे शरीरके संरक्षक हो जाओ, (तोकाय तनयाय) पुत्रपौत्रके हितके लिप् (वृत्तिः यातं) घरपर भाषा करो ॥

[४५५]

४५५ यदिन्द्रेण सुरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः
समोकसा । यदादित्येभिर्ऋग्भिः सजोपसा यद् वा
विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥

४५५ यत् । इन्द्रेण । सऽरथम् । याथः । अश्विना ।
येत् । वा । वायुना । भवथः । समऽओकसा ॥
यत् । आदित्येभिः । ऋग्भिः । सऽजोपसा ।
यत् । वा । विष्णोः । विऽक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥१२॥

४५५ अन्वयः— अग्निना । यत् इन्द्रेण सरथं यायः, यत् वा वायुना समोकसा भवधः, यत् आदित्येभिः ऋभुभिः सज्जोषसा यत् वा विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥

४५५ अर्थ—दे अग्निदेवों ! (यत् इन्द्रेण) जो तुम इन्द्रके साथ (सरथं यायः) एक रथपर बैठकर चले आते हो, (यत् वा) अथवा (वायुना समोकसा भवधः) वायुके साथ एकही घरमें रहते हो, (यत्) या जब (आदित्येभिः ऋभुभिः) आदितिके पुत्रों वा ऋसु-संज्ञक कारीगरोंके (सज्जो-पसा) साथ प्रेमपूर्वक निवास करते हो, (यत् वा) किंवा जब (विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः) विष्णुके विशेष संचारोंमें तुम उपस्थित होते हो, [पर हमारे समीप अवश्य आओ] ॥

[४५६]

४५६ यदुद्याश्विनावहं हुवेय वाजसातये ।

यत् पृत्सु त्वर्णे सहस्तच्छ्रेष्ठमश्विनोरवः ॥१३॥

४५६ यत् । अथ । अश्विनौ । अहम् ।

हुवेय । वाजसातये ॥

यत् । पृत्सु । त्वर्णे । सहः ।

तत् । श्रेष्ठम् । अश्विनौः । अवः ॥१३॥

४५६ अन्वयः— अथ यत् वाजसातये अहं अश्विनौ हुवेय, अश्विनोः तत् अवः श्रेष्ठं यत् पृत्सु त्वर्णे सहः ॥१३॥

४५६ अर्थ— (अथ यत्) आज जबकि (वाजसातये) अश्वका बैठवारा करनेके लिए (अहं अश्विनौ हुवेय) मैं अग्निदेवोंको बुलाऊँ तो वे अवश्य आयेंगे, क्योंकि (अश्विनो तत् अवः) अग्निदेवोंका वह संरक्षण (श्रेष्ठं यत् पृत्सु) उत्कृष्ट है, जो बुद्धोंमें (त्वर्णे सहः) अनुपम करनेमें पूर्ण क्षमता रखता है ॥

[४५७]

४५७ आ नूनं यातमश्विनेमा हव्यानि वा हिता ।

इमे सोमांसो अधि त्वर्णे यदाविमे कर्णेषु वामथ ॥१४॥

४५७ आ । नूनम् । यातम् । अश्विना ।
 इमा । हव्यानि । वाम् । हिता ॥
 इमे । सोमासः । अधि । तुर्वशे । यदौ ।
 इमे । कण्वेषु । वाम् । अर्थ ॥१४॥

४५७ अन्वयः— अश्विना । नूनं आ यातं, वां इमा हव्यानि हिता; इमे सोमासः तुर्वशे यदौ अधि, इमे कण्वेषु अथ वाम् ॥१४॥

४५७ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (नूनं) अवश्य (आ यातं) आओ, (वां इमा हव्यानि हिता) तुम दोनोंके लिए ये हविर्भाग रखे हुए हैं, (इमे सोमासः) ये सोम (तुर्वशे यदौ अधि) तुर्वश पूर्व यहुके चरपर पाये जाते हैं, (इमे कण्वेषु) ये कण्वोंके मकानपर विश्रामान हैं (अथ वां) और अथ ये तुम्हारे लिए रखे हैं ॥

[४५८]

४५८ यत्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
 तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम् ॥१५॥
 ४५८ यत् । नासत्या । पराके ।
 अर्वाके । अस्ति । भेषजम् ॥
 तेन । नूनम् । विमदाय । प्रचेतसा ।
 छर्दिः । वत्साय । यच्छतम् ॥१५॥

४५८ अन्वयः— प्रचेतसा नासत्या । यत् पराके अर्वाके भेषजं अस्ति, तेन विमदाय वत्साय नूनं छर्दिः यच्छतम् ॥१५॥

४५८ अर्थ— हे (प्रचेतसा नासत्या) उत्कृष्ट मनवाके तथा अमृतसे दूर रहनेवाले अश्विदेवों ! (यत् पराके) जो दूर देशमें (अर्वाके) समीप भी (भेषजं अस्ति) औषध विद्यमान है, (तेन) उससे (विमदाय वत्साय) मनुष्यसे रहित ऋषि वत्सके लिए (नूनं) निम्नसे (छर्दिः यच्छतं) घर दे डालो ॥

[४५९]

४५९ अष्टत्सु प्र देव्या साकं वाचाहमश्विनोः ।
व्यावर्देव्या मतिं वि रातिं मर्त्यैर्म्यः ॥१६॥

४५९ अस्तुति । ऊँ इति । प्र । देव्या ।
साकम् । वाचा । अहम् । अश्विनोः ॥
वि । आवः । देवि । आ । मतिम् ।
वि । रातिम् । मर्त्यैर्म्यः ॥१६॥

४५९ अन्वय - अह अश्विनो देव्या वाचा साक प्र अभुमि, देवि ।
मर्त्यैर्म्य मतिं रातिं वि आव. ॥१६॥

४५९ अर्थ— (अह) मैं (अश्विनो) अश्विदेवोंकी (देव्या वाचा साक)
विष्णुगुणलक्ष वाणीके साथ (प्र अभुमि) विशेष रीतिसे जागृत हो चुका
हूँ, इसलिये हे (देवि) द्योतमान श्वे ! (मर्त्यैर्म्य) मानवोंकी (मति
राति) बुद्धि तथा देवकी (वि आव.) अंधरा दटाकर स्पष्ट करो ॥

[४६०]

४६० प्र बोधयोपो अश्विना प्र देवि सनुते महि ।
प्र यज्ञहोतरानुपक् प्र मदाय श्वो बृहत् ॥१७॥

४६० प्र । बोधय । उपः । अश्विना ।
प्र । देवि । सनुते । महि ।
प्र । यज्ञहोतः । अनुपक् ।
प्र । मदाय । श्वः । बृहत् ॥१७॥

४६० अन्वय - देवि ! सनुते । महि उप । अश्विना प्र बोधय हे यज्ञहोतर्
आनुपक् मदाय बृहत् श्व प्र (बोधय) ॥ १७ ॥

४६० अर्थ— हे द्योतमान । (सनुते) यन्त्रोर्मति से चलनेवाली
(महि) पूजनीय उप । तू अश्विदेवोंकी (प्र बोधय) जागृत कर, हे (यज्ञ
होतर्) यज्ञमें दहन करनेवाला । (आनुपक्) सत्वरूपसे (मदाय) द्रव्य
उपयुक्त करनेके लिये (बृहत् श्व) बड़े मारी भक्षकी भी दे दो ॥

[४६१]

४६१ यदुपो यासिं भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ द्वायमश्विनो स्थो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८॥

४६१ यत् । उपः । यासिं । भानुना ।
सम् । सूर्येण । रोचसे ॥
आ । इ । अयम् । अश्विनोः । रथः ।
वर्तिः । याति । नृपाय्यम् ॥१८॥

४६१ अन्वयः— उपः । यत् भानुना यासि, सूर्येण सं रोचसे, अश्विनोः
अयं रथः इ नृपाय्यं वर्तिः आ याति ॥ १८ ॥

४६१ अर्थ— हे उपे ! (यत् भानुना यासि) जो तू क्षिरणसे युक्त हो
चली जाती है, और (सूर्येण सं रोचसे) सूर्यके साथ अत्यन्त जगमगाती है उसी
समय (अश्विनोः अयं रथः इ) अश्विदेवोंका यह रथ निक्षपसे (नृपाय्यं
वर्तिः आ याति) भागवोंने चालन करनेयोग्य घर चला आता है ॥

[४६२]

४६२ यदापीतासो अंशवो गावो न दुह ऊर्ध्वभिः ।
यद् वा पाणीरनूपत प्र देवयन्तो अश्विना ॥१९॥

४६२ यत् । आपीतासः । अंशवः ।
गावः । न । दुहे । ऊर्ध्वभिः ॥
यत् । वा । पाणीः । अनूपत ।
प्र । देवयन्तः । अश्विना ॥१९॥

४६२ अन्वयः— ऊर्ध्वभिः गावः न यत् आपीतासः अंशवः दुहे । यत् वा
देवयन्तः पाणीः अश्विना प्र अनूपत ॥ १९ ॥

४६२ अर्थ— (ऊर्ध्वभिः गावः न) ऐनोंसे गायें भिस प्रकार दूध देती हैं
वैसेही (यत्) जब (आपीतासः अंशवः) पीये हूँ सोमरस (दुहे) दोहन
करते हैं, (यत् वा) या जब (देवयन्तः) देवोंकी कामना करनेद्वारे (पाणीः)
पाणियोंसे (अश्विना प्र अनूपत) अश्विदेवोंकी खूब स्तुति करते हैं ॥

[४६३]

४६३ प्र द्युम्नाय प्र शर्वसे प्र नृपाद्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥२०॥

४६३ ॥ । द्युम्नाय । प्र । शर्वसे ।
प्र । नृसहाय । शर्मणे ॥
प्र । दक्षाय । प्रचेतसा ॥२०॥

४६३ अन्वयः— प्रचेतसा । द्युम्नाय, शर्वसे, नृपाद्याय, शर्मणे, दक्षाय
प्र ॥ २० ॥

४६३ अर्थ— हे (प्रचेतसा) उत्कृष्ट ज्ञानवाले भविर्देवों ! (द्युम्नाय)
धनके लिए, (शर्वसे) वरके लिए, (नृ-सहाय शर्मणे) जिससे मानवों-
में सहनशक्ति बढ़े ऐसे तुम्हारे लिए (दक्षाय) दक्षताके लिए (प्र) सर्व
आयोजना करो ॥

[४६४]

४६४ यन्नूनं धीमिराश्विना पितुर्योनां निषीदथः ।
यत् वा सुग्नेभिरुक्थ्या ॥२१॥

४६४ यत् । नूनम् । धीमिः । अश्विना ।
पितुः । योना । निसीदथः ॥
यत् । वा । सुग्नेभिः । उक्थ्या ॥२१॥

४६४ अन्वयः— उक्थ्या अश्विना ! नून यत् पितुः योना धीमिः यत् वा
सुग्नेभिः नि सीदथः ॥ २१ ॥

४६४ अर्थ— (उक्थ्या अश्विना !) हे महासनीय भविर्देवों ! (नूनं यत्)
सचमुच जब (पितुः योना) पिताके स्थानमें (धीमिः यत् वा सुग्नेभिः)
कार्यसे भयवा सुखोंसे (नि-सीदथः) बैठ जाते हो ॥

[४६५] (ऋ. ८।१०।१-६)

(४६५-४७०) प्रगाथो (घौरः) काण्वः । १ बृहती, २ मध्ये ज्योतिः,
३ अनुष्टुप् (विंगलमतेन-संकुमती), ४ आस्तारपंकितः,
५-६ प्रगाथः= (५ बृहती+ ६ सतोबृहती)

४६५ यत् स्थो दीर्घप्रसन्नानि यद् वादो रोचने दिवः ।

यद् वा समुद्रे अघ्याकृते गृहेऽत आ यातमाश्विना ॥१॥

४६५ यत् । स्थः । दीर्घप्रसन्नानि ।

यत् । वा । अदः । रोचने । दिवः ॥

यत् । वा । समुद्रे । अघि । आऽकृते । गृहे ।

अतः । आ । यातम् । अश्विना ॥१॥

४६५ अन्वयः— अश्विना ! यत् दीर्घ-प्रसन्नानि यत् वा अदः दिवः रोचने
स्थः, यत् वा आकृते गृहे समुद्रे अघि अतः आ यातम् ॥ १ ॥

४६५ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (यत्) जो तुम (दीर्घप्रसन्नानि) छंदे
घरोंसे युक्त लोकमें (यत् वा) अथवा (अदः दिवः रोचने) उस पुलोकके
अगमगाते स्थानमें (स्थः) रहते हो, (यत् वा) वा (आकृते गृहे) चारों
ओर डोक बनावे घरमें, (समुद्रे अघि) समुन्दरमें रहो, परन्तु (अतः)
वहाँसे (आ यातम्) इधर आओ ॥

[४६६]

४६६ यद् वा यज्ञं मनवे संमिमिक्षुर्गुरेवेत् काण्वस्य बोधतम् ।

बृहस्पतिं विश्वान् देवां अहं ह्रुव इन्द्राविष्णू

अश्विनावाशुहेपसा ॥२॥

४६६ यत् । वा । यज्ञम् । मनवे । सम्मिमिक्षुः ।

एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥

बृहस्पतिम् । विश्वान् । देवान् । अहम् । ह्रुवे ।

इन्द्राविष्णू इति । अश्विनौ । आशुहेपसा ॥२॥

४६६ अन्वयः— मनवे यज्ञं यत् वा संमिमिक्षुः कण्वस्य एव इत् बोधतः; अहं यदृष्टपतिं विश्वान् देवान् इन्द्राविष्णू भाशुदेवता अश्विनौ हुवे ॥ ९ ॥

४६६ अर्थ— (मनवे यज्ञं) मनुके क्षिप् यज्ञको (यत् वा संमिमि-
क्षुः) जिस वंशसे मुमने ठीक तरह सिक्त किया था, (कण्वस्य एव इत्)
कण्वपुत्रके यज्ञको भी उसी तरह (बोधतं) समझ लो; (अहं) मैं यदृष्टपति-
को (विश्वान् देवान्) सभी देवोंको, इन्द्र एवं विष्णुको तथा (भाशुदेवता
अश्विनौ हुवे) सीप्रणामी घोड़ोंसे युक्त अश्विदेवोंको बुलाता हूँ ॥

[४६७]

४६७ त्या न्वश्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।

ययोरस्ति प्र णः सुख्यं देवेष्वप्यार्यम् ॥३॥

४६७ त्या । नु । अश्विना । हुवे ।

सुदंससा । गृभे । कृता ॥

ययोः । अस्ति । प्र । नुः । सुख्यम् ।

देवेषु । अर्षि । अप्यार्यम् ॥३॥

४६७ अन्वयः— त्या सुदंससा गृभे कृता अश्विना, ययोः नः सुख्यं देवेषु
अधि अप्यं प्र अस्ति, नु हुवे ॥ ३ ॥

४६७ अर्थ— (त्या) वह दोनों (सुदंससा) अच्छे कर्म करनेवाले
(गृभे कृता अश्विना) ग्रहण करनेके लिए उत्पन्न हुए अश्विदेवोंको, (ययोः)
जिनकी (नः सुख्यं) हमसे मित्रता (देवेषु अधि अप्यं) देवोंमें प्राप्त करने-
योग्य (प्र अस्ति) उत्पन्न कीटिकी है, (नु हुवे) अभी बुलाता हूँ ॥

[४६८]

४६८ ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।

ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधामिर्या पिवतः सोम्यं
मधु ॥४॥

४६८ ययोः । अर्षि । प्र । यज्ञाः ।

असूरे । सन्ति । सूरयः ॥

ता । यज्ञस्य । अध्वरस्य । प्रचेतसा ।

स्वधामिः । या । पिवतः । सोम्यम् । मधु ॥४॥

४६८ अन्वयः— ययोः अवि यज्ञाः प्र (सन्ति), अमूरे सूरयः, ता अम्वरस्य यज्ञस्य प्रचेतसा या स्वधामिः सोम्य मधु पिबतः ॥ ४ ॥

४६८ अर्थ— (ययोः अवि) जिन दोनोंके यज्ञ प्र (सन्ति) प्रकंपते होते हैं, जो (अमूरे सूरयः) अविद्वानोंमें विद्वान् भयकर कार्य करते हैं, (ता) वे दोनों (अम्वरस्य यज्ञस्य) दिसारहित यज्ञके (प्रचेतसा) अच्छे ज्ञाता हैं, तथा (या) जो (स्वधामिः) अपनी धारक शक्तियोंसे (सोम्य मधु पिबतः) सोमसुखत मधु पी केते हैं ॥

[४६९]

४६९ यदुद्याश्विनावपाग्वरप्राक्स्थो वाजिनीवत् ।

यद्द्रुक्ष्यन्नवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ माऽऽ गतम् ॥५॥

४६९ यत् । अथ । अश्विनौ । अपाक् ।

यत् । प्राक् । स्थः । वाजिनीवत् इति वाजिनीवत् ।

यत् । द्रुक्ष्वि । अन्नवि । तुर्वशे । यदौ ।

हुवे । वाम् । अथ । मा । आ । गतम् ॥५॥

४६९ अन्वयः— वाजिनीवत् अश्विनौ । अथ यत् अपाक् यत् प्राक् स्थः यत् द्रुक्ष्वि अन्नवि तुर्वशे यदौ (स्थः) वा हुवे, अथ मा आ गतम् ॥ ५ ॥

४६९ अर्थ— है (वाजिनीवत्) सेनारूपी धनवाके अश्विदेवों । (अथ यत्), आज जो तुम (अपाक्) पश्चिम दिशामें (यत् प्राक्) या पूर्वदिशामें (स्थः) रहो, (यत्) जो तुम द्रुक्षु, अन्न, तुर्वश यदुके पास रहो, पर (वा हुवे) मैं तुम्हें बुझावा हूँ (अथ) अच्छा अब (मा आ गतम्) मेरे निकट आओ ॥

[४७०]

४७० यदुन्तरिक्षे पतथः पुरुषज्ञा यद् वेमे रोदसी अनु ।

यद्रो स्वधाभिरधिष्ठिष्यो रथमत आ वातमश्विना ॥६॥

४७० यत् । अन्तरिक्षे । पतथः । पुरुऽमुज्जा ।
 यत् । वा । इमे इति । रोदसी इति । अनु ॥
 यत् । वा । स्वधामिः । अधिऽतिष्ठथः । रथम् ।
 अतः । आ । यातम् । अश्विना ॥६॥

४७० अन्वयः— पुरुमुज्जा अश्विना ! यत् अन्तरिक्षे पतथः यत् वा इमे रोदसी अनु (पतथः), यत् वा रथ स्वधामिः अधि-तिष्ठथः, अतः आ यातम् ॥६॥

४७० अर्थ— हे (पुरुमुज्जा) बहुत बड़ी मुज्जावाले अधिदेवों ! (यत्) जो तुम (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्षमें उड़ान करते हो, (यत् वा इमे रोदसी अनु) अथवा इन दो सुलोक या मूलोकके बीच चले जाते हो, (यत् वा) वा कभी (रथं स्वधामिः अधितिष्ठथः) रथपर अपनी धारक शक्तियोंसे चढ़ जाते हो, (अतः आ यातम्) उधरसे इधर आओ ॥

[४७१] (म. ८।१।८)

(४७१) इतिविधिः काण्वः । तणिक् ।

४७१ उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।
 युयुयातामितो रपो अप स्त्रियः ॥८॥

४७१ उत । त्या । दैव्या । भिषजा ।
 शम् । नः । करतः । अश्विना ॥
 युयुयाताम् । इतः । रपः । अप । स्त्रियः ॥८॥

४७१ अन्वय — उत त्या दैव्या भिषजा अश्विना नः शं करतः इतः स्त्रियः अप रपः युयुयाताम् ॥ ८ ॥

४७१ अर्थ— (उत) और (त्या) वे दोनों (दैव्या भिषजा) दिव्य वैद्य अधिदेव (नः शं करतः) हमारे लिए सुख देते हैं, तथा (इत) यहाँसे (स्त्रियः अप) रात्रिमें ही हटाकर (रपः युयुयाताम्) दोपको दूर भगायें ॥

४७१ भाषार्थ— यैस अपने चिकित्सा-कर्ममें प्रवीण हों, और जनताका सुख बढ़ावें और दोषों और रोगोंको दूर करें ।

[४७२] (अ० ८१२।१-१८)

(४७२-४८९) सोमरिः काण्वः । १-६ प्रगाथः = (विपमा
बृहती+ममा सतोबृहती), ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप् ।
१२ मध्ये ज्योतिः, प्रगाथः = (९, १३, १५, १७, ककुप्,
१०, १४, १६, १८ सतोबृहती) ।

४७२ ओ त्यमं ह आ रथमद्या दंसिष्ठमतये ।

यमश्चिना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थधुः ॥ १ ॥

४७२ ओ इति । त्यम् । अह्ने । आ । रथम् ।

अद्य । दंसिष्ठम् । ऊतये ॥

यम् । अश्चिना । सुहवा । रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी ।

आ । सूर्यायै । तस्थधुः ॥ १ ॥

४७२ अन्वयः— ओ, अद्य त्वं दंसिष्ठं रथं, यं सुहवा रुद्रवर्तनी अश्चिना
सूर्यायै आ तस्थधुः, ऊतये आ अह्ने ॥ १ ॥

४७२ अर्थ— (ओ) आह, (अद्य) आज (त्वं) उस (दंसिष्ठं रथं)
अत्यन्त दर्शनीय रथको, (यं) जिसपर (सुहवा) सुखपूर्वक बुलानेयोग्य
(रुद्रवर्तनी) दुःखको दूर करनेके मार्गसे जानेहारे अश्विदेव (सूर्यायै
आ तस्थधुः) सूर्यके लिए चढ़ चुके थे, (ऊतये आ अह्ने) संरक्षणके लिए मैं
उनको बुलाता हूँ ॥

४७२ टिप्पणी— रुद्र (रुद्र-२) = रौनेको दूर करनेवाले, दुःखको
दूर करनेवाले ।

[४७३]

४७३ पूर्वापुर्वं सुहवै पुरुस्पृहं मुज्युं वाजेषु पूर्व्यम् ।

सचनावन्तं सुमतिभिः सोमरे विद्वेपसमनेहसम् ॥ २ ॥

४७३ पूर्वऽआपुर्वम् । सुहवम् । पुरुऽस्पृहम् ।

मुज्युम् । वाजेषु । पूर्व्यम् ॥

सचनावन्तम् । सुमतिभिः । सोमरे ।

विद्वेपसम् । अनेहसम् ॥ २ ॥

४७३ अन्वयः— सोमरे ! पूर्वा-पुषं, सुदवं, पुरु-स्पृहं, भुङ्गुं, वाजेषु पूर्यं, सचनायन्तं, विद्वेषसं अनेहसं [रथं] सुमतिभिः ॥ २ ॥

४७३ अर्थ— हे (सोमरे) सोमरी ऋषि ! (पूर्वा-पुष) पहले आनेवाले स्तोता-भोंके पोषणकर्ता, (सुदवं) सुगमतापूर्वक बुलानेयोग्य, (पुरु-स्पृहं) बहुतसे लोग जिसकी इच्छा करते हैं ऐसे, (भुङ्गुं) भुङ्गुको, भोजन देनेवाले, (वाजेषु पूर्यं) युद्धोंमें सबसे पहले जाकर खड़े होनेवाले, (सचनायन्तं) सभी लोगोंसे युक्त, (वि-द्वेषसं) शत्रुभोंका विशेष रूपसे द्वेष करनेवाले एवं (अनेहसं) छुटिरहित अग्निदेवोंके रथको सू (सुमतिभिः) अच्छी मतनीय श्रुतिर्मोक्षे प्रशंसित कर ॥

[४७४]

४७४ इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।

अर्वाचीना स्वर्वसे करामहे गन्तारा दाशुपौ गृहम् ॥३॥

४७४ इह । त्या । पुरुभूतमा ।

देवा । नमोऽभिः । अश्विना ॥

अर्वाचीना । सु । अर्वसे । करामहे ।

गन्तारा । दाशुपौ । गृहम् ॥३॥

४७४ अन्वयः— त्या दाशुपः गृहं गन्तारा, देवा पुरुभूतमा अभिना इह नमोभिः स्वर्वसे अर्वाचीना करामहे ॥ ३ ॥

४७४ अर्थ— (त्या) वे दोनों (दाशुपः गृहं गन्तारा) दानी पुरुषके घर जानेवाले, (देवा) तेजस्वी और (पुरु-भूतमा) बहुत अधिक मात्रामें उपस्थित होनेवाले अग्निदेवोंको (इह) इधर (नमोभिः) नमनपूर्वक (स्व-र्वसे) भलीभाँति रक्षा करनेके लिए (अर्वाचीना करामहे) हमारे अभिमुख करते हैं ॥

[४७५]

४७५ युवो रथस्य परिं चक्रमीधत ईर्मान्यद्वामिपण्यति ।

अस्मां अच्छा सुमतिर्वी शुभस्पती आ धेनुर्वि घावतु ॥४॥

४७५ युवोः । रथस्य । परिं । चक्रम् । ईयते ।

ईर्मा । अन्यत् । वाम् । इषण्यति ॥

अस्मान् । अच्छं । सुऽमतिः । वाम् । शुभः । पती इति ।

आ । धेनुऽइव । धावतु ॥४॥

४७५ अन्वयः— युवोः रथस्य चक्रं परि ईयते, अन्यत् ईर्मा वा इषण्यति शुभपती ! वा सुमतिः, धेनुः इव, अस्मान् अच्छ आ धावतु ॥ ४ ॥

४७५ अर्थ— (युवो. रथस्य चक्रं) तुम्हारे रथका चक्र (परि ईयते) चारों ओर चला जाता है और (अन्यत्) दूसरा पहिया (ईर्मा वा इषण्यति) घेरणकारी तुम्हें ग्रास होता है इत्यदि (धेनुः इव) शुभपती) शुभके अधिपति । (वा सुमतिः) तुम्हारे अच्छी बुद्धि, (धेनुः इव) गायके तुल्य जोकि अपने बछड़ेके समीप दौड़ी चली जाती है, (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हमारे समीप लक्ष्म दौड़ती लाजाय ॥

[४७६]

४७६ रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।

परि धावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥

४७६ रथः । यः । वाम् । त्रिवन्धुरः ।

हिरण्यऽअभीशुः । अश्विना ॥

परिं । धावापृथिवी इति । भूषति । श्रुतः ।

तेन । नासत्या । आ । गतम् ॥५॥

४७६ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! वा यः त्रिवन्धुरः हिरण्य-अभीशुः रथः श्रुतः धावा-पृथिवी परि भूषति तेन आ गतम् ॥५॥

४७६ अर्थ— हे सत्यमय अश्विदेवों ! (वा यः) तुम दोनोंका जो (त्रिवन्धुरः हिरण्य-अभीशुः) तीन स्थानोंमें सुन्दर प्रतीत होनेवाला और सुवर्णमय चाकसे युक्त रथ (श्रुतः) विख्यात है तथा (धावा-पृथिवी परि भूषति) पृथोक एवं भूलोकको अच्छेकरता है (तेन आ गतम्) इससे इधर पधारो ॥

[४७७]

४७७ दशस्यन्ता मनवे पुन्यं दिवि यवं वृक्रेण कर्पथः ।

ता चांमद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि ॥६॥

४७७ दशस्यन्ता । मनवे । पुन्यम् । दिवि ।

यवंम् । वृक्रेण । कर्पथः ॥

ता । चांम् । अद्य । सुमतिभिः । शुभः । पती इति ।

अश्विना । प्र । स्तुवीमहि ॥६॥

४७७ मन्वयः— मनवे पुन्यं दिवि दशस्यन्ता वृक्रेण यवं कर्पथः; शुभस्पती अश्विना ! अद्य ता चां सुमतिभिः प्र स्तुवीमहि ॥६॥

४७७ अर्थ— हे (शुभस्पती) शुभ के पालनकर्ता अश्विदेवों ! (मनवे पुन्यं) मनुको पहले विद्यमान धन आदि (दिवि दशस्यन्ता) सुलोकमें देते हुए तुम (वृक्रेण यवं कर्पथः) हलसे जोको भूमिपर खींचते हो अर्थात् कृषिकर्म करते हो (अद्य) आज (ता चां) ऐसे बिस्वात तुम दोनोंको (सुमतिभिः) अच्छी प्रसन्न बुद्धियोंसे (प्र स्तुवीमहि) स्तुत्य प्रशंसित करते हैं ॥

[४७८]

४७८ उप नो वाजिनीवसु यातमुत्स्यं पथिभिः ।

येभिस्तुष्टिं वृषणा त्रासदस्यवं महे क्षत्राय जिन्वथः ॥७॥

४७८ उप । नः । वाजिनीवसु इति वाजिनीवसु ।

यातम् । उत्स्यं । पथिभिः ॥

येभिः । तुष्टिम् । वृषणा । त्रासदस्यवंम् ।

महे । क्षत्राय । जिन्वथः ॥७॥

४७८ मन्वयः— वाजिनीवसु ! वृषणा ! येभिः उत्स्यं पथिभिः त्रासदस्यवं तुष्टिं महे क्षत्राय जिन्वथः, नः उप यातम् ॥७॥

४७८ अर्थ— हे (वाजिनीवसु) अथवा या सेनारूपी धनवाले और (वृषणा) पालित अश्विदेवों ! (येभिः उत्स्यं पथिभिः) जिन ऋतके मार्गोंसे प्रसदायुके पुत्र तुष्टिके (महे क्षत्राय) बड़ेमारी क्षत्रियोचित वीरताके लिए (जिन्वथः) प्रेरित करने जाने दो उम्हें मार्गोंसे (नः उप यातं) हमारे समीप आओ ॥

[४७९]

४७९ अयं वासद्भिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातुं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥८॥

४७९ अयम् । वाम् । अद्भिभिः । सुतः ।
सोमः । नरा । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ॥
आ । यातुम् । सोमपीतये ।
पिबतम् । दाशुषः । गृहे ॥८॥

४७९ अन्ययः— नरा ! वृषण्वसू । अये सोमः वा अद्भिभिः सुतः सोम-
पीतये आ यातुं, दाशुषः गृहे पिबतम् ॥ ८ ॥

४७९ अर्थ— हे (नरा) नेता एवं (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारि
अभिदेवों ! (अयं सोमः) यह सोमरस (वा) तुम दोनोंके लिए (अद्भिभिः
सुतः) पशुधरोंसे कूटकर निचोड़ा गया है; (सोमपीतये आ यातुं) सोमपानके
लिए आजाओ और (दाशुषः गृहे पिबतं) दागीके घर बसका पान करो ॥

[४८०]

४८० आ हि रुहर्तमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥९॥

४८० आ । हि । रुहर्तम् । अश्विना ।
रथे । कोशे । हिरण्यये ॥
वृषण्वसू इति वृषण्वसू ।
युञ्जाथाम् । पीवरीः । इषः ॥९॥

४८० अन्ययः— वृषण्वसू अश्विना । हिरण्यये कोशे रथे आ रुहर्तं हि,
पीवरीः इषः युञ्जाथाम् ॥ ९ ॥

४८० अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारि अभिदेवों ! (हिरण्यये
कोशे रथे) सुवर्णमय मांसारयत् रथपर (आ रुहर्तं हि) चढ़कर बैठो और
(पीवरीः इषः युञ्जाथां) पुष्ट करनेवाली सुलभृद् अन्नसामग्रियोंका संयोग
कर दो ॥

अश्विनी दे- ४३

[४८१]

४८१ याभिः पक्वमवय्यो याभिरधिगुं याभिर्विजोपसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूर्यमश्विना गतं मिपज्यतं यदातुरम् ॥१०॥

४८१ याभिः । पक्वम् । अवयः । याभिः । अधिऽगुम् ।
याभिः । वृभ्रम् । विऽजोपसम् ॥
ताभिः । नः । मक्षु । तूर्यम् । अश्विना । आ । गतम् ।
मिपज्यतम् । यत् । आतुरम् ॥१०॥

४८१ सन्ध्याः— अश्विना । याभिः पक्वम् अवयः, याभिः अधि-गुं, याभिः
विजोपसं वृभ्रं, ताभिः नः तूर्यं मक्षु आ गतं यत् आतुरं मिपज्यतम् ॥ १० ॥

४८१ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (याभिः) जिन शक्तिवर्षोंसे (पक्वम् अवयः)
पक्व नरेशकी रक्षा करते हो, (याभिः अधिगुं) जिनसे ऐसे नरेशको बचाते कि
जिसकी गतिमें कोई कटावट न डाल सकता हो और (याभिः वि-जोपसं
वृभ्रं) जिनकी मददसे विशेष सेवा करनेवाले वन्द्य नरेशकी सेवा करते हो,
(ताभिः) उनसे युक्त होकर (नः तूर्यं) हमारे समीप शीघ्र (मक्षु आ गतं)
तुरन्त आओ तथा (यत् आतुरं) जो कोई बीमार दीक्ष पडे उसकी (मिप-
ज्यतं) औपधादिद्वारा चिकित्सा करो ॥

[४८२]

४८२ यदधिगावो अधिगू इदा चिदहो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११॥

४८२ यत् । अधिऽगावः । अधिगू हत्यधिऽगू ।
इदा । चित् । अहः । अश्विना । हवामहे ॥
वयम् । गीऽभिः । विपन्यवः ॥११॥

४८२ सन्ध्याः— यत् विपन्यवः अधिगावः वयं गीर्भिः मक्षुः इदा चित्
अधिगू अश्विना हवामहे ॥ ११ ॥

४८२ अर्थ- (यत्) जबकि (विपन्वया) बुद्धिमान्, (अभिगावः वयं) रुकावटका अनुभव न करते हुए हम (गीर्भिः) माणोंसे (भद्रः इवा चित्) दिनके इस समय भी (अभिगू अभिना) अपतिहत गतिवाले अभिदेवोंको (हवामहे) बुलाते हैं तो वे अवश्यही आयेंगे ॥

४८३ टिप्पणी— अभि-गुः, अभि-गावः=जिनकी गौवं आगे बढ़ती हैं, जिनकी गौओंको कोई रोक नहीं सकता ।

[४८३]

४८३ तामिरा यातं वृषणोप मे हवं विश्वप्सु विश्ववार्यम् ।
इषा मंहिष्ठा पुरुभूतमा नरा यामिः किं वावृष्टाभिरा
गतम् ॥१२॥

४८३ तामिः । आ । यातम् । वृषणा । उप । मे । हवम् ।
विश्वप्सुम् । विश्ववार्यम् ॥
इषा । मंहिष्ठा । पुरुभूतमा । नरा ।
यामिः । किं । वावृष्टुः । तामिः । आ । गतम् ॥१२॥

४८३ अन्वयः— वृषणा । मे विश्वप्सु विश्ववार्यं हवं आ तामिः उप यातम् ।
पुरुभूतमा मंहिष्ठा नरा । यामिः किं वावृष्टुः तामिः इषा आ गतम् ॥१२॥

४८३ अर्थ— हे (वृषणा) बलवाणो ! (मे) मेरी (विश्वप्सु) सभी रूप धारण करनेवाली एवं (विश्ववार्यं हवं) सबने स्वीकरणीय प्रकारको सुनकर (आ) हमारे अभिमुख होकर (तामिः उप यातं) उन शक्ति या पुक्तियोंसे सज्ज हो समीप आओ, हे (पुरुभूतमा) अधिकतया उपस्थित होनेवाले । (मंहिष्ठा नरा) अतिशय दान देनेवाले एवं नेत्रा अभिदेवों । (यामिः किं वावृष्टुः) जिन शक्तियोंसे तुमने कुपोंको जलपूर्ण कर दिया (तामिः इषा आ गतम्) उनसे और उससे युक्त हो इधर आओ ॥

[४८४]

४८४ ताविदा चिदहानां तावन्मिना वन्दमान उप ब्रुवे ।
ता रु नमोभिरीमहे ॥१३॥

४८४ तौ । इ॒दा । चि॒त् । अ॒हाना॑म् ।
 तौ । अ॒श्विना॑ । च॒न्द॒मानः । उ॒प । श्रु॒वे ॥
 तौ । ॐ इति॑ । नमोऽभिः । इ॒महे ॥१३॥

४८४ अन्वयः— अहानां इदा चित् तौ अश्विना चन्द्रमानः तौ उप मुवे, नमोभिः तौ उ इमहे ॥ १३ ॥

४८४ अर्थ— (अहानां इदा चित्) दिनोंके इस अवसरपरही (तौ) उन दोनों अधिदेवोंको (चन्द्रमानः) नमन करता हुआ, (तौ उप मुवे) उनके समीप जाकर मैं अपना वक्ष्य कहता हूँ, (नमोभिः) नमनपूर्वक (तौ उ इमहे) उन्हींको हम चाहते हैं ॥

[४८५]

४८५ तावि॒द् दो॒षा ता उ॒प॒सि शु॒भ॒स्प॒ती ता या॒मन् रु॒द्र॒व॒र्त॒नी ।
 मा नो॒ म॒र्ता॒य रि॒पे वा॒जिनी॑व॒सू प॒रो रु॒द्रा॒व॒ति॑ ख्य॒तम् ॥
 ४८५ तौ । इ॒त् । दो॒षा । तौ । उ॒प॒सि । शु॒भः । प॒ती इति॑ ।
 ता । या॒मन् । रु॒द्र॒व॒र्त॒नी इति॑ रु॒द्र॒व॒र्त॒नी ॥
 मा । नः । म॒र्ता॒य । रि॒पे । वा॒जिनी॑व॒सू इति॑
 वा॒जिनी॑व॒सू ।
 प॒रः । रु॒द्रौ । अ॒ति । ख्य॒तम् ॥१४॥

४८५ अन्वयः— तौ शुभस्पती दोषा इत्, तौ उपसि ता रुद्रवर्तनी यामन् (हयामहे), वाजिनीवसू रुद्रौ ! नः रिपे मर्ताय मा परः अति ख्यतम् ॥१४॥

४८५ अर्थ— (तौ शुभस्पती) उन दो अच्छेके पाकक अधिदेवोंको (दोषा इत्) रात्रिके मौकेपर भी, (तौ उपसि) उन्हें प्रातःकाल भी, (ता रुद्रवर्तनी) उन दो वीरगद्गके पथपर चलनेवाले अधिदेवोंको (यामन्) यात्रा करवे समय हम सुकाते हैं । हे (वाजिनी-वसू रुद्रौ) बलरूपी धन-वाले ! शत्रुको दबानेवाले ! (नः) हमें (रिपे मर्ताय) शत्रुभूत मानवके छिद् (मा परः अति ख्यत) न कभी भागे कद् दो । शत्रुको हमारा पता न लगे ॥

४८५ भावार्थ— शुभका पालन करो, धीरेके मार्गसे गमन करो, बलको धन मानो, शत्रुको अपना पता न दो, अपना स्थान सुरक्षित रखो ।

[४८६]

४८६ आ सुगम्याय सुगम्यं प्राप्ता रथेनाश्विना वा सक्षणी ।
हुवे पितेव सोमरी ॥१५॥

४८६ आ । सुगम्याय । सुगम्यम् ।
प्रातरिति । रथेन । अश्विना । वा । सक्षणी इति ॥
हुवे । पिताइव । सोमरी ॥१५॥

४८६ अन्वयः— सोमरी पिता इव हुवे, सक्षणी अश्विना सुगम्याय प्रातः
रथेन वा सुगम्यं वा ॥ १५ ॥

४८६ अर्थ— मैं सोमरी (पिता इव हुवे) पिता जिस तरह पुत्रोंको बुलाता है वैसेही बुलाता हूँ; (सक्षणी) सेवनीय अभिरेषों (सुगम्याय) सुल पानेकी योग्यता रखनेवालेको (प्रातः) सुबह (रथेन वा) चाहे तो रथपरसे (सुगम्यं वा) सुल पहुँचानेके लिए जाओ ॥

[४८७]

४८७ मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुग्मामिह्रतिभिः ।
आरात्ताचिद् भूतमस्मे अवसे पूर्वाभिः पुरुभोजसा ॥१६॥

४८७ मनःजवसा । वृषणा । मदच्युता ।
मक्षुग्मामिभिः । ऊतिभिः ॥
आरात्ता । चिद् । भूतम् । अस्मे इति । अवसे ।
पूर्वाभिः । पुरुभोजसा ॥१६॥

४८७ अन्वयः— मनो-जवसा । वृषणा पुरु-भोजसा । मदच्युता ! अस्मे
अवसे पूर्वाभिः मक्षुग्मामिभिः ऊतिभिः आरात्ता चिद् भूतम् ॥ १६ ॥

४८७ अर्थ- हे (मनो-अवस्था) मनवत् वेगसे जानेवाले ! (धृपणा) बलवान् ! (पुष्ट-भोजसा) बहुत कोमोको भोगके साधन देनेवाले ! (मद-व्युता) पाशुके मदको हटानेवाले ! अग्निदेवों ! (अहमे अवसे) हमारी रक्षाके लिए (पूर्वोक्तिः) बहुतसी तथा (मधु-गमाभिः उत्तिभिः) शीघ्र गतिवाली रक्षणकी शक्तियसे युक्त होकर (आरात्ताद् चित्) समीपही (गूतं) तुम रहने लगे ॥

[४८८]

४८८ आ नो अश्ववदश्विना वर्तिर्यसिष्टं मधुपातमा नरा ।

गोमद् दत्ता हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

४८८ आ । नः । अश्ववत् । अश्विना ।

वर्तिः । यासिष्टम् । मधुपातमा । नरा ॥

गोमद् । दत्ता । हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

४८८ अन्ययः- मधुपातमा । दत्ता । नरा अश्विना । नः गोमद् अश्ववत् हिरण्यवत् वर्तिः आ यासिष्टम् ॥ १७ ॥

४८८ अर्थ- हे (मधु-पातमा) अत्यन्त मधुर सोमरस पीनेहार ! (दत्ता) पाशुविनाशक ! (नरा) नेता अग्निदेवों ! (नः गोमद् अश्ववत्) हमारे गोधन एवं बाजिघनसे पूर्ण (हिरण्यवत् वर्तिः आ यासिष्टं) सुवर्णयुक्त निवास-स्थलमें आओ ॥

[४८९]

४८९ सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना ।

अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि ॥

४८९ सुप्रावर्गम् । सुवीर्यम् । सुष्ठु । वार्यम् ।

अनाधृष्टम् । रक्षस्विना ॥

अस्मिन् । आ । वाम् । आऽयाने । वाजिनीवसू इति वाजिनीवसू ।

विश्वा । वामानि । धीमहि ॥ १८ ॥

४८९ अन्वयः— वाजिनी-वसु ! रक्षस्विना भनाष्टं, सुप्रावर्गं, सुवीर्यं सुष्टु वार्यं, वां अस्मिन् आधाने विश्वा वामानि आ धीमहि ॥ १८ ॥

४८९ अर्थ— हे (वाजिनी-वसु) बलरूपी धनवाले ! रक्षस्विना भनाष्ट-
आष्टं) रक्षणशक्तिके युक्त पुरुषके द्वारा भी जिसपर हमला करना असंभव
हुआ हो, (सुप्रावर्ग) सुगमतासे प्रदान करनेयोग्य और (सुवीर्यं सुष्टु वार्यं)
अच्छी वीरतासे युक्त अतः मझीभोंति स्वीकरणीय ऐसे गुणोंसे युक्त (विश्वा
वामानि) सभी धनोंको (वां अस्मिन् आधाने) तुम दोनोंके इस आगमनसे
(आ धीमहि) हम धारण करते हैं ॥

[४९०] (अ. ८।१६।१-१९)

(४९०—५०८) विश्वमना वैयस्यः; स्वस्रो वाऽक्षिरसः । दक्षिणः,

१६-१९ गायत्री ।

४९० युवोः पृ रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु ।

अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसु ॥१॥

४९० युवोः । ऊँ इति । सु । रथम् । हुवे ।

सधस्तुत्याय । सूरिषु ।

अतूर्तदक्षा । वृषणा । वृषण्वसु इति वृषण्वसु ॥१॥

४९० अन्वयः— अतूर्तदक्षा ! वृषणा ! वृषण्वसु ! सूरिषु सधस्तुत्याय युवोः
रथं व सु हुवे ॥ १ ॥

४९० अर्थ— हे (अतूर्त-दक्षा) ऐसे बल धारण करनेवाले कि जिससे दूसरा
कोई नष्ट न कर सके और (वृषणा) मलवान् तथा (वृषण्वसु) धनकी वर्षा
करनेहारे ऋषिदेवों ! (सूरिषु) विद्वानोंमें (सधस्तुत्याय) एकही साथ
प्रशंसा करनेके लिए (युवोः रथं व) तुम्हारे रथकोही (सु हुवे) मझीभोंति
शुकाता ॥ १ ॥

[४९१]

४९१ युवं वीरो सुपाष्णो महे तने नासत्या ।

अवोभिर्मायो वृषणा वृषण्वसु ॥२॥

४९१ युवम् । व॒रो इति । सु॒ऽसाम्ने ।

म॒हे । त॒र्ने । ना॒स॒त्या ॥

अ॒र्वऽभिः । या॒थः । वृ॒ण॒णा । वृ॒ण्व॒सु इति

वृ॒ण॒व॒सू ॥२॥

४९१ अन्वयः— नासत्या ! वृणणा ! वृणवसू ! युवं सु-साम्ने महे तने अवोभिः याथः; वरो ॥ १ ॥

४९१ अर्थ— हे असत्यसे दूर रहनेवाले ! (वृणणा) बलिष्ठ तथा (वृणवसू) धनकी दृष्टि करनेवाले अधिदेवों ! (युवं) तुम (सुसाम्ने महे तने) सुसामन्के लिए बड़ा धन मिले इस इच्छासे (अवोभिः याथः) संरक्षणोंसे युक्त होकर यात्रा करते हो इसी तरह मेरेलिए भी प्रयत्न करो, ऐसी मार्थना (वरो) हे यह नरेश ! तु कर ॥

[४९२]

४९२ ता वा॒म॒घ ह॒वामहे ह॒व्येभि॑र्वा॒जिनी॑वसू ।

पू॒र्वी॒रि॒प इ॒पय॑न्ता॒वति॑ क्ष॒पः ॥३॥

४९२ ता । वा॒म॒ । अ॒घ । ह॒वामहे ।

ह॒व्येभिः॑ । वा॒जिनी॑व॒सू इति॑ वा॒जिनी॑व॒सू ॥

पू॒र्वीः । इ॒पः । इ॒पय॑न्तौ । अ॒ति । क्ष॒पः ॥३॥

४९२ अन्वयः— वाजिनी-वसू ! क्षपः अति अघ ता वां पूर्वीः इपः इपयन्तौ हव्येभिः हवामहे ॥ ३ ॥

४९२ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) बल्युक्त धनवाले अधिदेवों ! (क्षपः अति) रात्रीके धीत जानेपर (अघ ता वां) आज इन विषयात तुम्हें जोकि (पूर्वीः इपः इपयन्तौ) बहुतसी अच्छासामग्रियोंको चाहते हो (हव्येभिः हवामहे) हवनीय वस्तुओंके प्रदानके साथ हम जुकाते हैं ॥

[४९३]

४९३ आ वां चाहि॑ष्ठो अ॒श्विना॒ रथो॑ यातु श्रु॒तो न॑रा ।

उ॒ष॒ स्तोमा॑न् तुर॒स्य द॑र्शयः श्रि॒ये ॥४॥

४९३ आ । चाम् । चाहिष्ठः । अश्विना ।

रथः । यातु । श्रुतः । नरा ॥

उप । स्तोमान् । तुरस्य । दर्शयः । श्रिये ॥४॥

४९३ अन्वयः— नरा अश्विना । वा चाहिष्ठः श्रुतः रथः आ यातु, तुरस्य स्तोमान् श्रिये उप दर्शयः ॥ ४ ॥

४९३ अर्थ— हे (नरा) मेरा अश्विदेवों ! (वा चाहिष्ठः) तुम्हें खूब जगह जगह पहुँचानेवाला और (श्रुतः) विख्यात रथ (आ यातु) इधर चला आवे; पश्चात् (तुरस्य स्तोमान्) शीघ्रतया कार्य करनेवालेके स्तोत्रोंका, (श्रिये) लोभाके लिए (उप दर्शयः) समीप जाकर दर्शन लो ॥

[४९४]

४९४ जुहुराणा चिदाश्विनाऽऽ मन्येयां वृषण्वसू ।

युवं हि रुद्रा पर्यथो अति द्विषः ॥५॥

४९४ जुहुराणा । चित् । अश्विना ।

आ । मन्येयाम् । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ॥

युवम् । हि । रुद्रा । पर्यथः । अति । द्विषः ॥५॥

४९४ अन्वयः— वृषण्वसू अश्विना । जुहुराणा चित् आ मन्येयां युवं रुद्रा हि द्विषः अति पर्यथः ॥ ५ ॥

४९४ अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनकी वरदा करनेवाले अश्विदेवों ! (जुहुराणा चित् आ मन्येयां) कुटिल प्रकृतिके लोगोंको भी मान्यता देदो क्योंकि (युवं रुद्रा हि) तुम तो रात्रिके बहानेवाले हो और (द्विषः अति पर्यथः) द्वेष करनेवाले प्रायुषोंको पार वरके भागे बढते हो ॥

[४९५]

४९५ दुस्ता हि विश्वमानुषङ्मक्षार्मैः परिदीर्घथः ।

धियंजिन्वा मधुवर्णा शुमस्पती ॥६॥

४९५ दुस्ता । हि । विश्वम् । आनुषक् ।

मधुऽभिः । परिऽदीर्घथः ॥

धियम्ऽजिन्वा । मधुऽवर्णा । शुमः । पती इति ॥६॥

अभिर्नो दे० ४४

४९५ अन्वयः— दत्ता । मधुवर्णा । धियं-जिन्वा । शुभस्पती ! मधुभिः
विश्वं आमुपक् परिदीपयः हि ॥ ६ ॥

४९५ अर्थ— हे (दत्ता) दर्शनीय ! (मधु-वर्णा) मधुर वर्णवाले !
(धियं-जिन्वा) बुद्धि या कर्मोक्त ठीक पावन भीषण-करनेवाले । (शुभः
पती) शुभ चीजोंके अधिपति । अग्निदेवों ! (मधुभिः) शीघ्रगामी घोड़ोंके
साथ (विश्वं आमुपक्) सबके समीप लगातार (परि दीपयः) पशुर्विक्र जले
जाते हो इसमें रोशनी नहीं है ॥

[४९६]

४९६ उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।

मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥७॥

४९६ उप । नः । यातम् । अश्विना ।

राया । विश्वऽपुषा । सह ॥

मघऽवाना । सुऽवीरौ । अनपच्युता ॥७॥

४९६ अन्वयः— मघवाना । अनपच्युता । सुवीरौ अश्विना ! नः विश्वपुषा
राया सह उप वसतम् ॥ ७ ॥

४९६ अर्थ— हे (मघवाना ।) वैश्वर्यसंपन्न ! (अन्-अनपच्युता) न
पदभट्ट हुए (सुवीरौ) अच्छे वीर अग्निदेवों ! (नः) हमारे समीप (विश्व-
पुषा राया सह) सबकी पुष्टि करनेहारे भ्रमसे मुक्त होकर (उप वाते) आओ ॥

[४९७]

४९७ आ मे अस्य प्रतीव्यमिन्द्रनासत्या गतम् ।

देवा देवेभिर्घ सचनस्तमा ॥८॥

४९७ आ । मे । अस्य । प्रतीव्यम् ।

इन्द्रनासत्या । गतम् ॥

देवा । देवेभिः । अघ । सचनऽस्तमा ॥८॥

४९७ अन्वयः— इन्द्र-नासत्या । देवा देवेभिः सचनस्तमा अघ मे अस्य
प्रतीव्यं आ गतम् ॥ ८ ॥

४९७ अर्थ— हे इन्द्र एवं सत्यभक्त अभिदेवो ! तুম (देवा) दानी और (देवेभिः सचनः समा) विद्वानोंसे आत्यन्त अधिक मात्रामें युक्त होनेवाले हो, अतः (अद्य मे अस्य प्रतीक्यं) आज मेरे इस स्तोत्रके प्रत्युत्तरके रूपमें (आ गतं) इधर पधारो ॥

[४९८]

४९८ ययं हि वां हवामहे उक्षण्यन्तो व्यश्ववत् ।
सुमतिभिरुप विप्राविहा गतम् ॥९॥

४९८ ययम् । हि । वाम् । हवामहे ।
उक्षण्यन्तः । व्यश्ववत् ॥
सुमतिभिः । उप । विप्रौ । इह । आ । गतम् ॥९॥

४९८ अन्वयः— विप्रौ ! ययं व्यश्ववत् उक्षण्यन्तः वां हि हवामहे; सुम-
तिभिः इह उप आ गतम् ॥ ९ ॥

४९८ अर्थ— हे (विप्रौ) ज्ञानी अभिदेवो ! (ययं व्यश्ववत्) हम व्यश्वके
समानही, (उक्षण्यन्तः) इच्छा करते हुए (वां हि हवामहे) तुम्हें ही बुलाते
हैं, इसलिये (सुमतिभिः इह) अच्छी बुद्धियों एवं विद्वानोंसे युक्त होकर इधर
(उप आ गतं) समीप आओ ॥

[४९९]

४९९ अश्विना स्वृषे स्तुहि कुवित् ते अर्वतो हर्वम् ।
नेदीयसः कूळयातः पूर्णीरुत ॥१०॥

४९९ अश्विना । तु । ऋषे । स्तुहि ।
कुवित् । ते । अर्वतः । हर्वम् ॥
नेदीयसः । कूळयातः । पूर्णीन् । उत ॥१०॥

४९९ अन्वयः— ऋषे । अश्विनां तु स्तुहि, ते दत्तं कुवित् अवतः इत
पणीन् नेदीयसः कूळयातः ॥ १० ॥

४९९ अर्थ— हे ऋषिवर ! तू अग्निदेवोंकी (सु स्तुति) भलीभाँति सरा-
हना कर, क्योंकि वे दोनों (ते इव) तेरी पुकारको (कुवित् श्रवतः) बहुत-
तबार सुन लेते हैं, (उत) और (पणोज्) स्वार्थी व्यापारियोंको एवं
(नेदीयसः) समीप पहुँचे हुए शत्रुओंकी (कूलपातः) विनष्ट कर डालते हैं ॥

[५००]

५०० वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः ।

सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११॥

५०० वैयश्वस्य । श्रुतम् । नरा ।

उतो इति । मे । अस्य । वेदथः ॥

सजोषसा । वरुणः । मित्रः । अर्यमा ॥११॥

५०० अन्ययः— नरा ! वैयश्वस्य श्रुतं उत अस्य मे वेदथः; वरुणः मित्रः
अर्यमा सजोषसा ॥ ११ ॥

५०० अर्थ— हे (नरा) नेता अग्निदेवों ! (वैयश्वस्य श्रुतं) स्वश्वके पुत्रके
कथनको सुन लो (उत) और (अस्य मे वेदथः) इस मेरे भाषणको ठीक तरह
जान लो; वरुण, मित्र एवं अर्यमा (सजोषसा) इन्हें दो इधर आजायें ॥

[५०१]

५०१ युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सुरिभिः ।

अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥१२॥

५०१ युवादत्तस्य । धिष्ण्या ।

युवाऽनीतस्य । सुरिभिः ॥

अहःऽअहः । वृषणा । मह्यम् । शिक्षतम् ॥१२॥

५०१ अन्ययः— धिष्ण्या वृषणा । सुरिभिः युवानीतस्य युवादत्तस्य अहः
अहः मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥

५०१ अर्थ— हे (धिष्ण्या वृषणा !) प्रशंसाई एवं इच्छापूर्ति करनेवाले
अग्निदेवों ! (सुरिभिः) विद्वानोंको (युवानीतस्य युवा दत्तस्य) मुम लाकर
जो धन दे चुके हो उसे (अहः अहः) हरदिन (मह्यं शिक्षतम्) मुझे दे दाको ॥

[५०१]

५०२ यो वा यज्ञेमिरावृतोऽधिगच्छा वधूरिव ।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥

५०२ यः । वाम् । यज्ञेभिः । आऽवृतः ।
अधिऽगच्छा । वधूऽईव ॥
सपर्यन्ता । शुभे । चक्राते इति । अश्विना ॥१३॥

५०२ अन्ययः— अधिगच्छा वधूः इत्येव यः यो यज्ञेभिः आवृतः, सपर्यन्ता अश्विना शुभे चक्राते ॥ १३ ॥

५०२ अर्थ— (अधि-गच्छा वधूः इव) रूपसे ओढी हुई नववधुके समान (यः) जो मानव (वा यज्ञेभिः आवृतः) तुम्हारे यज्ञोंसे पूजितया वक्ता हुआ हो, उसे (सपर्यन्ता) अभीष्ट चीजोंके प्रदानसे पूजित करते हुए अधिवेव (शुभे चक्राते) अच्छी दशामें बढ रहे ऐसा प्रयत्न कर देते हैं ॥

५०२ टिप्पणी— 'अधिगच्छा वधूः आवृता' इस संप्रसारणसे ऐसा दीखता है कि वधू-नवविवाहित जो-शरीरपर पदमे चरते भी अधिक ओढती थी । आजकल संज्ञावर्मे यद् प्रथा है ॥

[५०३]

५०३ यो वाऽगुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।
वृतिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४॥

५०३ यः । वाम् । अगुरुव्यचःऽस्तमम् ।
चिकेतति । नृऽपाय्यम् ॥
वृतिः । अश्विना । परि । यातम् । अस्मऽयू इत्यस्मऽयू ॥

५०३ अन्ययः— अश्विना ! या अगुरुव्यचस्तमं नृपाय्यं या चिकेतति, वृतिः अस्मयू परि यातम् ॥ १४ ॥

५०३ अर्थ— हे अभिदेवों ! (वाः) जो (उद्गम्यघस्तमं) भावग्त वि-
स्तीर्ण तथा (नृ-पाठ्यं) नेताओंद्वारा सुरक्षित रक्षनेयोग्य स्थानको (वा
चिकेति) सुरक्षित छिप बतलाता है, उसके (वर्तिः) घटक (भस्मयू)
हमारी चाह रक्षनेवाले तुम (परि पातं) पातों ओरसे चले जाओ ॥

[५०४]

५०४ अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।
विषुद्रुहेव यज्ञमूहधुगिरा ॥ १५ ॥

५०४ अस्मभ्यम् । सु । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ।
यातम् । वर्तिः । नृपाय्यम् ॥
विषुद्रुहाइव । यज्ञम् । ऊहधुः । गिरा ॥ १५ ॥

५०४ अन्ययः— वृषण्वसू । नृपाय्यं वर्तिः । अस्मभ्यं सु यातं, गिरा यज्ञं
विषुद्रुहेव ऊहधुः ॥ १५ ॥

५०४ अर्थ— हे (वृषण्वसू) घनकी वर्षा करनेहारे अभिदेवों । (नृपाय्यं
वर्तिः) नेताओंसे रक्षणीय घरको (भस्मयू) हमारे हितके छिप (सु
पातं) भङ्गीमँति जाओ, क्योंकि तुम (गिरा यज्ञं) भावगसे यज्ञको
(वि-वु-द्रुहा इव ऊहधुः) सभी वायुओंके बधकर्ता बाणकी तरह उड़ा
ले गये ॥

[५०५]

५०५ दाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवसरा ।

युवाम्यां भृत्वशिना ॥ १६ ॥

५०५ दाहिष्ठः । वाम् । हवानाम् ।

स्तोमः । दूतः । हुवत् । नरा ॥

युवाम्याम् । भृत् । अशिना ॥ १६ ॥

५०५ अन्वयः— नरा अशिना । हवानां वां दाहिष्ठः स्तोमः दूतः हुवत्
युवाम्यां भृत् ॥ १६ ॥

५०५ अर्थ— हे (नरा) नेता अग्निदेवों ! (हवानां) तुम्हें जो तुकावे भेजे जाते हैं उनमें (वां वाहिष्ठः) तुम्हें अत्यधिक मात्रामें प्राप्त होनेवाला (स्तोमः दूतः इवत्) हमारा स्तोत्र दूत बनकर इधर जुलाए और वह (सुवाक्यं) तुम्हें प्रिय (भूषु) प्रतीत हो ॥

[५०६]

५०६ यदुदो दिवो अर्णवे इपो वा मदथो गृहे ।
भ्रतमिन्मे अमर्त्या ॥१७॥

५०६ यत् । अदः । दिवः । अर्णवे ।
इपः । वा । मदथः । गृहे ॥
भ्रतम् । इत् । मे । अमर्त्या ॥१७॥

५०६ अन्ययः— अमर्त्या ! यत् दिवः, अर्णवे, इपः गृहे वा मदथः मे मदः भ्रतं इत् ॥ १७ ॥

५०६ अर्थ— हे (न-मर्त्या) अमर अग्निदेवों ! (यत् दिवः) जो द्युम तुल्यकर्मों (अर्णवे) समुद्रमें (इपः गृहे वा) या अभीष्टके घरमें (मदथः) हर्षित होते हो, परन्तु (मे मदः) मेरा वह भाग्य (भ्रतं इत्) द्युम अवश्य सुन लेना ॥

[५०७]

५०७ उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम् ।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८॥

५०७ उत । स्या । श्वेतयावरी ।
वाहिष्ठा । वाम् । नदीनाम् ॥
सिन्धुः । हिरण्यवर्तनिः ॥१८॥

५०७ अन्ययः— उत-नदीनां वा वाहिष्ठा स्या श्वेतयावरी हिरण्य-वर्तनिः सिन्धुः ॥ १८ ॥

५०७ अर्थ- (उत) और भी (नदीनां वा वाहिण्या) नदियोंमें तुम्हें ही अधिक इस स्थानपर पहुँचानेवाली (एषा श्वेतयावरी) यह शुभ-निर्मल गतिवाली (हिरण्यवर्तनिः) सुवर्णनुद्यत तेजस्वी मार्गवाली (सिन्धुः) नदी है ॥

[५०८]

५०८ स्मदेतया सुकीर्त्याऽश्विना श्वेतया धिया ।
वहेथे शुभयावाना ॥१९॥

५०८ स्मत् । एतया । सुकीर्त्या ।
अश्विना । श्वेतया । धिया ॥
वहेथे इति । शुभयावाना ॥१९॥

५०८ अन्वयः — शुभ-यावाना अश्विना ! एतया सुकीर्त्या श्वेतया धिया स्मत् वहेथे ॥ १९ ॥

५०८ अर्थ-हे (शुभ-यावाना) निष्कलंक गतिवाले अभिदेवों ! (एतया सुकीर्त्या) इस अच्छी कीर्तिवाली (श्वेतया धिया) सफेद-निष्कलंक बुद्धिसे तुम दोनों (स्मत् वहेथे) कल्याणकी ओर-जाते हो—शुभ एवं हित-प्रद मार्गके अधिक बनते हो ॥

[५०९] (ऋ० ८।३।५।१-२४)

(५०९-५३२) इषावाश आग्नेयः । उपरिहान्यपोतिः (विष्टुप्),
२२, २४ वंक्तिः, २३ महावृहती ।

५०९ अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनाऽऽदित्यै रुद्रैर्वसुभिः
सचाऽसुवा । सजोषसा उपसा सूर्येण च सोमं
पिबतमश्विना ॥१॥

५०९ अग्निना । इन्द्रेण । वरुणेन । विष्णुना ।
आदित्यैः । रुद्रैः । वसुभिः । सचाऽसुवा ॥
सजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । पिबतम् । अश्विना ॥१॥

५०९ अन्वयः— अग्निना ! आग्निना इन्द्रेण वसुणेन विष्णुना आदित्यैः
वसुभिः रुद्रैः सचाभुवा उपसा सूर्येण च सजोषया सोमं पिबतम् ॥ १ ॥

५०९ अर्थ— हे अग्निदेवों ! तुम अग्नि, इन्द्र, वसुज, विष्णु, आदित्यों
वसुओं एवं रुद्रोंके संघोंसे (सचा-भुवा) युक्त होकर (उपसा सूर्येण स
सजोषया) और तथा तथा सूर्यसे मिलकर (सोमं पिबतम्) सोमरसका
सेवन करो ॥

[५१०]

५१० विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याऽद्रिभिः
सचाभुवा । सजोषसा उपसा सूर्येण च सोमं
पिबतमश्विना ॥२॥

५१० विश्वाभिः । धीभिः । भुवनेन । वाजिना ।
दिवा । पृथिव्या । अद्रिभिः । सचाऽभुवा ॥
सजोषसा । उपसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । पिबतम् । अश्विना ॥२॥

५१० अन्वयः— वाजिना अग्निना । दिवा, पृथिव्या, अद्रिभिः, विश्वाभिः
धीभिः भुवनेन सचाभुवा, उपसा सूर्येण च सजोषया सोमं पिबतम् ॥ २ ॥

५१० अर्थ— हे (वाजिना) वरुणान् अग्निदेवों (दिवा पृथिव्या)
गुह्योक्त एवं भूकोक्तों लोकोत्ते, (अद्रिभिः) न दौडनेवालोंसे, (विश्वाभिः -
धीभिः भुवनेन सचाभुवा) सभी बुद्धियों एवं भुवनसे युक्त हो तथा तथा
और सूर्यसे सम्मिलित होकर सोमपान करो ॥

[५११]

५११ विश्वेदेवैस्त्रिमिरैकादशैरिहान्निर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उपसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥३॥

५११ विश्वैः । देवैः । त्रिभिः । एकादशैः । इह ।
अत्रभिः । मरुद्भिः । भृगुभिः । सचाऽभुवा ॥
सजोषसा । उपसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । पिबतम् । अश्विना ॥३॥

५११ अन्ययः—अग्निना । इह त्रिभिः एकादशैः विधैः देवैः ऋगुभिः मरुद्भिः अद्भिः सचासुवा, उपसा सूर्येण च सजोषसा सोमं विषतम् ॥ ३ ॥

५११ अर्थ— हे अग्निदेवों ! (इह) यहाँपर (त्रिभिः एकादशैः विधैः देवैः) सभी तैत्तीस देवोंसे, (ऋगुभिः मरुद्भिः अद्भिः) ऋगृभों, मरुतों तथा अद्भोंसे (सचासुवा) संगत होकर और उपा एवं सूर्यके साथ रहकर सोमपान करो ॥

[५११]

५१२ जुषेथां यज्ञं वोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनां व गच्छतम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चैवं नो वोळ्हमग्निना ॥४॥

५१२ जुषेथाम् । यज्ञम् । वोधतम् । हवस्य । मे । विश्वा । इह । देवौ । सवना । अव । गच्छतम् ॥
सजोषसा । उपसा । सूर्येण । च ।
आ । इपम् । नः । वोळ्हम् । अग्निना ॥४॥

५१२ अन्ययः— अग्निना । यज्ञं जुषेथां, मे हवस्य वोधतं, देवौ इह विश्वा सवना अव गच्छतम्; उपसा सूर्येण च सजोषसा नः इपं वोळ्हम् ॥ ४ ॥

५१२ अर्थ— हे अग्निदेवों ! (यज्ञं जुषेथां) यज्ञका सेवन करो, (मे हवस्य वोधतं) मेरी प्रार्थना जान को, (देवौ) शानी तुम दोनों (इह विश्वा सवना अव गच्छतं) इपर सभी सवनोंके निकट आपहुँचो, पश्चात् तथा एवं सूर्यके साथ (नः इपं वोळ्हं) हमें अन्न पहुँचा दो ॥

[५१३]

५१३ स्तोमं जुषेथां युवशेवं कन्यनां विश्वेह देवौ सवनां व गच्छतम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चैवं नो वोळ्हमग्निना ॥५॥

५१३ स्तोमम् । जुपेयाम् । युवशाऽहम् । कन्यनाम् ।
 विश्वा । इह । देवौ । सर्वना । अर्व । गच्छतम् ॥
 सऽजोपसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
 आ । इषम् । नः । वोळहम् । अश्विना ॥५॥

५१३ अन्वयः— देवौ अश्विनौ ! कन्यनां युवशा इव स्तोमं जुपेयां विश्वा
 सवना इह अर्व गच्छतम्; उपसा सूर्येण च सजोपसा नः इषं वोळहम् ॥ ५ ॥

५१३ अर्थ— हे (देवौ) दानी या सोलमान अश्विदेवों ! (कन्यनां युवशा
 इव) कन्या—कमनीय युवतियोंको युवक जैसे चाहते हैं वैसेही (स्तोमं जुपे-
 यां) हमारे स्तोत्रका सेवन करो, तथा (विश्वा सवना) सभी सवनोंमें (इह
 गच्छतं) इपर भाकर पहुँच जाओ; सूर्य एवं चन्द्रमाके समय तुम दोनों
 हों भक्त पहुँचा दो ॥

[५१४]

५१४ गिरौ जुपेयामञ्चरं जुपेयां विश्वेह देवौ मवनार्व
 गच्छतम् । सजोपसा उपसा सूर्येण चैष नो
 वोळहमश्विना ॥६॥

५१४ गिरः । जुपेयाम् । अञ्चरम् । जुपेयाम् ।
 विश्वा । इह । देवौ । सर्वना । अर्व । गच्छतम् ॥
 सऽजोपसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
 आ । इषम् । नः । वोळहम् । अश्विना ॥६॥

५१४ अन्वयः— इह गिरः जुपेयां, अञ्चरं जुपेयां, देवौ विश्वा सवना अर्व
 गच्छतम्, अश्विना । उपसा सूर्येण च सजोपसा नः इषं वोळहम् ॥ ६ ॥

५१४ अर्थ— (इह गिरः जुपेयां) यहाँपर हमारे मापनोंका स्वीकार करो,
 (अञ्चरं जुपेयां) हिसारहित कार्यके छिपे आदरपूर्ण तथास्वित रहो (देवौ)
 दानी होकर तुम (विश्वा सवना अर्व गच्छतं) सभी सवनोंमें आओ, हे
 अश्विनौ ! सूर्योदय तथा चन्द्रमाके हमें भक्त पहुँचा दो ॥

[५१५]

५१५ हारिद्रवेव पतथो वनेदुष सोमं सुतं महिषेवाव
गच्छथः । सजोपसा उपसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७॥

५१५ हारिद्रवाऽईव । पतथः । वना । इत् । उर्ष ।
सोमम् । सुतम् । महिषाऽईव । अव । गच्छथः ॥
सजोपसा । उपसा । सूर्येण । च ।
त्रिः । वर्तिः । यातम् । अश्विना ॥७॥

५१५ अन्ययः— अश्विना । सुतं सोमं महिषा इव अव गच्छथः, वना
हारिद्रवा इव उप पतथः इत्, उपसा सूर्येण च सजोपसा वर्तिः त्रिः यातम् ॥७॥

५१५ अर्थ— हे अश्विदेवों (सुतं सोमं) निचोड़कर रत्ने हुए सोमके प्रति
(महिषा इव अव गच्छथः) गैसोंके तुल्य—यहुत व्यासे होकर जाते हो,
(वना) जलोंके समीप (हारिद्रवा इव) पंखीके तुल्य (उप पतथः
इत्) बड़े जाते हो, उपःकाळ एवं सूर्योदयके समय (वर्तिः त्रिः यातं)
घरके समीप तीन बार जाओ ॥

[५१६]

५१६ हंसाविष पतथो अध्वगाविष सोमं सुतं महिषेवाव
गच्छथः । सजोपसा उपसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥८॥

५१६ हंसोऽईव । पतथः । अध्वगोऽईव ।
सोमम् । सुतम् । महिषाऽईव । अव । गच्छथः ॥
सजोपसा । उपसा । सूर्येण । च ।
त्रिः । वर्तिः । यातम् । अश्विना ॥८॥

५१६ अन्ययः— अश्विना । हंसो इव अध्वगो इव पतथः, सुतं सोमं
महिषा इव अव गच्छथः, उपसा सूर्येण च सजोपसा वर्तिः त्रिः यातम् ॥ ८ ॥

५१६ अर्थ— (हंसो इव) हंसोंकी नाई, (अध्वगौ इव) पशुिकके तुष्य (पतयः) तुम ऊपरसे आगिरते हो, निचोडकर रखे सोमको पीनेके लिए, जैसे हो जैसे तान्वायके समीप जाते हैं वैसेही, तुम आते हो; उपा एवं मूर्धसे युक्त हो तीन बार घर चले जाओ ।

[५१७]

५१७ इयेनार्विंश पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेयावं
गच्छथः । सजोषसा उपसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥९॥

५१७ इयेनौऽईव । पतथः । हव्यऽदातये ।
सोमम् । सुतम् । महिषाऽईव । अवं । गच्छथः ॥
सऽजोषसा । उपसा । सूर्येण । च ।
त्रिः । वर्तिः । यातम् । अश्विना ॥९॥

५१७ अन्वयः— हव्यदातये इयेनौ इव पतयः, सुतं सोमं महिषा इव यव गच्छथः । हे अश्विना ! उपसा सूर्येण च सजोषसा वर्तिः त्रिः यातम् ॥ ९ ॥

५१७ अर्थ— (हव्य-दातये) अन्नका दान करने लिए (इयेनौ इव पतयः) बाज पंछीके समान वेगसे आते हो, तैयार सोमरसको पीनेके लिए, हंसोंके तुष्य शीघ्रगतिसे आते हो; हे अध्विद्वों ! उपःकाल एवं मूर्धोदयकी बेकामें तीन बार जाओ ।

[५१८]

५१८ पिबंतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं
च धत्तम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चोर्जं नो
धत्तमश्विना ॥१०॥

५१८ पिबंतम् । च । तृष्णुतम् । च । आ । च । गच्छतम् ।
प्रजाम् । च । धत्तम् । द्रविणम् । च । धत्तम् ॥
सऽजोषसा । उपसा । सूर्येण । च । ऊर्जम् । नः ।
धत्तम् । अश्विना ॥१०॥

५१८ अन्वयः— विषतं तृप्णुतं च आ गच्छतं च, प्रजां द्रविणं च धत्तम्; अश्विना ! उपसा सूर्येण च सजोपसा नः ऊर्जं धत्तम् ॥ १० ॥

५१८ अर्थ— (विषतं तृप्णुतं च) सोमरस पी जाओ और तृप्त बनो तथा (आ गच्छतं च) आ जाओ; (प्रजां द्रविणं च धत्तं) सन्तान एवं धनधैभवको देहालो, हे अश्विदेवों ! सूर्य एवं उपसके साथ रहते हुए तुम (नः ऊर्जं धत्तं) हमें बल देओ ॥

[५१९]

५१९ जयतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं
च धत्तम् । सजोपसा उपसा सूर्येण चोर्जं नो
धत्तमश्विना ॥११॥

५१९ जयतम् । च । प्र । स्तुतम् । च । प्र । च । अवतम् ।
प्रजाम् । च । धत्तम् । द्रविणम् । च । धत्तम् ॥
सजोपसौ । उपसौ । सूर्येण । च ।
ऊर्जम् । नः । धत्तम् । अश्विना ॥११॥

५१९ अन्वयः— अश्विना ! जयते प्र-स्तुतं च, प्र आवतं, प्रजां द्रविणं च धत्तं; उपसा सूर्येण च सजोपसा नः ऊर्जं धत्तम् ॥ ११ ॥

५१९ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (जयतं, प्रस्तुतं च) तुम जीत को और प्रशंसा करो, (प्र आवतं) सूख रक्षा करो, सन्तति तथा द्रव्यका दान करो, तथा एवं सूर्यके साथ रहते हुए हमें बल देवों ॥

[५२०]

५२० हतं च शत्रून् यततं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं
च धत्तम् । सजोपसा उपसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥

५२० हतम् । च । शत्रून् । यततम् । च । मित्रिणः ।
प्रजाम् । च । धत्तम् । द्रविणम् । च । धत्तम् ॥
सजोपसौ । उपसौ । सूर्येण । च ॥
ऊर्जम् । नः । धत्तम् । अश्विना ॥१२॥

५१० मन्त्रयः— शत्रून् हतं, मित्रिणः यततं च, प्रजां द्रविजं च क्षतां
अग्निना । उपसा सूर्येण च सजोषसा नः कर्जं वसतम् ॥ १२ ॥

५१० अर्थ— (शत्रून् हतं) दुश्मनोंका वध करो और (मित्रिणः यततं)
मित्रोंको पानेका चरन करो, प्रजा तथा जनका दान करो, हे अग्निदेवों ! उपा
एवं सूर्यसे सम्मिश्रित हो हमें बल दो ॥

[५११-५२३]

५११ मित्रावरुणवन्ता उत धर्मेवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो
हवम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चादित्यैर्यातमग्निना ॥ १३ ॥

५१२ अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो
हवम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चादित्यैर्यातमग्निना ॥ १४ ॥

५१३ ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो
हवम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चादित्यैर्यातमग्निना ॥ १५ ॥

५११ मित्रावरुणवन्तौ । उत । धर्मेवन्ता ।
मरुत्वन्ता । जरितुः । गच्छथः । हवम् ॥
सजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
आदित्यैः । यातम् । अग्निना ॥ १३ ॥

५१२ अङ्गिरस्वन्तौ । उत । विष्णुवन्ता ।
मरुत्वन्ता । जरितुः । गच्छथः । हवम् ॥
सजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
आदित्यैः । यातम् । अग्निना ॥ १४ ॥

५१३ ऋभुमन्ता । वृषणा । वाजवन्ता ।
मरुत्वन्ता । जरितुः । गच्छथः । हवम् ॥
सजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
आदित्यैः । यातम् । अग्निना ॥ १५ ॥

५२१-५२३ अन्वय — अश्विना । मित्रावरुणवन्ता, धर्मवन्ता उत मरुत
न्ता, अगिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता, क्रभुमन्ता, वाजवन्ता वृषणा । जरितुः हव
गच्छयः, उपसा सूर्येण आदित्यै च सजोपसा यातम् ॥ १३ १५ ॥

५२१-५२३ अर्थ— हे अश्विदेवों । तुम मित्र, वरुण, धर्म एवं वीर मरुतके
साथ तथा अगिरस् और विष्णुके साथ, क्रभुओं तथा भस्त्रके साथ (वृषणा)
बलवान् बनकर (जरितुः हव गच्छयः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले आते
हो, उपा, सूर्य तथा आदित्यके पुत्रके साथ (यात) शुभ गमन करो ॥

[५२४-५२६]

५२४ ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षोसि सेधतममीवाः ।

सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१६

५२५ क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नृन् हतं रक्षोसि सेधतममीवाः ।

सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१७

५२६ धेनूजिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षोसि सेधतममीवाः ।

सजोपसा उपसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१८॥

५२४ ब्रह्म । जिन्वतम् । उत । जिन्वतम् । धियोः ।

हतम् । रक्षोसि । सेधतम् । अमीवाः ॥

सजोपसौ । उपसा । सूर्येण । च ।

सोमम् । सुन्वतः । अश्विना ॥१६॥

५२५ क्षत्रम् । जिन्वतम् । उत । जिन्वतम् । नृन् ।

हतम् । रक्षोसि । सेधतम् । अमीवाः ॥

सजोपसौ । उपसा । सूर्येण । च ।

सोमम् । सुन्वतः । अश्विना ॥१७॥

५२६ धेनूः । जिन्वतम् । उत । जिन्वतम् । विशः ।

हतम् । रक्षोमि । सेधतम् । अमीवाः ॥

सजोपसौ । उपसा । सूर्येण । च ।

सोमम् । सुन्वतः । अश्विना ॥१८॥

५२४-५२६ अन्वयः— अश्विना ! रक्षामि हतं, अमीवाः सेधतं, ब्रह्म उत धियः, क्षत्रं उत नृन्, धेनुः उत विशः जिन्वतं, उपसा सूर्येण च सजोषसौ सोमं सुन्वतः ... ॥ १६-१८ ॥

५२४-५२६ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (रक्षामि हतं) राक्षसोंका वध करो (अमीवाः सेधतं) रोमोंको दूर करो (ब्रह्म उत धियः) ज्ञान, कार्य (क्षत्रं उत नृन्) क्षात्रके तथा नेतृत्व गुणोंको (धेनुः उत विशः) गायों एवं प्रजाओंको (जिन्वतं) संगृष्ट रखो और उपावेला एवं सूर्योदयके समय (सोमं सुन्वतः) सोम निचोदते हुंएके समीप जाकर सोमपान करो ॥

[५२७-५२९]

५२७ अत्रैरिव शृणुतं पूर्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उपसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्वयम् ॥१९॥

५२८ सर्गान् इव सृजतं सुष्टुतीरुपं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उपसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्वयम् ॥२०॥

५२९ रश्मीरिव यच्छतमध्वरां उपं श्यावाश्वस्य सुन्वतो
मदच्युता । सजोषसा उपसा सूर्येण चाश्विना
तिरोअह्वयम् ॥२१॥

५२७ अत्रैःऽइव । शृणुतम् । पूर्यऽस्तुतिम् ।
श्यावऽश्वस्य । सुन्वतः । मदऽच्युता ॥
सजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
अश्विना । तिरःऽअह्वयम् ॥१९॥

५२८ सर्गान्ऽइव । सृजतम् । सुऽस्तुतीः । उपं ।
श्यावऽश्वस्य । सुन्वतः । मदऽच्युता ॥
सजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
अश्विना । तिरःऽअह्वयम् ॥२०॥

५२९ रश्मीन् इव । यच्छतम् । अध्वरान् । उप ।
 श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मृदुऽच्युता ॥
 सऽजोपसौ । । उपसा । सूर्येण । च ।
 अश्विना । तिरऽअह्वयम् ॥२१॥

५२७-५२९ अन्वयः— मृदुच्युता अश्विना ! सुन्वतः श्यावाश्वस्य पूर्व-
 स्तुतिं अग्नेः इव शृणुतं, सुधुतीः सर्गान् इव उपसृजतम्, रश्मीन् इव अध्वरान्
 उप यच्छतम्; उपसा सूर्येण च सजोपसौ तिरोमह्वयम् ... ॥२९-२१॥

५२७-५२९ अर्थ— हे (मृदुच्युता) शत्रुओंके गर्व हरण करनेवाले अश्वि-
 देवों ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोमरस निचोड़कर तैयार करते हुए श्यावा-
 श्वकी (पूर्वस्तुतिं) प्रथम स्तुतिको (अग्नेः इव शृणुतं) जैसे तुम अत्रिकी
 प्रशंसाको सुन चुके थे, वैसेही सुन को, (सुधुतीः) अच्छी स्तुतियोंके (सर्गान्
 इव उप सृजतं) समीप आकर देवोंके समाज दान देवों और (रश्मीन् इव)
 किरणों या कणामोंकी नाई (अध्वरान् उप यच्छतं) हिंसारहित कार्योंको
 समीपसे विपंशित करो, तथा एवं सूर्योदयके समय कल तैयार बनाए हुए
 सोमका पान करो ॥

[५३०-५३२]

- ५३० अर्याग् रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
 आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे घृतं रत्नानि
 दाशुपे ॥२२॥
- ५३१ नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवर्णस्य पीतये ।
 आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे घृतं रत्नानि
 दाशुपे ॥२३॥
- ५३२ स्वाहाकृतस्य तृप्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
 आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे घृतं रत्नानि
 दाशुपे ॥२४॥

- ५३० अर्वाक् । रथम् । नि । यच्छतम् ।
 पिवतम् । सोम्यम् । मधु ॥
 आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
 अवस्युः । वाम् । अहम् । हुवे ।
 घृतम् । रत्नानि । दाशुपे ॥२२॥
- ५३१ नमःऽवाके । प्रऽस्थिते । अश्वरे । नरा ।
 विवर्णस्य । पीतये ॥
 आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
 अवस्युः । वाम् । अहम् । हुवे ।
 घृतम् । रत्नानि । दाशुपे ॥२३॥
- ५३२ स्वाहाऽकृतस्य । तुम्पतम् ।
 सुतस्य । देवौ । अन्धसः ॥
 आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
 अवस्युः । वाम् । अहम् । हुवे ।
 घृतम् । रत्नानि । दाशुपे ॥२४॥

५३०-५३२ अन्वयः— अश्विना ! आ यातं, आ गतं, अहं अवस्युः वां हुवे;
 रथं अर्वाक् नि यच्छतं, सोम्यं मधु पिवतं, विवर्णस्य प्रस्थिते नमोवाके
 अश्वरे पीतये नरा आ यातं; स्वाहाकृतस्य सुतस्य अन्धसः देवौ तुम्पतं, दाशुपे
 रत्नानि घृतम् ॥ २२-२४ ॥

५३०-५३२ अर्थ— हे अश्विदेवौ ! (आ यातं, आ गतं) तुम आओ, चले
 आओ; (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें शुक्रता हूँ;
 (रथं अर्वाक् नि यच्छतं) रथको हमारे अभिमुख रोक लो, (सोम्यं मधु पिवतं)
 सोमरस मिलाये हुए मधुका पान करो (विवर्णस्य प्रस्थिते) विशेष दंगते
 दृष्टि कोनेवालेके प्रवर्तित (नमोवाके अश्वरे) नमन एवं हिंसादिप्रकारों-
 में (पीतये) सोम पीनेके लिए (नरा) हे जेठा अश्विदेवौ ! आओ

(स्वाहाकृतस्य सुतस्य अन्धसः) हवन किये तथा निचोटे हुए भस्मरसका पान करके (देवी तृप्तं) दानी तुम तृप्ते बनो और पश्चात् (दाक्षुषे रत्नानि धत्तं) दानीके छिपे रत्न दे टालो ॥

[५३३-५३५] (क. ८।४१।४-६)

(५३३—५३५) नामाः कावः, अर्चनाना आग्नेयो वा । अनुष्टुप् ।

५३३ आ वां ग्रावाणो अश्विना धीभिर्विप्रा अचुच्यवुः ।

नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके समे ॥४॥

५३४ यथा वामन्निरश्विना गीभिर्विप्रो अजोहवीत् ।

नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके समे ॥५॥

५३५ एवा वामह ऊतये यथाऽहुवन्त मेधिराः ।

नासत्या सोमपीतये नमन्तामन्यके समे ॥६॥

५३३ आ । वाम् । ग्रावाणः । अश्विना ।

धीभिः । विप्राः । अचुच्यवुः ॥

नासत्या । सोमऽपीतये ।

नमन्ताम् । अन्यके । समे ॥४॥

५३४ यथा । वाम् । अग्निः । अश्विना ।

गीऽभिः । विप्राः । अजोहवीत् ॥

नासत्या । सोमऽपीतये ।

नमन्ताम् । अन्यके । समे ॥५॥

५३५ एव । वाम् । अह्ने । ऊतये ।

यथा । अहुवन्त । मेधिराः ॥

नासत्या । सोमऽपीतये ।

नमन्ताम् । अन्यके । समे ॥६॥

५३३-५३५ अन्वयः— नामाया अश्विना । सोमपीतये वा विप्राः ग्रावाणः । अचुच्यवुः यथा अग्नि विप्रा वा गीभिः अजोहवीत् यथा मेधिराः अहुवन्त एव वा ऊतये अह्ने, अन्यके समे नमन्ताम् ॥ ४-६ ॥

५३३-५३५ अर्थ- हे सत्यके प्रवर्तक अधिदेवों ! (सोमपीतये) सोमपानके लिए (वां) तुम दोनोंके लिए (विप्रः प्रावाणः) ज्ञानी एवं सोम कूटनेके पाथर (भा अचुचवुः) रथ टपकाने रहे हैं, (यथा) जैसे क्षपि अग्निने, जो (विप्रः) ज्ञानी था, (वा गीर्भिः अजोदधीत्) तुम्हें सावर्णोंद्वारा बुलाया था, (यथा मेभिराः अहुवन्त) जैसे विद्वानोंने बुलाया था, (एव) वैसेही (वां ऊतये भद्रे) तुम्हें रक्षा करनेके लिए बुलाता हूँ, (अन्यके समे नममतां) दूसरे छोटे रक्षक छूक जायें ॥

[५३६] (क. ८।५७। [९ पाठ०] १-४)

(५३६—५३९) मेघ्यः काण्वः । त्रिष्टुप् ।

५३६ युवं देवा क्रतुना पूर्येण युक्ता रथेन तविपं यजत्रा ।
आऽगच्छतं नासत्या शचींभिरिदं तृतीयं सर्वनं पिबाथः ॥

५३६ युवम् । देवा । क्रतुना । पूर्येण ।
युक्ताः । रथेन । तविपम् । यजत्रा ॥
आ । अगच्छतम् । नासत्या । शचींभिः ।
इदम् । तृतीयम् । सर्वनम् । पिबाथः ॥१॥

५३६ अन्वयः— देवा । यजत्रा नासत्या । युवं पूर्येण क्रतुना युक्ता रथेन तविपं आऽगच्छतं, शचींभिः इदं तृतीयं सर्वनं पिबाथः ॥ १ ॥

५३६ अर्थ- हे (देवा) देवताकवी ! (यजत्रा) हे यज्ञपीथ ! हे सत्यके वाक्क ! (युव) तुम दोनों (पूर्येण क्रतुना युक्ता) पूर्वकाळीन कार्यसे युक्त होकर (रथेन तविपं आऽगच्छतं) रथवाससे बलपूर्वक हॉकते हुए भाओ; (शचींभिः) शक्तिवशसे (इदं तृतीयं सर्वनं पिबाथः) इस तीसरे सवगमें सोम पीजाओ ॥

[५३७]

५३७ युवां देवास्य एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे
पुरस्तात् । अग्नार्कं यजुं सर्वनं जुषाणा पातं मोर्ममधिना
दीर्घमी ॥२॥

५३७ युवाम् । देवाः । त्रयः । एकादशासः ।
 सत्याः । सत्यस्य । दृष्टे । पुरस्तात् ॥
 अस्माकम् । यज्ञम् । सर्वनम् । जुपाणा ।
 पातम् । सोमम् । अश्विना । दीद्यग्नी इति दीर्दिऽअग्नी ॥२॥

५३७ अन्ययः— अथः एकादशासः सत्याः देवाः युवा सत्यस्य पुरस्तात् दृष्टे, दीद्यग्नी अश्विना । अस्माकं यज्ञं सर्वनं जुपाणा सोमं पातम् ॥ २ ॥

५३७ अर्थ— (त्रयः एकादशासः) तीनगुने ग्यारह जाने ३३ (सत्या देवा) सत्ये देव, (युवा) तुम दोनों (सत्यस्य पुरस्तात् दृष्टे) सत्यके आगे दीक्ष पड़े, हे (दीद्यग्नी) जयमगाते अग्निके सदृश तेजस्वी अग्निदेवों । (अस्माकं यज्ञं सर्वनं जुपाणा) हमारे यज्ञ तथा सर्वनका सेवन करते हुए (सोमं पात) सोमका पान करो ॥

[५३८]

५३८ पुनाय्यं तदश्विना कृतं वा वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः ।
 सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वा इत् तां उप याता
 पिबन्ध्वै ॥३॥

५३८ पुनाय्यम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् ।
 वृषभः । दिवः । रजसः । पृथिव्याः ॥
 सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽष्टौ ।
 सर्वान् । इत् । तान् । उप । यात । पिबन्ध्वै ॥३॥

५३८ अन्यय — अश्विना । वा तत् कृतं पुनाय्य (यत्) दिवः पृथिव्या रजसः वृषभः । ये गविष्टौ सहस्रं शंसा तान् सर्वान् इत् पिबन्ध्वै उप यात ॥३॥

५३८ अर्थ— (अश्विना) हे अग्निदेवों । (वा तत् कृतं) तुम्हारा यह कार्य (पुनाय्य) मशसमीय है, जोकि (दिवः) शुद्धोक्ते (पृथिव्या) भूमिपट्टके दितके लिए (रजसः वृषभः) जलकी वर्षा करनेवाला दुग्ध है, (ये गविष्टौ) जो गायोंके दूधनेमें (सहस्रं शंसा) हजारों कदनेयोग्य कार्य होते हैं, (तान् सर्वान् इत्) उन सभी स्थलोंके समीप जरूर (पिबन्ध्वै उप यात) पीनेके लिए थके जाओ ॥

[५३९]

५३९ अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरौ नासत्योर्ष यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्ये प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥

५३९ अयम् । वाम् । भागः । निऽहितः । यजत्रा ।
हूमाः । गिरः । नासत्या । उर्ष । यातम् ॥
पिबतम् । सोमम् । मधुमन्तम् । अस्मेऽहति ।
प्र । दाश्वांसम् । अवतम् । शचीभिः ॥४॥

५३९ अन्वयः— यजत्रा नासत्या ! वां अयं भागः निहितः, हूमाः गिरः
उप यातं, अस्मे मधुमन्तं सोमं पिबतं, दाश्वांसं शचीभिः प्र अवतम् ॥ ४ ॥

५३९ अर्थ— हे (यजत्रा) पूजनीय अग्निदेवी ! (वां) तुम दोनोंके
लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग या हिस्सा रखा है (हूमाः गिरः
उप यातं) इन भाषणोंको सुननेके लिए हमारे समीप आओ (अस्मे मधुमन्तं
सोमं पिबतं) हमारे लिए मधु डाले हुए सोमका पान करो और (दाश्वांसं
शचीभिः) दासीको अपनी शक्तियोंसे (प्र अवतं) यथेष्ट मात्रामें सुरक्षित रखो ॥

[५४०-५४९] (अ. ८।७।१-१८)

(५४०-५५७) गोपवन आश्रयः सप्तवधियों । गायत्री ।

५४० उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् ।

अन्ति पद्भूत वामवः ॥१॥

५४१ निमिर्पश्विजवींयसा रथेना यातमाश्विना ।

अन्ति पद्भूत वामवः ॥२॥

५४२ उर्षे स्तृणीतमव्रथे हिमेने धर्ममाश्विना ।

अन्ति पद्भूत वामवः ॥३॥

५४० उत् । ईराथाम् । ऋतयते ।

युञ्जाथाम् । अश्विना । रथम् ॥

अन्ति । सत् । भूत । वाम् । अवः ॥१॥

५४१ निऽमिषः । चित् । जवीयसा ।

रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अर्वः ॥२॥

५४२ उप । स्तुणीतम् । अत्रये ।

हिमेन । घर्मम् । अश्विना ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अर्वः ॥३॥

५४०-५४१ अन्वयः— अश्विना ! कलायसे उदीरायां, रथं युक्तायाः नि-
मिषः चित् जवीयसा रथेन आ यातं, अत्रये घर्मं हिमेन उप स्तुणीतं; वां अर्वः
अन्ति सत् भूतु ॥ १-३ ॥

५४०-५४२ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (कलायसे उदीरायां) सरल मार्गसे
जायेहारेके किए तुम आज्ञाओ, (रथं युक्तायां) रथको तैयार करो; (निमिषः
चित् जवीयसा) पलकसे भी बेगवान् (रथेन आ यात) रथपरसे आज्ञाओ;
(अत्रये) ऋषि भद्रिके किए (घर्मं हिमेन) गर्मं भद्रिको बर्फसे (उप स्तु-
णीतं) एक चुके हो, (वां अर्वः) तुम्हारी रक्षा (अन्ति सत् भूतु) सदैव
हमारे निकट विद्यमान होती रहे ॥

[५४३-५४५]

५४३ कुहं स्थः । कुहं जग्मथुः । कुहं इयेनेव पेतथुः ।

अन्ति पद्भूतु वामर्वः ॥४॥

५४४ यदुद्य कर्हि चिच्छ्रुयातमिमं हवम् ।

अन्ति पद्भूतु वामर्वः ॥५॥

५४५ अश्विना यामहृतमा नेदिष्ठं याम्याध्याम् ।

अन्ति पद्भूतु वामर्वः ॥६॥

५४३ कुहं । स्थः । कुहं । जग्मथुः ।

कुहं । इयेनाऽहव । पेतथुः ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अर्वः ॥४॥

५४४ यत् । अद्य । कर्हि । कर्हि । चित् ।

शुश्रुयातम् । इमम् । हवम् ॥

अन्ति । सत् । भूत् । वाम् । अवः ॥५॥

५४५ अश्विना । यामऽहूतमा ।

नेदिष्ठम् । यामि । आप्यम् ॥

अन्ति । सत् । भूत् । वाम् । अवः ॥६॥

५४३-५४५ शब्दार्थः— कुह स्थः ? कुह जग्मथुः ? इवेना इव कुह पेतथुः ? भय यत् कर्हि कर्हि चित् इमं हवं शुश्रुयातं, यामहूतमा अश्विना नेदिष्ठं भाष्यं यामि, वां अवः भस्ति सत् भूत् ॥ ४-६ ॥

५४३-५४५ अर्थ— (कुह स्थः) मला तुम कहाँ हो ? (कुह जग्मथुः) मतलाओ तो किधर तुम जा चुके ? (इवेना इव) बाज पंछीकी न्याहँ (कुह पेतथुः) मला तुम किधर गये थे ? (भय) आज (यत्) भय कर्हि (कर्हि कर्हि चित्) किसी भी स्थान या किसी भी कालमें (इमं हवं शुश्रुयातं) इस प्रकारको तुम सुन सको तो; (यामहूतमा अश्विना) बिलकुल ठीक समय बुलानेयोग्य अग्निदेवोंको (नेदिष्ठं भाष्यं यामि) अतएव निकटवर्ती शब्दवचके तुम्य समझकर मैं उनके पास चला जाता हूँ, (वां अवः भस्ति सत् भूत्) तुम्हारा संरक्षण समीपवर्ती हो जाय ॥

[५४६-५४९]

५४६ अर्वन्तुमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥७॥

५४७ वरैथे अग्निमातपो वदते चल्बवत्रये ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥८॥

५४८ प्र सप्तर्षधिराशसा धारामग्नेरशायत ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥९॥

५४९ इहा गतं वृषण्वस्र शृणुतं मे इमं हवम् ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१०॥

५४६ अर्धन्तम् । अत्रये । गृहम् ।
 कृणुतम् । युवम् । अश्विना ॥
 अन्ति । सत् । भुतु । वाम् । अवः ॥७॥

५४७ वरेये इति । अग्निम् । आऽत्तपः ।
 वदते । वल्गु । अत्रये ॥
 अन्ति । सत् । भुतु । वाम् । अवः ॥८॥

५४८ प्र । सुप्तवधिः । आऽशमा ।
 धाराम् । अग्नेः । अज्ञायत ॥
 अन्ति । सत् । भुतु । वाम् । अवः ॥९॥

५४९ इह । आ । गतम् । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ।
 कृणुतम् । मे । इमम् । हयम् ॥
 अन्ति । सत् । भुतु । वाम् । अवः ॥१०॥

५४६-५४९ अन्यथा— अश्विना । युवं अत्रये अर्धन्तं गृहं कृणुतं, वल्गु वदते अत्रये भातवः अग्निं वरेये; सुप्तवधिः आशसा अग्नेः धारं य अज्ञायत; वृषण्वसू ! मे इमं हयं शृणुतं, इह आ गतं, वां अवः अग्निं सत् भूतु ॥७-१०॥

५४६-५४९ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (युवं अत्रये) तुमने अग्निके किये (अर्धन्त गृहं कृणुतं) रक्षणक्षम घर बना चुके, (वल्गु वदते अत्रये) सुन्दर रंगसे भापण करनेवाके अग्निके किये (भातवः अग्निं वरेये) चारों ओरसे घेरके हुए अग्निको इटाते हो, सुप्तवधिने (आशसा) आशापूर्ण प्रार्थनासे (अग्नेः धारं य अज्ञायत) अग्निकी ऊँची लपटको भूमितक बिछाया। हे (वृषण्वसू) धनकी पर्या करनेवाके ! (मे इमं हयं शृणुत) मेरी इस पुकारको सुन लो (इह आ गतं) हयर आलो मेरी इच्छा है कि तुम्हारा संरक्षण समीप रहे ॥

[५५०-५५२]

५५० किमिदं वां पुराणवज्ररतोर्वि शस्यते ।
 अन्ति पद्भृतु वामवः ॥११॥

५५१ समानं वां सजात्यै समानो बन्धुराश्विना ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१२॥

५५२ यो वां रजांस्यश्विना रथो विधाति रोदसी ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१३॥

५५० किम् । इदम् । वाम् । पुराणवत् ।

जरतोऽहव । शस्यते ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥११॥

५५१ समानम् । वाम् । सजात्यम् ।

समानः । बन्धुः । अश्विना ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१२॥

५५२ यः । वाम् । रजांसि । अश्विना ।

रथः । विधाति । रोदसी इति ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१३॥

५५०-५५२ अन्वयः— वां किं इदं जरतोः पुराणवत् हव शस्यते, वां सजात्यं समानं, अश्विना ! बन्धुः समानः; अश्विना । वां यः रथः रोदसी रजांसि विधाति; वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥ ११-१३ ॥

५५०-५५१ अर्थ— (वां) तुम दोनोंके बारेमें (किं इदं) यह क्या (जरतोः पुराणवत् शस्यते) वृद्ध होनेवालोंको पुरानी बात जेसी भण्णी कहती है, वैसेही यथाथा आता है; (वां समानं समानं) तुम्हारा व्यवहार होता समान है और हे अश्विदेवों ! (बन्धुः समानः) बांधव भी समान है, (वां यः रथः) तुम्हारा जो रथ (रोदसी रजांसि विधाति) सुलोक और भूलोक एवं अम्ब भुवनोंको पार कर चला जाता है, इसलिये हम चाहते हैं कि तुम्हारा संरक्षण समीप रहनेवाला होवे ॥

[५५३-५५५]

५५३ आ नो गन्धैर्मिरश्म्यैः सहसैरुप गच्छतम् ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१४॥

५५४ मा नो गन्धैर्भिरक्ष्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१५॥

५५५ अरुणप्सरुषा अभूदक्ष्योतिर्क्रतावरी ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१६॥

५५३ आ । नः । गन्धैर्भिः । अक्ष्यैः ।

सहस्रैः । उप । गच्छतम् ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१४॥

५५४ मा । नः । गन्धैर्भिः । अक्ष्यैः ।

सहस्रेभिः । अति । ख्यतम् ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१५॥

५५५ अरुणप्सुः । उषाः । अभूत् ।

अक्षः । ज्योतिः । क्रतुवरी ॥

अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१६॥

५५३-५५५ अन्वयः— नः सहस्रैः गन्धैर्भिः अक्ष्यैः आ उप गच्छतं नः सहस्रेभिः गन्धैर्भिः अक्ष्यैः मा अति ख्यतं उषा अरुणप्सुः अभूत्, क्रतावरी ज्योतिः अक्षः, वाम अवः अन्ति सत् भूत ॥ १४-१६ ॥

५५३-५५५ अर्थ— (नः सहस्रैः) हमारे समीप हजारों (गन्धैर्भिः अक्ष्यैः) गंधों और घोंघोंके झुंडोंके साथ (आ उप गच्छतं) समीप जाआओ । (नः) हमें (सहस्रेभिः गन्धैर्भिः अक्ष्यैः) हजारों तीर्थों और घोंघोंके झुंडोंसे (मा अति ख्यतं) युक्त हो छोट न जाओ । (उषा अरुणप्सुः अभूत्) उषाः देवी काळिमा मय रूपवाली हुई (क्रतावरी ज्योतिः अक्षः) अक्षसे युक्त वह प्रकाशका सृजन कर चुकी है, इसलिये तुम्हारा संरक्षण समीप रहनेवाला होमे ॥

[५५६-५५७]

५५६ अग्निना सु विचारकशब्दं वृद्धं परशुमां हव ।

अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१७॥

५५७ पुरं न घृण्णवा रुज कृष्णया वाधितो विशा ।
अन्ति पद्भूतु वामवः ॥१८॥

५५६ अश्विना । सु । विऽचारकशत्रु ।
वृक्षम् । परशुमान्ऽइव ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१७॥

५५७ पुरम् । न । घृष्णो इति । आ । रुज ।
कृष्णया । वाधितः । विशा ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१८॥

५५६-५५७ अन्वयः— अश्विना परशुमान् वृक्षं इव सु विचारकशत्रुः घृष्णो !
कृष्णया विशा वाधितः पुरं न रुज ; या अवः अन्ति सत् भूतु ॥ १७-१८ ॥

५५६-५५७ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (परशुमान् वृक्षं इव) हाथमें कुलडाही रखनेवाला पेड़को जैसे तोड़ जाकता है, वैसेही मैंघेरेको मिटाकर सूर्य की प्रकाशमान होगया है । (घृष्णो) हे साहसी ! (कृष्णया विशा वाधितः) काकी प्रजासे पीडित तु (पुरं न रुज) शमुनगरीको जैसे हन्त्रने भक्ष किया, वैसेही इसे विनष्ट कर । तुम दोनोंका संरक्षण समीप रहनेवाला होवे ॥

[५५८-५६१] (ऋ० ८।८५।१-९)

(५५८-५६६) कृष्ण आङ्गिरसः । गायत्री ।

५५८ आ मे हवँ नासत्याऽश्विना गच्छतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥१॥

५५९ इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥२॥

५६० अयं वां कृष्णो अश्विना हवति वाजिनीचक्ष ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥३॥

५६१ शृणुतं जेतुर्हवँ कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥४॥

- ५५८ आ । मे । हवम् । नासत्या ।
 अश्विना । गच्छतम् । युवम् ॥
 मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥१॥
- ५५९ इमम् । मे । स्तोमम् । अश्विना ।
 इमम् । मे । शृणुतम् । हवम् ॥
 मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥२॥
- ५६० अयम् । वाम् । कृष्णः । अश्विना ।
 हवते । वाजिनीवसु इति वाजिनीवसु ॥
 मध्वः सोमस्य । पीतये ॥३॥
- ५६१ शृणुतम् । जरितुः । हवम् ।
 कृष्णस्य । स्तुवतः । नरा ॥
 मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥४॥

५५८ अन्वय — नासत्या अश्विना । युव मध्व. सोमस्य पीतये मे हव
 भा गच्छतम् ।

५५९ अन्वय — अश्विना । मध्व. सोमस्य पीतये मे इम हव, मे इम
 स्तोम शृणुतम् ।

५६० अन्वय — वाजिनीवसु अश्विना । मध्व. सोमस्य पीतये अय कृष्ण
 वा हवते ।

५६१ अन्वय. — नरा । जरितु कृष्णस्य स्तुवत हव मध्व. सोमस्य
 पीतये शृणुतम् ।

५५८-५६१ अर्थ— हे (नासत्या) सत्यपाकक धीरो ! (वाजिनी वसु)
 सेनाहीको चम समझनेवाले (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवों ! (युव) तुम
 दोनों (मध्व. सोमस्य पीतये) मधुरिमाय सोमको पीनेके लिए (मे हव
 भा गच्छत) मेरी पुकारको सुनकर भाओ, (मे इम हव) मेरी इस पुकारको
 (मे इम स्तोम) मेरे इस स्तोत्रको (शृणुत) सुन लो, (अय कृष्ण.) यह
 कृष्ण ऋषि (वा हवत) तुम्हें बुलाता है, (जरितु कृष्णस्य) स्तोता कृष्णके
 (स्तुवत) प्रशंसा करने समय (हव शृणुत) तमकी पुकारको सुन लो ॥

[५६२-५६४]

५६२ छुर्दियेन्तुमदाम्यं विप्राय स्तुवते नरा ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥५॥

५६३ गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥६॥

५६४ युञ्जाथो रासभं रथे वीह्वजे वृषण्वसू ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥७॥

५६२ छुर्दिः । यन्तुम् । अदाम्यम् ।

विप्राय । स्तुवते । नरा ॥

मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥५॥

५६३ गच्छतम् । दाशुषः । गृहम् ।

इत्था । स्तुवतः । अश्विना ॥

मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥६॥

५६४ युञ्जाथाम् । रासभम् । रथे ।

वीह्वज्जे । वृषण्वसू इति वृषण्वसू ॥

मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥७॥

५६२ अन्वयः— नरा ! स्तुवते विप्राय अदाम्यं छुर्दिः मध्वः सोमस्य पीतये ।

५६३ अन्वयः— अश्विना ! इत्था स्तुवतः दाशुषः गृहं गच्छतम्, मध्वः० ।

५६४ अन्वयः— वृषण्वसू ! वीह्वजे रथे रासभं युञ्जाथो; मध्वः० ।

५६२-५६४ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (स्तुवते विप्राय) प्रशंसा करनेवाले ज्ञानीको (अदाम्यं छुर्दिः) न दूधनेवाला घर (मध्वः सोमस्य पीतये) नीठे सोमके पानके लिए (यन्तं) देदो । (इत्था स्तुवतः) इस ढंगसे सराहना करते हुए (दाशुषः गृहं गच्छतं) दानीके घर पहुँचो । हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले ! (वीह्व-भंगे रथे) सुहृद रथपर (रासभं युञ्जाथो) गरजनेवाले घोड़ोंको जोत दो ॥

[५६५-५६६]

५६५ त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेना यातमश्विना ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥८॥

५६६ नू मे गिरं नासत्याऽश्विना प्रावतं युवम् ।

मध्वः सोमस्य पीतये ॥९॥

५६५ त्रिवन्धुरेण । त्रिवृता ।

रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥

मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥८॥

५६६ नु । मे । गिरः । नासत्या ।

अश्विना । प्र । अयातम् । युवम् ॥

मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥९॥

५६५ अन्ययः— अश्विना ! त्रिवृता त्रिवन्धुरेण रथेन मध्वः सोमस्य पीतये
आ यातम् ।

५६६ अन्ययः— नासत्या अश्विना ! युवं मे गिरः नु प्र आवतं, मध्वः० ।

५६५-५६६ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (त्रिवृता) तिकोने भाकारके (त्रि-
वन्धुरेण रथेन) तीस कठोंसे युक्त रथपरसे (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे
सोमरसके पानके लिए (आ यात) आभो ॥ हे सावपूर्ण अश्विदेवों ! (युवं)
तुम (मे गिरः) मेरे भावणोंकी (नु प्र आवतं) प्रेमसे सुनो ॥

[५६७] (अ. ८।८६।१-५)

(५६७-५७१) कृष्ण आहूगिरसः, विश्वको वा कार्त्तिकः । जगती ।

५६७ उमा हि दुस्ता भिषजा मयोभ्रुवोमा दक्षस्य वचसो

बभूवधुः । ता वां विश्वको हवते तनूकुथे मा नो वि

यौष्टं सख्या मुमोर्चतम् ॥१॥

५६७ उमा । हि । दुस्ता । भिषजा । मयःऽध्वजा ।

उमा । दक्षस्य । वचसः । बभूवधुः ॥

ता । वाम् । विश्वकः । हवते । तनूऽकुथे ।

मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोर्चतम् ॥१॥

५६७ अन्वयः— दद्या । उभा हि मयोभुवा मिपजा, दक्षस्य वचसः । उभा बभूवधुः । तनूकृथे ता वा विश्वक हवते, नः सरुया मा वि यौष्टं, मुमोचतम् ॥

५६७ अर्थ— हे (दद्या) दर्शनीय वीरो । (उभा हि मयोभुवा) तुम दोनोंही सुखदायक (मिपजा) वैद्य हो और (दक्षस्य वचसः) दक्षतासे किये आपणके किये (उभा बभूवधुः) तुम दोनों योग्य हो, (तनूकृथे ता वा) शरीरकी सुरक्षाके लिये तुम दोनोंको (विश्वकः हवते) यह विश्वक यदि जुलाता है (नः सरुया मा वि यौष्टं) हमें आपकी मित्रतासे दूर न करो और (मुमोचतं) हमें मुक्त करो । दुःखसे हमें मुक्त करो ॥

[५६८]

५६८ कथा नूनं वां विमना उप स्तवयुवं धियं ददधुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सरुया
मुमोचतम् ॥२॥

५६८ कथा । नूनम् । वाम् । विमनाः । उप । स्तवत् ।
युवम् । धियम् । ददधुः । वस्यः इष्टये ॥
ता । वाम् । विश्वकः । हवते । तनूकृथे ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सरुया । मुमोचतम् ॥२॥

५६८ अन्वयः— विमना नूनं वां कथा उप स्तवत् ? वस्य-इष्टये युवं धियं ददधुः । विश्वकः तनूकृथे ता वां हवते, नः सरुया मा वि यौष्टं, मुमोचतम् ॥

५६८ अर्थ— (विमना नूनं) विमना अग्निने सखमुच (नो कथा उप स्तवत्) तुम्हारी कैसे प्रशंसा की थी ? (वस्य-इष्टये) प्रशस्त धनको पानेके लिए (युवं धियं ददधुः) तुमने हमें सुख दी है । (विश्वकः तनूकृथे वां हवते) विश्वक शरीरकी सुरक्षाके लिये तुम्हें जुलाता है, (नः सरुया मा वि यौष्टं) हमारी मित्रताको मत दूर करो और हमें दुःखसे (मुमोचतं) मुक्त कर दो ॥

[५६९]

५६९ युवं हि प्मा पुरुष्टजेममेघतुं विष्णाव्हे ददधुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सरुया
मुमोचतम् ॥३॥

५६९ युवम् । हि । स्म । पुरुऽमुजा । इमम् । एधत्तुम् ।
 विष्णाप्वे । दृदयुः । वस्यःऽदृष्टये ॥
 ता । चाम् । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे ।
 मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोचतम् ॥३॥

५६९ शब्दार्थ — पुरुमुजा । विष्णाप्वे युव हि स्म इम एधत्तु वस्य दृष्टये दृदयुः । ता वा तनूकृथे विश्वकः हवते, न सख्या मा वि यौष्ट, मुमोचतम् ॥

५६९ अर्थ— हे (पुरुमुजा) बनेकोंको मोजन देनेवाले वीरो ! (विष्णाप्वे) विष्णाप्वेके लिए (युव हि स्म) तुम दोनोंने सचमुच (इम एधत्तु) इस समृद्धिको (वस्य-दृष्टये दृदयु) धनकी दृष्टिके लिए दे दिया था । (ता वा) ऐसे तुम दोनोंको (तनूकृथे) शरीरकी सुरक्षाके हेतु विश्वक (हवते) बुकाता है (न. सख्या) हमारी मित्रताको (मा वि यौष्ट) दूर न करो और हमें (मुमोचत) इस दुःखसे मुक्त करो ॥

[५७०]

५७० उत त्वं वीरं धनसामृज्जीपिणं दूरे चित् सन्तमवसे
 हवामहे । यस्य स्वादिष्टा सुमतिः पितुर्यथा मा नो
 वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥४॥

५७० उत । त्वम् । वीरम् । धनऽसाम् । ऋज्जीपिणम् ।
 दूरे । चित् । सन्तम् । अवसे । हवामहे ॥
 यस्य । स्वादिष्टा । सुऽमतिः । पितुः । यथा ।
 मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोचतम् ॥४॥

५७० शब्दार्थ — उत त्वं धनसा ऋज्जीपिण वीर, यस्य सुमति यथा पितु स्वादिष्टा, दूरे सन्त चित् अवसे हवामहे, सख्या न. मा वि यौष्ट, मुमोचतम् ॥

५७० अर्थ— (उत त्वं) और उस (धनसा ऋज्जीपिण वीर) धनका ईदगारा करनेवाले और सोम भवनेपास रखनेवाले वीरको, (यस्य सुमति) जिसकी अच्छी बुद्धि (यथा पितु स्वादिष्टा) पिताके समान अत्यन्त सभुर

रहती है, उसको (दूरे सन्तं चित्) दूर रहनेपर भी (भवसे इषामहे) अपनी रक्षाके लिये हम बुलाते हैं । हे वीरो ! (सध्या) मित्रताके कारण (नः मा वि यौष्टं) हमें दूर न करो, (मुमोचनं) और हमें तुलसे छुड़ाओ ॥

[५७१]

५७१ ऋतेन देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि
पप्रथे । ऋतं सासाह महिं चित् पृतन्यतो मा नो वि
यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥५॥

५७१ ऋतेन । देवः । सविता । शम्ऽआयते ।
ऋतस्य । शृङ्गम् । उर्विया । वि । पप्रथे ॥
ऋतम् । ससाह । महिं । चित् । पृतन्यतः ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोचतम् ॥५॥

५७१ अन्वयः— देवः सविता ऋतेन शमायते, ऋतस्य शृङ्गं उर्विया वि पप्रथे । महिं पृतन्यतः चित् ऋतं सासाह, नः मा वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥

५७१ अर्थ— (देवः सविता) द्योतमान सूर्य (ऋतेन शमायते) ऋतसे सायंकालके समय शान्त होता है और (ऋतस्य शृङ्गं) ऋतके ऊँचे भागको (उर्विया वि पप्रथे) अव्यक्त विशाल रीतिसे फैलाता है; (महिं पृतन्यतः चित्) बड़े बड़े सेनाके साथ आक्रमण करनेवालोंको भी (ऋतं सासाह) ऋत पराभूत करता है, (नः मा वि यौष्टं) हमारा तुमसे मित्रोद न हो और (सध्या मुमोचतं) मित्रतासे हमें कड़से छुड़काओ ॥

[५७२] (अ. ८।८७।१-६)

(५७१-५७७) कृष्ण आह्निरसो चासिष्ठो वा शुम्नीकः, विषमेध
आह्निरसो वा । प्रगाथाः= (विषमं वृद्धी+समा मतोवृद्धी)

५७२ धुम्नी वां स्तोमौ अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् ।
मध्वः सुतस्य स दिवि त्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे ॥१॥

५७२ युग्मी । वाम् । स्तोमः । अश्विना ।
 क्रिविः । न । सेके । आ । गतम् ॥
 मध्वः । सुतस्य । सः । दिवि । प्रियः ।
 नरा । पातम् । गौरौऽह्व । हरिणे ॥१॥

५७२ अन्वयः— अश्विनौ । सेके क्रिविः न वा स्तोमः युग्मी, आ गतम् ।
 नरा । सुतस्य मध्वः सः दिवि प्रियः, हरिणे गौरौ ह्व पातम् ॥

५७२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (सेके क्रिविः न) जल सींचनेपर कुआँ
 जिस प्रकार पानीसे भरा रहता है, वैसेही (वा स्तोमः युग्मी) तुम्हारा स्तोत्र
 तेजस्वी हो जाता है, (आ गतं) तुम आओ, हे (नरा) नेता वीरो ! (सुतस्य
 मध्वः) सोमका मधुर रस (सः दिवि प्रियः) युक्तोक्तमें भी प्यारा हो रहा है,
 (हरिणे गौरौ ह्व पातं) जल स्थानपर हो शृंग जैसे पीते हैं वैसेही तुम भी
 इस रसका पान करो ॥

[५७३]

५७३ पिबतं घर्म मधुमन्तमश्विना ऽऽवर्हिः सीदतं नरा ।
 ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥२॥
 ५७३ पिबतम् । घर्मम् । मधुमन्तम् । अश्विना ।
 आ । वर्हिः । सीदतम् । नरा ॥
 ता । मन्दसाना । मनुषः । दुरोणे । आ ।
 नि । पातम् । वेदसा । वयः ॥२॥

५७३ अन्वयः— नरा अश्विना ! मधुमन्तं घर्म पिबतं, वर्हिः आ सीदतं;
 मनुषः दुरोणे मन्दसाना ता वेदसा वयः आ नि पातम् ॥

५७३ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (मधुमन्तं घर्म पिबतं) भीटे
 सोमरसका पान करो, (वर्हिः आ सीदतं) कुशासनपर आकर बैठ जाओ,
 (मनुषः दुरोणे) मानवके घरपर (मन्दसाना ता) धर्षित होनेवाले तुम दोनों
 (वेदसा वयः आ नि पातं) चमत्ते हमारी आयुका रक्षण करो ॥

[५७४]

५७४ आ वां विश्वामि॒रु॒तिभिः॑ प्रियमे॒षा अ॒हू॒यत ।
ता व॒र्ति॒र्या॒तमु॒प वृ॒क्तव॑र्हि॒षो जुष्टं॑ य॒ज्ञं दि॒वि॒ष्टिषु ॥३॥

५७४ आ । वा॒म् । वि॒श्वा॒भिः । ऊ॒तिऽभिः ।
प्रि॒यऽमे॒षाः । अ॒हू॒य॒त ॥
ता । व॒र्तिः । या॒त॒म् । उ॒प । वृ॒क्तऽव॑र्हि॒षः ।
जुष्ट॑म् । य॒ज्ञम् । दि॒वि॒ष्टिषु ॥३॥

५७४ अन्वयः— प्रियमे॒षा वां विश्वा॒भि ऊ॒तिभिः॑ अ॒हू॒यत । वृ॒क्तव॑र्हि॒ष व॒र्ति ता उ॒प या॒त, दि॒वि॒ष्टिषु य॒ज्ञ जुष्ट॑म् ॥

५७४ अर्थ— (प्रियमे॒षाः) य॒ज्ञको प॒वारभरी दृष्टिसे देखनेवाले प्रियमे॒ष ऋ॒षियो॒ने । वां विश्वा॒भिः ऊ॒तिभिः॑ अ॒हू॒यत) सुष्टं सभी सरक्षणभावो॒जना॒भोके साध॑ भवने वा॒न जु॒काया॑ है । (वृ॒क्तव॑र्हि॒ष व॒र्ति) कु॒वाचन॑ जिसने कैला रखा है, ऐसे मानवके घर (ता उ॒प या॒त) वे तुम दोनों की ओर चके जाओ, (दि॒वि॒ष्टिषु य॒ज्ञ जुष्ट॑) दि॒व्य स्थानमें किय जानेवाले कार्योंमें य॒ज्ञका से॒वन करो ॥

[५७५]

५७५ पि॒वंतं॑ सो॒मं म॒धुम॑न्तम॒श्विना॑ ऽऽव॒र्हिः सी॑द॒तं सु॒मत् ।
ता वा॒वृ॒धा॒ना उ॒प सु॒ष्टुतिं॑ दि॒वो ग॒न्तं गौ॑रा॒वि॒षे॒रिण॑म् ॥४॥

५७५ पि॒वंत॑म् । सो॒मम् । म॒धुऽम॑न्त॒म् । अ॒श्वि॒ना ।
आ । व॒र्हिः । सी॒द॒त॒म् । सु॒म॒त् ॥
ता । वा॒वृ॒धा॒नौ । उ॒प । सु॒ऽस्तु॒तिम् । दि॒वः ।
ग॒न्त॑म् । गौ॒रा॒ऽइ॒व । इ॒रि॒ण॑म् ॥४॥

५७५ अन्वयः— अ॒श्विना । सु॒मत् व॒र्हि ता सी॒द॒त, म॒धुम॑न्त सो॒म पि॒वंत, इ॒रि॒ण गौ॑री इ॒व दि॒व ता वा॒वृ॒धा॒ना सु॒ष्टुतिं॑ उ॒प म॑न्तम् ॥

५७५ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (सुमत् बर्हिः आ सीदतं) सुम-
कारक कुशासनपर आकर बैठो । (सधुमन्त सोमं पिवतं) सीढे सोमरसका
पान करो । (हरिणं गौरी इव) जलाशयके समीप दो हरन जैसे जाते हैं,
वैसेही (दिवा ता वातृधाना) सुलोकसे आकर तुम दोनों बढते हुए (सुष्टुतिं
उप-पातं) अश्विनी स्तुतिके समीप बैठकर सुनो ॥

[५७६]

५७६ आ नूनं यातमश्विनाऽश्वेभिः प्रुपितप्सुभिः ।
दत्ता हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥

५७६ आ । नूनम् । यातम् । अश्विना ।
अश्वेभिः । प्रुपितप्सुभिः ॥
दत्ता । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यवर्तनी ।
शुभः । पती इति ।
पातम् । सोमम् । ऋतवृधा ॥५॥

५७६ अन्वयः— दत्ता । हिरण्यवर्तनी । शुभस्पती । ऋतावृधा अश्विना ।
एन प्रुपितप्सुभिः अश्वेभिः आ यात सोमं पातम् ॥

५७६ अर्थ— हे (दत्ता) शशुविनाशकर्ता ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रथसे
पुन (शुभस्पती) सज्जनके पात्रक । और (ऋतावृधा अश्विना) ऋतके
बहानेद्वारे अश्विदेवों । (नून) सबसुख भव (प्रुपितप्सुभिः अश्वेभिः)
दीप्त स्वरूपवाळे घोड़ोंसे (आ यात) आओ, और (सोम पातं) सोमका
पान करो ॥

[५७७]

५७७ वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रांसो वाजंसातये ।
ता वल्गू दुस्सा पुरुदंससा धियाऽश्विना श्रुष्ट्या गतम् ॥६॥
५७७ वयम् । हि । वाम् । हवामहे । विपन्यवः ।
विप्रांसः । वाजंसातये ॥
ता । वल्गू इति । दुस्सा । पुरुदंससा । धिया ।
अश्विना । श्रुष्टी । आ । गतम् ॥६॥

५७७ अर्थः— भाविना । सर्वं विषयगतः विभागः आश्रयानये वा हि
इवामहे ; ता वदन् वरा पुनर्पुनरा विषया भूमी आ गतम् ॥

५७७ अर्थ— हे भाविने ! (एवं विषयगतः विभागः) इमं विद्वान्,
ज्ञानी लोग (आश्रयानये) अज्ञता भेंटगारा करनेके लिए (वा हि इवामहे)
सुन्दरी युक्ताने हैं, इत्यदि (ता वदन् वरा) वे तुम सुन्दर रूपवाले शत्रु-
विपक्षक (पुनर्पुनरा) विविध कार्यवाले और (विषया) बुद्धिमान तुम दोनों
(भूमी आ गतं) अद्भुत आ जाओ ॥

[५७८] (अ. ८।१०।१७-८)

(५७८-५७९) अमरप्रसंगः । प्रगाथः = (विषया वृद्धी +
ममा मतोवृद्धी) ।

५७८ आ मे वचांस्युत्तमा द्युमत्तमानि कर्त्वा ।

उमा यातं नास्त्या सजोपसा प्रति हृन्वानि वीतये ॥७॥

५७८ आ । मे । वचांसि । उत्पत्ता ।

द्युमत्तमानि । कर्त्वा ॥

उमा । यातम् । नास्त्या । सजोपसा ।

प्रति । हृन्वानि । वीतये ॥७॥

५७८ अर्थः— मातरा ! उमा सजोपसा हृन्वानि वीतये मे उत्पत्ता
द्युमत्तमानि कर्त्वा वचांसि प्रति आ यातम् ॥

५७८ अर्थ— हे मातृवाक्य कीरे ! (उमा सजोपसा) दोनों मिलकरही
(हृन्वानि वीतये) हविर्भोगका आस्वाद्य लेनेके लिए (मे) मेरे (उत्पत्ता
द्युमत्तमानि) अत्यन्त प्रकाशमान (कर्त्वा वचांसि) कार्यकलाप और भाषणके
(प्रति आ यातं) समीप आ जाओ ॥

[५७९]

५७९ राति यद् वांमरक्षसं इवामहे युवाभ्यां वाजिनीवत् ।

प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना ॥८॥

५७९ रा॒तिम् । यत् । वा॒ग् । अ॒रक्ष॑सम् । ह॒वाम॑हे ।
 यु॒वाभ्या॑म् । वा॒जिनी॑वसु इति वाजिनीऽवसु ॥
 प्रा॒चीम् । हो॒त्राम् । प्र॒तिर॑न्तौ । इ॒तम् । न॒रा ।
 गु॒णाना॑ । ज॒मद॑ग्निना ॥८॥

५७९ अन्वयः— नरा वाजिनी-वसु ! तत् युवाभ्यां अरक्षसं राति इति ।
 महे, जमदग्निना गुणानां प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तौ इत्यर्थः ॥

५७९ अर्थ— हे नेता तथा (वाजिनी-वसु) सेनारूपी धनवाले भद्रिदेवों
 (यत्) जम (युवाभ्यां) तुम दोनोंसे (अरक्षसं राति) राक्षसोंके
 कष्टोंसे रहित दानको (इयामहे) हम चाहते हैं, तब (जमदग्निना गुणाना)
 जमदग्निसे प्रशंसित तुम दोनों (प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तौ) पूर्वाभिमुख प्रशंसाको
 बढाते हुए (इतं) इधर आओ ॥

[५८०] (अ. १०।२४।४-६)

(५८०-५८१) ऐन्द्रो विमदः, प्राजापरवो वा, वासुको वसुकृशः । मनुहुप् ।

५८० यु॒वं श॑क्रा मा॒यावि॑ना स॒मीची॑ निर्मन्थ॒तम् ।
 वि॒मदे॑न यदी॒लिता॑ नास॒त्या नि॒र्मन्थ॑तम् ॥४॥
 ५८१ वि॒श्वे दे॒वा अ॑कृ॒पन्त॑ स॒मीच्यो॑र्नि॒ष्पत॑न्त्योः ।
 नास॑त्याव॒ब्रुवन्॑ दे॒वाः पुन॑रा व॒हता॑दिति ॥५॥

५८० यु॒वं । श॒क्रा । मा॒याऽवि॑ना ।
 स॒मीची॑ इति स॒म्ऽईची॑ । निः । अ॒यन्थ॑तम् ॥
 वि॒मदे॑न । यत् । ई॒लिता॑ ।
 नास॑त्या । निःऽअ॒र्मन्थ॑तम् ॥४॥

५८१ वि॒श्वे । दे॒वाः । अ॒कृप॑न्त ।
 स॒म्ऽईच्योः । निःऽप॑त॒न्त्योः ॥
 नास॑त्यौ । अ॒ब्रुव॑न् । दे॒वाः ।
 पुनः । आ । व॒हता॑त् । इति ॥५॥

५८० अन्वयः— शक्रा । मायाविना । यत् नासत्या, विमदेन ईक्षिता युवं
ममीषी मिः अमन्थतम् ॥ ४ ॥

५८१ अन्वयः— समीप्योः निः-पतन्वोः विषे देवाः भृगुपन्तः देवाः
नासत्योः अमुवन् पुनः आवहताम् इति ॥ ५ ॥

५८०-५८१ अर्थ— हे (शक्रा) शक्तिपञ्चम एवं (मायाविना) आश्र-
यकालक सामर्थ्यसे युक्त अधिदेवों । (यत्) जब (नासत्या विमदेन ईक्षिता)
सामपाकक तथा विमदद्वारा प्रशंसित (युवं) तुम दोनों (समीप्यो) परस्पर
गमिकित होकर (मिः अमन्थतं) पूर्णरूपसे अभिको ममकर पैदा कर लुके,
उस समय (समीप्योः निः-पतन्वोः) दोनों लुके हुए काष्ठोंसे चिनगारियाँ
फूट निकलती थीं, (विषे देवाः भृगुपन्तः) सभी देव स्तुति करने लगे, (देवाः
नासत्योः अमुवन्) देवोंने सत्यपूर्ण अधिदेवोंसे कहा, (पुनः आवहताम् इति)
किये घोड़े इन्हें फिर इधर ले भायें ॥

[५८१]

५८२ मधुमन्मे परायणं मधुमत् पुनरायनम् ।
ता नो देवा देवतया युवं मधुमतस्कृतम् ॥ ६ ॥

५८२ मधुमत् । मे । पराऽअयनम् ।
मधुमत् । पुनः । आऽअयनम् ॥
ता । नः । देवा । देवतया ।
युवम् । मधुमतः । कृतम् ॥ ६ ॥

५८२ अन्वयः— मे परायणं मधुमत्, पुनरायणं मधुमत्; देवा । ता युवं
नः देवतया मधुमतः कृतम् ॥ ६ ॥

५८२ अर्थ— (मे) मेरा (परायणं मधुमत्) लाल निकल जाना मिठासले
पूर्ण हो, (पुनरायणं मधुमत्) फिर लौट जाना भी मधुरिमाय बनने; हे (देवा)
वानी अधिदेवों ! (ता युवं) ऐसे निष्कात ने तुम दोनों (नः देवतया)
हमें, विषय शक्तिये युक्त होनेके कारण (मधुमत् कृतं) मधुरिमाय
बना दो ॥

अधिनो दे० ४९

[५८३] (ऋ० १०।३९।१-१४)

(५८३-६१०) काशीवती घोषा । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

५८३ यो वां परिज्मा सुवृद्धिना रथो दोषामुपासो हव्यो
हविष्मता । अश्वत्तमास्तम् वामिदं वयं पितुर्न नाम
सुहवै हवामहे ॥१॥

५८३ यः । वाम् । परिज्मा । सुवृत् । अश्विना । रथः ।
दोषाम् । उपसः । हव्यः । हविष्मता ॥
अश्वत्तमास्तः । तम् । ऊँ इति । वाम् । इदम् । वयम् ।
पितुः । न । नाम । सुहवम् । हवामहे ॥१॥

५८३ अन्वयः— अश्विना । वां यः परिज्मा, सुवृत्, हविष्मता दोषां उपसः
हव्यः रथः तं व वयं, वां सुहवं, अश्वत्तमास्तः पितुः इदं नाम न हवामहे ॥१॥

५८३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (परिज्मा)
चारों ओर जानेवाला, (सुवृत्) भली भाँति ठका हुआ, (हविष्मता) दोषों
उपसः हव्यः रथः) हवि रस्तेवालेके किए रातदिन सुकानेयोरथ रथ है, (तं
व) उसीही (वयं) हम, (वां सुहवै) तुम दोनोंके किए सुगमतापूर्वक सुका-
नेयोरथ है, ऐसा समझकर (अश्वत्तमास्तः) हमेंवाके किए (पितुः इदं नाम न)
पिताके इस नामको जिन तरह लेते हैं, वसी प्रकार (हवामहे) बुलाते
हैं, अर्थात् संकटके आनेपर जैसे पिताको बुलाते हैं वैसेही आपसिते पिर जाने-
पर तुम्हारे रथको इधर आनेकी सूचना देते हैं, अर्थात् तुम्हें बुलाते हैं ॥

[५८४]

५८४ चोदयंतं सुनृताः पिन्वतं चिय उत पुरंधीरीरयतं
तदुदमसि । यशसं भ्रामं कृणुतं नो अश्विना सोमं
न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥

५८४ चोदयतम् । सुनृताः । पिन्वतम् । चियः ।
उत । पुरंधीः । ईरयतम् । तत् । उदमसि ॥
यशसम् । भ्रामम् । कृणुतम् । नः । अश्विना ।
सोमम् । न । चारुम् । मघवत्सु । नः । कृतम् ॥२॥

५८४ अन्ययः— अक्षिना ! तत् उद्गमसि, सूनुताः चोदयतं, धियः विन्वतं, पुरंधीः उत् ईरयतं; नः भागं यशसं कृणुतं, चारं सोमं न, मधयसु नः कृतम् ॥ २ ॥

५८४ अर्थ— हे अक्षिदेवों ! (तत् उद्गमसि) इस उस बातको चाहते हैं कि तुम (सूनुताः चोदयतं) सखपाणिपोंको प्रेरित करो, (धियः विन्वतं) कमों या बुद्धियोंको परिपुष्ट करो, (पुरं-धीः उत् ईरयतं) बहुतसे लोगोंकी चारक शक्तियोंको विकसित करो, (नः भागं) हमारे भागको (यशसं कृणुतं) यशःपूर्ण बना दो, और (चारं सोमं न) सुन्दर सोमके तुल्य (मधयसु नः कृतं) धनिकोंमें हमें बना दो, हमें धनयुक्त बना दो ॥

[५८५]

५८५ अमाजुरंश्चिद्भवयो युवं मगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित् ।
अन्धस्य चित्रासत्या कृशस्य चित्पुवामिदाहुभिपजा
रुतस्य चित् ॥ ३ ॥

५८५ अमाजुरः । चित् । भवयः । युवम् । मगः ।
अनाशोः । चित् । अवितारा । अपमस्य । चित् ॥
अन्धस्य । चित् । नासत्या । कृशस्य । चित् ।
पुवाम् । इत् । आहुः । भिपजा । रुतस्य । चित् ॥ ३ ॥

५८५ अन्ययः— नासत्या ! युवं अमाजुरः चित् मगः भवयः, अन्धस्य चित्, अपमस्य चित्, अनाशोः चित्, कृशस्य चित् अवितारा, युवो इत् रुतस्य चित् भिपजा आहुः ॥ ३ ॥

५८५ अर्थ— हे सखपूर्ण अक्षिदेवों ! (युवं) तुम (अमाजुरः चित्) घरमें जीर्ण होनेवाली कन्याके लिए भी (मगः भवयः) देखरूपी हो जाते हो, और (अन्धस्य चित्) अन्धके भी, (अपमस्य चित्) अत्यन्त निम्न श्रेणीके भी, (अनाशोः चित्) जनशून्य करनेवालेका भी (कृतस्य चित् अवितारा) दीन दुर्बलके भी रक्षणकर्ता हो, तथा (युवो इत्) तुम्हें ही (कृतस्य चित् भिपजा आहुः) दूटेफूटेके भी वैद्य करते हैं ॥

५८५ भाचार्थ— अक्षिदेव घरमें रहनेवाली अविशदिव कन्याको भी सौभाग्य देते हैं, अन्धकी आँखें ठीक करते हैं, दुर्बल, दीन, कृशको भी बळ देते हैं और दूटेके अवयव जोड़ देते हैं ।

५८५ मानवधर्म- मानव समाजमें ऐसा प्रबंध हो कि भविष्यद्विषय की भी सुखसे रहनेकी व्यवस्था हो, भयभीतकी दृष्टि मिटे, नीचकी उन्नति प्राप्त हो, भोगहीनको भोग मिले, कुछ हट-पुट बने, दूटे भयबल जोड़ दिये जाय । राजप्रबंधसे यह सब होता रहे ।

[५८६]

५८६ युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्पुवानं चरथाय तक्षधुः ।
निष्टौग्न्यमूहधुरङ्गयस्परि विश्वेत्ता वां सर्वनेषु प्रवाच्या ॥४॥

५८६ युवम् । च्यवानम् । सनयम् । यथा । रथम् ।
पुनः । पुवानम् । चरथाय । तक्षधुः ॥
निः । तौग्न्यम् । ऊह्युः । अतुड्भ्यः । परि ।
विश्वा । इत् । ता । वाम् । सर्वनेषु । प्रवाच्या ॥४॥

५८६ अन्वयः— युवं सनयं च्यवानं, रथं यथा, चरथाय पुनः पुवानं तक्षधुः, तौग्न्यं अङ्गयः परि निः ऊह्युः, वां ता विश्वा इत् सर्वनेषु प्रवाच्या ॥४॥

५८६ अर्थ— (युवं) तुम दोनोंने (सनयं च्यवानं) गूढ़े च्यवानको (रथं यथा) रथको जिस तरह (चरथाय) संचार करनेके लिए फिरसे नया बना बाकवे हैं वैसेही (पुनः पुवानं तक्षधुः) फिर एकबार पुनः बना दिया । तुमके पुत्रको (अङ्गयः परि) जलोंके ऊपरसे (निः ऊह्युः) पूर्णतया के चढ़वे हुए इष्टस्थानतक पहुँचा दिया । (वां ता विश्वा इत्) तुम्हारे ये सभी कार्य अवश्यही (सर्वनेषु प्रवाच्या) बशोंमें प्रकर्षसे कहनेकापक हैं ।

५८६ भावार्थ— गूढ़को जवान बनानेका प्रबंध हो, गूढ़े जवान जैसे चढ़ते फिरते रहे । जलोंमें डूबनेवालेको ऊपर काकर रखा जाय । इस तरह वर्णन करनेयोग्य कार्य राज्यप्रबंधद्वारा होते रहें ।

[५८७]

५८७ पुराणा वां वीर्याई प्र ब्रवा जनेऽथो हासधुभिपजा
मयोऽसुवा । ता वां नु नव्यावर्षसे करामहेऽयं नास्त्या
अद्रिर्यथा दधत ॥५॥

५८७ पुराणा । वाम् । वीर्या । प्र । ब्रव । जनै ।
 अथो इति । ह । आसयुः । मिपजा । मयाऽसुवा ॥
 ता । वाम् । नु । नव्यौ । अवसे । करामहे ।
 अयम् । नास्त्या । श्रुत् । अरिः । यथा । दधत् ॥५॥

५८७ अन्वयः— वां पुराणा वीर्यां जने प्र ब्रव, अथ मिपजा मयो-भुवा ह आसयुः, अयं अरिः यथा धत् दधत् नास्त्या ! ता वां नव्यौ नु अवसे करामहे ॥५॥

५८७ अर्थ— (वां पुराणा वीर्यां) तुम दोनोंके पुराने वीरतापूर्ण कार्य,
 (जने प्र ब्रव) जनतामें खूब कह देता हूँ, (अथ) और तुम (मिपजा मयो-
 भुवा ह आसयुः) सचमुच कदवाणकारक देव बने हो, (अयं अरिः) यह
 गमनाशक दुष्ट (यथा) जिस तरह (धत् दधत्) विधात राव के, वैसेही
 हे सायसे युद्ध भक्षित्वों ! (ता वां) इन विपदात तुम दोनोंको (नव्यौ नु)
 सचमुच नवीन जैसे (अवसे करामहे) अपनी रक्षाके लिए निर्धारित या
 नियुक्त कर देते हैं ॥

५८७ भावार्थ— भविष्य वीरतायुक्त कर्म करते हैं, वे बँटा हैं और
 जनताका सुख बढ़ाते हैं । इनकी इस अपनी सुरक्षाने कार्यके लिये नियुक्त
 करते हैं ।

५८७ मानवधर्म— सुगोप्त वैद्यकी अपने कृद्वर्यके सुखराम्यके लिये
 स्थायी रूपसे नियुक्त करनायोग्य है ।

[५८८]

५८८ इयं वामहे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायैव पितरा महौ
 शिक्षतम् । अनापिरज्ञा असञ्जात्यामंतिः पुरा तस्या
 अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥

५८८ इयम् । वाम् । अहे । शृणुतम् । मे । अश्विना ।
 पुत्रायैव । पितरा । महौम् । शिक्षतम् ॥
 अनापिः । अज्ञाः । असञ्जात्या । अमंतिः ।
 पुरा । तस्याः । अभिशस्तेः । अव । स्पृतम् ॥६॥

५८८ अन्वय - आश्विना ! तौ इय भट्टे, मे शृणुत, पितरा पुत्राय इव मया शिक्षत, अनापि भजा असजात्या भवति, तस्या अभिशस्ते पुरा भव स्पृतम् ॥६॥

५८८ अर्थ—हे आश्विदेवों ! (तौ) तुम्हें (इय भट्टे) यह मैं बुढ़ा रही हूँ, (मे शृणुत) मेरी प्रकार सुन लो, और (पितरा पुत्राय इव) मातापिता पुत्रको जैसे सिखाते हैं, वैसेही (मया शिक्षत) मुझको शिक्षा दो, क्योंकि मैं (भन्-भाविः) बन्धुरहित (भजाः) ज्ञानरहित, (भ-सजात्या) सजातीय रहित और (भ-सति) बुद्धिहीन हूँ इसलिये (तस्या अभिशस्ते पुरा) इस अभिशापके आक्रमणके पहलकी मुझको (भव स्पृत) सकटोंसे बचा पहुँचा दो ॥

५८८ भावार्थ—जो छोटी या पुरख भी बन्धुरहित, अज्ञात, बुद्धिहीन, जातिवालोंसे रहित असहाय हो उसकी भी सुरक्षा और उसति होनेका प्रयत्न होना चाहिये ।

[५८९]

५८९ युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् । युवं हवं वधिमत्स्या अगच्छतं युवं सुपुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥७॥

५८९ युवम् । रथेन । विमदाय । शुन्ध्युवम् ।
नि । ऊहथुः । पुरुमित्रस्य । योषणाम् ॥
युवम् । हवम् । वधिमत्स्याः । अगच्छतम् ।
युवम् । सुपुतिम् । चक्रथुः । पुरंधये ॥७॥

५८९ अन्वय — युव पुरुमित्रस्य योषणां शुन्ध्युव रथेन विमदाय नि ऊहथुः, वधिमत्स्या इव युव अगच्छत, युव पुरन्धये सुपुतिं चक्रथु ॥७॥

५८९ अर्थ—(युव) तुम दोनों { पुरुमित्रस्य योषणां शुन्ध्युव } पुरुमित्र की पवित्र कन्याको (रथेन) रथपरसे (विमदाय नि ऊहथुः) विमर्शके पहुँचा चुके और वधिमतीकी (इव) प्रकार सुनकर (युव अगच्छत) तुम दोनों उसके निकट जा पहुँच, तथा (युव) तुमने (पुरन्धये) बहुतोंका धारण करनेवाली बुद्धिमती छोड़े लिये (सु पुतिं) अच्छी मूर्ति धनोत्पादन की व्यवस्था (चक्रथु) कर चुके हो ॥

[५९०]

५९० युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्देनमृश्यदादुदपथुर्युवं सद्यो विश्वलामेतवे कथः॥

५९० युवम् । विप्रस्य । जरणाम् । उपर्द्धेयुषः ।
पुनरिति । कलेः । अकणुतम् । युवत् । वयः ॥
युवम् । वन्देनम् । अमृशदात् । उत् । उपथुः ।
युवम् । सद्यः । विश्वलाम् । एतवे । कथः॥८॥

५९० अन्वयः— युवं विप्रस्य कलेः जरणा उपेयुषः वयः पुनः पुनत् भकणुतं, युवं अमृशदात् वन्देनं उत् उपथुः, युवं एतवे विश्वला मद्यः कथः॥८॥

५९० अर्थ— (युवं) तुमने (विप्रस्य कलेः) विद्वान् कलि नामक ऋषिकी, जोकि (जरणा उपेयुषः) बुढापेकी दशाको पहुँच चुका था, (वयः) भवस्थाको (पुनः पुनत् भकणुतं) फिर युवकवत् बना दिया, (युवं) तुमने (अमृशदात् वन्देनं) गहरे कुर्वसे वन्दन नामक ऋषिकी (उत् उपथुः) ऊपर उठा किया और (युवं विश्वला) तुमने विश्वला नामक राजकुमारीको (एतवे सद्यः कथः) संचार करनेयोग्य सुरगृही बना दिया ॥

[५९१]

५९१ युवं ह रेभं वृषणा शुहा हितमुदैरयतं समुवांसमश्विना ।
युवमुचीसमुत्त तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवधये॥९

५९१ युवम् । ह । रेभम् । वृषणा । शुहा । हितम् ।
उत् । ऐरयत्तम् । समुवांसम् । अश्विना ॥
युवम् । अचीसम् । उत् । तप्तम् । अत्रये ।
ओमन्वन्तम् । चक्रथुः । सप्तवधये ॥९॥

५९१ अन्वयः— वृषणा अश्विना ! युवं ह शुहा हितं समुवांसं रेभं उत् ऐरयत्तम्, युव उत् अत्रये तप्तं अचीस ओमन्वन्तं चक्रथुः, सप्तवधये ॥ ९ ॥

५९१ अर्थ—ह (नृपणा) इन्द्राओंकी पूर्ति करनेहार भासिदेवों ।
 (युध ह) तुमने सबयुध (युध हित) युधमें रखे हुए (मर्मवासि रेमं
 नियमाण रेमको (उग्र रेमण) ऊपर उठा किया था, (युध हत) और तुमने
 अग्नि अग्निके लिए (सप्त अग्नीसं) धधकने हुए काष्ठगृहको (भोमग्रमं
 सकथुः) गरभणजाला सुन्दरायी बना दिया, तथा (सप्तवधये) सप्तवधिके
 लिए भी ऐसीही सहायता की थी ॥

[५९०]

५९२ युधं श्वेतं पेदवेऽश्विनाऽश्वं नवभिर्वाजिनवती च वाजिनम् ।
 चर्कृत्यं ददधुर्द्रावयत्सखं मगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥

५९२ युधम् । श्वेतम् । पेदवे । अश्विना । अश्वम् ।
 नवऽभिः । वाजैः । नवती । च । वाजिनम् ॥
 चर्कृत्यम् । ददधुः । द्रवयत्सखम् ।
 मगम् । न । नृभ्यः । हव्यम् । मयःऽभुवम् ॥१०॥

५९० अर्थ—अश्विना । पेदवे युध नवभिः नवती वाजैः च वाजिन,
 द्रावयत्सख, चर्कृत्य श्वेत, मयोभुव, हव्य, श्वेत अश्व, नृभ्यः मगं न,
 ददधुः ॥१०॥

५९१ अर्थ—ह भासिदेवों । (पेदवे युध) पेदु नरेसको तुमने (नवभिः
 नवती वाजै, च वाजिन) निम्नवाक्ये बर्णिते वलिष्ठ (द्रावयत्-सखं)
 शत्रुओंके मित्रोंको भी भगानेवाले, (चर्कृत्य) आश्रय कायेगीक (श्वेत,
 मयोभुव) सफेद रंगवाले, सुसदायक, (हव्य अश्व) वर्णन करनेयोग्य घोड़ेको,
 (नृभ्यः मगं न) मानवोंको ऐश्वर्यके दानके समान, (ददधुः) दे दिया था ॥

[५९३]

५९३ न तं राजानावदिते कुतश्चन नाहौ अश्रोति दुरिवं नार्कि-
 र्भयम् । मर्मश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुधः ।
 पत्न्या सह ॥११॥

५९३ न । तम् । राजानौ । अदिते । कुर्वः । चन ।
 न । अंहः । अश्नोति । दुःष्ठतम् । नकिः । भयम् ॥
 यम् । अश्विना । सुष्ठवा । रुद्रवर्तनी इति रुद्रवर्तनी ।
 पुरःस्थम् । कृणुयः । पत्न्या । सह ॥११॥

५९३ अन्वयः— राजानौ । रुद्रवर्तनी । अदिते । सुष्ठवा अश्विना । यं पत्न्या सह पुरोस्थं कृणुयः तं न कुतश्चन अंहः, न दुरितं नकिर्भयं भयम् ॥ ११ ॥

५९३ अर्थ— हे (राजानौ) विराजमान (रुद्रवर्तनी) सद्यसे मार्गसे जानेवाले (अदिते) भक्षेन ! (सुष्ठवा) सुखसे जुकानेयोग्य अश्विदेवों ! (यं) जिससे तुम (पत्न्या सह) पत्नीके साथ (पुरोस्थं कृणुयः) रखके लग्नभागमें रख देते हो, या जिसका रथ लग्नमें रहता है ऐसा बना देते हो, (तं) उसे (न कुतश्चन) कहींसे भी नहीं (अंहः) पाप घेर लेता है (न दुरितं) ताही घुलाई, तथा (न किः भयं भयम्) न डर भी प्राप्त होता है ॥

[५९४]

५९४ आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
 यस्य योगे दुहिता जायते दिव उमे अहनी सुदिने
 विवस्वतः ॥१२॥

५९४ आ । तेन । यातम् । मनसः । जवीयसा ।
 रथम् । यम् । वाम् । श्रमवः । चक्रुः । अश्विना ॥
 यस्य । योगे । दुहिता । जायते । दिवः ।
 उमे इति । अहनी इति । सुदिने इति सुदिने ।
 विवस्वतः ॥१२॥

५९४ अन्वयः— अश्विना ! यं रथं श्रमवः वा चक्रुः, यस्य योगे दिवः दुहिता जायते, विवस्वतः उमे अहनी सुदिने, तेन मनसः जवीयसा आ यातम् ॥ १२ ॥

अश्विनी वे० ५०

५९४ अर्थ— हे अभिवेर्वी ! (यं रथं) जिस रथको (अमयः यो चक्रधुः) ऋभुभोजे तुम्हारे लिए बनाया था, (यस्य योमे) जिससे जुड़ जानेपर (दिवः कुहिता जायते) अथा प्रकट होती है, तथा (विवस्वतः) विवस्वान्के (उमे भवनी सुदिने) दोनों दिन अच्छे दिन प्रतीत होते हैं, (तेन मनसः जवीयसा) उस मनसे भी अपेक्षाकृत अधिक वेगवाले रथपरसे (आयातं) हजर आभो ॥

[५९५]

५९५ ता वृत्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना ।
वृकस्य चित् वृत्तिकामन्तरास्यायुवं शचीभिर्प्रसिता-
ममुञ्चतम् ॥१३॥

५९५ ता । वृत्तिः । यातम् । जयुषा । वि । पर्वतम् ।
अपिन्वतम् । शयवे । धेनुम् । अश्विना ॥
वृकस्य । चित् । वृत्तिकाम् । अन्तः । आस्यात् ।
युवंम् । शचीभिः । प्रसिताम् । अमुञ्चतम् ॥१३॥

- ५९५ अन्वयः— अश्विना ! तां जयुषा पर्वतं वि वृत्तिः यातं, शयवे धेनुं अपिन्वतं, युवं शचीभिः प्रसितां वृत्तिकां वृकस्य आस्यात् अन्तः चित् अमुञ्चतम् ॥ १३ ॥

५९५ अर्थ— हे अभिवेर्वी ! (ता) वे प्रसिद्ध तुम दोनों (जयुषा) जय-
शील रथसे (पर्वतं वि) पहाड़का डल्लेघनकर (वृत्तिः यातं) घर चले, जाओ,
(शयवे) शयुके के लिए (धेनुं अपिन्वतं) गायको पुष्ट तथा दूधवाली बना लुके
हो; (युवं) तुम दोनों (शचीभिः) शक्तिवोले (प्रसितां वृत्तिकां) निगली
हुई चिडियाको (वृकस्य आस्यात् अन्तः चित्) भेदियेके झुँहके भीतरसे
भी (अमुञ्चतं) लुका लुके ॥

[५९६]

५९६ एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् ।
न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न स्रुतं तनयं दधानाः ॥

५९६ एतम् । वाम् । स्तोमं । अश्विनौ । अकर्म ।
 अतक्षाम । भृगवः । न । रथम् ॥
 नि । असृक्षाम् । योषणाम् । न । मर्ये ।
 नित्यम् । न । सुनुम् । तनयम् । दधानाः ॥१४॥'

५९६ अन्वयः— अश्विनौ । भृगवः रथं न, वा एतं स्तोमं अकर्म अतक्षाम,
 सुनुं न, निर्यं तनयं दधानाः, मर्ये योषणां न नि असृक्षाम् ॥ १४ ॥

५९६ अर्थ— हे अग्निदेवों ! (भृगवः रथं न) भृगुवंशोद्भव लोग रथको जैसे
 ठीक ठीक बनाते हैं, उसी प्रकार (वा एतं स्तोमं) तुम्हारे किए हुए स्तोत्रको
 (अकर्म) बना चुके हैं, तथा (अतक्षाम) भड़ी भौंति निर्माण किया है,
 (सुनुं न) औरत पुत्रके तुल्य (निर्यं) हमेशाके किए (तनयं दधानाः)
 सन्तानको समीप रखते हुए (मर्ये योषणां न) मागवके घरमें स्त्रीको लेता
 रखते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे स्तोत्रको हम (नि असृक्षाम) पूर्णतया निर्दोष
 का चुके हैं ॥

[५९७] (अ. १०।४०।१-१४)

५९७ रथं यान्तं कुह को ह वा नरा प्रति घुमन्तं सुविताय
 भूपति । प्रातर्यावाणं विन्वं विशेविशे वस्तोर्यस्तो-
 वहमानं धिया शर्मि ॥१॥

५९७ रथम् । यान्तम् । कुह । कः । ह । वाम् । नरा ।
 प्रति । घुमन्तम् । सुविताय । भूपति ॥
 प्रातःऽयावानम् । विन्वंम् । विशेऽविशे ।
 वस्तोःऽवस्तोः । वहमानम् । धिया । शर्मि ॥१॥

५९७ अन्वयः— वरा । वा प्रातःयावानं, घुमन्तं, विन्वं, विशेविशे वस्तो-
 वस्तोः वहमानं, यान्तं रथं कुह कः ॥ तामि धिया सुविताय प्रति
 भूपति ॥१॥

५९७ अर्थ— हे (नरा) नेता अधिदेवी ! (चां) तुम्हारे (प्रातः-
यावाणं) सुषहरी यात्राके लिए निकल पडनेवाले, (क्षुभ्रतं) चोतमान,
(विश्वं) प्रभावशाली, (विश्वेविते) हर तरहकी जनतामें (वस्तोःवस्तोः
पहमानं) प्रतिदिन धनसंपदाको पहुँचानेवाले, (दान्त) हमेशाही चलने-
वाले (रथं) रथको (कुह) भला किवर (कः ह) कौनसा मनुष्य (क्षमि
धिया) यज्ञमें सुदिपूर्वक (सुविताय प्रति मूपति) मछाईके लिए भल्लहूत
करता है ? रथको हथर आनेमें देरी क्यों हो रही है ? ॥

[५९८]

५९८ कुहं स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहामिपित्वं करतः
कुहोपतु । को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषां
कृणुते सधस्थ आ ॥२॥

५९८ कुहं । स्विद् । दोषा । कुहं । वस्तोः । अश्विना ।
कुहं । अमिऽपित्वम् । करतः । कुहं । ऊपतुः ॥
कः । वाम् । शयुत्रा । विधवाऽइव । देवरम् ।
मर्यम् । न । योषां । कृणुते । सधस्थे । आ ॥२॥

५९८ अन्वयः— अश्विना ! दोषा कुह स्विद् ? वस्तोः कुह ? कुह ऊपतु ?
कुह अमिपित्व करत ? शयुत्रा वां क , देवर वि-धवा इव, योषा मर्यं न,
सधस्थे आ कृणुते ? ॥ २ ॥

५९८ अर्थ— हे अधिदेवी ! (दोषा कुह स्विद्) रातके समय तुम कहाँ
रहते हो ? (वस्तोः कुह) और दिनके समय किवर निवास करते हो ? (कुह
ऊपतुः) तुम अद्यतक किस स्थानमें रह चुके ? (कुह अमिपित्वं करतः) किस
जगह भला तुम रसधान करते हो ? (शयुत्रा वां) शयुके रक्षणकर्ता तुम्हें (क)
भला कौन, (देवर वि-धवा इव) देवरको विधवाके समान, (योषा मर्यं
न) नारी मानवको जैसे आकर्षित करती है, उसी तरह (सधस्थे आ कृणुते)
महान् घरमें अपनी ओर प्रवृत्त करता है ? ॥

[५९९]

५९९ प्रातर्जरेथे जरणेव कार्पया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो
गृहम् । कस्य ध्वसा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव
सवन्तारं गच्छथः ॥३॥

५९९ प्रातः । जरेथे इति । जरणाऽईव । कापया ।
 वस्तोःऽवस्तोः । यजता । गच्छथः । गृहम् ॥
 कस्य । ध्वस्ता । भवथः । कस्य । वा । नरा ।
 राजपुत्राऽईव । सर्वना । अथ । गच्छथः ॥३॥

५९९ अन्वयः—परा ! कापया जरणा इव प्रातः जरेथे, वस्तोः—वस्तोः
 यजता गृहं गच्छथः, कस्य ध्वस्ता भवथः ? कस्य सर्वना वा राजपुत्रा इव भव
 गच्छथः ? ॥३॥

५९९ अर्थ—हे (परा) नेता भक्षिदेवों ! (कापया जरणा इव) बैता-
 किककी धापीसे बूझ जरेण जैसे प्रशंसित होते हैं उसी तरह तुम (प्रातः
 जरेथे) सुबह प्रशंसित होते हो अर्थात् स्तोता लोग तुम्हारी सराहना करते हैं
 क्योंकि तुम (वस्तोः वस्तोः) प्रविद्धि (यजता) पूजनीय होते हुए, (गृहं
 गच्छथः) लोगोंके घर चले जाते हो ; (कस्य ध्वस्ता भवथः) भका किसकी
 तुराईका विध्वंस तुम करते हो ? (कस्य सर्वना वा) वा भका किसके वशोंमें
 तुम (राजपुत्रा इव) राजकुमारकी भाँति (अथ गच्छथः) चले जाते हो ? ॥

[६००]

६०० युवां मृगेव वारुणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्द्विषा नि
 ह्वयामहे । युवं होत्रामृतुथा जुहते नरेपुं जनाय वहथः
 शुमस्पती ॥४॥

६०० युवाम् । मृगाऽईव । वारुणा । मृगण्यवः ।
 दोषा । वस्तोः । द्विषा । नि । ह्वयामहे ॥
 युवम् । होत्राम् । ऋतुथा । जुहते । नरा ।
 इपम् । जनाय । वहथः । शुमः । पती इति ॥४॥

६०० अन्वयः—नरा । मृगण्यवः वारुणा मृगा इव, युवां द्विषा दोषा
 वस्तोः नि ह्वयामहे, युवं ऋतुथा होत्रा जुहते, शुमस्पती जनाय इपं
 वहथः ॥ ४ ॥

६०० अर्थ— हे (नरा) मेला अभिदेवों ! (मृगय्ययः) मृगोंको ढूँढने-
वाले (पारणा मृगा इव) इटानेयोग्य भावसदृश पशुओंकी तरह हम
(युवा) तुम्हें (हविषा) हविके साथ (दोषा वस्तः नि ह्वयामहे) रातदिन नियम-
पूर्वक घुलाते हैं और (युवं) तुम्हारे लिए (कृतया) विभिन्न कृत्योंके
अनुकूल (होत्रा जुह्वते) आहुतिका दान दे डालते हैं, और तुम (शुभरपती)
अच्छे कर्मोंके अधिवृत्ति होते हुए (जनाय इयं सहयः) जनताके लिए भस्म
पहुँचाते रहते हो ॥

[६०१]

६०१ युवां ॥ घोषा पर्यशिना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे
वा नरा । भूतं मे अहं उत भूतमृक्त्वेऽश्नावते रथिने
शक्तमर्थेते ॥५॥

६०१ युवाम् । ह । घोषा । परि । अशिना । यती ।
राज्ञः । ऊचे । दुहिता । पृच्छे । वाम् । नरा ॥
भूतम् । मे । अहं । उत । भूतम् । अक्तवै ।
अश्वऽवते । रथिने । शक्तम् । अर्थेते ॥५॥

६०१ अन्वयः— नरा । राज्ञः दुहिता घोषा युवां ह परि यती ऊचे वा पृच्छे ।
मे भस्मे भूतं उत भक्तवे भूतं, अश्नावते रथिने अर्थेते शक्तम् ॥ ५ ॥

६०१ अर्थ— हे (नरा) मेला अभिदेवों ! (राज्ञः दुहिता घोषा) राजकुमारी
घोषा (युवां ह) तुम्हारे संबंधमें (परि यती ऊचे) चली जाती हुई कह चुकी, (वा
पृच्छे) भस्म तुमसे प्रश्न करता है; (मे भस्मे भूतं) मेरेलिए दितके समय
हथर रहो (उत भक्तवे भूतं) और राज्ञीकी चेष्टासे भी मेरे समीप रहो तथा
(अश्नावते रथिने) घोड़ेवाले तथा रथवालेके लिए (अर्थेते शक्तं) और
घोड़ेके लिए दित करनेके लिये समर्थ बनो ॥

[६०२]

६०२ युवं कवी ॥ पर्यशिना रथं विशो न कुत्सो जरित्त-
नैशायथः । युवोर्ह मक्षा पर्यशिना मध्वासा भरत
निष्कृतं न योषणा ॥६॥

६०२ युवम् । कवी इति । स्थः । परि । अश्विना । रथम् ।
 विशः । न । कुत्सः । जरितुः । नञायथः ॥
 युवोः । ह । मक्षा । परि । अश्विना । मधु ।
 आसा । भरत । निःकृतम् । न । योषणा ॥६॥

६०२ अन्वयः— अश्विना । कवी युवं रथं परि स्थः, कुत्सः न जरितुः विशः नञायथः, योषणा निष्कृतं न, युवोः मधु ह मक्षाः आसा परि भरत ॥ ६ ॥

६०२ अर्थ— हे अश्विदेवों । (कवी युवं) विद्वान् तुम दोनों (रथं परि स्थः) रथको चारों ओरसे घेर खड़े रहते हो और (कुत्सः न) कुत्सके तुम (जरितुः विशः नञायथः) स्तोता लोगोंके समीप जाते हो; (योषणा निष्कृतं न) नारी भली भौति तैयार किए हुए मधुको जिस तरह हकट्टा कर लेती है वैसेही (युवोः मधु ह) तुम्हारे मधुकोही (मक्षाः आसा) मधुमक्खियों लुहसे (परि भरत) चारों ओरसे घेरोलती हैं ॥

[६०३]

६०३ युवं ह भुज्यं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामृपारथुः ।
 युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके ॥
 ६०३ युवम् । ह । भुज्यम् । युवम् । अश्विना । वशम् ।
 युवम् । शिञ्जारम् । उशनाम् । उप । आरथुः ॥
 युवोः । ररावा । परि । सख्यम् । आसते ।
 युवोः । अहम् । अवसा । सुम्नम् । आ । चके ॥७॥

६०३ अन्वयः— अश्विना । युवं ह भुज्यं, वशं युवं, शिञ्जारं वशनां युवं उप आरथुः, ररावा युवोः सख्यं परि आसते; अहं युवोः अवसा सुम्नं आ चके ॥ ७ ॥

६०३ अर्थ— हे अश्विदेवों! (युवं ह भुज्यं) तुम भुज्यके पास गये, (वशं युवं) तुम वशके पास भी गये (शिञ्जारं वशनां युवं) शिञ्जार तथा वशनाके (उप आरथुः) समीप तुम चले गये थे; (ररावा) दावा भक्त (युवोः सख्यं परि आसते) तुम्हारी मित्रता पानेकी प्रतीक्षा करता है, (अहं) मैं (युवोः अवसा) तुम्हारी रक्षासे (सुम्नं आ चके) सुख पाना चाहता हूँ ॥

[६०४] .

६०४ युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवांशुरुष्यथः ।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनापं व्रजमूर्णथः सप्तार्थम् ॥

६०४ युवम् । ह । कृशम् । युवम् । अश्विना । शयुम् ।
युवम् । विधन्तम् । विधवां । उरुष्यथः ॥
युवम् । सनिभ्यः । स्तनयन्तम् । अश्विना ।
अपं । व्रजम् । ऊर्णथः । सप्तार्थम् ॥ ८ ॥

६०४ अन्वयः— अश्विना । कृशं युवं ह, शयुं युवं, विधन्तं विधवांशुं उरुष्यथः, युवं सप्तार्थं स्तनयन्तं व्रजं सनिभ्यः अप ऊर्णथः ॥ ८ ॥

६०४ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (कृशं युवं ह) दुर्बलको तुमही, (शयुं युवं) शयन करनेवालेको तुम, (विधन्तं विधवां) आश्रयरहित विधवाको भी (युवं उरुष्यथः) तुम बचाते हो, (युवं) तुम (सप्तार्थं स्तनयन्तं) व्रजं सात द्वारोंवाले तथा भाषाज करनेवाले गौओंके बाड़ेको (सनिभ्यः अप ऊर्णथः) दाताओंके छिपे खोल देते हो ॥

६०४ भाषार्थ— अश्विदेव कृशको पुष्ट बनाते हैं, और विस्तरेपर सोनेवाले बीमारको रोगरहित बनाते हैं, 'निराश्रित विधवाकी' सहायता करते हैं और दाताओंको गौओंका दान करनेके छिपे सात द्वारोंवाले और खोलनेके समय शब्द करनेवाले गौओंके बाड़ेको खोल देते हैं और गौओंका दान भी करते हैं ।

[६०५]

६०५ जनिष्ट योषां पतर्यत् कनीनको वि चारुहन् धीरुघो
दंसना अनु । आऽस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा
अहं मवति सत् पतित्वनम् ॥ ९ ॥

६०५ जनिष्ट । योषां । पतर्यत् । कनीनकः ।
वि । च । अरुहन् । धीरुघः । दंसनाः । अनु ॥
आ । अस्मै । रीयन्ते । निवनाऽइव । सिन्धवः ।
अस्मै । अहं । मवति । सत् । पतित्वनम् ॥ ९ ॥

६०५ अन्वयः— योपा जनिष्ट, कनीनको पतयत्, दंसनाः अनु वीरुधः
 च वि भरद्वाज्, अस्मै निबन्धाः सिन्धवः आ रीयन्ते, अहं अस्मै तत्
 पतिव्रतं भवति ॥९॥

६०५ अर्थ— (योपा जनिष्ट) युवति तृणी हो गयी है, (कनीनकः
 पतयत्) इष्टि वसपर पड़ी है, (दंसनाः अनु) तुम्हारे कमोंके लिये (वीरुधः
 च वि भरद्वाज्) कथाव्यवस्थितियाँ भी खूब बताने लगें, (अस्मै) इसके लिए
 (निबन्धाः ह्य सिन्धवः आ रीयन्ते) ऊपरसे कूदनेवाली नदियोंके समान
 शोभाएँ बढ रही हैं ऐसे (अहं अस्मै) इस दिनके लिए (तत् पतिव्रतं
 भवति) यह पतिव्रत होता है ॥

६०५ भावार्थ— जब कन्या तृण होती है तब उसकी इष्टि तृणपर
 जाती है, इनके लिये विविध कमोंके करनेके लिये वनस्पतियाँ बढ़ती और
 फल-फूलवाली बनती हैं, पर्वतपरसे कूदनेवाली नदियाँ समुद्रको जा मिलती
 हैं । इस तरह तृणीके कारण पतिव्रतकी सिद्धि होती है ।

६०५ टिप्पणी— कन्या तृण होती है, तब यह पतिव्रतकी कामना करती
 है, वनस्पतियोंसे फल उत्पन्न होनेके समान यह तृणी अपनेको संतान
 होनेकी इच्छा करती है, और नदी समुद्रको मिलनेके समान यह पतिव्रतको प्राप्त
 करती है । इस तरह तृणीका समागम पतिसे होता है ।

[६०६]

६०६ जीवन् रुदन्ति वि मयन्ते अश्वरे दीर्घामनु प्रसितं
 दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेतिरे मयः
 पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥

६०६ जीवम् । रुदन्ति । वि । मयन्ते । अश्वरे ।
 दीर्घाम् । अनु । प्रसितिम् । दीधियुः । नरः ॥
 वामम् । पितृभ्यः । ये । इदम् । समुत्पत्तिरे ।
 मयः । पतिभ्यः । जनयः । परिष्वजे ॥१०॥

६०६ अन्वयः— नरः जीवन् रुदन्ति, अश्वरे वि मयन्ते, दीर्घां प्रसितिं
 अनु दीधियुः ये इदं वामं पितृभ्यो समेतिरे, जनयः पतिभ्यः मयः परिष्वजे ॥१०
 अश्विनौ ६० ५१

६०६ अर्थ— (नरः) जो मनुष्य (जीव रुदन्ति) जीवके हितके लिये रोते हैं, अर्थात् हित करनेके लिये कष्ट उठाकर अपना प्रेम व्यक्त करते हैं, वेही (अध्वरे वि मयन्ते) गृहाश्रमरूप यज्ञमें स्त्रीको विशेष सुख पहुंचाते हैं । वे (दीर्घा प्रसिति अनु) दीर्घ बंधन (विवाहके बन्धन) के अनुकूल रहकर सबके पालनका भार स्वयं (दीधियुः) धारण करते हैं । (ये इदं वामं पितृभ्यः समेरिरे) जो इस रमणीय संतानको पितरोंके हितके लिये प्रेरित करते हैं, वेही (जनयः पतिभ्यः सयः परिष्वजे) स्त्रियाँ अपने पतियोंको सुख देनेके लिये आर्त्तिगन देती हैं ॥ /

६०६ भावार्थ— जो पुरुष अपने कुटुम्बियोंका हित करनेके लिये अत्यंत कष्ट उठाते हैं, वेही हिसारहित प्रेममय गृहाश्रममें सबको सुखी करते हैं, वेही विवाहका दीर्घ बंधन धारण करते हैं अर्थात् विवाह-विच्छेद नहीं करते । वे अपने रमणीय संतानको पितरोंके लिये उपलब्ध करते हैं । इनकी स्त्रियाँ अपने पतियोंको सुखी करनेके लिये उनको आर्त्तिगन देती हैं ।

६०६ मानवार्धर्म— स्वजनोको जीयोंको सुखी करनेके लिये मनुष्य कष्ट करें, गृहस्थाश्रममें रहकर सबको सुखी करें, प्रेमसे रहें, विवाहका प्रदीर्घ बंधन धारण करें, विवाह-विच्छेद न करें । रमणीय संतानका पालन करके पितरोंको सुखी करें । ऐसे प्रेममय कुटुम्बमें स्त्री पतिका सुख बढ़ानेके लिये पतिको आर्त्तिगन दें ।

[६०७]

६०७ न तस्य विप्र तद् पु प्र वोचत युवा इ यद् युवत्याः
क्षेति योनिषु । प्रियोत्तियस्य वृषमस्य रेतिनो गृहं
गमेमाश्विना तदुदमसि ॥११॥

६०७ न । तस्य । विप्र । तत् । ऊँ इति । सु । प्र । वोचत ।
युवा । इ । यत् । युवत्याः । क्षेति । योनिषु ॥
प्रियोत्तियस्य । वृषमस्य । रेतिनः ।
गृहम् । गमेम । अश्विना । तत् । उदमसि ॥११॥

६०७ अन्वयः— अग्निना ! तस्य न विद्य, तत् सु प्र घोषत उ, यत् युवा ह युवायाः योनिषु क्षेति; तत् उद्गमसि (यत्) रेतिनः प्रिय-उत्पिपस्य हृष-भस्य गृहं गमेम ॥ ११ ॥

६०७ अर्थ— हे (अग्निना) अग्निदेवों ! (तस्य न विद्य) उसके उस सुखको हम नहीं जानते, (यत् सु प्र घोषत उ) जो सुख तुम वर्णन करते हैं । (यत् युवा ह युवायाः योनिषु क्षेति) जो सुख तदन पुरुष तदणीके साथ घरमें रहता हुआ प्राप्त करता है, (यत् उद्गमसि) वह सुख हम चाहते हैं, (यत् रेतिनः प्रिय-उत्पिपस्य हृषभस्य गृहं गमेम) जो वीर्यवान् युवतिपर प्रेम करनेवाले बैठ बैठे हृष्टपुष्टके घर जायेंगे और प्राप्त करेंगे ॥

६०७ व्याख्यार्थ— हे अग्निदेवों ! वह सुख भवर्णनीय है कि जो तुमने गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होता है ऐसा वर्णन किया है । जो सुख तदन तदणीके साथ घरमें रहकर प्राप्त करता है और जिस सुखके लिये वीर्यवान् वीर पर प्रेम करनेवाले बलिष्ठ तदनके घरमें रहकर तदन स्त्री प्राप्त करना चाहती है ।

[६०८]

६०८ आ वाग्मगन्तुसुमतिर्वीजिनीवसु न्यग्निना हस्तु कामा
अयंसत । अभूतं गोपा मिथुना शुभस्पती प्रिया
अर्यम्णो दुर्गो अशीमहि ॥१२॥

६०८ आ । वाग् । अगन् । सुसुमतिः । वाजिनीवसु
इति वाजिनीवसु ।
नि । अग्निना । हस्तु । कामाः । अयंसत ॥
अभूतम् । गोपा । मिथुना । शुभः । पुत्री इति ।
प्रियाः । अर्यम्णः । दुर्गान् । अशीमहि ॥१२॥

६०८ अन्वयः— वाजिनी-वसु अग्निना ! सुमतिः वां आ अगन्, हस्तु कामाः नि अयंसत, शुभस्पती । मिथुना गोपा अभूतं, प्रियाः अर्यम्णः दुर्गान् अशीमहि ॥ १२ ॥

६०८ अर्थ- हे (वात्रिनी-वस्) सेनारूपी धनवाले अभिदेवी ! (सुमतिः वा आ भगन्) सुबुद्धि तुम्हारे निकट आ जाय और (हस्तु कामाः नि अयंसत्) अन्तःकरणोंमें इच्छाएँ नियंत्रित हों; हे (शुभा-पती) अच्छी बातोंके पाळनकर्ता अभिदेवी ! (मिथुना गोपा समूतं) तुम दोनों संरक्षक बनो, ताकि (प्रियाः) प्यारे होकर हम (अयंम्हाः दुर्बन् अभिमाहि) अयंमाके घरोंको पहुँच जाय ॥

६०८ भाषार्थ- हे अभिदेवी ! हमारे पास जानेकी सुबुद्धि तुम्हारे अन्तर हो, तुम्हारे हृदयमें यही इच्छा रहे, तुम दोनों हमारे संरक्षक बनो और हम तुम्हारे प्यारे घनों और यज्ञगृहमें आनन्दसे यज्ञ करते रहें ।

[६०९]

६०९ ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धुत्तं रुयि सहवीरं
वचस्पवे । कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं
पथेष्ठामपं दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

६०९ ता । मन्दसाना । मनुषः । दुरोणे । आ ।
धुत्तम् । रुयिस् । सहवीरम् । वचस्पवे ॥
कृतम् । तीर्थम् । सुप्रपानम् । शुभः । पती इति ।
स्थाणुम् । पथेऽस्थाम् । अपं । दुःऽमतिस् । हतम् ॥१३॥

६०९ अन्ययः- मन्दसाना ता मनुषः दुरोणे वचस्पवे सहवीरं रुयि आ धुत्तम्; शुभस्पती । तीर्थं सुप्रपानं कृतं, पथेष्ठा स्थाणुं दुर्मतिं अप हतम् ॥१३॥

६०९ अर्थ- (मन्दसाना ता) दर्पित होते हुए भी प्रसिद्ध तुम दोनों (मनुषः दुरोणे) जानवके चक्र चारों (वचस्पवे) आपण करनेकी इच्छा करनेवालेको (सहवीरं रुयि आ धुत्तं) धीरोसे युक्त धन देवाको; हे (शुभा-पती) अच्छे कार्योंके अभिपति अभिदेवी ! (तीर्थं सुप्रपानं कृतं) जलपीपको अच्छी तरह पान करनेयोग्य बना दो और (पथे-स्था स्थाणुं) मार्गके मध्य ठहल्ले होनेवाले वृक्ष या पारपरको तथा (दुर्मतिं अप हतं) बुराया गुरुषको मार भगाओ ॥

६०९ भावार्थ— जो यज्ञशालामें शुभविचार प्रकट करता है, उसको ऐसा घन मिले कि जिसके साथ संरक्षक वीर सदा रहते हैं। सब लोग अच्छे कर्मोंकोही करते रहें, जलस्थान पवित्र रखें, मार्गोंके कंकड़ दूर किये जाय, और हुए बुद्धि मनुष्यका नाश हो।

[६१०]

६१० कं स्विदुघ कृतमास्वश्चिनां विष्णु दुस्त्रा मादयेते शुभस्पती।
क ईं नि येमे कृतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य
वा गृहम् ॥१४॥

६१० कं । स्विदु । अघ । कृतमासु । अश्चिनां ।
विष्णु । दुस्त्रा । मादयेते इति । शुभः । पती इति ॥
कः । ईम् । नि । येमे । कृतमस्य । जग्मतुः ।
विप्रस्य । वा । यजमानस्य । वा । गृहम् ॥१४॥

६१० अन्वयः— दत्ता ! शुभस्पती अश्चिना । अघ वच दिवत् कृतमासु
विष्णु मादयेते ? ईं कः नि येमे, कृतमस्य विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहं
जग्मतुः ? ॥१४॥

६१० अर्थ— हे (दत्ता) दक्षीणीय (शुभस्पती) अच्छे कर्मोंके पाकक
अभिदेवों । (अघ वच दिवत्) आज भला किधर (कृतमासु विष्णु) कौनसी
प्रजाओंमें (मादयेते) तुम हर्षित हो रहे हो ? (ईं कः नि येमे) इन्हें कौन
भला अपनी ओर आकर्षित कर रखता है ? (कृतमस्य विप्रस्य वा यजमानस्य
वा गृहं) भला किस ब्राह्मणके या यजमानके घर (जग्मतुः) वे दोनों
चले गये ?

[६११] (अ० १०।४१।१-३)

(६११-६१३) सुहस्रयो यौवेयः । जगती ।

६११ समानम् त्वं पुरुहुतमुक्थ्यं रथं त्रिचक्रं सर्वना
गनिग्मतम् । परिज्मानं विदुष्यं सुवृक्तिर्मिथ्यं
व्यूष्टा उपसौ हवामहे ॥१॥

६११ समानम् । ऊँ इति । त्यम् । पुरुऽहुतम् । उक्थ्यम् ।
 रथम् । त्रिऽचक्रम् । सर्वना । गनिगमतम् ॥
 परिऽज्मानम् । विद्व्यम् । सुवृक्तिऽभिः ।
 वयम् । विऽउष्टौ । उपसः । हवामहे ॥१॥

६११ अन्वयः— एवं समानं, पुरुहुतं, उक्थ्यं, त्रिचक्रं, सर्वना गनिगमतं,
 परिजमानं, विद्व्यं एवं वयं उपसः शुष्टौ सुवृक्तिभिः हवामहे ॥ १ ॥

६११ अर्थ— (एवं समानं) उस तुम दोनोंके लिए समान (पुरुहुतं)
 बहुतोने पुलाये हुए (उक्थ्यं) प्रशंसनीय, (त्रिचक्रं) तीन पहियोंसे युक्त
 (सर्वना गनिगमतं) यज्ञोंमें जानेवाले (परिजमानं) चारों ओर गतिशील
 (विद्व्यं रथं) यज्ञके लिए या युद्धके लिए योग्य रथको (वयं उपसः
 शुष्टौ) हम सब उपानेलाके प्रादुर्भाव होनेपर (सुवृक्तिभिः हवामहे)
 अच्छी स्तुतियोंसे पुकारते हैं ॥

[६११]

६१२ प्रातुर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातुर्यावाणं मधुवाहनं
 रथम् । विशो येन गच्छथो यज्वरीनरा कीरेधिद्यज्ञं
 होतृमन्त्रमधिना ॥२॥

६१२ प्रातःऽयुजम् । नासत्या । अधि । तिष्ठथः ।
 प्रातःऽयावानम् । मधुऽवाहनम् । रथम् ॥
 विशः । येन । गच्छथः । यज्वरीः । नरा ।
 कीरेः । चित् । यज्ञम् । होतृऽमन्त्रम् । अश्विना ॥२॥

६१२ अन्वयः— नासत्या अधिना । नरा ! मधुवाहनं प्रातर्यावाणं प्रातः-
 युजं रथं अधि तिष्ठथः, येन यज्वरीः विशः, कीरेः होतृमन्त्रं यज्ञं चित्
 गच्छथः ॥ २ ॥

६१९ अर्थ— हे सख्यपूर्ण तथा (नरा) नेता अभिवर्तों ! (मधुवाहनं) मधु देनेवाले, (प्रातः-यावत्) सुबहही यात्राके लिए निकलनेवाले, (प्रातः-युजे) इसलिये प्रातःकालही वीहोसे युक्त होनेवाले रथपर (अभि तिष्ठतः) तुम चढ़ते हो, (येन) जिस रथसे (यववरीः विषाः) यजनशील प्रजाओंके समीप और (कीरेः होतृमन्त्रं यज्ञं चित् मच्छतः) रथोत्तारके दानी लोगोंसे युक्त यज्ञके प्रति भी तुम चले जाते हो ॥

[६१९]

६१९ अथर्व्यु वा मधुपाणि सुहस्त्यमुग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम् ।
विप्रस्य वा यत् सर्वनानि गच्छथोऽत आ यातं
मधुपेयमग्निना ॥३॥

६१९ अथर्व्युम् । वा । मधुपाणिम् । सुहस्त्यम् ।
अग्निधम् । वा । धृतदक्षम् । दमूनसम् ॥
विप्रस्य । वा । यत् । सर्वनानि । गच्छथः ।
अतः । आ । यातम् । मधुपेयम् । अग्निना ॥३॥

६१९ अन्वयः— अग्निना ! मधुपाणि सुहस्त्यं अथर्व्यु वा धृतदक्षं दमूनसं अग्निधं वा, यत् विप्रस्य सर्वनानि वा मच्छतः अतः मधुपेयं आ यातम् ॥ ३ ॥

६१९ अर्थ— हे अग्नि । (मधुपाणि सुहस्त्यं) हाथमें मधु धारण किये हुए और हाथोंसे अच्छे कार्य करनेवाले (अथर्व्यु वा) अथर्व्युके पास, अथवा (धृतदक्षं दमूनसं अग्निधं वा) एक धारण किये हुए दान देनेकी इच्छा करनेवाले अग्निहोत्रीके समीप, वा (यत् विप्रस्य सर्वनानि वा) जो तुम विद्वान्के यज्ञमें (मच्छतः) चले जाते हो, (अतः) तो भी वहाँसे (मधु-पेयं आ यातं) मधु जिसमें पीनेके लिए मिलता हो वैसे हमारेही यज्ञमें चले आओ ॥

[६१८] (अ. १०।१०६।१-११)

(६१८-६१८) भूतान्तः काश्यपः । त्रिष्टुप् ।

६१८ उमा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाये धियो यज्ञापसेव ।
सध्रीचीना यातवे भ्रमजीगाः सुदिनेव पृथ आ तंसयेथे ॥१॥

६१४ उमौ । ऊँ इति । नूनम् । तत् । इत् । अर्थयेथे इति ।
 वि । तन्वाथे इति । धियः । वस्त्रा । अपसाऽइव ॥
 सुधीचीना । यातवे । प्र । ईम् । अजीगरिति ।
 सुदिनाऽइव । पृक्षः । आ । तंसयेथे इति ॥१॥

६१४ अन्वयः— उमौ नूनं तत् इत् अर्थयेथे, धियः वि तन्वाथे, अपसाऽइव वस्त्रा, ईं सुधीचीना यातवे प्र अजीगः, सुदिना इव पृक्षः आ तंसयेथे॥१॥

६१४ अर्थ— हे अग्निनौ ! (उमौ) तुम दोनों (नूनं तत् इत्) निःसन्वेह वही हमारा स्तोत्र (अर्थयेथे) चाहते हैं । और (धियः वि तन्वाथे) अपनी बुद्धियोंको दित करनेके लिए फैलाते हैं । (अपसा इव वस्त्रा) जैसे दो जोरोंके वस्त्रोंको फैलाते हैं । (ईं सुधीचीना यातवे प्र अजीगः) यह भक्त तुम दोनों साथ रहनेवालोंकी स्तुति अभीष्ट प्राप्तिके लिए करता है । और (सुदिना इव पृक्षः आ तंसयेथे) उद्यम दिनोंमें जिस तरह सब लोग अपनी सजावट करते हैं, वैसेही भक्तकी सजावट तुम्हारे करते हैं॥१॥

[५८७]

६१५ उष्टारैव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वाज्या शासुरेथः ।
 दूतेषु हि षो यशसा जनेषु मार्प स्यात् महिषेवावपानात्
 ६१५ उष्टाराऽइव । फर्वरेषु । श्रयेथे इति ।
 प्रायोगाऽइव । श्वाज्या । शासुः । आ । इथः ॥
 दूताऽइव । हि । स्थः । यशसा । जनेषु ।
 मा । अप । स्यात्तम् । महिषाऽइव । अवऽपानात् ॥२॥

६१५ अन्वयः— उष्टारा इव फर्वरीषु श्रयेथे श्वाज्या प्रायोगा इव शासुः आ इथः, हि जनेषु दूता इव यशसा स्थः महिषा इव अव पानात् मा अप स्यात्तम् ॥

६१५ अर्थ— (उष्टारा इव फर्वरीषु श्रयेथे) बैल जिस तरह घासवाली भूमिका घासव करके हैं, (श्वाज्या प्रायोगा इव शासुः आ इथः) धनमासिके लिये प्रयत्न करनेवाले भीरु जैसे घासकके पास जाते हैं । (हि जनेषु दूता इव यशसा स्थः) जनतामें राजदूत जैसे यशस्वी होते हैं । (महिषा इव अव पानात् मा अप स्यात्तम्) उस तरह भैंसेके समान जलपानस्थानसे—भीमपानस्थानसे—दूर मत होनी ॥२॥

[६१६]

६१६ साकंयुजा शकुनस्यैव पक्षा पक्षेव चित्रा यजुरा गमिष्टम् ।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवासा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा ॥३॥

६१६ साकम्ऽयुजा । शकुनस्यऽइव । पक्षा ।
पक्षाऽइव । चित्रा । यजुः । आ । गमिष्टम् ॥
अग्निःऽइव । देवयोः । दीदिवासा ।
परिज्मानाऽइव । यजथः । पुरुत्रा ॥३॥

६१६ अन्वयः— शकुनस्य इव पक्षा साकं युजा, चित्रा पक्षा इव यजुः आ गमिष्टम्, देवयोः अग्निः इव दीदिवासा, परिज्माना इव पुरुत्रा यजथः ॥ ३ ॥

६१६ अर्थ— (शकुनस्य इव पक्षा साकंयुजा) शकुन-पक्षोंके दो पंख जैसे साथ साथ जुड़े रहते हैं । (चित्रा पक्षा इव यजुः आ गमिष्टम्) दो विलक्षण पक्षु जैसे मिलकर जाते हैं । (देवयोः अग्निः इव दीदिवासा) दिव्य अग्निके समान दीप्तिमान्, तुम दोनों (परिज्माना इव पुरुत्रा यजथः) चारों ओर जानेवाले अनेक स्थानोंमें जाकर यजन करते हैं ॥

[६१७]

६१७ आपी वो अस्मे पितरैव पुत्रोमेव रुजा नृपतीष तुर्यै ।
इर्येव पुष्ट्यै किरणैव भुज्यै भुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम् ॥४॥

६१७ आपी इति । वः । अस्मे इति । पितराऽइव । पुत्रा ।
रुजाऽइव । रुचा । नृपती इवेति नृपतीऽइव । तुर्यै ॥
इर्याऽइव । पुष्ट्यै । किरणाऽइव । भुज्यै ।
भुष्टीवानाऽइव । हवम् । आ । गमिष्टम् ॥४॥

६१७ अन्वयः— अस्मे वः आपी, पितरौ इव पुत्राः रुचा रुचा इव, तुर्यै नृपती इव, पुष्ट्यै इर्या इव, भुज्यै किरणा इव, भुष्टीवाना इव हवम् आ गमिष्टम् ॥ ४ ॥

६१७ अर्थ— (अस्मे वः आपी) हमारे लिये आप दोनों पास हैं ।
 (पितरौ इव पुत्राः) पुत्रोंके लिये मातापिता जैसे (रुचा उच्चा इव) तेजसे
 दीप्तिमान दमवीरके समान, (सुयै नृपती इव) स्वरासे कार्य करनेवालेके
 लिये संरक्षक राजाओंके समान, (पुष्ट्यै ह्यां इव) पुष्टीके लिये भक्तवानोंके
 समान, (भुष्यै किरणा इव) भोगके लिये सूर्यकिरणोंके समान, (क्षुष्टीवाना
 इव ह्वं भा गमिष्टं) गतिमानोंके समान तुम दोनों यशस्थानके पास जाते हैं ॥

[६१८]

६१८ वंसगेव पूष्या शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शतपन्ता ।
 वाज्योच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेपेवेषा सपर्याङ्ग पुरीषा ॥५॥

६१८ वंसगाऽइव । पूष्या । शिम्बाता ।
 मित्राऽइव । ऋता । शतरा । शतपन्ता ॥
 वाजाऽइव । उच्चा । वयसा । घर्म्येऽस्था ।
 मेपाऽइव । इषा । सपर्या । पुरीषा ॥५॥

६१८ अन्वयः— वंसगा इव पूष्या, शिम्बाता मित्रा इव, ऋता शतरा
 शतपन्ता, वाजा इव वयसा उच्चा, घर्म्ये—स्था मेपा इव इषा सपर्या
 पुरीषा ॥ ५ ॥

६१८ अर्थ— (वसगा इव पूष्या) बैलके समान पुष्ट, (शिम्बाता
 मित्रा इव) सुखदायी मित्रोंके समान, (ऋता शतरा शतपन्ता) सत्यकारी,
 सैकड़ों सुखोंके दाता भक्त एक स्तुतिके योग्य, (वाजा इव वयसा उच्चा)
 घोड़ोंके समान क्षीरसे ऊँचे, (घर्म्ये—स्था मेपा इव इषा सपर्या पुरीषा)
 आकाशस्थित, मेठोंके समान पूजनीय और श्रेष्ठ तुम हो ॥

[६१९]

६१९ सुण्येव जर्मरीं तुर्फरीं नैतोशेव तुर्फरीं पर्फरीका ।
 उदुन्यजेव जेमना मदेरु ता मे जराय्वजरं मरायु ॥६॥

६१९ सुण्याऽइव । जर्मरी इति । तुर्फरीं इति ।
 नैतोशाऽइव । तुर्फरी इति । पर्फरीका ॥
 उदुन्यजाऽइव । जेमना । मदेरु इति ।
 ता । मे । जरायु । अजरम् । मरायु ॥६॥

६१९ अन्वयः— सृण्या इव जर्मरी तुफंरीत्, नैतोशा इव तुफंरी पफंरीका, हृदन्वजा इव जेमना मदेरु, ता मे जरायु मरायु अजरम् ॥ ६ ॥

६१९ अर्थ— (सृण्या इव जर्मरी तुफंरीत्) अंकुश जिस तरह हाथीका पोषण करता और कष्ट भी देता है, (नैतोशा इव तुफंरी पफंरीका) घातक शस्त्रके समान नाशक और विदारक, (हृदन्वजा इव जेमना मदेरु) जलमें आपस रतके समान तेजस्वी, जवानीक और हर्षवर्धक, (ता मे जरायु मरायु अजरम्) वे दोनों अश्विदेव मेरे जीर्ण होनेवाले और मरनेवाले शरीरको भक्षण बनावें ॥

[६२०]

६२० प॒ज्जेव॒ चर्च॑रं॒ जारं॑ म॒रायु॑ क्ष॒त्रेवार्थे॑षु त॒र्तरी॑थ उ॒ग्रा ।
क्र॒भू ना॑पत् खर॒म॒जाख॑र॒ज्जुर्वा॑युर्न प॒र्फर॑त्क्षय॒द्रयी॑णाम् ॥७॥

६२० प॒ज्जाऽइ॒व । च॒र्च॑रम् । जारं॑म् । म॒रायु॑ ।
क्ष॒त्रेऽइ॒व । अ॒र्थे॑षु । त॒र्तरी॑थः । उ॒ग्रा ।
क्र॒भू इति॑ । न । आ॒पत् । ख॒रम॒जा । ख॒रऽज्जुः॑ ।
वा॒युः । न । प॒र्फर॑त् । क्ष॒यत् । र॒यी॑णाम् ॥७॥

६२० अन्वयः—उग्रा । पज्जा इव चर्चरं जारं, मरायु अर्थेषु क्षत्र इव तर्तरीयः, क्रभू न खरउद खरमजा आपत्, वायुः न पर्फरत् रयीणां क्षयत् ॥ ७ ॥

६२० अर्थ— हे (उग्रा) वीरो ! (पज्जा इव चर्चरं जारं) शत्रुको पराजित करनेवाले वीरोंके समान तुम दोनों, मेरे जर्जर और घृष्ट होनेवाले और (मरायु) मरनेवाले शरीरको (अर्थेषु क्षत्र इव तर्तरीयः) सब प्रकारके अभ्यस्यवाहरीमें अन्न जलके समान सुरक्षित करते हो । (क्रभू न खरउद खरमजा आपत्) ऋगुदेवोंके समान वेगवान् रथ तुम वेगवानोंको प्राप्त हो । वह रथ (वायुः न पर्फरत्) वायुके समान वेगसे जावे और (रयीणां क्षयत्) घनोंको प्राप्त करे ॥

[६२१]

६२१ घ॒र्मेव॑ म॒धुं ज॒ठरं॑ स॒नेरु॑ म॒र्गेऽचि॑ता तु॒र्फती॑ फा॒रिवा॑ऽरम् ।
प॒तरे॑व॒ च॒च॒रा च॒न्द्रनि॑र्ण्ड॒मन॑क्र॒द्धा म॒न॒न्या॑ऽन॒ न ज॒ग्मी॑ ॥

६२१ घर्माऽह्व । मधु । जठरे । सनेरु इति ।
 भगेऽअविता । तुर्फरी इति । फारिवा । अरम् ॥
 पतराऽह्व । चचरा । चन्द्रऽनिर्निक् ।
 मनःऽक्रद्धा । मनन्या । न । जग्मी इति ॥८॥

६२१ अन्ययः— घर्मा इव जठरे मधु सनेरु, भगे-अविता अरं तुर्फरी फारिवा, पतरा इव चचरा चन्द्रनिर्निक्, मनः-क्रद्धा मनन्या न जग्मी ॥ ८ ॥

६२१ अर्थ— (घर्मा इव जठरे मधु सनेरु) उपानेके पात्रमें जैसा दूध वैसा तुम अपने पेटमें मधुर सोमारस सेवन करते हो, (भगे-अविता अरं तुर्फरी फारिवा) धनके संरक्षण करनेमें समर्थ शत्रुहंसक दास्य तुम चाराज करते हो, (पतरा इव चचरा चन्द्रनिर्निक्) बेगसे उड़नेवाले आकाशसंचारी पक्षीके समान और चन्द्रके समान सुंदर रूपधारी, (मनःक्रद्धा मनन्या न जग्मी) ममसे लोभा पड़ानेवाले, मनन करनेवाले और सरकर्मके स्थानमें जानेवाले, ये अभिदेव हैं ॥

[६२२]

६२२ बृहन्तेव गुम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
 कर्णेव शास्रन् हि स्मरायौऽशैव नो भजतं चित्रममः ॥९॥

६२२ बृहन्ताऽह्व । गुम्भरेषु । प्रतिऽस्थाम् ।
 पादाऽह्व । गाधम् । तरते । विदाथः ॥
 कर्णाऽह्व । शासुः । अनु । हि । स्मराथः ।
 अंशाऽह्व । नः । भजतम् । चित्रम् । अमः ॥९॥

६२२ अन्ययः— बृहन्ता इव गुम्भरेषु प्रतिष्ठां विदाथः, तरतः पादा इव गाधं (विदाथः), कर्णा इव शासुः हि अनु स्मराथः, अंशा इव नः चित्रं अमः भजतम् ॥ ९ ॥

६२२ अर्थ— (बृहन्ता इव गम्भीरेषु प्रतिष्ठां विदाथः) बड़े धीरोंके समान तुम कठीण गम्भीर स्थितिमें भी अपनी सुस्थिति स्थिर रखना जानते हैं । (सरतः पादा इव गात्रे विदाथः) खैरनेवालेके पावोंके समान तुम जङ्गकी गहराईको जानते हैं । (कर्णा इव शासुः क्षि अनु स्मराथः) कानोंके समान तुम उत्तम शासककर्ताकी आज्ञाका भयवा भक्तकी पुकारका स्मरण रखते हैं । (भंशा इव नः चित्रं भग्नः भक्तं) भयवर्षोंके सहभागी होनेके समान तुम हमारे उक्तम कर्मका सेवन करते हैं ॥

[६२३]

६२३ आरङ्गरेव मध्वरेयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारैव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सुयवसात्
सचेथे ॥१०॥

६२३ आरङ्गराऽइव । मधु । आ । ईरयेथे इति ।
सारघाऽइव । गवि । नीचीनऽवारे ॥
कीनाराऽइव । स्वेदम् । आऽसिस्विदाना ।
क्षामेऽइव । ऊर्जा । सुयवसात् अत् । सचेथे इति ॥१०॥

६२३ अन्वयः— आरङ्गः इव मधु आ ईरयेथे, सारघा इव नीचीन-वारे गवि, की-नारा इव स्वेदं आसिष्विदाना, क्षामा इव सुयवसात् ऊर्जा सचेथे ॥१०॥

६२३ अर्थ— (आरङ्गरा इव मधु आ ईरयेथे) पर्याप्त वर्षा करनेवाले मेघोंके समान मधुर जल तुम प्रवाहित करते हैं, (सारघा इव नीचीनवारे गवि) मधुमक्खियोंके समान तुम गौके स्तनोंमें मधुर दूध प्रेरित करते हैं । (की-नारा इव स्वेद आसिष्विदाना) तुरे नीच मानवके समान तुम पसीना बहा देते हैं । (क्षामा इव सुयवसात् ऊर्जा सचेथे) क्षीण गौके उत्तम जीवा घास खाकर पुष्ट होनेके समान तुम भक्षरो यकवान् बना देते हैं ॥

[६९४]

६२४ ऋध्याम् स्तोमं सनुयाम् वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप
यातम् । यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो
अश्विनोः काममग्राः ॥११॥

६२४ ऋध्याम् । स्तोमम् । सनुयाम् । वाजम् ।
आ । नः । मन्त्रम् । सरथा । इह । उप । यातम् ॥
यशः । न । पक्वम् । मधु । गोषु । अन्तः ।
आ । भूतऽअंशः । अश्विनोः । कामम् । अग्राः ॥११॥

६२४ अन्वयः— स्तोमं ऋध्याम्, वाजं सनुयाम्, सरथा इह नः मन्त्रं उप
आ यातम् । गोषु अन्तः पक्वं मधु यशो न, भूतांशः अश्विनोः कामं आ
अग्राः ॥ ११ ॥

६२४ अर्थ— हम (स्तोमं ऋध्याम्) सत्कर्मको बहाते हैं । (वाजं
सनुयाम्) भक्तका दान करते हैं । (सरथा इह नः मन्त्रं उप आ यातम्) रथमें
बैठकर यहाँ हमारे मननीय स्तोत्र सुननेके लिये आभों । (गोषु अन्तः पक्वं
मधु यशो न) गौके अन्दर परिवक्क मधुर भक्त तुमने रक्का है । इसलिये ।
(भूतांशः अश्विनोः कामं आ अग्राः) भूतोंका अंशरूप ऋषि अश्विदेवोंकी
भक्ति यथेच्छ तथा पूर्णरूपसे करता है ॥

[६२५] (अ १०।१३।१४-५)

(६२५-६२६) सुकीर्तिः काक्षीयवः । ४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

६२५ युवं सुराममश्विना नम्रचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

६२५ युवम् । सुरामम् । अश्विना ।
नम्रचौ । आसुरे । सचा ॥
विऽपिपाना । शुभः । पती इति ।
इन्द्रम् । कर्मऽसु । आवतम् ॥४॥

६१५ अन्वयः— शुभस्पती अश्विना । सुरामं पिपाना युवं, सचा आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आवतम् ॥ ४ ॥

६१५ अर्थ— हे (शुभस्पती अश्विना) उत्तम कर्मोंके संरक्षक दोनों अश्वि-
देवों । (सुरामं वि-पिपाना युवं) उत्तम रमणीय रसका पान करनेवाले तुम
(सचा) साथ साथ रहनेवाले दोनों देवोंने (आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आव-
तम्) नमुची असुरके साथ होनेवाले युद्धरूप कर्मोंमें इन्द्रकी सुरक्षा की ॥

[६१६]

६१६ पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावधुः काव्यैर्दुसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा
मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

६१६ पुत्रम्इव । पितरौ । अश्विना । उभा ।
इन्द्र । आवधुः । काव्यैः । दुसनाभिः ॥
यत् । सुरामम् । वि । अपिबः । शचीभिः ।
सरस्वती । त्वा । मघवन् । अभिष्णक् ॥५॥

६१६ अन्वयः— पितरौ पुत्रं इव उभा अश्विना काव्यैः दुसनाभिः आवधुः,
सुरामं यत् शचीभिः अपिबः, मघवन् । सरस्वती त्वा अभिष्णक् ॥ ५ ॥

६१६ अर्थ— हे इन्द्र ! (पितरौ पुत्रं इव) मातापिता पुत्रकी जैसी रक्षा
करते हैं वैसे (उभा अश्विना काव्यैः दुसनाभिः आवधुः) तुम दोनों प्रशंस-
नीय कर्मोंसे हमारी रक्षा करते हैं । (सुरामं यत् शचीभिः अपिबः) उत्तम
रमणीय रस अपनी क्षतिके अनुसार तुमने पीया है । हे (मघवन्) इन्द्र !
(सरस्वती त्वा अभिष्णक्) सरस्वती तुम्हारी सेवा करती है, वर्णन करती है ॥

[६१७] (ऋ. १०।१४।१-६)

(६१७-६३९) अग्निः साक्यः । अनुष्टुप् ।

६२७ त्वं चिदग्निमृतजुर्मर्थमश्वं न यातवे ।

कधीर्वन्तं यद्वी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥

६२७ त्यम् । चित् । अत्रिम् । कृतञ्जुर्म ।
 अर्थम् । अश्वम् । न । यातवे ॥
 कक्षीविन्तम् । यदि । पुनरिति ।
 रथम् । न । कण्ठः । नर्वम् ॥१॥

६२७ सन्वयः— एवं चित् कृतञ्जुं अत्रि, अश्वं न यातवे अर्थम् ।
 यदि कक्षीविन्तं पुनः नवं रथं न कण्ठः ॥१॥

६२७ अर्थ— (एवं चित् कृतञ्जुं अत्रि) उस असुरोंके उपद्रवसे क्षीण
 हुए अत्रिको (अश्वं न यातवे) घोड़ेके समान वेगसे जानेके लिये (अर्थ) समर्थ
 बनानेके अर्थ तुमने सहायता दी । (यदि कक्षीविन्तं पुनः नवं रथं न कण्ठः)
 वैसेही कक्षीवान् अत्रिको पुनः तरुण, रथको पुनः नया बनानेके समान,
 बताया ॥

[६२८]

६२८ त्वं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।
 दृढहं ग्रन्थि न वि ध्यतमत्रि यविष्ठमा रजः ॥२॥
 ६२८ त्वम् । चित् । अश्वम् । न । वाजिनम् ।
 अरेणवः । यम् । अत्नत ॥
 दृढहम् । ग्रन्थिम् । न । वि । स्यतम् ।
 अत्रिम् । यविष्ठम् । आ । रजः ॥२॥

६२८ सन्वयः— अरेणवः, वाजिनं अश्वं न, यं यमत्नत, त्वं चित् अत्रि
 यविष्ठं रजः आ वि ध्यतं दृढहं ग्रन्थि न ॥२॥

६२८ अर्थ— (अरेणवः, वाजिनं अश्वं न, यं यमत्नत) भूरीके समान विश्वर
 न रहनेवाले असुरोंने, वेगवान् अश्वके समान जिस अत्रिको बांध रखा था ।
 (त्वं चित् अत्रि यविष्ठं) उस अत्रिको तरुण बनाकर (रजः आ विधत्तं)
 इस भूलोकमें बन्धमुक्त किया । (दृढहं ग्रन्थि न) जैसे कोई दृढ़ ग्रन्थिको
 छोट देता है ॥

[६२९]

६२९ नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिपासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३॥

६२९ नरा । दंसिष्ठौ । अत्रये ।
शुभ्रा । सिपासतम् । धियः ॥
अथ । हि । वाम् । दिवः । नरा ।
पुनरिति । स्तोमः । न । विशसे ॥३॥

६२९ अन्वयः— नरा दंसिष्ठौ शुभ्रा ! अत्रये धियः सिपासतम्, अथ हि दिवः स्तोमः न नरा । वा पुनः विशसे ॥ ३ ॥

६२९ अर्थ— हे (नरा दंसिष्ठौ शुभ्रा) नेता वरुणीय सुन्दर वीरों ! (अत्रये धियः सिपासतं) अत्रिके लिये कप्तम बुद्धि और कर्मशक्ति को तुमने दिया । (अथ हि दिवः स्तोमः न) पश्चात् दिव्य स्तोत्रके समान, हे (नरा) नेता वीरों ! (वा पुनः विशसे) वही तुम वीरोंकी पुनः विजय प्रशंसा करने लगा ॥

[६३०]

६३० चिते तद् वां सुराधसा रातिः सुमतिरभिना ।
आ यन्नः सदेने पृथौ समने पर्यथो नरा ॥४॥

६३० चिते । तत् । वाम् । सुराधसा ।
रातिः । सुमतिः । अभिना ॥
आ । यत् । नः । सदेने । पृथौ ।
समने । पर्यथः । नरा ॥४॥

६३० अन्वयः— सुराधसा अभिना । सुमतिः रातिः, तत् वां चिते, नरा ! यत् पृथौ समने सदेने नः आ पर्यथः ॥ ४ ॥

अभिना दे० ५३

६३० अर्थ— हे (सुराधरा भविना) उत्तम दान देनेवाले भविदेवों !
 (सुमतिः शक्तिः तत् वां चित्ते) तुम्हारी उत्तम बुद्धि और उत्तम वातुल्य-भावित
 यह सब तुम्हारे उत्तम ज्ञानका सूचक है । हे (नरा) नेताओं ! (यत् पृथौ
 समने सद्मने नः आश्रयः) तुम विस्तृत यज्ञगृहमें हमारी सुरक्षा करते हैं ।
 इसलिये हम तुम्हारी भक्ति करते हैं ॥

[६३१]

६३१ युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईद्वितम् ।
 यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

६३१ युवम् । भुज्युम् । समुद्रे । आ ।
 रजसः । पारे । ईद्वितम् ॥
 यातम् । अच्छ । पतत्रिभिः ।
 नासत्या । सातये । कृतम् ॥५॥

६३१ भाष्यः— युवं समुद्रे, रजसः पारे ईद्वितं भुज्युं अच्छ; पतत्रिभिः
 आ यातं, नासत्या । सातये कृतम् ॥ ५ ॥

६३१ अर्थ— (युवं समुद्रे, रजसः पारे ईद्वितं भुज्युं अच्छ) हम दोनों
 समुद्रमें, रेतके प्रदेशके परे सूबनेवाले भुज्युके पास (पतत्रिभिः आ यातं)
 पहुँच गये । हे (नासत्या) सत्यपालको ! (सातये कृतं) यह तुमने इनकी
 सहायताके लिये किया ॥

[६३२]

६३२ आ वां सुमैः शंयू ईव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
 समस्मे मूषतं नरोत्सं न पिप्युपीरिषः ॥६॥

६३२ आ । वाम् । सुमैः । शंयू इवेति शंयू ईव ।
 मंहिष्ठा । विश्ववेदसा ॥
 सम् । अस्मे इति । मूषतम् । नरा ।
 उत्सम् । न । पिप्युपीः । र्षः ॥६॥

६३१ अन्वयः— विश्ववेदसा नरा । वां वांयू इव मंहिष्ठा सुज्ञैः-आ ; विष्णुषीः इयः उत्तं न अस्मे सं भूयतम् ॥ ६ ॥

६३१ अर्थ— हे (विश्ववेदसा नरा) सब जाननेवाले नेता वीरों ! (वां वांयू इव मंहिष्ठा सुज्ञैः आ) तुम दोनों सुखदात्री राजाओंके समान सम्मान योग्य, सब सुखसाधनोंके साथ हमारे पास आते हैं । (विष्णुषीः इयः उत्तं न अस्मे सं भूयतं) प्रष्ट करनेवाले धनके दौजको (गौके दुग्धाशयको) देनेके समान, हमें धन देकर सुभूषित करो ॥

॥६३३॥ (भा. १०।१८४।३)

(६३३) एवम् गर्भकलां, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । भजुर्दुप ।

६३३ द्विरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दक्षमे मासि स्रतवे ॥३॥

६३३ द्विरण्ययी इति । अरणी इति । यम् ।
निःऽमन्थतः । अश्विना ॥
तम् । ते । गर्भम् । हवामहे ।
दक्षमे । मासि । स्रतवे ॥३॥

६३३ अन्वयः— द्विरण्ययी अरणी यं अश्विना निर्मन्थतः । तं ते गर्भं हवामहे दक्षमे मासि स्रतवे ॥ ३ ॥

६३३ अर्थ— (द्विरण्ययी अरणी) सुशोधी भस्मियाँ (यं अश्विना निर्मन्थतः) जिसको अधिक देव मथते हैं, (तं ते गर्भं हवामहे) दे की । तुम्हारे किये उस गर्भको हम आवाहन करते हैं कि वह (दक्षमे मासि स्रतवे) दसवें महिनेमें उत्पन्न हो जाय ॥

[६३४] (वा. य. १४।१-५)

६३४ ध्रुवर्क्षितिर्ध्रुवयौनिर्ध्रुवार्ति ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाऽध्वर्युं सादयतामिह त्वा

६३४ ध्रुवक्षितिरिति ध्रुवऽक्षितिः । ध्रुवयोनिरिति ध्रुवऽयोनिः ।

ध्रुवा । असि । ध्रुवम् । योनिम् । आ । सीद ।

साधुयेति साधुऽया ॥

उख्यस्य । केतुम् । प्रथमम् । जुपाणा ।

अश्विना । अध्वर्यूऽहस्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥ १

६३४ अन्वयः— ध्रुवक्षितिः, ध्रुवयोनिः ध्रुवा, उख्यस्य प्रथमं केतुं जुपाणा असि, साधुया ध्रुवं योनि आ सीद, अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ १ ॥

६३४ अर्थ— द्रु (ध्रुवक्षितिः) स्थिर रहनेवाली (ध्रुवयोनिः) स्थिर जन्म-स्थानमें रहनेवाली अत एव (ध्रुवा) स्थिर हो । (उख्यस्य प्रथमं केतुं जुपाणा असि) जपाके प्रथम ध्वजाकी सेवा करनेवाली है । अतः (साधुया ध्रुवं योनि आ सीद) उत्तम पद्धतिसे स्थिर स्थानमें बैठ । (अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम्) अद्विषक कार्य कामेयाके दोनों अश्विदेव तुझे यहाँ स्थापन करें । अश्विनो मधकर इस वेदीमें रहें ॥

[६३५]

६३५ कुलायिनीं घृतवतीं पुरन्धिः स्योने सीदु सदर्ने पृथिव्याः ।

अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्तिमा ब्रह्म पीपिहि

सौमगायाश्विनोऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥ २ ॥

६३५ कुलायिनीं । घृतवतीति घृतऽवती । पुरन्धिरिति

पुरंमुऽधिः । स्योने । सीदु । सदर्ने । पृथिव्याः ।

अभि । त्वा । रुद्राः । वसवः । गृणन्तु ।

इमा । ब्रह्म । पीपिहि । सौमगाय ।

अश्विना । अध्वर्यूऽहस्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥ २

६३५ अन्वयः— पृथिव्याः स्योने सदर्ने सीद, कुलायिनीं घृतवतीं पुरन्धिः वसवः रुद्राः त्वा अभि गृणन्तु, सौमगाय इमा ब्रह्म पीपिहि, अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ २ ॥

६३५ अर्थ— (पृथिव्याः स्थोने सद्ने सीद) पृथ्वीके ऊपरके सुखदायी स्थानमें बैठ । (कुलायिनी घृतवती) घरवाली और घीसे भरपूर होकर, (पुरन्धिः) नगरका धारण करनेवाली हो । (वसवः रुद्राः एवा अग्नि गृणन्तु) निवास करनेवाले और शत्रुको रुझानेवाले वीर तुम्हारी प्रशंसा करें । (सौमगाय इमा प्राज्ञा पोषिदि) उत्तम भाग्य प्राप्त करनेके लिये इस स्तोत्रको—इस ज्ञानकोरसमय बनाओ । (अप्ययूँ अग्निनो एवा इह सादयतां) आर्हितक कार्य करनेवाले दोनों अग्निदेव तुझे यहाँ स्थापन करें ॥

[६३६]

६३६ स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानां सुप्ते बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा
संविशस्वाश्विनाऽप्ययूँ सादयतामिह त्वा ॥३॥

६३६ स्वैः । दक्षैः । दक्षपितेति दक्षऽपिता । इह । सीद ।
देवानां । सुप्ते । बृहते । रणाय ॥
पितेवेति पिताऽइव । एधि । सूनव । आ ।
सुशेवेति सुऽशेवा । स्वावेशेति । सुऽआवेशा ।
तन्वा । सप् । विशस्व ।
अश्विना । अप्ययूँऽइत्यप्ययूँ । सादयताम् । इह । त्वा ॥

६३६ अन्वयः— पिता सूनवे इव दक्षपिता देवानो रणाय बृहते सुप्ते स्वैः वलैः इह सीदः सुशेवा एधि, स्वावेशा तन्वा संविशस्व अप्ययूँ अश्विनो एवा इह सादयताम् ॥ ३ ॥

६३६ अर्थ— (पिता सूनवे इव) जैसा पिता पुत्रको सहारा देता है वन तरह (दक्षपिता देवानो रणाय) बन्दका संरक्षण करनेवाली होकर दिरग विजु-धोंके आनन्दके लिये (बृहते सुप्ते) बड़े सुखके लिये (स्वैः दक्षैः इह सीद) अपने बलोंके साथ तुम यहाँ आकर बैठ । (सुशेवा एधि) उत्तम सेवा करने योग्य हो । (स्वावेशा तन्वा संविशस्व) सुखसे प्रवेश करनेयोग्य उत्तम चपक शरीरमे यहाँ आकर रह । अप्ययूँ अग्निदेव तुझे यहाँ स्थापन करें ॥

[६३७]

- ६३७ पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे
अभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणाऽऽ
यजस्वाश्विनोऽध्वर्यु सादयतामिह त्वा ॥४॥
- ६३७ पृथिव्याः । पुरीषम् । असि । अप्सः । नाम ।
ताम् । त्वा । विश्वे । अभि । गृणन्तु । देवाः ॥
स्तोमपृष्ठेति स्तोमऽपृष्ठा । घृतवतीति घृतऽवती । इह ।
सीदु । प्रजावदिति प्रजाऽवत् । अस्मेऽइत्यस्मे ।
द्रविणा । आ । यजस्व ।
अश्विनौ । अध्वर्युऽइत्यध्वर्यु । सादयताम् । इह । त्वा ॥

६३७ अन्वयः— पृथिव्याः पुरीष अस्य नाम असि तां त्वा विश्वे देवाः
अभि गृणन्तु, स्तोमपृष्ठा घृतवती इह सीद प्रजावत् द्रविण अस्मे आ यजस्व
अध्वर्यु अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ ४ ॥

६३७ अर्थ— (पृथिव्याः पुरीष) तू पृथ्वीको पूर्ण करनेवाली, (अप्सः
नाम असि) तू सबका भक्षण हो । (तां त्वा विश्वे देवा अभि गृणन्तु) तुम्हारी
सब देव प्रशंसा करें । (स्तोमपृष्ठा घृतवती) स्तोत्रोंसे प्रशंसित और घीसे
भरपूर होकर (इह सीद) यहाँ रह । (प्रजावत् द्रविणा अस्मे आ यजस्व)
सत्ताम और भग हमें दे । अध्वर्यु अश्विदेव तुम्हें यहाँ रखें ॥

[६३८]

- ६३८ अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धृतीं विष्टमर्नी
दिशामर्षिपत्नीं ध्रुवनानाम् ।
ऊर्मिर्द्रुप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनोऽध्वर्यु
सादयतामिह त्वा ॥५॥

६३८ अदित्याः । त्वा । पृष्ठे । सादयामि ।

अन्तरिक्षस्य । धर्त्रीम् । विष्टम्मनीम् । दिशाम् ॥

अधिपत्नीमित्यधिऽपत्नीम् । भुवनानाम् । ऊर्मिः ॥ द्रुप्तः ।

अपाम् । असि । विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा । ते । ऋषिः ।

अश्विना । अप्वर्यु इत्तप्वर्यु । सादयताम् । इह । स्वा ॥ ५

६३८ अन्वयः— अन्तरिक्षस्य धर्त्री, भुवनानां अधिपत्नी एवा अदित्याः पृष्ठे सादयामि, अपां द्रुप्तः ऊर्मिः असि, ते ऋषिः विश्वकर्मा अप्वर्यु अश्विनी एवा इह सादयताम् ॥ ५ ॥

६३८ अर्थ— (अन्तरिक्षस्य धर्त्री) अन्तरिक्षका धारण करनेवाली, (भुवनानां अधिपत्नी) भुवनोका पावन करनेवाली, (एवा अदित्याः पृष्ठे सादयामि) तुम्हें पृथ्वीके ऊपर स्थिर रूपसे स्थापित करते हैं । (अपां द्रुप्तः ऊर्मिः असि) तू उदककी शक्तीसदृश हो । (ते ऋषिः विश्वकर्मा) तेरा द्रष्टा विश्वकर्मा है । अप्वर्यु अश्विदेव तुझे यहाँ स्थापन करें ॥

[६३९] (वा० य० ३८।१०, १३)

६३९ विश्वा आशा दक्षिणसद् विश्वान् देवानयाडिह ।

स्वाहाकृतस्य धर्मस्य मघोः पिबतमश्विना ॥ १० ॥

६३९ विश्वाः । आशाः । दक्षिणसदिति दक्षिणऽसत् ।

विश्वान् । देवान् । अयाट् । इह ॥

स्वाहाकृतस्येति स्वाहाऽकृतस्य । धर्मस्य ।

मघोः । पिबतम् । अश्विना ॥ १० ॥

६३९ अन्वयः— इह दक्षिणसत् विश्वाः आशाः विश्वान् देवान् अयाट् अश्विना । स्वाहाकृतस्य मघोः धर्मस्य पिबतम् ॥ १० ॥

६३९ अर्थ— (इह दक्षिणसत्) यहाँ दक्षिण दिशामें रहनेवाला (विश्वाः आशाः विश्वान् देवान् अयाट्) सब दिशाओं और सब देवोंका पजन करता है । दे (अश्विना) अश्विदेवों । (स्वाहाकृतस्य मघोः धर्मस्य पिबतम्) स्वाहाकारपूर्वक दिये मग्नुर रसका पान करो ॥

[६४०]

६४० अपातामश्विनां घर्ममनु द्यावापृथिवी अमंसाताम् ।

इदं रातयः सन्तु ॥१३॥

६४० अपाताम् । अश्विनां । घर्मम् । अनुं ।

द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी । अमंसाताम् ॥

इह । एव । रातयः । सन्तु ॥१३॥

६४० अन्वयः— अश्विना घर्मः अपातां द्यावापृथिवी अममंसाताः इह एव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥

६४० अर्थ— (अश्विना घर्म अपातां) अश्विदेवोने रसका पान किया है । रसका (द्यावापृथिवी अममंसातां) पु और पृथ्वीने अनुमोदन किया है । (एव एव रातयः सन्तु) यहीही सब घन रहे ॥

[६४१] (साम० १०५)

(६४१) अश्विनो वैवस्वतो । वृद्धो ।

६४१ कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।

मता वामश्मया क्षयमाणोऽशुनेत्थम् आद्रन्यया ॥३॥

६४१ कु-स्थः । कः । वाम् । अश्विना ।

तपानः । देवा । मर्त्यः ॥

मता । वाम् । अश्मया । क्षयमाणः ।

अंशुना । इत्यम् । उ । आत् । उ ।

अन्यया । अन् । यथा ॥३॥

६४१ अन्वयः— देव अश्विना ! कुष्ठः कः मर्त्यः वा तपानः वा अश्मया मता अंशुना क्षयमाणः आद्रन् यथा इत्थं उ ॥ ३ ॥

६४१ अर्थ— हे (देवा अश्विन) प्रकाशमान अग्निदेवों ! (कु-ष्ठः कः मर्यः) भूमिपर रहनेवाला कौन मानव (वां तपानः) सुम्हको प्रकाश दे सकता है ? (वा अश्मया) आपको खानेके छिमे देनेके अर्थ (ज्ञता अंशुना क्षयमाणः) कूटकर निकाले रसके कारण क्षीण हुआ, थका हुआ, उपासक (भाहन् यथा) यथेष्ट भोजन करनेवालेके समान (इत्थं च) ही बनचान् होता है ॥

[६४१] (अथर्व. १।१९।६)

(६४१-६४५) अथर्वा १ त्रिष्टुप् ।

६४२ शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिपीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम्

६४२ शिवामिः । ते । हृदयम् । तर्पयामि ।
अनमीवः । मोदिपीष्ठाः । सुवर्चाः ॥
सवासिनौ । पिबताम् । मन्थम् । एतम् ।
अश्विनोः । रूपम् । परिधाय । मायाम् ॥६॥

६४२ अन्वयः— शिवाभिः ते हृदयं तर्पयामि, अनमीवः सुवर्चाः मोदि-
पीष्ठाः, सवासिनौ अश्विनोः रूपं माया परिधाय एतं मन्थं पिबतम् ॥६॥

६४२ अर्थ— [शिवामिः ते हृदयं तर्पयामि] कवचाण करनेवाली
विद्याभोसे में तेरे हृदयकी वृत्ति करता हूं । त् (अन्-अमीवः सुवर्चाः मोदि-
पीष्ठाः) भीरोम और उत्तम तेजस्वी होकर आनन्दप्रसन्न हो । (सवासिनी)
साध रहनेवाले तुम दोनों (अश्विनोः रूपं) अग्निदेवोंके समान सुंदर रूपको
और इनकी (माया परिधाय) कुशकतापूर्वक कर्म करनेकी शक्तिको धारण
कर (एतं मन्थं पिबतं) इस मधुर रसका वाग करो ॥

[६४३] (अथर्व. ६।५०।१-३)

अथर्वा (अमयकामः) । १ विराट् जगती, २-३ पश्चादृक्तिः ।

६४३ हतं तदं समृक्कमास्तुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः
शृणीतम् । यवानेददानपि नस्तत् सुसुमयामयं कृणुतं
धान्यायि ॥१॥

अश्विनो दे० ५४

६४३ हुतम् । तर्दम् । सम्ऽअङ्गम् । आखुम् ।

अश्विना । छिन्तम् । शिरः । अपि । पृष्टीः । शृणीतम् ।

यवान् । न । इत् । अदान् । अपि । नह्यतम् ।

मुखम् । अथ । अमयम् । कृणुतम् । धान्याय ॥१॥

६४३ अन्वयः— अश्विनौ ! तर्दं समष्टकं आखुं हुतं शिरः छिन्तं पृष्टीः अपि शृणीतम् ; यवान् न इत् अदान् मुखं अपि नह्यतं, अथ धान्याय अमयं कृणुतम् ॥ १ ॥

६४३ अर्थ— हे (अश्विनौ) अश्विदेवों ! (तर्दं समष्टकं आखुं हुतं) नाश करनेवाले शिकमें रहनेवाले चूहेको मारो । (शिरः छिन्तं) उसका शिर काटो । (पृष्टीः अपि शृणीतं) उसकी पीठ सोडो । वे चूहे (यवान् न इत् अदान्) जोको न खावें । (मुखं अपि नह्यतं) उनका मुख बंद करो । (अथ धान्याय अमयं कृणुतं) और धान्यके क्रिये विभंयता करो ॥

[६४४]

६४४ तर्दं है पतङ्ग है जभ्य हा उपकस ।

ब्रजेवासंस्थितं हविरनन्दन्त इमान्यवानर्हिसन्तो अपोदितः ॥

६४४ तर्दं । है । पतङ्ग । है । जभ्य । है । उपऽकस ॥

ब्रजाऽईव । असम्ऽस्थितम् । हविः । अनन्दन्तः ।

इमान् । यवान् । अर्हिसन्तः । अपऽउदित ॥२॥

६४४ अन्वयः— हे तर्दं ! हे पतङ्ग ! हे जभ्य उपकस ! ब्रजा इव असं-स्थितं हविः इमान् यवान् अनन्दन्तः अर्हिसन्तः अपोदितः ॥ २ ॥

६४४ अर्थ— (हे तर्दं) हे हंसक ! (हे पतङ्ग) हे चकम ! (हे जभ्य उपकस) हे वष्य और पुष्ट ! (ब्रजा इव असंस्थितं हविः) ब्रजा जैसा असंस्कृत हविको सोदता है, उस तरह (इमान् यवान् अनन्दन्तः अर्हिसन्तः) इन जीमोंको न खाते और न नष्ट करते हुए (अपोदित) दूर हटा जाओ ॥

[६४५]

६४५ तर्दापते वधापते तृष्टजम्मा आ शृणोत मे ।

य आरण्या व्यद्विरा ये के च स्थ व्यद्विरास्तान्सर्वान्
जम्भयामसि ॥३॥

६४५ तर्दापते । वधापते । तृष्टजम्माः । आ । शृणोत । मे ।

ये । आरण्याः । विद्वज्जम्माः ॥.

ये । के । च । स्थ । विद्वज्जम्माः ।

तान् । सर्वान् । जम्भयामसि ॥३॥

६४५ अन्वयः— तर्दापते, वधापते, तृष्टजम्मा ! मे आ शृणोत, ये आरण्याः व्यद्विराः ये के च व्यद्विराः स्थ तान् सर्वान् जम्भयामसि ॥ ३ ॥

६४५ अर्थ— हे (तर्दापते) महा हिंसक ! हे (वधापते) पाकम । हे (तृष्टजम्मा) तीक्ष्ण दंष्ट्रावाले ! (मे आ शृणोत) मेरा भावण सुनो । (ये आरण्याः व्यद्विराः) जो अरण्यमें रहकर अधिक खानेवाले हैं और (ये के च व्यद्विराः स्थ) जो कोई सर्वभक्षक हैं (तान् सर्वान् जम्भयामसि) उन सबका हम भाव करते हैं ॥

[६४६] (अथर्व. १।३।०।१)

(६४६) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

६४६ सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।

सं वां भगांसो अगमत् सं चित्तानि सप्त ब्रता ॥२॥

६४६ सम् । च । इत् । नयाथः । अश्विना ।

कामिना । सम् । च । वक्षथः ॥

सम् । वाम् । भगांसः । अगमत् ।

सम् । चित्तानि । सम् । ऊं इति । ब्रता ॥२॥

६४६ अन्वयः— कामिना अश्विना । च इत् सं नयाथः, च सं वक्षथः, वां भगांसः सं अगमत् चित्तानि सं ब्रतानि सम् ॥ २ ॥

६४६ अर्थ— हे (कामिना अधिना) इच्छा करनेवाले अधिवेवों । (च इतः सं नयापः) यहाँसे मिलकर चलो, (च सं वक्षथः) और मिलकर आगे बढ़ो । (वा भगवतः सं भगवत) तुम दोनोंके ऐश्वर्य तुम्हारे साथ रहें, (चित्तानि सं) चित्त मिले रहें, (व्रतानि सं) तुम्हारे कर्म एक दो ॥

इस मंत्रके 'कामिना अधिना' ये पद अधिवेवोंके समान झुकते रहनेवाली पतिपत्नीके दर्शक हैं ॥

[६४७] (अथर्व. ६।१०१।१-३)

(६४७-६४९) जमदग्निः । अनुष्टुप् ।

६४७ यथाऽयं चाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।

एवा मामग्नि ते मनः समेतु सं च वर्तताम् ॥१॥

६४७ यथा । अयम् । चाहः । अश्विना ।

सम्प्रेति । सम् । च । वर्तते ॥

एव । माम् । अग्नि । ते । मनः ।

सम्प्रेतु । सम् । च । वर्तताम् ॥१॥

६४७ अन्वयः— अश्विनी । यथा अयं चाहः सं एति सं वर्तते, एवा ते मनः मां अग्नि सं आ एतु सं वर्ततां च ॥ १ ॥

६४७ अर्थ— हे (अश्विनी) अधिवेवों ! (यथा अयं चाहः सं एति) जिस तरह यह घोड़ा साथ साथ जाता है, और (सं वर्तते) निककर रहता है, (एवा ते मनः मां अग्नि) वैसा तेरा मन मेरे पास (सं आ एतु) आकर्षित हो जावे, और (सं वर्ततां च) मेरे साथ रहे ॥

[६४८]

६४८ आऽहं खिदामि ते मनो राज्ञाश्वः पुष्टयामिव ।

रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥

६४८ आ । अहम् । खिदामि । ते । मनः ।

राज्ञाश्वः पुष्टयामिव ॥

रेष्मच्छिन्नम् । यथा । तृणम् ।

मयि । ते । वेष्टताम् । मनः ॥२॥

६४८ अन्वयः— अहं ते मनः आ सिदामि पृथ्वी राजाश्वः इव यथा
रेभमच्छिखं तृणं ते मनः मयि वेष्टताम् ॥ २ ॥

६४८ अर्थ— (अहं ते मनः आ सिदामि) मैं तेरा मन खींचता हूँ । (पृथ्वी
राजाश्वः इव) गाड़ीको छेष्ट घोड़ा जैसा खींचता है, (यथा रेभ-छिखं
तृणं) जैसा छिखभिख घास एक दूसरेसे चिपकता है, वैसा (ते मनः मयि
वेष्टतां) तेरा मन मेरे साथ चिपकता रहे ॥

[६४९]

६४९ आज्ञनस्य मदुर्घस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्धरे ॥३॥

६४९ आज्ञनस्य । मदुर्घस्य ।
कुष्ठस्य । नलदस्य । च ॥
तुरः । भगस्य । हस्ताभ्याम् ।
अनुरोधनम् । उद् । भरे ॥३॥

६४९ अन्वयः— तुराः भगस्य आज्ञनस्य मदुर्घस्य कुष्ठस्य नलदस्य च
हस्ताभ्यां अनुरोधनं उद्धरे ॥ ३ ॥

६४९ अर्थ— (तुराः भगस्य) त्वरासे प्राप्त होनेवाले माग्यकी, (आज्ञ-
नस्य मदुर्घस्य) अज्ञानके समान हर्षित करनेवाले, (कुष्ठस्य नलदस्य
हस्ताभ्यां) कूट और नलके समान हाथों द्वारा (अनुरोधनं उद्धरे) अनुकूलतासे
माप्त करता हूँ ॥

इन तीन मंत्रोंमें पतिपत्नीका परस्पर प्रेम जटक रहे यह विषय है ॥

[६५०] (अथर्व. ६।१४१।१—३)

(६५०—६५१) विधामित्रः । अनुष्टुप् ।

६५० चापुरेनाः समार्कत् त्वष्टा पोषाय धियताम् ।
इन्द्रे आभ्यो अभिं ब्रवद् रुद्रो मूष्ने चिकित्सतु ॥१॥

६५० वायुः । एनाः । सम्ऽआकर्त्त ।
 त्वष्टा । पोषाय । ध्रियताम् ॥
 इन्द्रः । आभ्यः । अर्धि । ब्रवत् ।
 रुद्रः । भूमे । चिकित्सतु ॥१॥

६५० अन्वयः— वायुः एनाः सं आकर्त्त, त्वष्टा पोषाय ध्रियतां, इन्द्रः आभ्यः भधि ब्रवत्, रुद्रः भूमे चिकित्सतु ॥ १ ॥

६५१ अर्थ— (वायुः एना सं आकर्त्त) वायु इन गौर्भोंको इकट्ठा करे, (त्वष्टा पोषाय ध्रियतां) त्वष्टा इनको प्रष्टिके लिये धरे, (इन्द्रः आभ्यः भधि ब्रवत्) इन्द्र इनको बुझावे, (रुद्रः भूमे चिकित्सतु) रुद्र इनकी वृद्धि करनेके लिये चिकित्सा को ॥

[६५१]

६५१ लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
 अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२॥

६५१ लोहितेन । स्वऽधितिना ।
 मिथुनम् । कर्णयोः । कृधि ॥
 अकर्ताम् । अश्विना । लक्ष्म ।
 तत् । अस्तु । प्रऽजया । बहु ॥२॥

६५१ अन्वयः— लोहितेन स्वधितिना कर्णयोः मिथुनं कृधि, अश्विनौ लक्ष्म अकर्ता तत् प्रजया बहु अस्तु ॥ २ ॥

६५१ अर्थ— (लोहितेन स्वधितिना) लोहेकी शङ्काकासे (कर्णयोः मिथुनं कृधि) कानोंके ऊपर जोड़का बिम्ब कर । (अश्विनौ लक्ष्म अकर्ता) अश्विदेव बिम्ब करें, (तत् प्रजया बहु अस्तु) यह समस्तविके साथ बहुत दितकारी हो ॥

[६५२]

६५२ यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
 प्रवा संहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३॥

६५२ यथा । चक्रुः । देवऽअसुराः ।
 यथा । मनुष्याः । उत ॥
 एव । सहस्रपोषाय ।
 कृणुतम् । लक्ष्म । अश्विना ॥३॥

६५२ अन्वयः— यथा देवासुराः चक्रुः उत यथा मनुष्याः, अश्विना !
 एवा सहस्रपोषाय कक्षम कृणुतम् ॥ ३ ॥

६५२ अर्थ— (यथा देवासुराः चक्रुः) जैसे देवों और असुरोंने बिन्द
 किये, (उत यथा मनुष्याः) और जैसे मनुष्य भी करते हैं, हे (अश्विना)
 हे अश्विदेवों ! (एवा सहस्रपोषाय कक्षम कृणुतम्) इस प्रकार सहस्रों प्रकारकी
 पुष्टिके लिये गौर्भोंपर बिन्द करो ॥

अश्विसहचारी देवगणः ।

(१) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

[६५३] (६५३-६६९) (वा. प. १९।३३-३५)

६५३ यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया
 सुतस्य । तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वती-
 माश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥

६५३ यः । ते । रसः । सम्भृत इति सम्भृतः । ओषधीषु ।
 सोमस्य । शुष्मः । सुरया । सुतस्य ॥
 तेन । जिन्व । यजमानम् । मदेन ।
 । सरस्वतीम् । अश्विनौ । इन्द्रम् । अग्निम् ॥३३॥

६५३ अन्वयः— ओषधीषु ते यः रसः सम्भृतः, सुरया सुतस्य सोमस्य
 शुष्मः, तेन मदेन यजमानं सरस्वतीं अश्विनौ इन्द्रं अग्निं जिन्व ॥ ३३ ॥

६५३ अर्थ— (ओषधीषु ते यः रसः सम्भृतः) ओषधीषोंमें तेरा जो रस
 भरपूर भरकर रहा है, (सुरया सुतस्य सोमस्य शुष्मः) जलके साथ दूटे हुए
 सोमसका जो रस है, (तेन मदेन) आनन्दकाक रससे (यजमानं सरस्वतीं
 अश्विनौ इन्द्रं अग्निं) यजमान, सरस्वती, अश्विदेव, इन्द्र और अग्निको (जिन्व)
 प्रसन्न कर ॥

[६५४]

६५४ यम॒श्चिना॒ नमु॑चेरासुरादधि सर॑स्वत्यसु॒नोदिन्द्रि॑याय ।
इमं॑ त॒ऽशुक्रं॑ मधु॒मन्त॑मिन्दु॒ऽसोम॑ऽराजा॒नमि॒ह भ॑क्षयामि

६५४ यम् । अ॒श्चिना॑ । नमु॑चेः । आ॒सुरात् । अधि॑ ।
सर॑स्वती । असु॑नोत् । इन्द्रि॑याय ॥
इमम् । तम् । शुक्रम् । मधु॑मन्तम् । इन्दु॑म् ।
सोम॑म् । राजा॑नम् । इह । भ॒क्षयामि॑ ॥३४॥

६५४ अन्वयः—अश्चिना नमुचेः असुरात् अधि यं, सरस्वती इन्द्राय असु-
नोत्, तं इमं शुक्रं मधुमन्तं इन्दुं राजानं सोमं इह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

६५४ अर्थ—(अश्चिना नमुचेः असुरात् अधि यं) अधिदेवोने नमुचि-
असुरसे जो सोम खाया, (सरस्वती इन्द्राय असुनोत्) सरस्वतीने इन्द्रके
छिये जिसका रस निचोटा, (तं इमं शुक्रं मधुमन्तं राजानं सोमं) उसी इत
शुभ्रवर्ण मधुर और आज्झाद देनेवाले वीक्षिमान सोमरसको (इह भक्षयामि)
यही इत पकमें मैं भक्षण करता हूँ ॥

[६५५]

६५५ यद॒त्र रि॒प्तऽर॑सि॒नः सु॒तस्य॑ यदिन्द्रो अ॒र्पिष॑च्छर्चि॒मिः ।
अ॒हं तद॑स्य म॒नसा॑ शि॒वेन॑ सोम॑ऽराजा॒नमि॒ह भ॑क्षयामि॥

६५५ यत् । अ॒त्र । रि॒प्तम् । र॒सि॒नः । सु॒तस्य॑ ।
यत् । इन्द्रः॑ । अ॒र्पिष॑त् । शर्चि॑मिः ॥
अ॒हम् । तत् । अ॒स्य । म॒नसा॑ । शि॒वेन॑ ।
सोम॑म् । राजा॑नम् । इह । भ॒क्षयामि॑ ॥३५॥

६५५ अन्वयः—रसिनः सुतस्य यत् अत्र रिप्तं शर्चिमि. इन्द्रः यत् अर्पि-
षत्, यत् अस्य राजानं सोमं इह शिवेन मनसा भक्षयामि ॥ ३५ ॥

६५५ अर्थ— (रसिनः सुतराम यत् तत्र विहं) रसयुक्त सोमरसका जो भंश यहाँ छिपटा है, चिपका है, (शचीभिः इन्द्रः यत् अपिषत्) शचित्यों-समेत इन्द्र जिसे पीता है, (तत् अस्य राजानं सोमं इह क्षिप्तेन मनसा भक्षयामि) उस तेजस्वी सोमरसकी यहाँ मैं शुभ मनोभावनाके साथ भक्षण करता हूँ ॥

[६५६] (वा. प. १०।६७-६९)

६५६ अ॒श्विना॑ ह॒विरिन्द्रि॑यं नमृ॒चेर्धिया॑ सर॒स्वती ।
आ शु॒क्रमा॑सुरा॒दसु॑ म॒घमिन्द्रा॑य ज॒अत्रिरे ॥६७॥

६५६ अ॒श्विना॑ । ह॒विः । इन्द्रि॑यम् ।
नमृ॒चेः । धि॒या । सर॒स्वती ।
आ । शु॒क्रम् । आ॒सुरात् । असु॑ ।
म॒घम् । इन्द्रा॑य । ज॒अत्रिरे ॥६७॥

६५६ अन्वयः— अश्विना सरस्वती धिया नमृचेः आसुरात्, इन्द्राय शुक्रं हविः इन्द्रियं मघं असु जत्रिरे ॥ ६७ ॥

६५६ अर्थ— (अश्विना सरस्वती धिया) अश्विदेव और सरस्वतीने इन्द्रियार्थक (नमृचेः आसुरात्) नमृचि असुरसे (इन्द्राय शुक्रं हविः इन्द्रियं मघं असु) इन्द्रकी देवके छिमे मलवार्थक हविरुप इन्द्रियवशादितवार्थक पूजनीय धन जैसा यह सोमरस (आ जत्रिरे) काया गया है ॥

[६५७]

६५७ यम॒श्विना॑ सर॒स्वती॑ ह॒विषेन्द्र॑मवर्धयन् ।
स वि॒भेद॑ व॒लं म॒घं नमृ॑चावा॒सुरे स॒र्चा ॥६८॥

६५७ यम् । अ॒श्विना॑ । सर॒स्वती॑ ।
ह॒विषा॑ । इन्द्र॑म् । अव॒र्धयन् ॥
सः । वि॒भेद॑ । व॒लम् । म॒घम् ।
नमृ॑चौ । आ॒सुरे । स॒र्चा ॥६८॥

६५७ अन्वयः— अश्विना सरस्वती यं इन्द्रं हविषा वर्षयन्; सः नमुची भासुरे सचा मघं बलं विभेद ॥ ६८ ॥

६५७ अर्थ— (अश्विना सरस्वती यं इन्द्रं) अश्विदेव और सरस्वतीने जिस इन्द्रको (हविषा वर्षयन्) हवि देकर बटाया, (सः नमुची भासुरे सचा मघं बलं विभेद) उस इन्द्रमें नमुचि असुरको और उसके साथ बड़े बल असुरको भी चूर चूर किया ॥

[६५८]

६५८ तमिन्द्रं पशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधाना अभ्यनूयत हविषा युञ्ज इन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

६५८ तम् । इन्द्रम् । पशवः । सचा ।
अश्विना । उभा । सरस्वती ॥
दधानाः । अभि । अनूयत ।
हविषा । युञ्जे । इन्द्रियैः ॥ ६९ ॥

६५८ अन्वयः— पशवः उभा अश्विना सरस्वती सचा यजे हविषा इन्द्रियैः दधानाः तं इन्द्रं अभ्यनूयत ॥ ६९ ॥

६५८ अर्थ— (पशवः उभा अश्विना सरस्वती सचा) सब पशु, दोनों अश्विदेव और सरस्वती एकजित होकर (यजे हविषा इन्द्रियैः दधानाः) पशुमें हविष्याग्नसे इन्द्रिय शक्तियोंको बटाकर बल धारण करके (तं अभ्य-नूयत) उस इन्द्रकी प्रशंसा की ॥

[६५९] (भा. य. २१।४८-५८)

६५९ देवं वृहिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रं अश्विना ।
तेजो न चक्षुरस्योर्ध्वहिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधैर्यस्य व्यन्तु यज ॥ ४८ ॥

६५९ देवम् । बर्हिः । सरस्वती । सुदेवमिति सुऽदेवम् ।
 इन्द्रै । अश्विना ॥ तेजः । न । चक्षुः ।
 अक्ष्योः । बर्हिषा । दधुः । इन्द्रियम् ।
 वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति
 वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥४८॥

६५९ अन्ययः— सुदेवं बर्हिः देवं बर्हिषा अश्विना सरस्वती इन्द्रे तेजः
 न अक्ष्योः चक्षुः इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, (होतः ।)
 यज ॥ ४८ ॥

६५९ अर्थ— (सुदेवं बर्हिः) देवोंको प्रिय यह बर्हि है । (देवं बर्हिषा
 अश्विना सरस्वती) इस देवके लिये बर्हिसे अश्विदेवोंने और सरस्वतीने
 (इन्द्रे तेजः न अक्ष्योः चक्षुः इन्द्रियं दधुः) इन्द्रमें तेज और आक्षोंमें दर्शन
 धारितकपी इन्द्रिय धारण किया । (वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) हमें धन प्राप्त
 हो इसलिये धनके संग्रहसे प्राप्त होनेवाला दधि इन देवोंको प्राप्त हो । ॥
 (होतः । यज) हे दधन करनेवाले । यजन कर ॥

[६६०]

६६० देवीर्दारीं अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।
 प्राणं न वीर्यं नसि दारो दधुरिन्द्रियं वसुवनं
 वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥

६६० देवीः । दारः । अश्विना । भिषजा । इन्द्रै । सरस्वती ॥
 प्राणम् । न । वीर्यम् । नसि । दारः । दधुः । इन्द्रियम् ।
 वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य ।
 व्यन्तु । यज ॥४९॥

६६० अन्ययः— देवीः दारः दारः भिषजा अश्विना सरस्वती, इन्द्रे वीर्यं
 नसि प्राणं इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, (होतः ।) यज ॥ ४९ ॥

६६० अर्थ— (देवीः द्वारः) ये द्वार देवियाँ हैं । (द्वारः सिवजा भद्रिना सरस्वती) ये द्वार, वैद्य भद्रिदेव और सरस्वती इन्होंने मिलकर, (इन्द्रे धीर्यं नसि प्राणं इन्द्रियं दधुः) इन्द्रमें धीर्य, नासिकामें प्राणरूप इन्द्रिय स्थिर रखा । इस अन मिले इसलिये अनसे प्राप्त इन्द्रियात्मक ये देव प्रदण करें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६१]

६६१ देवी उपासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।

चलं न वाचमास्य उषाम्यां दधुरिन्द्रियं वसुपने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥

६६१ देवीऽइति देवी । उपासौ । उपसावित्युपसौ । अश्विना ।

सुत्रामेति सुत्रामा । इन्द्रे । सरस्वती ॥

चलम् । न । वाचम् । आस्ये । उषाम्याम् । दधुः ।

इन्द्रियम् । वसुवनऽइति वसुवने । वसुधेयस्येति

वसुधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५०॥

६६१ अन्वयः— उपासा देवी सुत्रामा अश्विना सरस्वती इन्द्रे चलं आस्ये वाचं न इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५० ॥

६६१ अर्थ— (उपासा देवी) उपा और नक्त ये देवता हैं । (सुत्रामा भद्रिना सरस्वती) उक्तम संरक्षण करनेवाले भद्रिदेव और सरस्वती ये मिलकर (इन्द्रे चलं, आस्ये वाचं न इन्द्रियं दधुः) इन्द्रमें चल, सुत्रमें वाणी-का इन्द्रिय धारण करती हैं । हमें अन प्राप्त हो इसलिये अनसे प्राप्त इन्द्रियात्मक स्वीकार ये देव करें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६२]

६६२ देवी जोष्टी सरस्वत्यश्विनेन्द्रप्रवर्षयन् ।

श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्टीभ्यां दधुरिन्द्रियं

वसुपने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५१॥

६६२ देवीऽइति देवी । जोष्टीऽइति जोष्टी । सरस्वती ।
 अश्विना । इन्द्रम् । अवर्षयन् ॥
 श्रोत्रम् । न । कर्णयोः । यशः । जोष्टीभ्याम् ।
 दधुः । इन्द्रियम् । वसुवन इति वसुंऽवने । वसुधेयस्येति
 वसुंऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५१॥

६६२ अन्वयः— जोष्टी देवी जोष्टीभ्यां अश्विना सरस्वती इन्द्रं अवर्षयन् ।
 ओषं न कर्णयोः यशः इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः ।)
 यज ॥ ५१ ॥

६६२ अर्थ— (जोष्टी देवी) सुख देनेवाकी हो देवताएँ भू और धौ ये
 हैं । (जोष्टीभ्यां अश्विना सरस्वती) इनके साथ अश्विदेव और सरस्वती
 ये इन्द्रमें बल और कानोंमें श्रवण इन्द्रिय धारण करती हैं । इसमें धन प्राप्त
 हो इसलिये धनसे प्राप्त इन्द्रियों के देव स्वीकारें । हे (होतः । यज) होतः ।
 पू. यजन कर ॥

[६६३]

६६३ देवी ऊर्जाहुती दुधे सुदुधेन्द्रे सरस्वत्यश्विना मिपजाऽवतः ।
 शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती भक्त इन्द्रियं वसुवनं
 वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥

६६३ देवी इति देवी । ऊर्जाहुतीऽइत्यूर्जाऽआहुती ।
 दुधेऽइति दुधे । सुदुधेति सुदुधौ । इन्द्रे । सरस्वती ।
 अश्विना । मिपजा । अवतः ॥ शुक्रम् । न । ज्योतिः ।
 स्तनयोः । आहुती इत्याहुती । धत्तः । इन्द्रियम् ।
 वसुवन इति वसुंऽवने । वसुधेयस्येति वसुंऽधेयस्य ।
 व्यन्तु । यज ॥५२॥

६६३ अन्वयः— सुदुधे दुधे च ऊर्जाहुती देवी मिपजा अश्विना सरस्वती
 इन्द्रे भवतः ज्योतिः भक्तः स्तनयोः आहुती शुक्रं न इन्द्रियं, वसुवने वसुधेयस्य
 व्यन्तु (होतः ।) यज ॥५२॥

६६३ अर्थ— (सुधुचे दुधे च ऊर्जाहृती देवी) उत्तम दोहन जिनका होता है ऐसी बलवर्धक दूध देनेवाली दो देवियाँ हैं । उनके साथ अग्निदेव और सरस्वती इन्द्रका (भवतः) संरक्षण करती हैं, इन्होंने उसमें (उषोतिः धत्तः) तेज धारण किया और (स्वनयोः शुक्रं न इन्द्रियं) स्तनोंमें बलवर्धक इन्द्रियवर्धितवर्धक दूध धारण किया है । हमें भग्न मिले इसलिये भग्नसे प्राप्त द्रव्यप्राप्त ये देव स्वीकारें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६४]

६६४ देवा देवानां भिषजा होतारविन्द्रमश्विना ।
वपट्कारैः सरस्वती त्विषिं न हृदये मतिं होतृभ्यां
दधुरिन्द्रियं वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५३॥

६६४ देवा । देवानाम् । भिषजा । होतारौ । इन्द्रम् । अश्विना ॥
वपट्कारैरिति वपट्कारैः । सरस्वती । त्विषिम् ।
न । हृदये । मतिम् । होतृभ्यामिति होतृभ्याम् ।
दधुः । इन्द्रियम् । वसुवन इति वसुवने ।
वसुधेयस्येति वसुधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५३॥

६६४ अन्वयः— देवानां होतारौ देवा वपट्कारैः भिषजा अश्विना सरस्वती इन्द्रं त्विषिं दधुः हृदये मतिं इन्द्रियं होतृभ्यां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होता !) यज ॥ ५३ ॥

६६४ अर्थ— (देवानां होतारौ देवा) देवोंके लिये दहन करनेवाले दो देव हैं । उनके साथ तथा (वपट्कारैः भिषजा अश्विना सरस्वती) वपट्कारोंके साथ अग्निदेव और सरस्वती मिळकर (इन्द्रं त्विषिं दधुः) इन्द्रके लिये तेजका धारण करते रहें । उसके (हृदये मतिं इन्द्रियं) हृदयमें इन्होंने मतिरूप इन्द्रिय धारण किया । हमें भग्न मिले इसलिये द्रव्यसे प्राप्त होनेवाले द्रव्यप्राप्तका स्वीकार ये देव करें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६५]

६६५ देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।
शूपं न मध्ये नाम्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥५४॥

६६५ देवीः । तिस्रः । तिस्रः । देवीः । अश्विना । इडा ।
सरस्वती ॥ शूपम् । न । मध्ये । नाम्याम् । इन्द्राय ।
दधुः । इन्द्रियम् । वसुवन इति वसुवने ।
वसुधेयस्येति वसुधेयस्य । व्यन्तु । यजं ॥५४॥

६६५ अन्वयः— तिस्रस्तिस्रः देवीः, अश्विना, इडा सरस्वती देवीः इन्द्राय
माया मये शूपं न इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः ।)
यज ॥ ५४ ॥

६६५ अर्थ— (तिस्रः-तिस्रः देवीः) तीन देवियां हैं (अश्विनी, इडा सरस्वती)
अश्विदेव, मातृभूमि और सरस्वती (विद्या) ये देवियां (इन्द्राय माया
मये शूपं न इन्द्रियं) इन्द्रके लिये नामिमें बकरूपी इन्द्रिय (दधु) धारण
करती हैं । हमें धन मिले इसलिये द्रव्यसे प्राप्त होनेवाला इन्द्रियाक्त ये
देव जे । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६६]

६६६ देव इन्द्रो नराश्वत्सस्त्रिवरूयः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रयः ।
रेतो न रूपममृतं जनिमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यजं ॥५५॥

६६६ देवः । इन्द्रः । नराश्वत्सः । त्रिवरूयइति त्रिवरूयः ॥
सरस्वत्या । अश्विभ्यामित्यश्विभ्याम् । इयते । रयः ॥
रेतः । न । रूपम् । अमृतम् । जनिम् ।
इन्द्राय । त्वष्टा । दधत् । इन्द्रियाणि ।
वसुवन इति वसुवने । वसुधेयस्येति वसुधेयस्य ।
व्यन्तु । यजं ॥५५॥

६६६ अन्वयः— रयः सरस्वती अश्विभ्या ईयते, इन्द्रः त्रिवरुधः त्वष्टा नराशंसः देवः, रेतः रूपं अमृतं ॥ जनित्रं इन्द्रियाणि इन्द्राय दधत्, वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः ।) यज ॥ ५५ ॥

६६६ अर्थ— (रयः सरस्वती अश्विभ्या ईयते) जिसका रय सरस्वती और दोनों अश्विदेव स्वीचने लयते हैं । वह (इन्द्रः त्रिवरुधः त्वष्टा नराशंसः देवः) प्रभु, तीनों स्थानोंमें जिसका घर है ऐसा स्वष्ट और नरों द्वारा प्रशंसित देव ये सब (रेतः रूपं अमृतं न जनित्रं) रेत अमृतरूप जननेन्द्रिय तथा (इन्द्रियाणि इन्द्राय दधत्) सब इन्द्रियों इन्द्रके किम्वे धारण करते हैं । हमें धन मिले इसलिये धनसे प्राप्त होनेवाला इच्छित्व ये देव हैं । ई (होतः । यज) होता । तु यजन कर ॥

[६६७]

६६७ देवो देवैर्वनस्पतिर्हिरण्यपर्णो अश्विभ्या सरस्वत्या सुपिप्पल इन्द्राय पच्यते मधु ।
ओजो न जूतिर्ऋषभो न भामं वनस्पतिर्नो दधदिन्द्रियाणि वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥ ५६ ॥

६६७ देवः । देवैः । वनस्पतिः । हिरण्यपर्णोऽइति हिरण्यऽपर्णः ।
अश्विभ्यामित्यश्विभ्याम् । सरस्वत्या । सुपिप्पलऽइति सुऽपिप्पलः । इन्द्राय । पच्यते । मधु ॥ ओजः । न ।
जूतिः । ऋषभः । न । भामम् । वनस्पतिः । नः ।
दधत् । इन्द्रियाणि । वसुधनेऽइति वसुधने ।
वसुधेयस्येति वसुधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥ ५६ ॥

६६७ अन्वयः— वनस्पतिः इन्द्राय मधु पच्यते देवैः हिरण्यपर्णः अश्विभ्या सरस्वत्या सुपिप्पलः ऋषभः ओजः न जूतिः । भामं न इन्द्रियाणि दधत्, वसुधने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः ।) यज ॥ ५६ ॥

६६७ अर्थ— (वनस्पतिः इन्द्राय मधु पच्यते) वनस्पति इन्द्रके लिये मधुर रसको परिष्क करता है । (देवैः द्विरण्यपर्णः अश्विभ्यां सरस्वत्या) देवोंकी योजनासे सुवर्णके पत्रोंसे युक्त, अश्विदेव और सरस्वतीके द्वारा (सुविष्यक्तः ऋषभः) उत्तम फलफूलसे भरा ऋषभक वनस्पति, (भोजः न जूतिः भामं न इन्द्रियाणि दधत्) तेज, बल, वेग और प्रभावपूर्ण इंद्रियों धारण करते हैं । भक्त हमें प्राप्त हो इसलिये धनसे प्राप्त द्रविद्याद्य वे देव हैं । हे (होताः । यज) होता । तू यजन कर ॥

[६६८]

६६८ देवं बृहिर्वा रित्तीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णमदुः

सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः ॥

ईशार्यै मन्धुः राजानं बृहिर्पा दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७॥

६६८ देवम् । बृहिः । वारितीनाम् । अध्वरे । स्तीर्णम् ।

अश्विभ्यामित्यश्विभ्याम् । ऊर्णमदुः इत्यूर्णमदुः ॥

सरस्वत्या । स्योनम् । इन्द्र । ते । सदः ॥

ईशार्यै । मन्धुम् । राजानम् । बृहिर्पा । दधुः । इन्द्रियम् ।

वसुवन इति वसुवनम् । वसुधेयस्येति वसुधेयस्य ।

व्यन्तु । यज ॥५७॥

६६८ अन्वयः— इन्द्र । देवं ऊर्णमदुः स्योनं वारितीनां बृहिः । अध्वरे ते सदः । अश्विभ्यां सरस्वत्या स्तीर्णं ईशार्यै राजानं मन्धुं इन्द्रियं दधुः, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होताः ।) यज ॥ ५७ ॥

६६८ अर्थ— दे (इन्द्र) इन्द्र । (देवं ऊर्णमदुः स्योनं) प्रकाशमान, उनके समान मृदु, सुख देनेवाला (वारितीनां बृहिः) जलमें डरपन दूँको यह बृहिं यही इस (अध्वरे ते सदः) यज्ञमें तेरा स्थान है । यह भासन (अश्विभ्यां सरस्वत्या स्तीर्णं) अश्विदेव और सरस्वतीने फैलाया है । (ईशार्यै राजानं मन्धुं दधुः) इस स्वामीके लिये तेजस्वी वासादरूप इंद्रिय धारण किया है । हमें भक्त मिले इसलिये इस धनसे प्राप्त द्रविद्यैव्य अर्पण किया है यह देव हैं । हे (होताः । यज) होता । तू यजन कर ॥

[६६९]

६६९ देवो अग्निः स्विष्टकृद् देवान् यक्षद् यथायथ५
 होतारविन्द्रमश्विना वाचा वाच५ सरस्वतीमग्नि५ सोमं५
 स्विष्टकृत् स्विष्ट इन्द्रः सुत्रामा सविता वरुणो भिषगिष्टो
 देवो वनस्पतिः स्विष्टा देवा आज्यपाः स्विष्टो अग्निरग्निना
 होता होत्रे स्विष्टकृद् यज्ञो न दधदिन्द्रियमूर्जमर्पचिति५
 स्वधा वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५८॥

६६९ देवः । अग्निः । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् । देवान् ।
 यक्षत् । यथायथमिति यथाऽयथम् । होतारौ । इन्द्रम् ।
 अश्विना । वाचा । वाचम् । सरस्वतीम् । अग्निम् ।
 सोमम् । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् । स्विष्टऽहति सुऽईष्टः ।
 इन्द्रः । सुत्रामेति सुऽत्रामा । सविता । वरुणः । भिषक् ।
 इष्टः । देवः । वनस्पतिः स्विष्टाऽहति सुऽईष्टाः । देवाः ।
 आज्यपाऽहत्याज्यऽपाः । स्विष्टऽहति सुऽईष्टः । अग्निः ।
 अग्निना । होता । होत्रे । स्विष्टकृदिति स्विष्टऽकृत् ।
 यज्ञः । न । दधत् । इन्द्रियम् । ऊर्जम् । अर्पचितिमित्य-
 षऽचितिम् । स्वधाम् । वसुवन इति वसुऽवने ।
 वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५८॥

- ६६९ अन्वयः— स्विष्टकृत् अग्निः देवः यथायथं देवान् यक्षत् होतारा इन्द्रं
 अश्विना वाचा वाचं सरस्वतीं अग्निं च सोमं, स्विष्टकृत् सुत्रामा इन्द्रः स्विष्टः
 सविता भिषक् वरुणः इष्टः देवः वनस्पतिः इष्टः आज्यपाः देवाः स्विष्टाः अग्निना
 अग्निः इष्टः, स्विष्टकृत् होता, होत्रे यज्ञः इन्द्रियं ऊर्जं अर्पयति न स्वधा दधत्,
 वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः ।) यज ॥ ५८ ॥

६६९ अर्थ— (स्विष्टकृत् अग्निः देवः) स्विष्टकृत् अग्निदेव है, (यथा-
यमं देवान् यक्षत) यथायोग्य रीतिसे उसने सब देवोंका यजन किया है ।
(होतास इन्द्रं अभिना वाचा वाचं सरस्वतीं अग्निं च सोमं) होता, इन्द्र,
अग्निदेव, वाणी सरस्वती, अग्नि और सोमका यजन किया है । (स्विष्टकृत्
सुत्रामा इन्द्रः) स्विष्टकृत् संरक्षक इन्द्र, (स्विष्टः मविता) यजन किया गया
मविता, (भिवक् वरुणः इष्टः देवः धनस्पतिः इष्टः) वैद्य वरुण ॥ देव धन-
स्पति, (आज्यपाः देवाः स्विष्टाः) धी पीनेवाले देवोंका यजन हुआ है ।
(अभिना अग्निः इष्टः) अग्निद्वारा अग्निको यजन हुआ है । (स्विष्टकृत् होत्रे
यशः इन्द्रियं ऊर्जं अपचितिं न स्वधा दधत्) इवन करनेवालेके लिये यश,
इन्द्रिय, बल, रस, भक्त आदिका धारण किया है । हमें धन मिले इसलिये
धनसे प्राप्त द्रविष्यान्न ये देव प्राप्त करें । हे (होताः यज्ञ) होता । तु यजन
कर ॥

(२) अश्विनूर्यादयः ।

[६७०] (चा० य० ३८।१९)

६७० अश्विना घर्म पातु ५ हार्द्वान्महर्दिवाभिः कृतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

६७० अश्विना । घर्मम् । पातम् । हार्द्वान्म ।
अर्हः । दिवाभिः । कृतिभिरित्युत्तिः ॥
तन्त्रायिणे । नमः । द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

६७० अन्वयः— अश्विना । अर्हर्दिवाभिः कृतिभिः हार्द्वान् घर्मं पातं तन्त्रा-
यिणे द्यावापृथिवीभ्यां नमः ॥ १२ ॥

६७० अर्थ— हे (अश्विना) अग्निदेवों । (अर्हर्दिवाभिः कृतिभिः)
मन्त्रों और दायमको अपने संरक्षणद्वारा (हार्द्वान् घर्मं पातं) दृष्टिको
आवृत्त देनेवाले इस नये कृष्णके पात्रही गुरुता करो । (तन्त्रायिणे द्यावापृथि-
वीभ्यां नमः) ऋष्यमन्त्रकण आदिन्व, धु और भूमिके लिये प्रणाम है ॥

(३) अश्विनौ, बृहस्पतिः ।

[६७१] (अथर्व० ५।२६।१२)

.(६७१) ब्रह्मा । परातिशयवरी चतुष्यदा गायत्री ।

६७१ अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा अर्वाङ् अयं स्वरिदं
यजमानाय स्वाहा ॥१२॥

६७१ अश्विना । ब्रह्मणा । आ । यातम् ।
अर्वाञ्चौ । वषट्कारेण । यज्ञम् । वर्धयन्तौ ॥
बृहस्पते । ब्रह्मणा । आ । याहि । अर्वाङ् । यज्ञः ।
अयम् । स्वरिः । इदम् । यजमानाय । स्वाहा ॥१२॥

६७१ अन्वयः— अश्विना । ब्रह्मणा वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ अर्वाञ्चौ आ यातम् । बृहस्पते ब्रह्मणा अर्वाङ् आ याहि, अयं यज्ञः यजमानाय स्वः इदं स्वाहा ॥ १२ ॥

६७१ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (ब्रह्मणा वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ) ज्ञान और दानद्वारा यज्ञको बढ़ाते हुए (अर्वाञ्चौ आ यातम्) हमारे पास आओ । हे (बृहस्पते ! ब्रह्मणा अर्वाङ् आ याहि) शत्रुके साथ पास आओ ! (अयं यज्ञ यजमानाय स्वः) यह यज्ञ यजमानका तेज बढ़ानेवाला होवे । (स्वाहा) यज्ञमें आगमसमर्पण हो ॥

(४) इयेनः, अश्विनौ ।

[६७२] (अथर्व० ३।३।४)

(६७२-६७८) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

६७२ इयेनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्यां कृणुतां सुगं तं इमं संजाता
अभिसंविशष्वम् ॥४॥

६७२ इयेनः । इन्वम् । नयतु । आ । परस्मात् ।
 अन्यऽक्षेत्रे । अपऽरुद्धम् । चरन्तम् ॥
 अश्विनौ । पन्थांस् । कृणुताम् । सुऽगम् । ते ।
 इमम् । सऽजाताः । अमिऽसंविशब्धम् ॥४॥

६७२ अन्वयः— अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तं इवम् इयेनः परस्मात् आ नयतु ।
 अश्विनौ ते पन्थां सुगं कृणुतां । सजाताः इमं अभिसंविताः ॥ ४ ॥

६७२ अर्थ— (अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तं इवम्) अन्य प्रदेशमें छिपकर
 छमग करनेवाले सम्मानयोग्य राजाको (इयेनः परस्मात् आ नयतु) इयेनके
 समान देगसे दूसरे देगसे छे भाये । (अश्विनौ ते पन्थां सुगं कृणुतां) अश्वि-
 नेब तेरे मातृको सुखसे चकनेतोड्य बनावे । (सजाताः इमं अभिसंविताः)
 सजातीय लोग इस राजाको पुनः राजपद प्रविष्ट करायें ॥

(५) अश्विनौ, यौष्णिता ।

[६७३] (अथर्व ७० ६४३) त्रिवदा विराड् राक्षसी ।

६७३ धिये समश्विना प्रावतं न उरुष्या न उरुज्जम्नप्रयुञ्जन् ।
 यौष्णितयार्यव्यं दुच्छुना या ॥३॥

६७३ धिये । सम् । अश्विना । प्र । अयतम् ।
 नः । उरुष्य । नः । उरुज्जम्न । अप्रयुञ्जन् ॥
 यौः । पितः । यवय । दुच्छुना । या ॥३॥

६७३ अन्वयः— अश्विना । धिये नः सं प्रावतं, उरु-उमन् । अप्रयुञ्जन्
 नः उरुष्य यौः, पिता या दुच्छुना, भावय ॥ ३ ॥

६७३ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (धिये नः सं प्रावतं) बुद्धि बचा-
 नेके धिये हमारी उत्तम सुरक्षा करो । हे (उरु-उमन्) विशेष मतिवालों !
 (अप्रयुञ्जन् नः उरुष्य) मूल न करते हुए न हमारी सुरक्षा का । हे (यौः
 पिता) पुढोइसे पिता ! (या दुच्छुना, भावय) जो दुर्गति दो वसे दूर कर ॥

(६) बृहस्पतिः, अश्विनौ ।

[६७४] (अथर्व० ६।६९।१-३) अनुष्टुप् ।

६७४ गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यज्ञः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥१॥

६७४ गिरौ । अरगराटेषु ।
हिरण्ये । गोषु । यत् । यज्ञः ॥
सुरायाम् । सिच्यमानायाम् ।
कीलाले । मधु । तत् । मयि ॥१॥

६७४ अन्वयः— गिरौ अरगराटेषु हिरण्ये गोषु यत् यज्ञः सिच्यमानायाम्
सुरायां कीलाले मधु तत् मयि ॥ १ ॥

६७४ अर्थ— (गिरौ अरगराटेषु हिरण्ये गोषु) पर्वत, चक्रवर्त्त, सुवर्ण और
गोबरमें (यत् यज्ञः) जो यज्ञ है, तथा (सिच्यमानायां सुरायां) बहनेवाकी
यज्ञेयधारामें तथा (कीलाले मधु) जो भस्ममें मधुरता है वह सब (तत् मयि)
मुझे प्राप्त हो ॥

[६७५]

६७५ अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वती वाचमावदानि जनां अनु ॥२॥

६७५ अश्विना । सारघेण । मा ।
मधुना । अङ्क्तम् । शुभः । पती इति ॥
यथा । भर्गस्वतीम् । वाचम् ।
आवदानि । जनान् । अनु ॥२॥

६७५ अन्वयः— शुभस्पती अश्विनौ । सारघेण मधुना मा भटवन्, यथा
भर्गस्वती वाच जनान् अनु आवदानि ॥ २ ॥

६७५ अर्थ— (शुभस्वती अधिनौ) शुभके स्वामी अश्विनदेवी ! (धारणेन मधुना मा भद्रम्) सरस मधुसे मुझे युक्त करो । (यथा भगवन्मूर्तिं वाचं) जिससे भाग्यवाली वाणीको (जनान् अनु भावयानि) लोगोंके प्रति मैं बोलूँ, वैसा करो ॥

[६७६]

६७६ मयि वचो अथो यशोऽथो यज्ञस्य यत् पर्यः ।

तन्मयि प्रजापतिदिवि दामिष दंहतु ॥३॥

६७६ मयि । वचः । अथो इति । यशः ।

अथो इति । यज्ञस्य । यत् । पर्यः ॥

तत् मयि । प्रजापतिः ।

दिवि । दाम्दृष । दंहतु ॥३॥

६७६ आश्रयः— मयि वचः, अथो यशः अथो यज्ञस्य यत् पर्यः प्रजापतिः तत् मयि दंहतु दिवि दाम्दृष ॥ ३ ॥

६७६ अर्थ— (मयि वचः) मुझे तेज मिले, (अथो यशः) और यश मिले, (अथो यज्ञस्य यत् पर्यः) यज्ञका जो सार है, जो दूध है, (प्रजापतिः तत् मयि दंहतु) प्रजापति वह मुझमें रखे, मुझे देवे (दिवि दाम्दृष) जैसा चुको-में प्रकाश होता है वैसा मैं तेजस्वी हो जाऊँ ॥

(७) सामनस्यं, अश्विनौ ।

[६७७] (अथर्व० ७।५१।१-२)

१ ककुम्भस्यनुहुर्, २ जनतो ।

६७७. संज्ञानं नः स्वोभिः संज्ञानमरणेभिः ।

संज्ञानमश्विना युवमिहास्मासु नि यच्छतम् ॥१॥

६७७ सम्ज्ञानम् । नः । स्वोभिः ।

सम्ज्ञानम् । अरणेभिः ॥

सम्ज्ञानम् । अश्विना । युवम् ।

इह । अस्मासु । नि । यच्छतम् ॥१॥

६७७ शब्दार्थः— भक्षिनी । नः स्वभिः संज्ञानं अरणेभिः संज्ञानं युवं इह
अस्मासु सज्ञानं नि यच्छतम् ॥ १ ॥

६७७ अर्थ— हे (भक्षिनी) भक्षिदेवी ! (नः स्वभिः सज्ञानं) हमें
स्वजनोके साथ मिलकर रहनेका ज्ञान हो । (अरणेभिः सज्ञानं) हमें
निकृष्ट स्त्रियोंके साथ मिलकर रहनेका ज्ञान हो । (युवं इह अस्मासु) तुम
यहां हममें (संज्ञानं नि यच्छत) मिलकर रहनेका ज्ञान स्थिर रखो ॥

[६७८]

६७८ सं जानामहे मनसा सं चिकित्वा मा युष्महि मनसा
दैव्येन । मा घोषा उत्स्युर्बहुले विनिर्हते मेघुः
पद्मदिन्द्रस्याहुन्यागते ॥२॥

६७८ सम् । जानामहे । मनसा । सम् । चिकित्वा ।
मा । युष्महि । मनसा । दैव्येन ॥
मा । घोषा । उत् । स्थुः । बहुले । विनिर्हते ।
मा । इषुः । पद्मत् । इन्द्रस्य । अहनि । आऽगते ॥२॥

६७८ शब्दार्थः— मनसा संजानामहे चिकित्वा स दैव्येन मनसा मायुष्मदि
बहुले विनिर्हते घोषाः मा उत्स्थुः, आगते अहनि इन्द्रस्य इषुः मा पद्मत् ॥ १ ॥

६७८ अर्थ— (मनसा संजानामहे) मनसे मिलकर रहनेका ज्ञान प्राप्त
कों, (चिकित्वा सं) ज्ञानसे भी मिलकर रहना सीखें । (दैव्येन मनसा)
मनको दिव्य करके उससे (मा युष्महि) कभी विरोध न करें, आपसमें फूट
न होने में ! (बहुले विनिर्हते) बहुतोंका नष्ट होनेपर (घोषाः मा उत्स्थुः)
दुःस्वके शत्रु न उठें, आपसमें विरोध न हो और उससे होनेवाला वध,
हत्या आदि भी न हो । (आगते अहनि) अविष्वर्गमें (इन्द्रस्य इषुः मा
पद्मत्) इन्द्रका आज्ञा हमपर न गिरे । इन्द्रके मनसे हम अवलम्बी न हों ॥

(८) घर्मः, अश्विनौ ।

[६७९] (अयव = ७।७३।१—५,८)

१,४ जगती, २ षष्ठावृहती, ३,५,८ त्रिष्टुप् ।

६७९ समिद्धो अमिर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिपे
मधु । वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे
सधमादेषु कारवः ॥१॥

६७९ समुद्धः । अग्निः । वृषणा । रथी । दिवः ।
तप्तः । घर्मः । दुह्यते । वाम् । इपे । मधु ॥
वयम् । हि । वाम् । पुरुदमासः ।
अश्विना । हवामहे । सधमादेषु । कारवः ॥१॥

६७९ अन्वयः— वृषणौ अश्विनौ । रथी अग्निः समिद्धः घर्मः तप्तः वां इपे
मधु दुह्यते, वयं पुरुदमासः कारवः सध-मादेषु वां हवामहे ॥ १ ॥

६७९ अर्थ— हे (वृषणौ अश्विनौ) वरुणान् भक्षिवेषो । (दिवः रथी
अग्निः समिद्धः) प्रकाशका रथ जैसा अग्नि प्रदीप्त हुआ है । (घर्मः तप्तः)
यह पात्र उष्ण हुआ है । (वां इपे मधु दुह्यते) आपके यज्ञके लिये मधुर रस
निकाला जा रहा है (वयं पुरुदमासः कारवः) हम सब बड़े घरवाले कुशक-
तासे कर्म करनेवाले लोग (सध-मादेषु वां हवामहे) साथ साथ रसपान
करनेके समय आप दोनोंको बुलाते हैं ॥

[६८०]

६८० समिद्धो अमिरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह घेनवो दत्ता मर्दन्ति वेधसः ॥२॥

६८० समुद्धः । अग्निः । अश्विना ।
तप्तः । वाम् । घर्मः । आ । गतम् ॥
दुह्यन्ते । नूनम् । वृषणा । इह ।
घेनवः । दत्ता । मर्दन्ति । वेधसः ॥२॥
अश्विनौ ३० ५७

६८० अन्वयः— कृष्णो अश्विनौ । अग्निः सप्तभिः वा धर्मः तस्यः सा गतः
मूनं इह धेनवः दुष्टान्ते, वृद्धौ । वेधसः मङ्गित ॥ २ ॥

६८० अर्थ— हे (कृष्णो अश्विनौ) बलवान् अश्विदेवों ! (अग्निः सप्तभिः)
अग्नि प्रदीप्त हुआ है, (वां धर्मः तस्यः) आपके लिये यह कृष्णका पात्र तप गया
है । इसलिये (आ गतं) आओ । (मूनं इह धेनवः दुष्टान्ते) निम्नपक्षे यहाँ
गौवं दुष्टी जाती हैं । हे (वृद्धौ) वृद्धनीय देवों ! (वेधसः मङ्गित) ज्ञान-
पूर्वक कर्म करनेवालेही आनन्द प्राप्त करते हैं ॥

[६८१]

६८१ स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विक्षे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना
रिहन्ति ॥३॥

६८१ स्वाहाकृतः । शुचिः । देवेषु । यज्ञः ।
यः । अश्विनोः । चमसः । देवपानः ॥
तम् । कुं इति । विक्षे । अमृतासः । जुषाणाः ।
गन्धर्वस्य । प्रति । आस्ना । रिहन्ति ॥३॥

६८१ अन्वयः— यः अश्विनोः देवपानः चमसः देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः
विक्षे अमृतासः तं च जुषाणा (तं च) गन्धर्वस्य आस्ना प्रति रिहन्ति ॥ ३ ॥

६८१ अर्थ— (यः अश्विनोः देवपानः चमसः) जो अश्विदेवोंका देवोंको
रक्षपान करनेवाला चमस है, यह (देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः) देवोंके लिये
सर्पण होनेके कारण पवित्र है । (विक्षे अमृतासः तं च जुषाणाः) सब देव
उसीका सेवन करते हैं । और (तं च गन्धर्वस्य आस्ना प्रति रिहन्ति) इसकी
गन्धर्वके मुखसे प्रशंसा करते हैं ॥

[६८२]

६८२ यदुसिगास्त्राहुतं घृतं पयोऽयं स नामाश्विना भ्रातृ आ
गतम् । माध्वी चतारो विदधस्य सरपती तप्तं घृमे पिवतं
रोचने दिवः ॥४॥

६८२ यत् । उ॒त्ति॒यासु । आ॒हुत॑म् । घृ॒तम् । प॒यः ।

अ॒यम् । सः । वा॒म् । अ॒श्वि॒ना । भा॒गः । आ । ग॒तम् ॥

मा॒ध्वी इति॑ । घ॒र्त॒रा । वि॒दुध॑स्य ।

स॒त्प॒ती इति॑ स॒त्स्प॒ती । त॒प्तम् । घ॒र्मम् । पि॒ब॒तम् ।

रो॒च॒ने । दि॒वः ॥४॥

६८२ अन्वयः—अश्विनौ । यत् उ॒त्ति॒यासु आ॒हुतं घृतं पयः अयं स वा भागः आ गतं, मा॒ध्वी वि॒दुध॑स्य घ॒र्त॒रौ मार॑ती । दि॒वः रो॒च॒ने तप्तं घर्मं पि॒ब॒तम् ॥ ४ ॥

६८२ अर्थ—हे (अश्विनौ) अश्विदेवों । (यत् उ॒त्ति॒यासु आ॒हुतं घृतं पयः) जो गीर्वाणें रक्षा हुआ ची और दूध हैं, (अयं स वा भागः) यह तो आपकाही भाग है, इसके किये तुम दोनों (आ गतं) भागो । हे (मा॒ध्वी वि॒दुध॑स्य घ॒र्त॒रौ स॒त्प॒ती) मधुर दूधपर प्रेम करनेवाले, युद्धमें आचार देनेवाले कृतम स्वामी ! (दि॒वः रो॒च॒ने तप्तं घर्मं पि॒ब॒तं) प्रकाशके होनेपर तपे दूधको पीओ ॥

[६८३]

६८३ त॒प्तो वा॑ घ॒र्मो न॑क्ष॒तु स्व॒होता॑ प्र॒याम॑च्य॒र्षुचर॑तु प॒र्य॒स्वान् ।

म॒घोर्दु॒ग्ध॒स्याश्वि॒ना त॒नाया॑ वी॒तं पा॑तं प॒र्य॒स उ॒त्ति॒यायाः॑

६८३ त॒प्तः । वा॒म् । घ॒र्मः । न॒क्ष॒तु । स्व॒होता॑ ।

प्र । वा॒म् । अ॒च्य॒र्षुः । च॒र॒तु । प॒र्य॒स्वान् ॥

म॒घोः । दु॒ग्ध॒स्य । अ॒श्वि॒ना । त॒नायाः॑ ।

वी॒तम् । पा॒तम् । प॒र्य॒सः । उ॒त्ति॒यायाः॑ ॥५॥

६८३ अन्वयः—अश्विनौ ! तप्तः घर्मः वा॑ नक्ष॒तु, स्व॒होता॑ प॒र्य॒स्वान् अच्य॒र्षुः वा॑ प्र चरतु; त॒नायाः॑ उ॒त्ति॒यायाः॑ म॒घोः दु॒ग्ध॒स्य प॒र्य॒सः वी॒तं पा॑तम् ॥ ५ ॥

६८३ अर्थ—हे (अश्विनौ) अश्विदेवों ! (तप्तः घर्मः ॥ नक्ष॒तु) तपे दूधको तुम दोनों प्राप्त करो । (स्व॒होता॑ प॒र्य॒स्वान् अच्य॒र्षुः वा॑ प्र चरतु) स्वयं हवन करनेवाला दूध लेकर आपा अच्य॒र्षु भाव दोनोंकी सेवा करे । (त॒नायाः॑ उ॒त्ति॒यायाः॑ म॒घोः दु॒ग्ध॒स्य प॒र्य॒सः) दृष्टपुष्ट गोके मधुर दूधको (वी॒तं पा॑तं) प्राप्त करके पी जानो ॥

[६८४]

६८४ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसुनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन् ।
दुहामश्विभ्यां पर्यो अघ्नयेयं सा वर्धतां महते सौभगाय

६८४ हिङ्कृण्वती । वसुपत्नी । वसुनाम् ।
वत्सम् । इच्छन्ती । मनसा । निऽआगन् ॥
दुहाम् । अश्विभ्याम् । पर्यः । अघ्न्या ।
इयम् । सा । वर्धताम् । महते । सौभगाय ॥८॥

६८४ अन्वयः— हिङ्कृण्वती वसुनां वसुपत्नी मनसा वत्सं इच्छन्ती नि-
भागन्, इय अघ्न्या अश्विभ्यां पर्यः दुहा सा महते सौभगाम वर्धताम् ॥ ८ ॥

६८४ अर्थ— (हिङ्कृण्वती वसुनां वसुपत्नी) द्विकार करनेवाली वसुओंकी
दूध पिकानेवाली, (मनसा वत्स इच्छन्ती नि-भागन्) मनसे अपने बछड़ेकी
मिलनेकी इच्छा करती हुई पास आगयी हैं । (इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पर्यः दुहा)
यह अवश्य गौ अश्विदेवोंके लिये दूध देवे । और (सा महते सौभगाम वर्धताम्)
यह बड़े ऐश्वर्यका संपर्जन करनेके लिये बड़े ॥

(९) मधु, अश्विनौ ।

[६८५] (अथर्व. ९।१।११, १६-१७, १९)

अनुष्टुप्, १७ उपरिष्ठादिराद् गृह्यते ।

६८५ यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि धियताम् ॥११॥

६८५ यथा । सोमः । प्रातःसवने ।
अश्विनोः । भवति । प्रियः ॥
एव । मे । अश्विना । वर्चः ।
आत्मनि । धियताम् ॥११॥

६८५ अन्वयः— यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोः प्रियः भवति, अश्विना ।
एवा मे आत्मनि वर्चः धियताम् ॥ ११ ॥

६८५ अर्थ— (यथा सोमः प्रातःसवने) जैसा सोमरस प्रातःसवन यज्ञमें
(अश्विनोः प्रियः भवति) अश्विदेवोंकी प्रिय होता है, वैसे (अश्विना) अश्विदेवों!
(एवा मे आत्मनि) ऐसा मेरी आत्मामें (वर्चः धियताम्) तेजका धारण करो ॥

[६८६]

६८६ यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मध्वावधिं ।
एवा मे अधिना वर्च आत्मनि धियताम् ॥१६॥

६८६ यथा । मधु । मधुकृतः ।
सम्भरन्ति । मधौ । अधि ॥
एव । मे । अधिना । वर्चः ।
आत्मनि । धियताम् ॥१६॥

६८६ अन्वयः— यथा मधुकृतः मधौ अधि मधु संभरन्ति, अधिना । एवा मे वर्चः तेजः बलं ओजः धियताम् ॥ १६ ॥

६८६ अर्थ— (यथा मधुकृतः) जैसी मधुमक्खियों (मधौ अधि मधु संभरन्ति) मधुकोशमें मधुको संचित करती हैं, हे (अधिना) अभिदेवों ! (एवा मे) ऐसा मेरेलिये (वर्चः तेजः बलं ओजः धियताम्) प्रभाव, तेज, बल और सामर्थ्य प्राप्त करें ॥

[६८७]

६८७ यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मध्वावधिं ।
एवा मे अधिना वर्चस्तेजो बलमोजैश्च धियताम् ॥१७॥

६८७ यथा । मक्षाः । इदम् । मधु ।
निञ्जन्ति । मधौ । अधि ॥
एव । मे । अधिना । वर्चः ।
तेजः । बलम् । ओजः । च । धियताम् ॥१७॥

६८७ अन्वयः— यथा मक्षाः इदं मधु मधौ अधि न्यञ्जन्ति एवां महिषी ! मे वर्चः तेजः बलं ओजः धियताम् ॥ १७ ॥

६८७ अर्थ— (यथा मक्षाः) जैसी मक्खियों (इदं मधु) यह मधु (मधौ अधि न्यञ्जन्ति) मधुको कोशमें भर देते हैं, (एवा) इस तरह हे (अधिना) अभिदेवों ! (मे वर्चः तेजः बलं ओजः धियताम्) मेरेमें प्रभाव, तेज और सामर्थ्य प्राप्त करें ॥

[६८८]

६८८ अश्विना सारधेण मा मधुनाऽहुक्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वार्चमावदानि जनान् अनु ॥१९॥

६८८ अश्विना । सारधेण । मा ।
मधुना । अहुक्तम् । शुभः । पती इति ॥
यथा । वर्चस्वतीम् । वार्चम् ।
आऽवदानि । जनान् । अनु ॥१९॥

६८८ अन्वयः— शुभस्पती अधिनौ ! सारधेण मधुना मा सं अहुक्तं; यथा वर्चस्वतीं याच जनान् अनु आवदानि ॥ १९ ॥

६८८ अर्थ— हे (शुभस्पती अधिनौ) शुभके पाकक अधिदेवों ! (सारधेण मधुना मा सं अहुक्तं) साररूप मधुसे मुझे युक्त करो । (यथा वर्चस्वतीं याच) जैसा तेजस्वी भाषण (जनान् अनु आवदानि) कोतोंके प्रति मैं बीक मझूं वैसा मेरा भीका भाषण करो ॥

(१०) सिनीवालीसरस्वत्यश्विनः ।

[६८९] (अ. १० । १८४ । ९)

(६८९) एषा गर्भकती, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । भगवद्गुप् ।

६८९ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा घृतां पुष्करम्बजा ॥२॥

६८९ गर्भम् । धेहि । सिनीवालि ।
गर्भम् । धेहि । सरस्वति ॥
गर्भम् । ते । अश्विनौ । देवौ ।
आ । घृतम् । पुष्करम्बजा ॥२॥

६८९ अन्वयः— सिनीवालि ! गर्भं धेहि, सरस्वति ! गर्भं धेहि, पुष्करम्बजा अधिनौ देवौ ग गर्भं आ घृतम् ॥ २ ॥

६८९ अर्थ— हे (सिनीवालि) सिनीवाली ! (गर्भं धेहि) गर्भका पारण करो । हे (सरस्वति) सरस्वति ! (गर्भं धेहि) गर्भका पारण करो । हे (पुष्करम्बजा अधिनौ देवौ) कमलोंकी माया पारण करनेवाले अधिदेवों ! (ते गर्भं आ घृतां) तेरे गर्भका पारण करो ॥

ऋषि-सूची ।

ऋषिः—	(सन्त्राङ्कः) पृष्ठाङ्कः	ऋषिः—	(सन्त्राङ्कः) पृष्ठाङ्कः
पञ्चकण्ठा वैश्वामित्रः । (१-३) १		भवस्तुरात्रेयः । (१७८-२८६) ११४	
मेधातिथिः काण्वः । (४-८) ४		भौमोऽग्निः । (२८७-२९६) ११०	
मुनः सोप भ्राज्जीवर्तिः स कृत्रिमो		सप्तवधिरात्रेयः । (२९७-३०५) ११६	
वैश्वामित्रो देवराजः ।		बाहस्पत्यो भरद्वाजः ।	
(१-२१) ७		(३०६-३१७) १४२	
द्विपदश्चक्षुः शाङ्गिरसः । (१२-२३) १०		मैत्रावरुणिवर्षासप्तः । (३१८-३८३) १५४	
मस्कण्डः काण्वः । (१३-४८) ११		महातिथिः काण्वः ।	
गोतमो राहूणः । (४९-५१) ३८		(३८४-४१०) १९०	
कुसुम शाङ्गिरसः । (५२-७६) ४०		सम्भवंसः काण्वः । (४११-४४३) १०६	
कक्षीवान् देवतमस जीविजः ।		शशकर्णः काण्वः । (४४४-४६४) ३१८	
(७७-१५९) ६६		प्रगाथो (चौरः) काण्वः ।	
परुषेयो देवोदामिः ।		(४६५-४७०) ११९	
(१६०-१६१) १३९		इरिभिडिः काण्वः । (४७१) ३३१	
वीरसेतमः शौचध्वः ।		सोमरिः काण्वः । (४७२-४८९) ३३३	
(१६३-१७४) १४१		विद्यमना वैद्यः, वयस्यो वा	
नगस्तयो मैत्रावरुणः ।		ऽञ्जिरसः । (४९०-५०८) २४३	
(१७५-११३) १५३		द्वयावाच्य आत्रेयः ।	
धूमसदः (शाङ्गिरसः शीतहोत्रः		(५०९-५३२) १५२	
पञ्चात्) मार्गेशः शौचकः ।		नाभाकः काण्वः, भार्गवानां	
(११४-११५) १८४		आत्रेयो वा । (५३३-५३५) ३६४	
शाखिनो विश्वामित्रः ।		मेघः काण्वः । (५३६-५३९) ३६५	
(१२६-२३४) १९३		गोपतन आत्रेयः सप्तवधिवर्षः ।	
कामदेवो गौतमः ।		(५४०-५५७) १६७	
(१३५-१४३) २००		कृष्ण शाङ्गिरसः । (५५८-५६६) १०३	
उरुमीकहाजमीनदी सौहोत्रः ।		कृष्ण शाङ्गिरसः, विद्वको वा	
(१४४-१५७) २०५		कार्तिगः । (५६७-५७१) १०६	
पौर आत्रेयः । (१५८-१७७) ११३			